लेखक की ६० वीं प्रकाशित पुस्तक

संताल-संस्कार की रूपरेखा

लेखक
उमाशंकर

प्रकाशक :
निर्माण प्रकाशन
कदमकुआँ, पटना-३

प्रथम संस्करण, १९६६

मूल्य—रु० १२.५० पैसे

प्रकाशक :-
महेशनारायण साहित्य-शोध-संस्थान की ओर से
श्रीमती शैलकुमारी सहाय,
निर्माण प्रकाशन, पटना-३ द्वारा प्रकाशित

मुद्रक :-
केदारनाथ, एम. ए.
श्री वैद्यनाथ प्रेस,
वैद्यनाथ-देवघर (सं०प०)

SANTAL SANSKAR KI ROOP REKHA (Anthropology) : By UMASHANKAR

Price Rs. 12-50



बिहार राज्य के कल्याणमंत्री श्री बरियार हेम्बरम

संताल जाति के मणि, स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी,

बिहार राज्य के कल्याण मंत्री

श्री बरियार हेम्बरम

को

उन्हीं की वस्तु उन्ही के हाथों मे

गीतानुसार

'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये ।'

—उमाशंकर

विषय-सूची

जुझार सोरेन, गोपाल लाल वर्मा, नारायण सोरेन 'तोडे सुताम', साधु रामचाँद मुर्मू, डोमन साहु 'समीर', आदित्य मित्र संताली, ठाकुर प्रसाद मुर्मू, शारदा प्रसाद किसकू, राजेन्द्र प्रसाद किसकू, लक्ष्मीनारायण मुर्मू 'पानीरपियो', इगनातिकम सोरेन 'बिरवाहा', बाबूलाल मारयडी 'लु', सल्हाय हासदा, भागवत मुर्मू 'ठाकुर', चित्त टुडु, राम सहाय बिसकू 'रापाज, मनीन्द्र हाँसदा, गुमास्ता प्रसाद सोरेन; माँझी हाँसदा; महादेवचन्द्र दास मारयडी, छोटेलाल सोरेन 'डपेलवाहा', भुवनेश्वर सोरेन 'भैरव', जेठू मुर्मू 'कोचेकाड़वा', चैतन्यकुमार मारयडी 'अरसाल' जोसेफ चन्द्रशेखर हाँसदा, जेठा कुमार चोंड़े 'वीरचेंड़े', बुद्धिराय मुर्मू, हृदय नारायण मयडल 'अधीर', पृथ्वीचन्द्र किस्कू, आनन्द प्रसाद किस्कू 'रापाज', चुड़का सोरेन 'हाले-डाले', बाल किशोर बासकी 'अरमान', और 'इचाक'; विद्यारत्न रूपनारायण शास्त्री; भवेश चन्द्र हाँसदा; रामसुन्दर हेम्बरम; सहदेव मरयडी; मलिन्द्रनाथ मरयडी; केवलराम सोरेन; तुनकू सोरेन; गोराचाँद टुडु; हृदय नारायण साहु; यदुनन्दन मुर्मू; वैद्यनाथ मरयडी; शीतल प्रसाद मुर्मू; जागरण चन्द्र

चित्र-सूची

आमुख



● "सन्ताल सस्कार की रूपरेखा" पुस्तक का बहुत बडा महत्व है। लेखक ने सन्ताली जीवन के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जो सब विवरण दिये हैं, वे बडे ही मूल्यवान हैं। सन्तालो के गोत्र, जन्म, विवाह, धर्म-विश्वास, ग्राचार, कला-कौशल, समाज-व्यवस्था, नृत्य, संगीत, भाषा, साहित्य ग्रादि के सम्बन्ध मे लेखक ने जिन सब तथ्यो का समावेश किया है, उनसे उनकी ग्रनुसन्धित्सा तथा विश्लेषणी दृष्टि का पता चलता है। .... इस पुस्तक को पढकर हम सन्ताली समाज के जन-जीवन के संबंध में ऐसी कितनी ही बातें जान सकेंगे जिनकी कोई जानकारी हमें ग्रब तक नही थी ग्रौर न हममें जानने का कौतूहल था।"

— *आचार्य पंडित जगन्नाथ प्रसाद मिश्र*

● "सन्ताल सस्कार की रूपरेखा" मे सन्ताल सस्कृति पर साङ्गोपाङ्ग ग्रध्ययन प्रस्तुत किया गया है ग्रौर जो कुछ लिखा गया है ग्रपनी ग्राँखो से देखकर ग्रौर ग्रकाट्य पुष्ट प्रमाणो के ग्राधार पर। विभिन्न ग्रव-सरो पर विशेषतः विवाह ग्रौर मरण के समय सन्तालो में जो रस्मोरिवाज हैं, उनका बडा ही भव्यरूप लेखक ने ग्रपनी ग्रजेय प्रतिभा से ग्रंकित-चित्रित किया है ग्रौर इसके ग्रतिरिक्त सन्ताल जाति के जीवन-दर्शन का ऐसा व्यापक वर्णन शायद पहले पहल हिन्दी मे पढने को मिलता है। ग्रंग्रेजी में छिट-पुट लेख यदाकदा मिलते रहे हैं, परन्तु हिन्दी मे यह प्रथम प्रयास है, नि:संकोच ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

— *डाक्टर श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'*

२

श्री उमाशंकर हिन्दी के एक सुपरिचित लेखक हैं। विभिन्न विषयों पर लेखादि लिखने के अतिरिक्त उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी आलोचनात्मक कृतियों द्वारा सुनाम अर्जित किया है। किन्तु अपनी शोध प्रवृत्ति द्वारा विस्मृति के गर्भ में लुप्त प्रायः ऐतिहासिक घटनाओं एवं पात्रों का उद्धार करके जिस रूप में वे उन्हें प्रकाश में ला रहे हैं इससे अवश्य ही उनकी सेवाएँ अविस्मरणीय बनी रहेंगी। एक अनुसन्धायक की गम्भीर दृष्टि लेकर वे भूले-बिसरे इतिहास के पृष्ठों की छानबीन करते हैं और उनकी परतो के नीचे से तथ्यो को निकाल कर इस रूप में हमारे सामने रखते हैं जिससे हम सचमुच चकित, विस्मृत हो जाते हैं। उनकी जैसी गवेषणावृत्ति विरल साहित्यिको में ही देखी जाती है। उनका कर्म क्षेत्र चाहे जो भी हो, सर्वत्र उनकी ऐतिहासिक वृत्ति सक्रिय बनी रहती है। संताल परगना जिले के मुख्यालय दुमका में सरकारी पद पर रहते हुए भी उन्होने गवेषणा के क्षेत्र में अपने अध्यवसाय को अक्षुण्ण रखा है। बडी निष्ठा और लगन के साथ वे शोध कार्य में संलग्न रहते हैं और अपने अनुसन्धान द्वारा उपलब्ध तथ्यों को पाठकों के समक्ष उपस्थित करके उनके ज्ञान राज्य की परिधि को विस्तृत करते हैं। उनकी साहित्य साधना का यह क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

सन्ताल परगना यद्यपि बिहार राज्य का एक अभिन्न अंग है फिर भी वहाँ के आदिवासियों की जीवन-चर्या तथा संस्कृति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान कितना अधूरा है। संतालियों का धर्म विश्वास, उनके देवी-देवता, उनके संस्कार, धार्मिक अनुष्ठान, उनकी संस्कृति, आचार-विचार, रीति-

नीति आदि के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए विस्तृत सामग्री भरी पड़ी है। इस दिशा में जो कुछ कार्य हुए हैं वे कतिपय ज्ञानान्वेषी अंगरेज पदाधिकारियों द्वारा। अंगरेजी भाषा में इस प्रकार के कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु सर्वसाधारण के लिए वे सुलभ नहीं हैं। इसके अतिरिक्त ये सब ग्रन्थ सर्वाङ्ग पूर्ण नही कहे जा सकते। उनके द्वारा हमें आदिवासियों के संबंध में सम्यक् जानकारी नहीं हो पाती। आवश्यकता इस बात की है कि आदिवासियों के जीवन तथा उनकी संस्कृति का घनिष्ठतम परिचय हमें हो ताकि उनके साथ हम आत्मीयता का अनुभव करें और दोनों के बीच अपरिचय का जो व्यवधान है वह दूर हो जाय। विदेशी शासकों ने जानबूझकर आदिवासियो के पृथक् अस्तित्व को बनाये रखा, उन्हें बिहार के अन्यान्य अधिवासियो के निकट सम्पर्क में नहीं आने दिया। शिक्षा एवं नवयुग के ज्ञानआलोक से भी उन्हें वंचित रखा गया। उनकी दरिद्रता से अनुचित लाभ उठाकर उन्हें ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिए नाना प्रलोभन दिये गये। परिणाम यह हुआ कि हम इन आदिवासियों के जीवन के प्रति सर्वथा उदासीन हो गये और इन्हें अपने से सर्वथा भिन्न समझने लगे। पृथकत्व का भाव उनमें भी बद्धमूल होता गया और परस्पर की सहानुभूति शिथिल हो गयी। स्वाधीन भारत में सब नागरिकों के मौलिक अधिकार समान रूप में स्वीकृत हुए हैं। आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से जो सब जन समाज पिछड़े हुए हैं उन्हें समुन्नत समाज के समान स्तर पर लाने के लिए शासन की ओर से बहुमुखो प्रचेष्टाएँ हो रही हैं। किन्तु इनके साथ ही सांस्कृतिक स्तरपर भी मिलन-सेतु निर्मित होना चाहिए। सांस्कृतिक स्तर पर ही हृदय-हृदय का मिलन संभव हो सकता है और एक दूसरे के सन्निकट आ सकते हैं। इस दृष्टि से "सन्ताल-संस्कार की रूपरेखा" पुस्तक का बहुत बड़ा महत्व

है। लेखक ने सन्ताली जीवन के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जो सब विवरण दिये हैं वे बड़े ही मूल्यवान हैं। संतालों के गोत्र , जन्म, विवाह, धर्म , विश्वास , आचार , कला-कौशल , समाज-व्यवस्था , नृत्य , संगीत , भाषा , साहित्य आदि के सम्बन्ध में लेखक ने जिन सब तथ्यों का समावेश किया है उनसे ही उनकी अनुसन्धित्सा तथा विश्लेषणी दृष्टि का पता चलता है। संवेदनशील हृदय तथा ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठ दृष्टि लेकर उन्होंने इस पुस्तक की रचना की है। पुस्तक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है और इसकी उपादेयता असन्दिग्ध है। इस पुस्तक को पढ़कर हम संताली समाज के जन जीवन के सम्बन्ध में ऐसी कितनी ही बातें जान सकेंगे जिनकी कोई जानकारी हमें अब तक नहीं थी और न हममें जानने का कौतूहल था। मुझे आशा है, लेखक की इस कृति का यथेष्ट समादर होगा और वे यशस्वी होंगे।

१०-११-१९६५ ई०

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष ,
बिहार राज्य पुस्तकालय संघ

२

भारतीय संस्कृति अपनी चिरन्तन सुन्दरता एवं विश्वजनीन मङ्गल कामना के लिए प्रसिद्ध है। इसकी विविधता एवं अखण्डता— अनेकता में एकता, 'विनश्यत्सु अविनश्यंतं,' 'समं सर्वेषु भूतेषु,' 'सर्वभूतहितेरताः,' 'सुहृदं सर्वभूतानां' आदि विशेषण अपने आप में इसकी महत्ता को सिद्ध करते हैं। मानवीय जीवन एवं प्राकृतिक सौंदर्य का ऐसा व्यापक समन्वय अन्यत्र कहाँ मिलता है? गंगा यमुना की तरह, सूर्य चन्द्र की तरह भारतीय संस्कृति चिर पुरातन, चिर नवीन है।

हमारे इस परम पावन देश में जितने प्रान्त हैं उनकी अपनी अपनी निजी विशेषताएँ हैं— खान-पान में, वेश-भूषा में, रहन-सहन में, आचार-विचार में, कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक और द्वारका से लेकर कामरूप तक संस्कृतियों की जो मनोहारिणी छटा है उसे देखकर कौन सहृदय व्यक्ति विस्मय विमुग्ध एवं आनन्द परिप्लुत हुए बिना नही रहेगा। इतनी विविधता परन्तु साथ ही अखण्ड एकता— कैसा मङ्गलमय विधान है?

परन्तु दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि हम अपनी संस्कृति के पावन एवं मङ्गलमय प्रभाव से हटकर पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में जैसे जैसे आते गये हम क्रमशः अभाग्य के शिकार होते गये और हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना जडिमा और अनास्था के निविड़ अंधकार में लुप्त-सी होती गयी और फलतः हम उभय भ्रष्ट हो गये। सचमुच ही किसी भी राष्ट्र के लिए इससे बढ़कर अमङ्गल का कोई कारण हो नही सकता कि वह अपनी निजी सत्ता की मूलगत संस्कृति से विच्छिन्न होकर परावलम्बन पर जीने की लालसा करे। भारतीय संस्कृति ने बाहर से बहुत धक्के खाये हैं उससे वह बलवती ही हुई परन्तु अपने ही अन्दर अपने प्रति जब अनास्था के कीटाणु घुस जायें तो निस्तार का क्या उपाय है? विदेशी शासन

ने हमारी मूलगत संस्कृति पर जो कुठाराघात किये हैं उससे बहुत कुछ वह क्षत-विक्षत हो चुकी है परन्तु फिर भी हमारे पूर्वजो का तप राष्ट्रीय सस्कृति को रक्षा करने में समर्थ सिद्ध होगा प्रस्तु निराशा की कोई गुंजाईश नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक श्री उमाशकर जी की जिज्ञासु-भावना इतनी उद्दीप्त है कि वे जहाँ भी रहते हैं वहाँ के संबन्ध में जानने योग्य सारी की सारी बातों को न केवल जान लेते हैं अपितु उसे कलम की घाट उतार कर लोक चेतना को उद्बुद्ध भी करते हैं, प्रदीप्त भी। इसी प्रेरणा का यह परिणाम है कि अब तक श्री उमाशंकर जी की लेखनी से लगभग ६० ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं जो अपने-अपने विषय में शोध की सीमा का स्पर्श करते हैं। कई ऐसे साहित्यिक व्यक्तियों को प्रकाश में लाने का श्रेय श्री उमाशङ्कर जी को है जिन्हे हम भूल चुके थे , बिसार चुके थे— श्री महेश नारायण तथा श्री राधा लाल माथुर इनमें मुख्य हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे सन्ताल सस्कृति पर साङ्गोपाङ्ग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और जो कुछ लिखा गया है अपनी आँखो से देखकर और अकाट्य पुष्ट प्रमाणो के आधार पर। विभिन्न अवसरो पर विशेषतः जन्म , विवाह और मरण के समय संतालो में जो रस्मोरिवाज हैं उनका बडा ही भव्य रूप लेखक ने अपनी अजेय प्रतिभा से अकित–चित्रित किया है और ऐसे मनोहारी चित्रो के उरेहने में लेखक का कवि और चित्रकार रूप सामने आ जाता है। इसके अतिरिक्त संताल जाति के जीवन दर्शन का ऐसा व्यापक वर्णन शायद पहले पहल हिन्दी में पढने को मिलता है। अंगरेजी में छिटपुट लेख यदाकदा मिलते रहे हैं परन्तु हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है ऐसा निःसंकोच स्वीकार करना चाहिए।

सन्ताल वनो में रहने वाले आदिवासी हैं जिन्होने मानव की आदिम सस्कृति को सुरक्षित रखा है। उनके प्रत्येक कार्य में सुरम्य प्रकृति सहचरी

रही है— साज-शृंगार, नृत्य-गान, जन्म, विवाह , यहाँ तक कि मृत्यु में भी प्रकृति का सीधा सम्बन्ध और प्रभाव है। जिनका हृदय प्रकृति के सौंदर्य से लबालब भरा नहीं है , जिन्हें प्रकृति के सौंदर्य रस का पान करने की आँखें नहीं हैं , वे संताल जीवन के अन्तर्दर्शन से वंचित ही रह जायेंगे। सौभाग्य से श्री उमाशङ्कर जी को वैसा रसपूर्ण हृदय और रसग्राहिणी आँखें प्राप्त हैं— और इनकी लेखनी में जो जादू है उसका चमत्कार तो इस पुस्तक की पंक्ति-पंक्ति में पाठक को मिलेगा और वह अपने आप इस सागर में स्नान कर अपने को धन्य करेगा।

मैं इस सफल कृति पर श्री उमाशङ्कर जी को बधाई देता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि लेखक को अधिक से अधिक कृतियाँ हिन्दी को गौरव प्रदान करती रहें। शुभमस्तु मङ्गलमस्तु।

राजेन्द्र नगर, पटना — *भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव*

१. १२. १९६५

निर्देशक

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्

३

श्री उमाशङ्कर बिहार के उन वर्चस्वी वाणी-पुत्रों में हैं , जिनकी लगन, परिश्रमशीलता , अध्यवसाय और ईमानदारी अपना उपमान नही रखती ! वे एक ऐसे धुनी साहित्कार हैं जिसके तन में तारुण्य , मन में मनीषा और आत्मा में आलोक की आभा अनवरत अँगड़ाइयाँ लेती है ।

मैं उनका अग्रज हूँ , शायद इसीलिए उन्होने मुझे इस पुस्तक पर दो शब्द लिखने को कहा है ।

सच कहता हूँ , प्रस्तुत कृति को आद्योपान्त पढ जाने पर मैंने एक ही बात कह कर चुप रह जाना उचित समझा कि भाई उमाशङ्कर के कृतित्व-कोष में अगर केवल यही एक ग्रन्थ सुरक्षित रख लिया जाय तो यह उनकी अमरता को अक्षुण्ण रखेगा ।

मुझे विश्वास है कि उमाशङ्कर जी की यह ऐतिहासिक कृति न केवल राष्ट्र-भाषा को , प्रत्युत विश्व साहित्य को एक ऐसी देन सिद्ध होगी , जो ज्ञान , विज्ञान एवं मनोविज्ञान के विद्यार्थी - वर्ग को ही नही बल्कि विद्वान-मण्डली को भी एक अपूर्व आभा प्रदान करेगी !

क्या 'महेश नारायण-साहित्य शोध-संस्थान' उमाशङ्कर जी से इसी तरह की अन्य सेवाएँ लेने का लोभ संवरण कर लेगा ??? मेरी यह चेतावनी है कि अगर ऐसा कही हुआ तो यह एक अनर्थकारी घटना होगी !

किमधिकम् ???

कच्ची तालाब ,
पटना— १.

ब्रजकिशोर ' नारायण '
(संपादक, जन जीवन)
२६ जनवरी , १९६६

लेखक की बात



● पूज्य बापू ने ६ अगस्त, १९४२ को बम्बई में अंग्रेजों से कहा था-'भारत छोड़ो'। बापू के इस आग्रह के पूर्व ३० जून, १८५५ को संताल नेता सिदो ने भी अंग्रेजों से कहा था— अंग्रेज उनकी भूमि छोड़कर चले जायें। .... सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह की पहली चिनगारी संताल परगना जिले के रोहिणी नामक गाँव में ही फूटी थी ....। .... कांग्रेस की स्थापना के १५ वर्ष पूर्व इसी जिले के भगीरथ मांझी ने जन आन्दोलन आरंभ किया था।........ ....

● इस जिले में एक जाति रहती है। उसी जाति के नाम पर इस जिले का नाम संताल परगना रखा गया है। सन्ताल जाति की कहानी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की गई है। सन्ताल जाति पर हिन्दी में कोई पुस्तक का न होना बहुत दिनों से खटकता आ रहा था। उसका अभाव सब लोग अनुभव करते थे। इस अभाव की पूर्ति करने को लक्ष्य में रखकर इस ग्रन्थ को तैयार किया गया है।

इतिहास में आज तक यही माना जाता रहा है कि वह राजनीतिक घट-नाओं की कहानी है। उसका विस्तार राजाओ और रानियों एवं योद्धाओं और राजनीतिज्ञों तक ही सीमित था। मानवी क्रियाओं से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। पर आज इतिहास का मूल्य बदल गया है। उसका दृष्टिकोण बदल गया है। इतिहास की आज नवीन स्थापनाएँ हैं। उसका आज मानवी क्रियाओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया है। आज तो ऐसी स्थिति है कि उससे अलग होकर इतिहास लिखा ही नही जा सकता। मिट्टी आज इतिहास का आधार है, धरती के लाल उसकी प्राण-शक्ति हैं। उन्ही को लेकर आज इतिहास उजागर हो रहा है। हमारे पूर्वज इतिहासकारो ने जिनकी उपेक्षा की है, उनको हमें सम्मान प्रदान करना है। हमें इतना कहकर सन्तोष करना पड़ता है कि आज हमारा दृष्टिकोण जितना व्यापक है, उनका दृष्टिकोण उतना ही संकुचित था। वे एक बँधे-बँधाये लीक पर चल रहे थे। पर वह लीक आज बदले हुए एवं प्रगतिशील युग में व्यर्थ हो गयी है। आज के युग ने इतिहास लिखने के लिए एक नया मान-दण्ड बनाया है। मानवी-प्रगति इतिहास की तुला है।

इतिहास की कहानी बहुत लम्बी है। उसे युगो में जितना ही हम बाँधने की चेष्टा करते हैं, उतनी ही उसकी लम्बाई बढ़ती जाती है। इसकी सीमा को हमने खोजों के द्वारा नापने की चेष्टा की है, पर अभी तक वह अथाह है, ऐसा माना जाता है, ऐसा कहा जाता है। पता नही, हमारी यह धारणा कब तक बनी रहेगी। एक खोज के द्वारा हम एक धारणा बना पाते हैं, पर दूसरी खोज उस धारणा को गलत प्रमाणित कर देती है। आज ज्ञान बढ़ रहा है; खोज का क्षेत्र भी विस्तृत हो रहा है। इस खोज की होड़ में इतिहास का क्या रूप होगा! इसका उत्तर भविष्य ही देगा।

अबतक की प्राप्त उपलब्धियों को ही हम आधार बनाकर अपना काम कर सकते हैं। मानवीय उपलब्धियों का अभिलेख इतिहास है। मानव का पैर जब इस धरातल पर पड़ा— तब इतिहास की गंगा फूटी। पर वास्तविक इतिहास का प्रारंभ तब हुआ, जब तथ्यों ने इतिहास का शृंगार किया। तथ्यों का जन्म अभिलेखो से होता है। यही कारण है, अभिलेख इतिहास के पोषक तत्व हैं। जिस जाति की उपलब्धियों का कोई अभिलेख नहीं, उसका अपना कोई इतिहास भी नही है। हो सकता है, जिस जाति का हमें इतिहास मिलता है, उस जाति के पूर्व का भी इतिहास हो, पर समय-सागर में उनकी उपलब्धियाँ नष्ट हो गई हैं या वे किसी खोह में पड गई हैं और किसी शोध-कर्त्ता की बाट देख रही हैं। खोह में पडी हुई उपलब्धियो से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके दर्शन की हमें लालसा अवश्य है। उनके प्रति हमारी ममता भी है। पर साक्ष्य के अभाव में वे हमारे लिए निरर्थक ही हैं। इस ग्रन्थ में मैंने उन्हीं उपलब्धियों को अपना आधार बनाया है, जिनका कोई आधार है, कोई अभिलेख है। इस ग्रन्थ में पाठको को उन्ही तथ्यों का उल्लेख मिलेगा, जिन तथ्यो का सम्बन्ध मानवीय क्रियाओं से है। पाठकों को घटनायें घटना के रूप में नही मिलेंगी ; कारण, मैंने घटनाओं को घटना के रूप में ग्रहण नहीं किया है। घटनाओ के कारण एवं उनके परिणामों पर विचार किया गया है। घटनाओं का भाष्य भी पाठको को मिलेगा। घटनाओं का प्रभाव किस प्रकार सस्कार एवं संस्कृति पर पड़ा है, वह किस गति से विकसित हुए हैं— इसका भी आलोक मिलेगा। पर इसका अर्थ यह नही कि घटना प्रधान बनाकर इतिहास का सम्बन्ध मैंने व्यक्ति से जोड दिया है। मेरे कहने का अर्थ यह नही है कि इतिहास का सम्बन्ध व्यक्ति से नहीं है ;

वह घटना प्रधान हो गया है। घटनाओ का स्रोत तो व्यक्ति ही है; इसकी महत्ता को कम नही किया जा सकता। इतिहास उन व्यक्तियो की उपेक्षा नही कर सकता, जिनके व्यक्तित्व से उसकी धारा बदलती रही है। उन व्यक्तियो का कुछ अमर सन्देश है, जो युग-युग तक अमर रहेगा। उनकी योग्यता और क्षमता में आज इतना ओज है। इतिहास आज अगर उनकी ओर से आँखें मूँद लेता है, तो वह अन्धा हो जायगा। आज का इतिहासकार ऐसे व्यक्ति के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक है, फिर भी इतिहास को जो नयी दृष्टि मिली है; उससे व्यक्तित्व का विश्लेषण कर वह मौन नही रह जाता। समाज, जीवन, राजनीति, सस्कृति, संस्कार, धर्म भाषा और साहित्य से वह अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। व्यक्ति से अधिक प्रवृत्तियो और स्थितियों पर वह प्रकाश डालता है। इन्ही सारी बातों को दृष्टि में रखकर 'सन्ताल संस्कार की रूपरेखा' का निर्माण हुआ है।

सन्ताल परगना में, आज से तीन वर्ष पूर्व जब मैं पदस्थापित किया गया, तब इस जिले के सम्बन्ध में मैंने जानना चाहा। यह मेरे लिए स्वाभाविक ही था। पहले अंग्रेज अधिकारी जब किसी अंचल में पदस्थापित किये जाते थे, तब उनके लिए अनिवार्य होता था कि वे उस अचल के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर नये स्थान पर जायें। उनकी जानकारी के लिए प्रत्येक जिला के गजेटियर प्रकाशित हुए थे। पर देश अपना है, अतः पूरे देश की जानकारी रखना प्रत्येक भारतीयो के लिए स्वाभाविक है। पर खेद की बात है कि अपने ही देश में रहकर अपने ही घरो की जानकारी हमें नही है। सन्ताल परगना बिहार राज्य का एक जिला है। यह कहते हुए लज्जा एवं संकोच का अनुभव कर रहा हूँ कि

आज के पूर्व इस जिला के सम्बन्ध में मेरी जानकारी बहुत कम थी और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि आज भी इस जिले के सम्बन्ध में मेरी जानकारी अपूर्ण है। हमारे ऐसे और भी लोग होंगे, जिन्हें इस जिला के सम्बन्ध में जानकारी नही होगी। हमें आश्चर्य तब हुआ, जब इस जिला के ही अधिकांश निवासी अपने सम्बन्ध में जानकारी नही रखते। मेरे अभिन्न मित्र श्री उत्पल जी ने एक बार कहा था— 'सन्ताल परगना के लोग महावीर है।' बात भी ठीक है। यहाँ के लोग महावीर हैं। महावीर जी को देवता ने शाप दिया था कि उन्हें अपनी शक्ति का तब तक पता नही चलेगा, जब तक उन्हें बताया न जाय कि उनकी शक्ति क्या है। मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी देवता ने इस जिला के निवासियो को भी अभिशाप दिया होगा कि उन्हे अपनी शक्ति का ज्ञान तब तक नही हो, जब तक उन्हें बताया न जाय। देवता का अभिशाप हो या न हो, पर इतना तो उन्हे स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वे अपने को पहचानने में भूल करते रहे हैं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, वे पिछड़े हुए कभी नही थे - वे उपेक्षित भले ही रहे हो। गाधी जी ने एक बार कहा था — उपेक्षा करने वाला उतना दोषी नही होता, जितना स्वयं उपेक्षित होने वाले होते हैं। अगर यहाँ के लोग चाहते कि वे उपेक्षित नही हो, तो दुनिया की कोई ताकत उन्हे उपेक्षित नही कर सकती।

पूज्य बापू ने ९ अगस्त, १९४२ को अंग्रेजो से कहा था— 'वे भारत छोड दें। बापू के इस आग्रह के पूर्व ३० जून, १८५५ को सन्ताल नेता सिद्धो ने अंग्रेजो से कहा था— अंग्रेज उनकी भूमि छोड़कर चले जायँ। इतना ही नही, उन्होने अपने लोगो को बापू की तरह 'करो और मरो' का मन्त्र दिया था। उन्होने अपनी सरकार कायम की थी, न्याय,

प्रशासन एवं कर संबंधी अपने नियम चालू किये थे। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह की पहली चिनगारी सन्ताल परगना जिले के रोहिणी गांव में फूटी थी और उसके बाद बाबू कुँअर सिंह के नेतृत्व में पूरे बिहार में विद्रोह हुआ। कांग्रेस की स्थापना के पूर्व इस जिले के भगीरथ मांझी ने जन-आन्दोलन प्रारम्भ किया था। अहिंसा का सर्वप्रथम प्रयोग उस आन्दोलन में किया गया था। बापू के नेतृत्व में जब देश में स्वतन्त्रता की लडाई हुई, तब इस जिला ने अपने त्याग और बलिदान का जो परिचय दिया, उसका हम सबको गौरव है। राष्ट्रीय संघर्ष में ही नही, राष्ट्र भारती के शृंगार में भी इस जिला को गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, यह नारा इस जिले के एक सपूत श्री गोविन्द चरण ने पहले-पहल दिया था। उन्होंने नारा ही नही दिया, एक सफल आन्दोलन भी इसके लिए किया था। वे राष्ट्रभाषा आन्दोलन के प्रथम सूत्रधार थे। स्मरण रहे, वही गोविन्द चरण बिहार प्रदेश के पहले एम० ए० थे। उन्ही के आन्दोलन के फलस्वरूप सन् १८७० में हिन्दी का बिहार के स्कूलों में प्रवेश हुआ और सन् १८८१ में बिहार की कचहरियो में हिन्दी को स्थान मिला। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८८३ ई० में यह मान लिया था कि खडी बोली में कविता करना बहुत ही कठिन है और उन्होने अपने 'हिन्दी भाषा' शीर्षक निबन्ध में, जो ब्रजरत्न दास के अनुसार सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ था, यह स्वीकार भी कर लिया था कि वे खडी बोली में कविता करने में असफल रहे हैं। उनकी इस आत्म-स्वीकृति के दो वर्ष पूर्व इस जिले के महेश नारायण ने खडी बोली में सफल कविताएँ कीं। आज सम्पूर्ण देश उन्हें राष्ट्र भारती का प्रथम महाकवि मान रहा है। उनकी रचनाओं से आज के प्रचलित प्रायः सभी वादों ने बहुत कुछ ग्रहण किया है।

इस जिले में एक जाति रहती है। उसी जाति के नाम पर इस जिले का नाम सन्ताल परगना रखा गया है। सन्ताल जाति की कहानी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की गई है। सन्ताल जाति पर हिन्दी में कोई पुस्तक का न होना वहुत दिनो तक खटकता रहा था। उसका अभाव सब लोग अनुभव करते थे। इस अभाव की पूर्ति को लक्ष्य में रखकर इस ग्रन्थ को तैयार किया गया है। सन्तालों के सम्बन्ध में नृतत्व - विज्ञान को दृष्टि में रखकर अभी तक काम हुए थे। पर मैंने सन्तालो के सम्वन्ध में इति - हासकार की दृष्टि से अध्ययन किया है। इतिहास के सम्बन्ध में मेरी कुछ अपनी धारणायें हैं, जो आगे व्यक्त की गई हैं। उन्ही धारणाओं एवं स्थापनाओं को दृष्टि में रखकर सन्तालो के सम्बन्ध में पाठको की जानकारी के लिए वार्तायें प्रस्तुत की गई हैं। सन्तालों के बीच मुझे तीन वर्ष रहने का अवसर मिला है; उनके गौरवपूर्ण भूत और उनके आदर्श वर्तमान से मैंने सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हे देखने, परखने और पहचानने का अवसर मुझे मिला। सन्तालो को मैंने देखा; उनकी संस्कृति एवं उनकी संस्कार का मैंने अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह जाति हमारे बहुत निकट है। हमारे और उनके बीच जो पृथक भावनायें हैं, जो दूरत्व है, वे सब परम्परागत नहीं हैं, वे तो केवल प्रपच हैं, छल है। इस पुस्तक द्वारा दूरत्व की भावना मिट सके, तो मैं अपने को धन्य मानूँगा।

इस पुस्तक की प्रेरक–शक्ति, सन्ताल परगना जिले के भूतपूर्व उपायुक्त श्री रासबिहारी लाल जी हैं। इस ग्रन्थ को लिखने के लिए उन्होने मुझे केवल प्रेरणा ही नही दी बल्कि दुर्लभ पुस्तकों को खोज-खोज कर उन्होने मुझे दिया। यह मैं स्पष्ट शब्दो में स्वीकार करता चाहता हूँ कि अगर वे यहाँ न होते, तो यह पुस्तक न लिखी जाती। यह तो उनकी ही कृपा का फल

है। उनके प्रति अपना आभार प्रकट करने में भी मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। इस पुस्तक को तैयार करने में मुझे कई और व्यक्तियों से भी सहयोग मिला है जिन्हें मैं भूल नही सकता। श्री गोपाल लाल वर्मा, श्री डोमन साहु 'समीर', शुद्धदेव झा 'उत्पल', श्री बालकिशोर बासकी 'अरमान', श्री लाल टुडू, श्री बुधराम मुर्मु तथा श्री रामनन्दन वर्मा आदि के प्रति मैं अपना आभार प्रगट करता हूँ। इन लोगो ने इस पुस्तक को लिखने में मेरी बडी सहायता की है। अंग्रेजो द्वारा लिखी कई पुस्तकें जो अब प्रायः अप्राप्य हैं, मुझे अध्ययन के लिए देकर पादरी ए० कैमिलेरी और पी० ऐक्विलिनो ने जो मेरी सहायता की है उसके लिए उनके प्रति भी मैं अपना आभार निवेदन करना चाहता हूँ। इस पुस्तक पर दो शब्द लिखकर आचार्य पं० जगन्नाथ मिश्र, आचार्य डाक्टर माधव तथा भाई ब्रजकिशोर नारायण ने मुझे आशीर्वाद दिये हैं, मैं उन लोगो के सामने नतमस्तक हूँ। अपने बहुमूल्य सुझावो के द्वारा प्रो० हरिवंश 'तरुण' ने इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाया है, अतः उनके प्रति भी मै हृदय से आभारी हूँ। और, अत में उन सबो के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनसे जाने - अनजाने इस पुस्तक को लिखने में मुझे सहायता मिली है। यदि यह पुस्तक सन्ताल जन-जाति को संपूर्ण रूप से जानने - समझने में थोडी भी सहायता दे सकी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

राजमहल, —उमाशंकर

१८ जनवरी, १९६६.

सन्ताल-संस्कार की रूपरेखा

उमाशंकर

- महेशनारायण साहित्य-शोध संस्थान संताल परगना के इतिहास में एक नया अध्याय है। इसे स्थापित कर श्री उमाशंकर ने इस जिले पर अपना ऋण बैठा दिया है।
- संस्थान ने अपने शोध कार्यों के माध्यम से महेशनारायण को इतिहास में उपस्थापित किया है। आज सम्पूर्ण हिन्दी संसार उन्हें राष्ट्र-भारती के प्रथम महाकवि के रूप में मानने लगा है।
- दो वर्ष की आयु मे संस्थान ने कई उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, जिन पर सम्पूर्ण हिन्दी ससार को नाज है, और संस्थान की सारी उपलब्धियो का श्रेय संस्थान को है।

परमेश्वरी प्रसाद सिन्हा
मन्त्री,
महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान
दुमका

अपनी बात

सन्ताल संस्कृति भारत की आदि संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का दर्शन हमें सन्ताल संस्कृति में प्राप्त होता है। पर खेद के साथ हमें यह कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा-भाषियों का ध्यान इस संस्कृति की ओर उतना नहीं गया,जितना जाना चाहिए था। हिन्दी आज राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त कर चुकी है, पर उसके पास सन्ताल संस्कृति पर एक भी पुस्तक का न रहना कोई गौरव की बात नहीं है। हिन्दी में खोज करने पर भी कोई सन्ताल पर ऐसी पुस्तक नहीं मिलती है, जो हिन्दी के पाठकों को सन्तोष दे सके। बाहर से विदेशी सन्तालों पर खोज करने आते हैं, हिन्दी में पुस्तकों को खोजते हैं, पर उन्हें संताल-संस्कृति पर कोई भी पुस्तक हिन्दी में नहीं मिलती। हम उन्हें दे नहीं पाते। यह स्थिति बहुत ही लज्जाजनक मालूम होती है। इन सारी बातों को दृष्टि में रखकर हमने यह निश्चय किया कि इस अभाव की पूर्ति की जाय। इस पुनीत अनुष्ठान के लिए हमने बहुतेरे हिन्दी लेखकों से, जिन्हें संतालों के सम्बन्ध में जानकारी है, सम्पर्क स्थापित किया। कुछ लोगों ने इस दिशा में सहयोग देने का आश्वासन भी दिया था, पर उनका अपेक्षित सहयोग हमें नहीं मिला। पुस्तक हम तैयार नहीं करा सके, हमें अपने निश्चय को बदलना पड़ा। बाद में हमने निश्चय किया कि विभिन्न विद्वानों का जो निबन्ध संताल-संस्कृति एवं उनके संस्कार के सम्बन्ध में प्रकाशित हैं, उनका एक संकलन प्रकाशित किया जाय। कतिपय कठिनाइयों के कारण इस निश्चय का भी हमें त्याग करना पड़ा। इसी बीच सौभाग्य से हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक श्री उमा-

शंकर जी २१ मई, ६३ को दुमका में जिला कोषागार पदाधिकारी (ट्रेजरी अफसर) के पद पर स्थानांतरित होकर आए। यहाँ आते ही उन्होंने दुमका के साहित्यकारों के समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि शोध संस्थान की स्थापना यहाँ की जाय। उसका नामकरण भी संताल परगना जिले के राजमहल अनुमण्डल के निवासी बाबू महेशनारायण के नाम पर किया जाय, ऐसा उनका प्रस्ताव था। बाबू महेशनारायण की जानकारी यहाँ के लोगो को नही थी। श्री उमाशंकर जी ने लोगों को बताया कि महेशनारायण इस जिला के थे। जिस विहार में हम रहते हैं, वे उसके निर्माता थे, जिस हिन्दी में हम कविता पढते हैं, उस राष्ट्रभारती के वे प्रथम महाकवि थे। बिहार में पत्रकारिता के वे जनक माने जाते हैं। संताल परगाना के लोग अपने इस अनमोल रत्न को भूल गये थे। सबो ने आश्चर्य से उन्हें सुना, कुछ ने उनका विरोध भी किया। वे उनपर प्रकाश डालते गये, लोग उन पर विस्मय करते रहे। वे अपने अनुसंधान में लगे रहे, लोगों का विरोध धीरे-धीरे कम होता गया। अब तो विरोधी भी यह दावा करने लगे हैं कि संताल परगने की मिट्टी ने आधुनिक बिहार का पिता दिया है–राष्ट्रभारती का प्रथम महाकवि दिया है। अन्त में हमने श्री उमाशंकर जी के प्रस्ताव को मान लिया और १८ जून, १९६३ को श्री महेश नारायण-शोध संस्थान की स्थापना दुमका में की गई। संस्थाओं के जीवन में दो वर्षों की अवधि बहुत कम होती है। पर इन दो वर्षोंमें इस संस्थान ने जो काम किये हैं, उतना काम २५ वर्षों में भी बहुत सी संस्थायें नही कर पाती हैं। दुमका में दो वर्षों के अन्दर जो भी साहित्यिक, सांस्कृतिक, एवं कलात्मक काम हुए हैं, उनमें अधिकांश काम संस्थान का ही है, जो उसका

काम नही है, उसमे भी अप्रत्यक्ष रूपसे सस्थान का योगदान रहा है। संस्थान की सन्ताल सम्बन्धी बातों पर विचार करने एवं अनुसंधान करने के लिए एक शाखा खोली गई। संताली गीतों का सग्रह–कार्य आरम्भ हुआ। अब तक दो हजार गीतो का संग्रह हो चुका है। हिन्दी रूपान्तर का कार्य चल रहा है। पाच हजार सताली गीतो का प्रकाशन करने का हमारा लक्ष्य है। इसी क्रम मे यह भी निश्चय किया गया था कि संतालो की सस्कृति पर हिन्दी मे एक पुस्तक तैयार कर प्रकाशित की जाय।

सताल-संस्कृति के ज्ञाता श्री गोपाल लाल वर्मा महेश नारायण साहित्य शोध संस्थान के तत्कालीन उप-सभापति थे। उनकी ही देखरेख में यह काम प्रारम्भ हुआ। पर हमारे दुर्भाग्य से वे ऐसे बीमार पड़े कि हम उनके पथ-दर्शन से वंचित हो गये। हमने निश्चय किया कि वर्मा जी के संताल सम्बन्धी प्रकाशित निबन्धो को प्रकाशित किया जाय। उनके निबन्धो को सकलित करने का कार्यभार श्री रामनन्दन प्रसाद वर्मा को दिया गया। उन्होने कुछ कार्य किया भी, पर कतिपय कारणो से यह कार्य पूरा नही हो सका। गोपाल बाबू के अनेक निबन्ध आज अप्राप्य हैं। उनका फिर से पता लगाना आसान काम नही है। अतः विवश होकर इस निश्चय को भी हमें त्याग देना पड़ा। महेशनारायण साहित्य-शोध सस्थान में इसपर विचार किया गया। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि किसी योग्य लेखक से संताल-सस्कार पर एक पुस्तक लिखवाई जाय। योग्य लेखक की खोज करने में हमें कठिनाई नही हुई। हम लोगों ने श्री उमाशंकर जी से आग्रह किया कि वे स्वयं इस पुस्तक को तैयार कर दें। उन्होंने अपनी कठिनाईयाँ बतलायी। उनकी सबसे बड़ी कठिनाई थी- समय का अभाव। उन दिनों वे हिंदी

साहित्य का अलिखित इतिहास लिखने में लगे हुए थे। फिर भी हम लोगो के दबाव डालने पर उन्होंने पुस्तक तैयार करने का भार अपने ऊपर ले लिया। एक वर्ष के अन्दर पुस्तक तैयार कर उन्होंने हमें दे दी।

पुस्तक तैयार कराने में हमें कठिनाई नही हुई, प्रकाशन के सम्बन्ध में हमें कठिनाईयों का सामना करना पडा। " महेशनारायण : व्यक्तित्व और कृतित्व " के प्रकाशन पर जो खर्च हुए हैं, अभी तक हम उसे ही चुका नही पाये हैं, नई पुस्तक का प्रकाशन एक कठिन काम प्रतीत होने लगा। प्रकाशन कार्यभार किसी प्रकाशक को दे देने का निश्चय किया गया। निर्माण-प्रकाशन इसे संस्थान की ओर से प्रकाशित करने को तैयार हो गया।

पुस्तक आपके सामने हैं। पुस्तक कैसी है- यह कहने का अधिकारी मैं नही। मेरे लिए उचित भी नही है। किंतु यह तो मैं कह ही सकता हूँ कि इस पुस्तक में कुछ ऐसे अध्याय हैं, जिन पर पहले कुछ लिखा नही गया है। हिन्दी के सम्बन्ध में मैं नहीं कहता—अंग्रेजी में भी नही लिखा गया है। संतालों के जीवन को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से नही देखा गया था। लेखक ने उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया है। ईसाई मिशनरियो द्वारा जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उन्हें सत्य मानकर यह ग्रन्थ तैयार नहीं किया गया है। उनकी बहुत सी बातो का खण्डन किया गया है। संताल विद्रोह पर लेखक का अपना दृष्टिकोण है। संताल नेता सिदो को राष्ट्रीय नेताओं की परम्परा मे रखकर लेखक ने इतिहास में एक नया अध्याय जोडा हैं। संतालों के राष्ट्रीय संस्कार पर ईसाई मिशनरियाँ मौन रही हैं। उनके लिए मौन रहना उचित भी था, पर राष्ट्रीय विचार रखने वालों ने भी अब तक उसका सही-सही मूल्यांकन नही किया है।

लेखक ने इस पुस्तक में जो संतालों का मूल्यांकन किया है, वह नवीन है। मुझे आशा है, सन्तालो की संस्कृति, संस्कार एवं सभ्यता के पूर्ण इतिहास को इस पुस्तक में आप को निकट से निरखने, परखने एवं समझने का अवसर मिलेगा।

सन्ताल युवक और युवतियाँ किस प्रकार कन्धे से कन्धे मिलाकर एक-तार में पंक्तिबद्ध होकर एक दूसरे का हाथ पकड कर चलती हैं, युवतियाँ अपने पाँवो मे पायल, अध-नंगे बदन में चुस्त वस्त्र, बालों में कुसुम - माला डालकर तथा युवकगण अपने अधरो से बाँसुरी लगाये एवं बाँहों में लच्छेदार काले धागे की लम्बी डोर लगाकर एक साथ चलते हैं, तो पायल की आवाज एवं बाँसुरी की मधुर तान दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। किसी वैवाहिक कार्यक्रम या प्रमुख त्योहार के अवसर पर इनकी सांस्कृतिक परिचर्या पर पूर्ण प्रकाश इस पुस्तक में अंकित हैं। संस्थान की इन सारी उपलब्धियो का श्रेय हमारे लोकप्रिय साहित्यकार श्री उमाशंकर जी को है, जिनके प्रति हम अपना आभार प्रकट करते हैं, इससे अधिक कुछ करने में हम अक्षम्य हैं।

पाठकों ने जिस उत्साह से संस्थान की प्रथम कृति 'महेशनारायण: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' को अपनाया है, उसी उत्साह से इस पुस्तक को भी वे अपनायेंगे। हम अपने पाठको को यह विश्वास दिलाते हैं कि इस पुस्तक से भी अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सन्ताल-विद्रोह की कहानी' बहुत जल्द ही हम उनके सामने प्रस्तुत कर सकेंगे।

महेश्वर झा 'व्यथित'
संयुक्त मंत्री,
महेशनारायण साहित्य शोध-संस्थान
दुमका

दिनांक २१ मई, १९६५

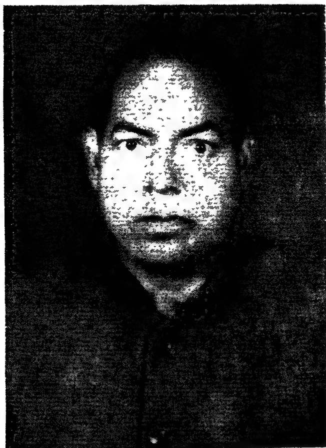
लेखक-परिचय

स्तिथप्रज्ञ, विदित, विनम्र, सरल, तरल, मधुर, गंभीर, त्यागी, सहिष्णु, प्रभविष्णु, विदुर कलापारखी, परोत्कर्षेषी, कुशलान्वेषी, लोकैषणा-अलिप्त, वीतराग, उन्नत ललाट, दीपित मुखमंडल, अधरो पर रजत चन्द्रिका का धवल हास, पलको में चपलता का नर्तन, उम्र प्रौढ़, अंतराल शिशु, पुरानी, नई और आनेवाली—एक साथ तीन पीढ़ियो का समन्वय।

पीढ़ियों के संघर्ष से वितुष्ट, केवल निज का अस्तित्व रखने वाले जग की एषणा से वितृष्ण और व्यवहार से विघूनित, किन्तु बदलती हुई परि-स्थिति, नई पीढ़ी के दृष्टि-विस्तार और निर्लिप्तता से सतुष्ट, आने वाले कल के प्रति सतृष्ण और इसके लिए हो रहे प्रयासों से आनन्दित।

दृष्टि अविराम, सतह की ऊपरी आवेष्ठन को छेद कर तह तक पहुंचने की दिशा में अहर्निश प्रयत्नशील, विगत के मोह से प्रभावित और अनागत के सकेत के प्रति चिर उत्सुक ! मस्तिष्क उर्वर और हृदय रससिक्त, एक की कल्पना के साथ दूसरे के भाव का ग्रन्थि-बन्धन, एक की दिशा के साथ दूसरी की धारा का बहाव, एक की हरीतिमा के साथ दूसरे के मधुगुंजन का सौहार्द, एक के चिंतन के साथ दूसरी की अनुभूति का उन्मिलन, एक के आवेग के साथ दूसरे का उफान !

अक्षर जननी इनकी अंगुलियो में बँधकर अकुलाती नही, सुख पाती है, कागज इनसे टेढी-मेढी रेखाओं का दान पाकर सजीव हो उठता है—प्राणवंत ! अंगुलियों के कंपन के साथ लेखनी खेलती है—इसी में उसे सुख मिलता है, इसी से उसमें स्वर भरता है, वाणी निःसृत होती है।



लेखक

इनकी लेखनी इनकी अँगुलियो की सहचरी है। एक दूसरे का वियोग दोनों को खलना है—बहुत। दोनो का उल्लास-पर्व कागज के पन्नो पर सगम का निर्माण करता है, जहाँ गत, आगत और अनागत की त्रिवेणी लहराती है।

साहित्य युग की अँगुली पकडकर उसे सही मार्ग पर चलना सिखाता है। इस माने में साहित्य युग का जनक होता है और साहित्यकार उसके प्राण, युग की बहुत बडी निधि! केवल एक युग की ही नही, युग युग की। प्राण तो चिरस्थायी है, न मिटने वाला। इसकी अरथी कभी नही सजती। हर वक्त इसकी डोली ही सजती है। युग के जनक का प्राण—महाप्राण होता है, कोई ऐसा-वैसा नही। जिस शरीर में वह वास करता है, वह विराट होता है, तृष्णा-एषणा से परे।

ऐसी ही विराट कल्पना का प्रतीक है यह नाम—श्री उमाशंकर। उमा—यानी कि साधना, और शंकर—यानी कि सिद्धि। साधना और सिद्धि का मिलन बडा दुर्लभ होता है। विरले ही किसी में पाया जाता है। विरले ही कोई विष पीता है। जो युग के संपूर्ण विष-वायु को पी लेता है और एकाग्र चित्त होकर साधना करता है, वही सिद्धि प्राप्त कर सकता है, वही शकर बन सकता है। युग के जनक के प्राण भी वही हो सकता है।

श्री उमाशकर जी ने ऐसा ही किया है। विष से भी अधिक विषाक्त गरल उनके गले में है। इस गरल की लपटें बड़ी तेज हैं—सभी आफतों को जलाकर भस्म कर देने वाली। युग को नई रोशनी देने वाली। हाँ, जो विष पचा लेता है, उसके लिए वह सुधा है। उसकी लपटें जीवन

में प्रकाश बिखेरती है—यह विचित्रता हर महान व्यक्तित्व के साथ पाई जाती है। इसी से वह साधारण मनुष्य से भिन्न होता है, इसी से वह लाखों में पहचाना जाता है।

श्री उमाशंकर जी को 'परमेश' जी ने राक्षस कहा। राक्षस का काम होता है अति करना। एक काम और होता है—अनर्थ करना। 'अति' और 'अनर्थ' का एक साथ होना खतरनाक है। उमाशंकर जी अति करते हैं अवश्य, किन्तु अनर्थ नहीं करते। लिखने में वे अति करते चले जा रहे हैं और यह हिन्दी संसार के लिए गौरव का विषय है। शायद यही बात ध्यान में रखकर 'परमेश' जी कहते हैं, "ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान वेदव्यास और द्रुतलिपिक गणेश दोनो की संयुक्त आत्मा का प्रतिबिम्ब उमाशंकर जी की प्राणशक्ति में उतर आया है।"

इनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि साहित्य-निर्माण के साथ-साथ ये साहित्यकार गढते हैं। कुशल कुम्भकार अत्यधिक कार्य-व्यस्तता के बीच भी कुछ गुनगुना लेता है, इससे उसकी रसात्मकता, सहृदयता और भोला स्वभाव लोगो के समक्ष स्पष्ट हो जाता है। छोटी-बडी नदियों को समेटती जो चलती है उसका नाम है—गगा। गगा—यानी कि पवित्र, महान्! उमाशंकर जी भी अकेले नही चलते। चलते हैं बहुतो को साथ लेकर।

साहित्य और साहित्यकार—दोनों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न नही है। किन्तु ऐसे विरले ही होते हैं जो दोनो का निर्माण करते हैं। साहित्य का निर्माण, मैं जैसा समझता हूँ, थोडा सरल होता है, साहित्यकार का निर्माण कठिन—बहुत कठिन। जो केवल साहित्य का निर्माण करते हैं,

वे अपना धर्म निभाते हैं, जाति की सेवा या उद्धार नही करते। जाति से यहाँ मेरा तात्पर्य विशिष्ट है। साहित्यकार की भी एक जाति होती है और साहित्य है इस जाति की सभ्यता-संस्कृति। साहित्यकार यदि अपनी जाति का निर्माण और उसकी सभ्यता संस्कृति का विकास नही चाहता तो यह हेय प्रवृत्ति है। उसे कभी भी सराहा नही जा सकता।

मैं तो श्रद्धेय श्री उमाशंकर जी की महानता इसी में मानता हूं। साहित्य की श्रीवृद्धि नाम का अस्तित्व कायम रखने में समर्थ होती है और साहित्यकार की सृष्टि नाम का गौरव रखने में। यह अस्तित्व और गौरव दो बहुत बडी चीज है जो श्री उमाशंकर जी के पक्ष में चिरस्थायी है।

श्री उमाशंकर जी की साहित्यिक उपलब्धियो की ओर दृष्टिपात करता हूं तो आँखे चौंधिया जाती हैं। किस क्षेत्र में इनकी लेखनी ने सत्ता स्थापित नही की? क्या भाषा, क्या साहित्य, क्या संस्कृति, क्या समाज, क्या राजनीति, क्या इतिहास सभी क्षेत्रो मे आकर इन्होने 'पूर्ण-प्रतियोगिता' का बाजार कायम किया और अंतत. एकाधिकारी के समान अपना अस्तित्व रोपते गये।

साहित्य-क्षेत्र में कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं से इनकी लेखनी विशेष रूप से अनुबद्ध रही है। हिन्दी-गद्य-प्रसार के द्वितीय उत्थान के बीच इन्होंने साहित्य-क्षेत्र में कदम रखे। काव्य के क्षेत्र में वह काल द्विवेदी युग का अंतिम और छायावाद-युग का प्रारंभ-काल था। कहानी के क्षेत्र में उस समय नये युग का उदय हो रहा था। प्रेमचन्द, प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जी० पी० श्रीवास्तव, राधिकारमण प्रसाद सिंह, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्ण

दास, बेचन शर्मा उग्र, वाचस्पति पाठक, विनोद शंकर व्यास इस युग के प्रमुख कहानी कार थे। प्रेमचंद की कहानी कला का सुन्दर विकास इस युग में स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रेमचन्द का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद इसी युग में उभरता है जिसके अतर्गत 'सुहाग की साडी', 'धर्म संकट', 'आत्मा-राम' आदि कहानियों की सृष्टि होती है। अत्यधिक कल्पनाशील और भावुक कवि प्रसाद ने भौतिकता और मनोविज्ञान का किंचित सहारा लेकर अपनी कहानियो की सृष्टि की। फलत इनकी कहानियाँ स्वयं में काव्य का औदार्य समेटी हुई हैं। श्री उमाशंकर जी के उपजीव्य कथाकार प्रेमचन्द रहे जो तत्कालीन प्रतिनिधि के रूप में आज स्वीकृत हैं। बंगला के महान कथाकार रवीन्द्र के कथा–साहित्य एवं श्री उमाशकर के कथा–साहित्य में अनुभूति साम्य के दर्शन हम कर सकते है। इस प्रकार श्री उमाशंकर जी इस क्षेत्र मे शरत् के समकक्ष कहे जा सकते हैं। इनकी कहानियो मे इनके स्वयं के जीवन की घटनाओ का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अतः कथा-साहित्य में इनका जीवन–दर्शन स्वानुभूति का प्रतिफलन है।

'अशोक का न्याय', 'चाणक्य', 'शिल्पी'— ये तीन ग्रंथ इनके महत्व-पूर्ण नाट्य स्तम्भ हैं। नाट्य-क्षेत्र में श्री उमाशकर जी का यह अनुपम प्रयोग था। सभी नाटकों में अभिनेयता के गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इनकी अभिनेयता का प्रमाण इसी में मिल सकता है कि बहुत से स्थानो में इन नाटकों को बडी सफलतापूर्वक खेला गया है। 'अशोक का न्याय' तीन महीने तक लगातार पटना के रंगमंच पर अभिनीत होता रहा। इसके अलावे दिल्ली, कलकत्ता, काठमाण्डू, वीरगंज आदि नगरों के मुख्य रंग–मंचों पर भी ये नाटक कुशलता पूर्वक खेले गये।

इनके निबंध विषय के अनुगामी नहीं होते, वरन् विषय ही इनके निबंधों के अनुगामी बन जाते हैं। इनको विषय खोजने का कष्ट उठाना नहीं पड़ता है। ये जब लिखते हैं तो विषय आप-से-आप सामने आते हैं। अपने निबंधों के लिए इन्हें किसी महत्वपूर्ण विषय की भी आवश्यकता नहीं होती। महत्वहीन विषय भी इनकी लेखनी के माध्यम से उतरकर अत्यंत आकर्षक और प्रभावोत्पादक बन जाते हैं। वर्णनात्मक और विचारात्मक निबंधों की तो इन्होंने ढेर लगा दी है। अब ये समस्या की ओर उन्मुख हो गये हैं— सबसे अधिक राष्ट्रभाषा और हिन्दी की समस्या। इनके सामने प्राचीन समस्याओं का भी उतना ही महत्व है जितना कि आज की समस्याओं का। दो के बाद ही तीन की कल्पना व्यावहारिक मानी जा सकती है। प्राचीनता की अवहेलना और नवीनता की उपासना— ये दोनों आज चरम सीमा पर पहुँच चुकी हैं। और यह बात साहित्य के हित में ठीक नहीं है। दोनों की उपासना आवश्यक है। इससे ही किसी निष्कर्ष की प्राप्ति हो सकती है, इससे ही तीसरी वस्तु हमें मिल सकती है, जिसे हम नवीन भी कह सकते हैं।

शैली की दृष्टि से इनके निबंध 'व्यास प्रधान' हैं। भावानुकूल शब्द-चयन, छोटे-छोटे और सरल शब्दों का सटीक प्रयोग, छोटे-छोटे वाक्य और अंश, गतिमयता आदि इनकी भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं।

आलोचना ग्रन्थों की लेखन-शैली कुछ भिन्न है। तथ्यपूर्ण, गंभीर और परिष्कृत—ऐसे ही इनके आलोचनात्मक निबंध होते हैं। छोटे-छोटे अंश में बड़े-बड़े भावों की अभिव्यंजना गंभीरता का लक्षण है। इसमें बातें छोटे-से-छोटे घेरे में ठूँस दी जाती है। इस प्रकार का प्रयोग हिन्दी

में आचार्य शुक्ल ने खूब किया था ।

शैली में व्यक्तित्व का समारोप हो जाता है । अंग्रेजी में कहा भी गया है– 'स्टाइल इज दि मेन' । जिसका व्यक्तित्व जितना ही महान होगा उसकी शैली उतना ही गंभीर और विचारात्मक होगी । इसमें संदेह नहीं कि उमाशंकर जी की शैली में उनका व्यक्तित्व बोलता है—जो महान है, व्यापक है ।

आलोचना-साहित्य में 'प्रसाद के चार नाटक', 'प्रेमचंद की निर्मला', 'प्रसाद की राज्यश्री' महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं । ये पुस्तकें उस युग में लिखी गई थी जब आधुनिक भारतीय साहित्यकारों पर पुस्तक-लेखन का कार्य आज की तरह अंधाधुंध नहीं चल रहा था ।

"संस्मरण लिखने की जो स्वस्थ परम्परा स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय ने चलाई उस परम्परा के उचित उत्तराधिकारी श्री उमाशंकर हैं"- (पंडित नन्दकिशोर तिवारी) । वस्तुतः सस्मरण और जीवनी-साहित्य में श्री उमाशंकर जी का नाम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिया जायगा । "जब कोई दूसरा व्यक्ति किसी की जीवन-गाथा को उसके सत्य रूप में प्रस्तुत करता है तो वह कृति जीवन का रूप धारण करती है । .... लेखक किसी स्थान, किसी घटना, किसी महापुरुष के साथ कुछ दिन, किसी यात्रा आदि की मधुर स्मृतियों का वर्णन करता है तो संस्मरण साहित्य का निर्माण होता है" (श्री रामगोपाल सिंह 'चौहान') ।

हिन्दी में प्रथम जीवनी साहित्य संभवतः स्वामी दयानन्द जी लिखित 'जीवन चरित' है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—"साहित्यिक मूल्य रखने वाले चार जीवन चरित

महत्व के निकले—पंडित माधवप्रसाद मिश्र की 'विशुद्ध चरितावली' (स्वामी विशुद्धानन्द का जीवन चरित) तथा बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित 'बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित', 'गोस्वामी जी का जीवन चरित' और 'चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित'।''

किन्तु अब तक की लिखी जीवनियाँ शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उतनी महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती हैं। जीवनी-लेखन को एक नई दिशा दी आचार्य शिवपूजन सहाय ने। इन्होने जीवनी में साहित्य का औदार्य भर दिया और अब से जीवनियाँ जीवन्त हो उठी, साहित्यिकता से सराबोर।

स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय के बाद जीवनी साहित्य को दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्तित्व मिला श्री उमाशंकर जी का। यहाँ जीवनी साहित्य का रुखडापन जाता रहा और उसका मार्ग प्रशस्त होने लगा। अभी, बीसवीं शताब्दी के छठें दशक में एक ये ही प्रभावशाली व्यक्तित्व दिखाई पड रहे हैं। 'हमारे साहित्यिक नेता', 'हमारे राष्ट्रीय नेता', 'कलम शिल्पी', 'श्रद्धा के फूल', 'बाबू साहेब', 'राजर्षि', 'बिहार के निर्माता' आदि जीवनी-साहित्य में इनके अनेक [illegible] हैं।

अंत में, मैं एक विशेष बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वह है इनकी अद्भुत शोध-क्षमता। इनकी प्रवृत्ति ही अनुसंधायक है। इस संबंध में आचार्य डाक्टर भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' की उक्ति ध्यातव्य है, ''श्री उमाशंकर जी ने कई भूले-बिसरे विशिष्ट साहित्यकारों, कलाकारों का उद्धार किया है। उद्धार किया है—मैं इसलिए कह रहा हूँ कि लोग उन्हें सर्वथा भूल गए थे और वे विस्मृति के गर्भ में प्राय: खो गये थे। इस दिशा में श्री उमाशंकर जी की सेवाएँ सदा आदर के साथ

याद की जाती रहेगी। इन्ही के शोध का परिणाम है कि स्वर्गीय श्री महेशनारायण से हमारा नया और मधुरतम परिचय हुआ है।"

आज केल 'डाक्टेट' की डिग्री बड़ी सस्ती हो गई है। कहने को तो लोग 'रिसर्च' करते हैं किन्तु करने को केवल उलट-फेर ही करते हैं। दस-पचास पुस्तकों को इकट्ठे कर 'प्रसाद के नारी पात्र' वा 'प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में यथार्थवाद' आदि विषयो पर एक भारी-भरकम पुस्तक तैयार कर लेना—यही आज का रिसर्च है। कभी भूले-बिसरे की खोज न करेंगे। मौलिक उद्‌भावना की निनांत कमी रहेगी इनमें, किन्तु फिर भी 'डाक्टर' बन ही बैठेंगे।

श्री उमाशंकर जी की प्रवृत्ति नितात अनुकरणीय है। सर्वथा उपेक्षित किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्तित्व की खोज करना इनका स्वभाव सा बन गया है। गहरे अंधकार के बीच कठोर परिश्रम का दीप जलाकर भूले-बिसरे को प्रकाशमान बना देना, यही इनकी विशेषता है। आचार्य शिव-पूजन सहाय के अनुसार, "श्री उमाशंकर जी ने महेशनारायण पर काफी खोज की है, जिनको आज के हिन्दी प्रेमी भूल-से गए है।'''श्री उमाशंकर जी की गवेषणा-वृत्ति सर्वथा श्लाघ्य है। मैं उनकी ऐसी प्रवृत्ति को हिन्दी के लिए बड़ा लाभप्रद समझता हूँ।"

साहित्यकार संघ
दुमका

—शम्भुनाथ
२०–३–६५

समय की शिला पर



- संताल परगना की धरती ने सबसे पहले चाँद और सूर्य के दर्शन किये थे। हिसाब लगाकर देखा गया है कि राजमहल की पहाड़ी ने एक अरब साठ करोड़ वर्ष पूर्व सूर्य्य का दर्शन सब से पहले किया था।
- महात्मा गाँधी से ८७ वर्ष १ महीना १० दिन पूर्व संताल नेता सिदो ने अंग्रेजों से अपनी धरती छोड़ने को कहा था और बापू की भाँति उन्होंने भी अपने लोगों को 'करो या मरो' का महान मंत्र दिया था।
- भारत के इतिहास में ९ अगस्त, १९४२ का जो ऐतिहासिक महत्व है वही महत्व ३० जून, १८५५ का भी है। ३० जून को सिदो-दिवस के रूप में हमें राष्ट्रीय पर्व के समान मनाना चाहिए।
- अंग्रेजी सत्ता के विरोध में संताल नेता बाबा भागीरथ माँझी ने सर्व-प्रथम अहिंसात्मक संघर्ष सन् १८७० में आरम्भ किया था। पशुबल का सामना आत्मबल से किया था। राजनीति और धर्म में सन्तुलन स्थापित किया था।
- सिदो की परम्परा की अंतिम कड़ी स्व० लाल हेम्ब्रम थे। अंग्रेजी हुकूमत ने उन्हें डाकुओं का अगुआ कहा था। उनके पूर्वजों को भी ऐसी ही उपाधियाँ मिली थी। अंग्रेज हुकूमत में सिदो को लुटेरा कहा गया था, बाबा भागीरथ माँझी को आवारा कहा गया था, तो स्व० लाल हेम्ब्रम को डाकू कहा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सन्ताल परगना : एक झाँकी

संताल परगना भागलपुर प्रमण्डल का एक जिला है। यह जिला २३°४०' और २५°१८' उत्तरीय अक्षांश तथा ८६°२८' और ८७°५७' पूर्वीय देशांतर के बीच स्थित है। इस जिला की आबादी सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार २३,२२,०९२ है। इसका फैलाव ५४७० वर्गमील में है। इंगलैंड के कौनवाल, डेमन और सोमरसेट—इन तीन प्रदेशों के बराबर इसका विस्तार है। उत्तर-पूरब कोने में गगा नदी से लेकर दक्षिण-पश्चिम कोने में बराकर नदी तक इसकी सबसे अधिक लम्बाई १२० मील है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी लम्बाई १०० मील है। पश्चिम से पूर्व तक उसकी औसत चौडाई भी लगभग १०० मील की है। इसका मुख्यालय दुमका है। यह जिला सात अनुमण्डलो में बँटा है—दुमका, देवघर, पाकुड, गोड्डा, जामताडा, साहेबगंज और राजमहल। इतने अनुमण्डलो में भारत का कोई भी जिला नही बँटा है। भागलपुर प्रमण्डल का यह सबसे बडा जिला है।

इस जिले के उत्तर में भागलपुर और पूर्णिया के जिले, पूरब में मालदह मुर्शिदाबाद, और वीरभूम के जिले है, दक्षिण में वर्दमान और मानभूम के जिले तथा पश्चिम में हजारीबाग, मु गेर और भागलपुर के जिले हैं। कुछ दूरी तक उत्तर और पूरब में इस जिले की चौहद्दी को गंगा नदी परिभाषित करती हैं, वह सीमा का काम करती हुई संताल परगने को पूर्णिया और मालदह से अलग करती है। इसी तरह हम देखते हैं कि दक्षिण से कुछ

दूरी तक बराकर और अजय नदी सीमा का काम करती हुई इस जिले को मानभूम और बर्दवान से अलग करती है ।

इस जिले में प्रकृति का एक अजीब संगम है। उत्तर से दक्षिण तक ऊँची भूमि पहाड़ी तत्वो को लिए हुए है। यहाँ की भूमि को साधारणतः तीन प्राकृतिक भागो में बाँटा जा सकता है– पहाडी भाग, ऊँची-नीची भूमि और नीची भूमि। पहाडी भाग पूरे जिले का ⅓ भाग पड़ता है, ऊँची-नीची भूमि का अंश आधा है और जो बाकी रहता है—वह नीची भूमि है। पहाड़ी भाग उत्तर में साहेबगंज के पास गंगा नदी से लेकर जिले की दक्षिण सीमा तक करीब १०० मील की लम्बाई में फैला हुआ है। इसके अंदर पूरा दामिन-इ-कोह के क्षेत्र तथा दुमका अनुमण्डल का पूर्वी तथा दक्षिणी भाग पडता है। पहाडी क्षेत्र के अधिकाश में आज भी जगल फैला हुआ है; घाटियों में छोटी-छोटी बस्तियाँ बस गई हैं, वहाँ के लोग जगल साफ कर खेती करने लगे हैं। ऊँची-नीची भूमि के अंतर्गत इस जिले का सारा पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी भाग है। इस प्रकार के क्षेत्र में भी छोटी-छोटी पहाडियाँ, पथरीली भूमि और जंगल हैं। जिले का तीसरा भाग राजमहल पहाड़ी और गंगा के बीच की नीची भूमि है। इसका पतला और लम्बा भाग १०० मील तक चला गया है। यह भूमि बहुत ही उपजाऊ है। चावल यहाँ की मुख्य उपज है। इसका क्षेत्र ५०० वर्गमील का है।

जिला की पर्वतमालाओ में राजमहल की पर्वतमाला बहुत प्रमुख है। साहबगंज से आरम्भ होती है, उत्तर में गंगा नदी से लेकर जिले की दक्षिण-पूरब सीमा के पास रामपुर हाट पथ तक गई है। इस पर्वतमाला के बीच-बीच में पहाड़ी, घाटियाँ व अधित्यकाएँ हैं। समुन्दर के स्तर से ५०० से

८०० फीट तक इन पर्वतमालाओ की ऊँचाई हैं। कुछ चोटियाँ तो १५०० से २००० फीट तक भी ऊँची है। इन पर्वतमालाओ में सब से ऊँची चोटी मोरी और सेंदगरसा है। मोरी की ऊँचाई २००० फीट है। यह पर्वतमाला २४ मील लम्बी है तथा उत्तर से दक्षिण तक फैली है। इसकी चौडाई लगभग ५ मील है। ऐसे तो यह क्षेत्र पहाडियो से घिरा हुआ है, पर पाँच समतल भूमि पर आने का प्रवेश द्वार प्राकृतिक रूप में बना है— दक्षिण-पश्चिम में चपराभीता, उत्तर-पश्चिम में मानझाँव, जो प्रवेश द्वार भागलपुर की दिशा में है, पूर्व में घाटीयारी, दक्षिण-पूर्व में मारजो और पाँचवाँ प्रदेश द्वार राजमहल की दिशा में है। इन पर्वतमालाओ से कई छोटी-छोटी नदियाँ निकली हैं। मोरन और गुमानी नदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये नदियाँ बडहैत के निकट मिलकर घाटियारी प्रवेश द्वार से बहती हैं। इन पर्वतमालाओं पर सताल और पहाडिया के गाँव बसे हुए हैं; पहाडों की छाती चीर कर मेहनतकश सताल और पहाडिया जाति ने खेती की है। इस पर्वतमाला का अधिकाश भाग दामिन-इ-कोह में पड़ता है। इसका क्षेत्र १,३५६ वर्गमील है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी लम्बाई ७० मील है और ऐसे तो पहाडी के मध्य में इसकी चौडाई ३० मील है, पर इसकी औसत चौडाई १६ मील ही है। राजमहल की पहाडी, कहा जाता है—भारतीय भूगर्भ-शास्त्रियों के लिए अध्ययन का विषय रही है। मालूम पड़ता है, किसी समय राजमहल की पहाडी ज्वालामुखी पहाड़ी थी।

दुमका अनुमण्डल के दक्षिण-पूर्व में ब्राह्मणी नदी बहती है। उस नदी के दक्षिण में एक छोटी पर्वतमाला है, उसे रामगढ पहाडी कहते हैं। राजमहल पहाडी से यह पहाडी अलग नही है, उसी का विस्तृत अंग है।

पर रामगढ पहाडी बहुत ऊँची नही है। इस पर्वतमाला की सबसे ऊँची चोटी काराकाटा की चोटी है। दुमका अनुमण्डल में रामगढ पहाडी से पश्चिम समानान्तर में दो और पर्वतमालायें हैं। ये मोसनजोर से रानीवाल की ओर जाती है। इस अनुमण्डल मे सपचना पहाडी, लगवा पहाड़ी और किकरा पहाडी मुख्य है। नुनीहाट के निकटवर्ती लगवा पहाडी का बहुत महत्व है। देवघर मे कोई लम्बी पर्वतमाला नही है, इसका अधिकाश क्षेत्र समतल भूमि है। फिर भी जहाँ-तहाँ पहाड़ियाँ देखने को मिलती हैं। इन पहाडियो मे निम्नलिखित पहाडियाँ उल्लेखनीय हैं— (१) फूलझड़ी (२,३१२ फीट),मधुपुर रेलवे स्टेशनसे १८ मील पूर्वमें स्थित, (२) देगरिया (१,७१५ फीट), वैद्यनाथधाम स्टेशन से ३ मील पश्चिम, (३) पथरडा (१,७१५ फीट), मधुपुर रेलवे स्टेशन से ८ मील पश्चिम, (४) त्रिकूट पर्वत, जो तिपुर पहाड़ के नाम से पुकारा जाता है, वैद्यनाथधाम स्टेशन से १० मील पूर्व में स्थित है। समतल भूमि से यह पर्वतमाला १,५०५ फीट ऊँची है, और समुद्र तल से २,५०० फीट यह ऊँची है। जालवे, जो मधुपुर और वैद्यनाथधाम के बीच मे पड़ता है; फूलझड़ी के निकटवर्ती केसकी; त्रिपुर से ६ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित पाबोय; और, पाबोय से ८ मील पूर्व में मकरो पहाडी—अधिक महत्व की तो नही है; पर उनका अपना प्राकृतिक सौन्दर्य है। जामताडा अनुमंडल में घाटी (१,१८१ फीट) और मलचा (८६३ फीट) मुख्य पहाडी है। स्मरण रहे, मलचा पहाडी पर सरकार की ओर से त्रिकोणमिति-माप-स्तम्भ स्थापित किया गया है।

इस क्षेत्र का समान झुकाव उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है। परन्तु कुछ अपवाद हैं। राजमहल के क्षेत्र में कुछ ऐसी उपजाऊ-भूमि

उत्तर-पश्चिम की ओर है और गगा के प्रवाह को वे स्पर्श करती है। बराकर की तलहटी इस जिले के दक्षिण-पश्चिम को छोटानागपुर क्षेत्र से अलग करती है। फिर भी यह देखा जाता है कि उसका प्रवाह, उसकी गति दक्षिण पूर्व की ओर ही है। अजय और मोर नामक सहायक नदियाँ हैं, जो बराकर में नही मिलती हैं, वे जाकर भागीरथी नदी में मिलती हैं। यहाँ निम्नलिखित मुख्य नदियाँ हैं—(१) गगा—इस जिले की धरती को तेलियागढी से कुछ दूर पर पश्चिम मे गगा स्पर्श करती है। वह सकरी गली तक पूरब की ओर बहकर दक्षिण-पूरब की ओर मुड़ जाती है। उधुआ नाला से कुछ आगे बढने पर गगा इस जिले को छोड देती है। गगा की औसत चौडाई करीब तीन मील है। गगा पहले तेलियागढी से होकर बहती थी, पर अब उसकी धारा बदल गयी है। गगा की मुख्य धारा राजमहल के निकट से बहती थी। सन् १६४० से गगा ने अपनी धारा को बदल दिया। शहर के बहुत-से भवन बह गये, राजमहल उजाड हो गया। गंगा की धारा-परिवर्त्तन के कारण राजमहल का व्यापार-केन्द्र नष्ट हो गया और साहबगज मे रौनक बढ गयी। गगा के बाद दूसरी प्रमुख नदी गुमानी है। गोड्डा अनुमण्डल में राजमहल से निकल कर यह नदी उत्तर-पूरब की ओर बहती है। बरहैत के पास मोरन नदी उत्तर की ओर से आकर इससे मिल गई है। ३० या ४० मील की दूरी इस जिले मे तय कर गुमानी नदी दक्षिण और पूरब की ओर बहती हुई जिले से बाहर जाकर गंगा में मिल जाती है। (३) बसलोई नदी गोड्डा अनुमडल के बाँस पहाड से निकली है और पूरब की ओर बहकर दुमका अनुमण्डल के गोड्डा और पाकुड़ अनुमण्डल से अलग करती है। महेशपुर के पास यह संताल परगने को छोड़कर भागीरथी से मिल जाती है।

(४) ब्राह्मणी नदी दुमका अनुमण्डल के उत्तरी भाग में दुधुआ पहाड़ी से निकलती है। वह फरसेमुल तथा सँकरा होकर बहती है। वह दुमका दामिन क्षेत्र की सीमा को परिभाषित करती है। दामिन -इ- कोह के झीलीमोली और मोसनिया बँगलो को पार करते हुए ब्राह्मणी नदी दामिन मौलेश्वर के पास इस जिले को छोडती है और वीरभूम जिले में जाकर भागीरथी में मिल जाती है। ग्रुमरो और एरो इनकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं। (५) मोर—यह नदी देवघर अनुमण्डल में पड़ती है। त्रिकूट पर्वत से यह निकलती है। यह उत्तर पश्चिम कोने पर दुमका अनुमण्डल में प्रवेश कर दुमका और कुमराबाद होती हुई दक्षिण-पूरब की ओर बहती है। अमजोरा के पास यह नदी इस जिले को छोडकर वीरभूम जिले में घुसती है और अन्त में भागीरथी में मिल जाती है। इस नदी का नाम कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न पडा है। प्रारम्भ में कुछ दूर तक इसका नाम मोतीहारी है, पर जब यह नदी भुरभुरी नदी से मिलती है तब इसका नाम मोर हो गया है। इस नदी का दूसरा नाम मोराखी या मयूराक्षी हो गया है। इस नदी का जल मयूर की आँखों के समान स्वच्छ समझा जाता है। इस नदी की कई सहायक नदियाँ हैं। नवादा में भुरभुरी नदी दुधुआ पहाड़ी के पूरब से निकलकर मोर से मिलती है। गोड्डा अनुमण्डल से निकलकर धोवैं नदी भागलपुर-सूरी सड़क को पार करती हुई भुरभुरी संगम के कुछ दूर पहले ही मोर से मिल जाती है। तिपरा नदी पश्चिम से आकर फूलझड़ी के पास मोर से मिलती हैं। प्रुमेरा नदी धुरिया तालुक में और भमरी नदी वेलुदबार में मोर से मिलती है। नलबिल नदी देवघर सबडिवीजन से निकलकर दुमका अनुमण्डल होकर बहती हुई जाम-ताड़ा अनुमण्डल में सिद्ध नदी से मिल जाती है। सिद्ध नदी भी देवघर

अनुमण्डल से निकलती है, यह जामतारा और दुमका अनुमण्डल में बहकर वीरभूम-सीमा के पास मोर से मिल जाती है। दौना नदी सँकरा तालुक से निकलकर रामपुरहाट सड़क और सूरी सड़क को पार करती हुई मोर से जा मिलती है। (६) अजय नदी मुंगेर जिले से आकर देवघर अनुमण्डल में बहती है। पथरो और जयन्ती नदी हजारीबाग जिले से आकर इस नदी में मिलती हैं। कजरा के पास अजय नदी जामतारा अनुमण्डल में प्रवेश करती है, और यह बर्दवान जिले में जाकर बहती है।

सन्ताल परगने का दर्शनीय जल-प्रपात, जो जिले में सबसे सुन्दर है, उसका नाम मोती झरना है। यह राजमहल पहाड़ी में महाराजपुर रेलवे-स्टेशन से दो मील दक्षिण-पश्चिम है। दो स्थानों से पानी गिरता है—एक स्थान पर ५० फीट से और दूसरे स्थान पर ६० फीट की ऊँचाई से। सिंघपुर मे ब्राह्मणी नदी से और कुसमीरा गाँव के पास बंसलोई नदी से जल-प्रपात बनते हैं। पहले स्थान में १० फीट की ऊँचाई से पानी गिरता है और दूसरे स्थान पर १२ फीट की ऊँचाई से। केवल जल-प्रपात ही यहाँ नहीं है, कई झरने भी हैं, जो दर्शनीय हैं। पाकुड़ और दुमका अनुमण्डल में बहुत-से गर्म जल के झरने हैं। पाकुड़ अनुमण्डल का सबसे गर्म झरना लौलौदह है। यह महेशपुर थाने के शिवपुर गाँव के पास बोरू नदी के किनारे है। इसी थाने में बरको गाँव के पास एक दूसरा गर्म झरना है, जो बरहमसिया कहलाता है। सन्ताल लोग इसे भुभक कहते हैं। दुमका अनुमण्डल में ६ गर्म झरने हैं—(१) गोपीकन्दर के पास झरिया पानी, (२) पलासीके पास भुरभुरी नदी के किनारे तातलोई, (३) केन्दघाट के नजदीक ननबिल, (४) कुमराबाद के निकट मोर नदी के किनारे तापनपानी, (५) बाघमारा गांव के पास मोर नदी के ही दूसरे

किनारे पर सुसुम पानी और (६) रानी बहाल के समीप मोर नदी पर झुभका। नुनीहाट के निकट पाताल गगा भी एक मुख्य झरना है। इन झरनो को हिन्दू और आदिम जाति के लोग धार्मिक दृष्टि से बहुत पवित्र समझते हैं।

सन्ताल परगने में एक प्रकार का जलवायु नही है। राजमहल पहाडी से पूरब की भूमि बगाल की भूमि की तरह सर्द रहती है। देवघर से राजमहल तक का भाग बिहार के अन्य भागो की तरह गर्म है। साधारणतः गर्मी के दिनो में तापमान १२०° तक जाता है। जाडे में दुमका का तापमान ६४° तक रहता है। गर्मी के दिनो में इसका तापमान १००° तक जाता है। इस जिले मे वर्षा औसत ५० से ५५ इच तक होती है। सन्ताल परगना जगलका जिला रहा है।चारे की कमी नही है। अतः यहा मवेशियो की हालत अच्छी ही रहती है। पहले इस जिला मे बाघ, चीता, भालू, हरिण, जंगली हाथी, जंगली सूअर वगैरह हर जगह पाये जाते थे, पर वे अब कम मिलते हैं। जगलों मे बाघ कम मिलते, पर चीता आज भी बहुत दिखाई पडते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस जिले में स्वर्गीय श्री दामोदर सिंह अतिरिक्त कलक्टर के पद पर थे। उन्होने कई चीतों को मारा था—उनका नाम ही इस जिले में बाघमरवा साहब पड़ गया था। आज भी उन्हे लोग बाघमरवा साहेब के नाम से याद करते हैं। भालू ऊँची पहाड़ी पर रहता है। जगली सूअर कम मिलते हैं। बताया जाता है कि सन्ताल लोग जहाँ उसे देखते हैं, वही मार डालते हैं। यहा की धरती रत्नगर्भा है। एक तरफ कोयला, पत्थर, चूना, लोहा, चीनी मिट्टी मिलती है, वही दूसरी ओर हम देखते हैं—इस धरती ने मानव रत्न भी पैदा किये हैं। भारत में प्रथम जन-आन्दोलन का संचालन सिदो ने किया,

ब्रिटिश सत्ता का विरोध प्रथम बार ग्राल-बाल का प्रदर्शन बाबा भागीरथ माझी ने किया, "भाषा ग्रौर संस्कृति के ग्राधार पर प्रदेशो का निर्माण करो"—यह पहला नारा इस जिले के महेशनारायण ने दिया था; "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा हो"- इसके प्रथम ग्रान्दोलन का संचालन इस जिले के गोविन्दचरण ने किया।

*

इतिहास का आलोक

इतिहास मानवी-क्रियाग्रो का ग्रभिलेख हैं। प्रत्येक देश का इतिहास का ग्रारम्भ तब से माना जाना चाहिए, जब से मानव एक सामूहिक जीवन मे रहना ग्रारम्भ करता हैं। धरती का ग्रादि मानव कही भी ग्रपनी क्रियाग्रो का साक्ष्य ग्रभिलेख के रूप मे नही छोड़ता है। फिर भी जहा-तहां कुछ उनके ऐसे ग्रवशेष मिल जाते हैं, जिनसे हमें उनके बारे में कुछ जानकारी मिलती है। फिर भी उन ग्रवशेषो को दृष्टि मे रखकर ऐति–हासिक चयन नही किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि के लिए लिखित ग्रभिलेख ग्रपेक्षित हैं। राजमहल के ऊँचे पथरीले पठार पुराणो में उल्लिखित मेखला के ग्रवशेष हैं। उसमें हमें धरती के ग्रारम्भिक स्वरूप का परिचय मिलता है। राजमहल पहाडी का निर्माण जीव-सृष्टि से करोडो वर्ष पहले हुग्रा था। वायु पुराण के ग्रनुसार मेखला से ही पृथ्वी की उत्पत्ति का ज्ञान हमें होता हैं; राजमहल की पहाडी मेखला का ही ग्रंग हैं। यही कारण हैं, हम कहते हैं कि सन्ताल परगना में धरती ने सब से पहले चाँद ग्रौर सूर्य के दर्शन किये थे। इस घटना को हुए कितने वर्ष हुए, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। भूगर्भ शास्त्री मानते हैं कि पृथ्वी की रचना हुए करोड़ की कौन कहे, ग्ररब-खरब

वर्ष हो गए। चट्टानो की मुटाई के परिमाण को दृष्टि में रखकर काल-गणना करने का नियम भूगर्भशास्त्रियो ने बनाया है। विन्ध्य-मेखला के ऊँचे पथरीले पठार की मुटाई को दृष्टि में रखकर सन् १९१७ में काल-गणना की गयी थी। चट्टान की औसत मुटाई १००,००० फूट मानी गई थी। इस मुटाई से हिसाब लगाकर विज्ञान विशारदो ने अनुमान किया है कि चट्टानों को बने प्रायः चालीस करोड़ वर्ष हो गए हैं। इसके अतिरिक्त, जब चट्टान अधिक मोटी हो जाती हैं; तब उसके नीचे के भाग पर ऊपर के भाग का अधिक बोझ पड़ता है; जिससे चट्टान ठोस बनकर सिकुड़ जाती है। अनुमान किया गया है कि अपने बोझ के कारण चट्टान सिकुड़कर अपनी असली मुटाई की चौथाई रह गयी है। इसलिए चालीस करोड़ को चार से गुणा करने से एक अरब साठ करोड़ वर्ष निकलते हैं। इतने ही वर्ष पहले पृथ्वी की उत्पत्ति हुई थी। हम कह सकते हैं कि हमारे राजमहल की पहाड़ी ने एक अरब साठ करोड़ वर्ष पूर्व सूर्य का दर्शन सब से पहले किया था। कई युगो को पार कर मानव अश्मायुधोदय (Eoliethic age) युग में जब पहुँचा, तब वह पत्थर का हथियार बनाने लगा। सन्ताल परगने जिले मे इस युग के कुठार, फलक, छेदक, छेनियाँ, रेतियाँ, हथौड़े आदि पत्थर के शस्त्र मिले हैं। बताया जाता है कि वे अवशेष मुण्डा आदि आग्नेय जातियों के पूर्वजों के छोड़े हुए हैं। जो अवशेष उपलब्ध हैं, उनसे हमें यह ज्ञात होता है कि वे धनुष बाण से तीर चलाना जानते थे, जंगल काटकर खेत भी बनाने लगे थे, झीलो को बांध कर झोपड़ियां भी बना रहे थे।

सन्ताल परगना में जो अवशेष मिले हैं, उनको दृष्टि में रखकर रेवरेण्ड पी० ओ० बोडिंग ने सन् १९०१ और १९०४ के ऐसियाटिक सोसाइटी

ऑफ बंगाल–जरनल में 'सन्ताल परगना में पत्थरों का अस्त्र-शस्त्र' शीर्षक कुछ निबन्ध लिखे थे। उपलब्ध पत्थरो के यन्त्रो एवं तन्त्रो को देखकर बोडिंग महोदय इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे,—'जहाँ तक आज की हमारी ज्ञान शक्ति की पहुँच है, उससे अधिक हम नही कह सकते। भारत के छोटानागपुर एव सन्ताल प गना में तथा इरावती की तलहटो में एक विशेष प्रकार का पत्थर पाया जाता है।' बोडिंग महोदय की यह धारणा श्री ए० फायरी के उस पत्र पर आधारित है, जो ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की सन् १८७४ की कार्यवाही पंजिका में अंकित है। आगे चलकर बोडिंग ने लिखा है—'उपर्युक्त स्थानों को छोडकर ऐसा पत्थर कही नही मिलता।' इसलिए वे मानते हैं कि 'प्राचीन समय में या तो एक ही प्रकार के लोग इन देशो में रहते थे, या उन लोगो में यातायात या आपसी सम्पर्क था।'

वैदिक साहित्य, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ और पुराणों में हमें इस क्षेत्र का उल्लेख कम मिलता है। बाबा वैद्यनाथधाम और वासुकीनाथ का उल्लेख आया है। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में दस्युओं के नाम आये हैं, उनका नाम मुण्डा नामो से मिलता-जुलता है। उनमें बहुत साम्य पाया जाता है, जैसे शंकर, सुंवेर, तुमुचि, चामुरि, तरुक्ष, अस्न आदि ऋग्वेद में आये हुए असुरो के नामो को भी विद्वानों ने मुण्डा मूलक बताया है। बाद का साहित्य मौन है। मौर्य काल के समय में इस क्षेत्र पर मगध राजा का आधिपत्य था। चन्द्रगुप्त के समय में उसके दरबार में यूनान का राजदूत मेगास्थेनेस ३०२ ई० पू० में आया था। ऐसा लगता है कि वह इस क्षेत्र में भी आया था। उसके यात्रा-वर्णन में इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है। उसने इस क्षेत्र के निवासियों को माली कहा है। मालर,

जिसे सूरीया पहाड़ी भी कहा जाता है, उसे ही मेगास्थनेस द्वारा उल्लिखित 'मान्नी' माना जा रहा है। मेगास्थनेस के अनुसार माली जाति पासी और गंगारी देवी नामक स्थानो के बीच रहती थी। यह क्षेत्र मगध और सीम्बली बंगाल के बीच का था। गंगा नदी और मन्दार पहाड़ी से वह क्षेत्र घिरा हुआ था। डब्ल्यू० जी० ओल्डहम ने 'एथिनीकल एसपेक्ट्स ऑफ बर्दमान जिला' में सूरीया पहाड़िया को शबर नाम दिया है। जर्मन विद्वान् श्मिड ने मुण्डा, कोल या शाबर को एक ही नस्ल का बनाया है। संसार के दक्षिण-पूर्वी कोण (आग्नेय कोण) होने के कारण श्मिट साहब ने इस नस्ल को आग्नेय नस्ल कहा है। आज से लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व हंगेरियन विद्वान दि० हवेसी ने आग्नेय नस्ल की कल्पना को गलत प्रमाणित किया था। जो भी हो, समय बदलता रहा, राज्यो का परिवर्त्तन होता रहा, पर इस क्षेत्र की वस्तुस्थिति मे विशेष परिवर्त्तन नही हुआ। अगर कुछ हुआ भी होगा, तो उसका कही उल्लेख नही मिलता। मेगास्थनेस के लगभग ६५० वर्ष के बाद चीनी यात्री ह्वानच्वाग भारत में आया था। उस समय हर्षवर्धन भारत का सबसे प्रतापी राजा था। इसके यात्रा-वर्णन से यह मालूम होता है कि कजंगल (संताल परगना) पर हर्ष का राज्य था। यह स्थान राजमहल से १८ मील की दूरी पर दक्षिण में स्थित है। इसके बाद काफी अर्से तक इस जिले का लिखित इतिहास हमें नही मिलता है।

सन्ताल परगना गजेटियर में श्री मौली ने भविष्य पुराण मे तथ्यों को लिया है। भविष्य पुराण १५ वी या १६ वी शताब्दी की रचना है। उन्होंने बताया है कि उक्त पुराण में ब्रह्मानन्द अध्याय में इस प्रकार इस जिले का उल्लेख मिलता है—"नारी खण्ड जिला जंगलों से भरा हुआ है।

यह भागीरथी नदी के पश्चिम में और द्वारकेश्वरी नदी के उत्तर में स्थित है। वह पूर्व में पंचकाकूट पहाड़ी से उत्तर में किकठा तक फैला हुआ है। जंगल का विस्तार है, सखुआ और साल वृक्षों की संख्या अधिक है। वैद्यनाथ की मूर्त्ति के लिए इस जिले की प्रसिद्धि है। सम्पूर्ण देश से मूर्त्ति की पूजा करने लोग आते हैं।"

मुसलमानों के आगमन के बाद भारत का नया इतिहास प्रारम्भ हुआ। इस काल में भी हमें इस जिले का स्पष्ट दर्शन होता है। मुहम्मद बिन-बख्तियार ने जब मगध पर अपना आधिपत्य जमा लिया था, उस समय भी राजमहल की पहाड़ियों में हिन्दू सरदार स्वतन्त्र थे। इनमें एक इन्द्रद्युम्न नामका हिन्दू सरदार था, जिसे बख्तियार ने पराजित किया था। मुसलमानी आक्रमण के कारण बहुत-से राजपूत सरदारों ने राजमहल की पहाड़ी क्षेत्र में शरण लिया था। उनके आगमन से मुण्डा, सन्ताल और खरवार जातियों में हलचल मची। आपस में हिन्दू सरदारों से आदिवासियों का संघर्ष होने लगा। कहा जाता है कि सन् १८४४ ई० में सन्तालों ने बीरभूम राज्य की राजधानी को लूट लिया। चौदहवीं सदी के शुरू में यह क्षेत्र स्वतन्त्र था। तुर्क-सन्तालों के आधिपत्य में पूर्णत: नहीं आया था। इसका कारण यह बताया जाता है कि यह जिला जंगलों और पहाड़ों से रक्षित और दुर्गम था। उड़ीसा के जंग वंश के अन्तिम राजा के मन्त्री कपिलेन्द्र ने सूर्यवंश की नींव डाली। उसने सन् १४३५-७० ई० तक राज्य किया। उसने सन्ताल परगने को अपने अधिकार में किया था। स्वर्गीय राखालदास बन्द्योपाध्याय ने 'बांगलार इतिहास' में दिखाया है कि दामोदर नदी और गंगा के प्रदेश पर कपिलेन्द्र का दखल हो चुका था। उनकी पुस्तक में एक नक्शा दिया गया है, जिसमें कपिलेन्द्र का अधिकार

भागलपुर के पूरब राजमहल तक दिखलाया गया है। सन् १४९३ में अलाउद्दीन हुसेनशाह ने बंगाल में एक नया राजवंश स्थापित किया। उसने भागलपुर, सन्ताल परगना और मुंगेर पर भी अपना आधिपत्य जमाया।

तैलियागढी घाटी को बगाल का प्रवेश-द्वार माना गया था। वहाँ मुसलमानी युगं में अनेक युद्ध हुएं हैं। सन् १५३८ में शेरखाँ ने इस दुर्ग को मजबूत बनाया था। मिस्टर सी० स्टुअर्ट ने 'बंगाल के इतिहास' में बताया है कि सम्राट हुमायूँ की फौज ने तैलियागढी दुर्ग को तोड़ दिया था। अकबर के समय अफगान नेता सुलेमान का लडका बायजीद ने इस क्षेत्र के आदिवासियों की एक बडी सेना तैयार की और कालापहाड़ नामक सेना-पति के साथ उडीसा के राजा मुकुन्द हरिचन्द देव पर आक्रमण किया था। पर वह अपने अन्य सरदारो को प्रसन्न नही रख पाया, जिसके फलस्वरूप गद्दी से हटाया गया और उसका भाई दाऊद गद्दी पर बैठा। दाऊद ने अकबर की अधीनता को अस्वीकार कर दिया। उसने अकबर से खुला संघर्ष किया। १२ जुलाई, सन् १५७६ को राजमहल में लड़ाई हुई। हाजीपुर में पराजित होने के बाद वह भाग कर सन्ताल परगना आया था। तेलियागढ़ी दुर्ग को उसने देखा था। तेलियागढ़ी दुर्ग को उसने इतना लम्बा एवं मजबूत पाया कि अनुमानतः वह लगभग एक वर्ष तक मुगल सेना को वहाँ रोक कर रख सकता है। पर मजबूत खाँ के सामने वहाँ दाऊद की सेना टिक न सकी। दाऊद खा हारने वाला जीव नहीं था। उसने एक बहुत बड़ी फौज जमा की और राजमहल में मुगल सेना से मोर्चा लेने का निश्चय किया। उसके साथ वहाँ तीन हजार अफगान सैनिक थे। उसने कई महीने तक मुगल सेना को रोक रखा। अन्त में दाऊद पकड़ा गया। उसका सिर काटकर सम्राट अकबर के पास राजमहल भेजा गया। मुगलों

२

की यह विजय बहुत महत्त्वपूर्ण रही। अफगानों का आधिपत्य सदा के लिए खत्म हो गया और यह प्रदेश दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत आ गया।

सन् १५६२ में बंगाल की राजधानी राजमहल में स्थापित की गई। शेरखां ने भी अपने समय में बंगाल की राजधानी राजमहल में करने का निश्चय किया था। परन्तु कार्यरूप में ऐसा न कर सका। जब अकबर ने राजा मानसिंह को बंगाल का सूबेदार बनाया, तो राजा मानसिंह ने राजमहल में बंगाल की राजधानी स्थापित की। राजमहल का नाम पहले आगमहल था। राजा मानसिंह ने आगमहल को राजमहल के रूप में बदला। उसे अकबर नगर भी कहा जाता है। राजमहल में बंगाल की राजधानी केवल १६ वर्षों तक ही रही, बाद में सन् १६०८ में नवाब इस्लाम खाँ ने बंगाल की सुरक्षा की दृष्टि में रखकर ढाका में बंगाल की राजधानी स्थापित की। फिर भी राजमहल और तेलियागढ़ी का महत्त्व कम नहीं हुआ। कुमार शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर के विरोध में विद्रोह किया। बंगाल पर उसने आक्रमण किया। बंगाल के सूबेदार तथा नूरजहाँ के भाई इब्राहिम खां कुमार शाहजहाँ के विद्रोह को दबाने के लिए ढाका से राजमहल आये। कुमार की फौजें अधिक थी इसलिए इब्राहिम को तेलियागढी में शरण लेनी पड़ी। कुमार शाहजहाँ ने वहाँ भी उसपर हमला किया। इब्राहिम खां ने विद्रोहियों के बीच यह घोषणा की कि 'उसकी सेना सम्राट को समर्पित है। वह या तो विजयी होगा या मारा जायेगा।' वह युद्ध में घायल हुआ, उसकी फौज भाग गई। उसकी छावनी को विद्रोहियों ने लूट लिया। शाहजहाँ बंगाल का सरदार बना, पर उसने मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार नहीं की। अतः उसे मुगल सेना का सामना करना पड़ा और सन् १६२४ में

वह पराजित हुआ। पराजय के बाद कुमार शाहजहाँ ने राजमहल में अपने को छिपाकर रखा। सम्राट शाहजहाँ के समय पुनः राजमहल का भाग्य चमका। बंगाल का सूबेदार शाह्शूजा बनाया गया। उसने वहाँ एक भव्य राजमहल का निर्माण किया। मानसिंह ने दुर्ग को मजबूत बनाया। इसने काफी खर्चकर उसे महान नगरी के रूप में बदला। पर उसका सभी प्रयास व्यर्थ गया। गंगा ने अपनी धारा बदल दी। फल यह हुआ कि नई राजधानी पानी के प्रवाह में बह गयी। अनेक सुन्दर-सुन्दर महल ढह गए, फिर भी सन् १६६० तक बंगाल की राजधानी राज-महल में ही रही। सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के बीमार पडने पर मुगलों का भ्रातृयुद्ध आरम्भ हुआ। बंगाल के सूबेदार शाहजहाँ शुजा ने राजमहल में भारत सम्राट का मुकुट धारण किया। दारा शिकोह के बड़े पुत्र सुलेमान शिकोह और आम्बोर के राजा जयसिंह से उसने हार खायी और भागकर मुंगेर में शरण ली। वहां उसे सूचना मिली कि औरंगजेब ने दारा को पराजित किया है और उसने सम्राट शाहजहाँ को कैद कर लिया है, तब शुजा पिता को कैद से छुड़ाने के लिए फिर पश्चिम की ओर बढ़ा। पर इलाहाबाद के निकट खजवा में औरंगजेब का उसे सामना करना पड़ा। परन्तु वह हार गया। भागकर वह पुनः मुंगेर चला आया। औरंगजेब के सेनापति मीर जुमला ने उसका पीछा किया। मुंगेर में शुजा ने मीर जुमला का मुकाबला किया, वहाँ भी वह हार गया। हारकर शुजा राजमहल आया। उसने तेलियागढ़ी और सकरीगली के दुर्ग को मजबूत बनाया। मीर जुमला उसका पीछा करता हुआ तेलियागढ़ी पहुँचा। ६ दिन तक उसने उसका मुकाबला किया। बाद में शुजा ने ऐसा अनुभव किया कि तेलियगढ़ो सुरक्षित स्थान नहीं है, अतः वह सपरिवार

वहाँ से भाग निकला। चार महीने तक मीर जुमला राजमहल में अपनी छावनी डाले रहा। शाह शुजा की फौज गुरिल्ला-युद्ध चला रही थी। मीर जुमला के लिए उसे पराजित करना कठिन हो गया। अतः राजमहल को छोड़कर उसने दूसरी जगह अपनी छावनी डाली। मीर जुमला की कठिनाई तब और बढ़ गई, जब शाहजादा महमूद ने उसका विरोध करना प्रारम्भ किया। शाहजादा महमूद की शादी शाह शुजा की लड़की से निश्चित थी। निकाह भी हो गया था। शुजा ने महमूद को एक दर्द भरा खत लिखा। शाहजादा पर उसका काफी प्रभाव पड़ा। वह मीर जुमला को छोड़कर शुजा के पास चला गया और उसकी लड़की से उसने शादी की। मीर जुमला को यह आशंका होने लगी कि फौज में अशांति फैल रही है, विद्रोह की भावना उनमें देखी जाने लगी। अतः फौज को राज-महल मे रखना व्यर्थ समझा। मीर जुमला ने फौज को क्रियाशील बनाने के लिए तालडीहा पर आक्रमण कर शुजा को सन् १८६० में हराया।

राजमहल से राजधानी हटाकर पुनः ढाका में स्थापित की गई। सुरक्षा की दृष्टि से वहाँ राजधानी रखी गई। फिर भी राजमहल का महत्त्व कम नहीं हुआ। सन् १६६१ में मुद्रायें ढाली जाती थी। टकसाल का वहाँ केन्द्र था। सोना देकर उसे शाही मुद्रा में वहीं बदला जाता था। अकबर नगर का फौजदार वहीं रहता था। शाही दरबार से प्रत्येक वर्ष मुर्शिद कुली खां जाड़े में राजमहल भेजे जाते थे। वे वहां वर्फ जमवाते थे और नवाब को उपभोग के लिए भेजते थे। नवाब बारहों मास, प्रत्येक दिन वर्फ को व्यवहार में लाते थे और वर्फ की पूर्त्ति अकबरनगर से होती थी। आम के फल के लिए भी यह क्षेत्र बहुत प्रसिद्ध रहा है। शाही दरबार से एक आमपूर्त्ति-अधिकारी की नियुक्ति प्रत्येक वर्ष हुआ करती थी।

उनका काम था—इस क्षेत्र से प्रत्येक वर्ष ग्राम शाही दरबार में भेजना।

सन् १६०८ में अंग्रेज भारत पहुँच चुके थे, परन्तु चेष्टा करने पर भी १६५० से पहले वे बिहार में जम न सके थे। बिहार की मिट्टी उनके अनुकूल न मिली। इसके बाद बिहार में कई अंग्रेजी फैक्टरियाँ खुली। राजमहल अंग्रेजों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। बंगाल में व्यापार फैलाने के लिए इसका बहुत बड़ा महत्व था। कारण, शाह शुजा के समय राजमहल में बंगाल की राजधानी स्थापित थी। शाह शुजा के दरबार में उन दिनों डाक्टर गब्रेल ब्यूग्टन रहता था। वह शाहजादा का बहुत प्रियपात्र था। कहा जाता है कि उसने शाहजादा के परिवार की किसी महिला को एक भयानक रोग से मुक्त किया था। इसी अंग्रेज डाक्टर ने सम्राट शाहजहाँ की पुत्री का सफलता पूर्वक ऑपरेशन किया था। इन सभी कारणों से डाक्टर का प्रभाव शाहजादा शुजा पर था। अपने एजेन्टों को लायन्स के कप्तान ने बालसोर से सन् १६५० में एक निर्देश देते हुए लिखा था—'इन प्रदेशों में व्यापार करने के लिए शाहजादा के फरमान की कितनी आवश्यकता है। डाक्टर ग्रेवाल व्यूग्टनने, जो शाहजादा के यहाँ डाक्टर है, इस सम्बन्ध में आवश्यक आश्वासन दिया है। व्यापार की स्थापना के लिए राजमहल जाना आवश्यक है। एक अंग्रेज व्यापारी के साथ राजमहल जाँय और वहाँ डाक्टर व्यूग्टन से व्यापार के सम्बन्ध में मिलें। व्यूग्टन के आश्वासन के अनुसार व्यापार करने की उन्हें स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।' लायन्स के कप्तान ने डाक्टर व्यूग्टन को भी पत्र लिखा था। डाक्टर व्यूग्टन ने शाहजादा शुजा से फरमान ले लिया और इस प्रकार अंग्रेजों को बंगाल में व्यापार करने की अनुमति मिली। राजमहल में ही डाक्टर व्यूग्टन का देहान्त हुआ था। उसकी कब्र अभी भी राज–

महल में है। डाक्टर व्यूग्टन ने शाहजादा शुजा को धोखा देकर अंग्रेजों से माल पर अलग अलग चुंगी लेने के बाद से साल में एक मुश्त ३,००० रुपये की रकम लेनी ठहरा ली थी। अंग्रेजों का व्यापार तेजी से बढ़ता जा रहा था। इसी बीच शाहजादा शुजा का पतन हुआ। अंग्रेज व्यापारी कठिनाइयों में पड़ गया। मीर जुमला ने अंग्रेजी जहाजों को राजमहल में रोका। यह निषेध इसलिए किया गया था कि कम्पनी के नौकरों ने सम्राट के जहाज को हुगली में रोका था। मीर जुमला ने अंग्रेजो को आगाह कर दिया कि वे देश से निकाल दिये जायेंगे। अंग्रेजो ने मीर जुमला से माफी मागी और अच्छे आचरण करने का विश्वास दिलाया। १६७६ में उन्होने राजमहल में एक एजेन्सी खोली। वे राजमहल में धनराशि भेजते थे, जहाँ शाही मुद्रा में उन्हे बदला जाता था। सन् १६८१ में राजमहल एजेन्सी के प्रभारी थे रोवर्ट हेज्। यह रोबर्ट हेज् बाद में कम्पनी के परिषद् के अध्यक्ष हुए थे।

सन् १६६८ ई०में ईस्ट इण्डिया क० का कुल व्यापार ३४ हजार पौण्ड का था। वह व्यापार १६८० तक वार्षिक १॥ लाख पौण्ड से भी अधिक होने लगा था। अंग्रेज चाहते थे कि शाहजादा शुजा ने जो रकम निर्धारित की है; वह रकम चुंगी के रूप में ली जाय। इतना ही नही, अंग्रेज व्यापारी अँग्रेजो झण्डे के नीचे दूसरों के माल भी नाजायज ढंग से ले जाते थे। अतः बिहार-बंगाल के सूबेदार शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों के माल पर बाकायदा ३॥ सैंकड़ा चुंगी बिठा दी। अंग्रेज व्यापारियों ने विरोध किया। राजमहल में देशी लोगों की कुछ दूकानें अंग्रेजों ने लूट लीं। शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों की सभी सम्पत्ति जब्त कर ली और कम्पनी के नौकरों को जेल में डाल दिया। अंग्रेजों की इसी तरह की बेजा

हरकतों के कारण सम्राट ने साम्राज्यभर में उसी तरह की आज्ञा जारी कर दी थी। अन्त में बम्बई के गवर्नर जॉन चाइल्ड के सन्धि की प्रार्थना करने पर हर्जाना लेकर उन्हें माफ किया गया। राजमहल में उन्हें पुनः व्यापार करने की इजाजत दी गई। पुनः १६९६ में राजमहल के सरदार सूबा सिंह ने विद्रोह किया। उडीसा के अफगान सरदार रहीम खाँ ने विद्रोही सरदार को सहयोग दिया। दोनो ने मिलकर राजमहल से मेदिनीपुर तक धावा बोला। राजमहल पर उनका कब्जा हो गया। उन्होंने अंग्रेजो की सम्पत्ति जब्त की। नबाब इब्राहिम खाँ अप्रेल १६९७ में अपने पुत्र जबर्दस्त खां को राजमहल पर कब्जा करने को भेजा। उसने राजमहल को अपने कब्जेमें कर लिया। पर उसने अंग्रेजो के माल को वापस नही किया। सम्राट के पौत्र आजीम शाह के पास अग्रेजो ने फरियाद की। वे ही इब्राहिम खां के बाद बंगाल के सूबेदार बनाये गए थे। पुनः औरंगजेब के आदेश से सन् १७०२ में राजमहल के सभी अंग्रेज गिरफ्तार हो गए थे। उन सबकी पूरी सम्पत्ति जब्त कर ली गई थी। उन्हें सम्राट से माफी मांगनी पड़ी थी।

सन् १७०७ में औरंगजेब का देहान्त हो गया। राजमहल से अजीम खा २०,००० घोड़सवारो के साथ अपने पिता शाह आलम की मदद केलिए चल पड़ा। अपने पुत्र फरूंखसियर को राजमहल में, अपने परिवार की महिलाओ तथा खजाने के साथ छोड़कर वे गए थे। शाह आलम बहादुर शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। अजीम खा राजमहल लौट आये। सन् १७०८ के अप्रेल में अंग्रेज ने एक शिष्ट मण्डल राजमहल भेजा। १५,००० रुपया भी अजीम खां के पास भेजा गया था। दो दर्पण शाह-जादा के लिए तथा एक दर्पण मुर्शिद कुली खां, जो उन दिनों दीवान थे,

के लिए भेजा गया था। यह इसलिए भेजा गया था कि अंग्रेज चाहते थे--भारत में ऐसा व्यापार करना जिसपर किसी प्रकार की चुंगी न लगे। एक मास के बाद उन्हे यह पता चला कि उनके एक एजेण्ट शिवचरण ने ३६,०००) रुपये का नजराना भेंट करने का वचन दिया है। कम्पनी की वगैर स्वीकृति के यह कार्य हुआ था। कम्पनी को शिवचरण के इस आचरण से बहुत क्षोभ हुआ। कम्पनी ने फजल मुहम्मद को राजमहल भेजा। फजल मुहम्मद कम्पनी का एक बहुत ही वफादार नौकर था। उसपर कम्पनी को बहुत भरोसा था। उसके जिम्मे दो काम सौंपा गया था। एक काम तो यह था कि वह शिवचरण को गिरफ्तार कर कलकत्ता भेजे, जहाँ उसे अपने आचरण के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण देना था। दूसरा काम था राजमहल में शाहजादा खा और मुर्शिदकुली खां से मिलकर बगाल मे व्यापार करने की अनुमति मागे। शिवचरणको गिरफ्तार कर उसने तो उसे कलकत्ता भेज दिया। परन्तु वह अंग्रेजो के लिए व्यापार की सुविधा प्राप्त नही कर सका। वह अपने प्रयास में असफल रहा। शाहजादा और उनके खजान्ची की ओर से यह जबाव मिला कि ३६,०००) रु० नजराना पर व्यापार की अनुमति नही मिल सकती। अगर वे अनुमति चाहते हैं, तो ५०,०००) रु० नजराने के रूप में शाहजादा को दें और एक लाख रुपये सम्राट के कोषागार में जमा करें। फजल मुहम्मद को साफ-साफ कहा गया कि जबतक १,५०,००० (डेढ लाख) रुपये नही मिल जाते, तबतक अंग्रेजों को व्यापार करने की आज्ञा नही दी जा सकती। इस प्रकार के उत्तर से अंग्रेज को बहुत रंज हुआ। खुली बगावत करने के लिए वे लोग तैयार हो गए। कम्पनी की परिषद ने यह निर्णय किया कि मुगलों का जो जहाज हुगली नदी होकर जाय, उसे रोका जाय।

इस निर्णय के अनुसार, जो भी मुगलों के जहाज हुगली नदी होकर जाते थे, उन्हें वे रोकने लगे। राजमहल में शाहजादा अजीमुल्लाह को इस प्रकार की घटनाओं पर अत्यन्त क्रोध हुआ। क्रोधित होने के कारण उसने राजमहल के अंग्रेजी एजेण्ट 'कलेम साहब' को गिरफ्तार कर लिया। कम्पनी के जहाजो पर उसने नियन्त्रण लगा दिया। अन्त में अंग्रेजो ने हारकर १,४,०००) रु० देकर माफी मागी और इस प्रकार बगाल में व्यापार करने का अधिकार उन्हें प्राप्त हुआ। परन्तु, कुछ ही दिनो के बाद कम्पनी ने पुनः निश्चय किया कि मुगलो के जहाज हुगली नदी में रोके जांय। इतना ही नहीं, राजमहल के व्यापार को नष्ट करने के लिए कम्पनी ने ब्रिटिश नागरिको को आदेश दिया कि कोई भी व्यक्ति मुगलो के जहाजों पर काम नही कर सकते। श्री सी० आर० विल्सन ने 'इरानी एनल्स ऑफ दि इंगलिश इन बंगाल' में कहा है कि मुगलो के यहाँ जितने अच्छे समुद्री कप्तान थे, के सब-के सब अंग्रेज थे। दूसरे वर्ष शाहजादा और दीवान मुर्शीदकुली खाँ बंगाल से शाही दरबार वापस गये। शेर बुलन्द खाँ उनके स्थान पर सूबेदार होकर आया। उसने आते ही राजमहल में अंग्रेजो के सभी जहाजो को बन्द कर दिया। अंग्रेजो के व्यापार पर नियन्त्रण रखने लगा। अंग्रेजो ने शेर बुलन्द खाँ के सामने आत्म-समर्पण किया। ४५,०००) रुपये का नजराना भेंट किया, माफी मांगी और व्यापार करने की अनुमति उन्हें मिल गई। सन् १७१० में शाहजादा फर्रूकसियर राजमहल आये। अंग्रेजो ने उनके पास अपना एक राजदूत भेजा। शाहजादा ने कम्पनी के परिषद के अध्यक्ष को सम्मान के रूप में एक पोशाक भेजी। दूसरे वर्ष खां जान बहादुर इजादुल्लाह नायब सूबेदार बनकर राजमहल आया।

उसने अंग्रेजों की बहुत सहायता की। अंग्रेजो के सारे जहाजो को बे-रोकटोक जाने की अनुमति दे दी ; व्यापार की स्वतन्त्रता भी उन्हें मिल गई। इसी बीच बहादुर शाह का देहान्त सन् १७१२ में हो गया। वातावरण में काफी परिवर्त्तन आया। चारो ओर अराजकता फैल गई। राजमहल के नायब सूबेदार ने स्थिति से फायदा उठाने चेष्टा की। इजद्दौला ने सैनिको को इकट्ठा किया और अपने को राजमहल का मालिक घोषित किया। फरूकसियर ने पटना में अपने को भारत का सम्राट घोषित किया था। इस घोषणा के बाद ही वे इस जिला में आये। लोगो को अनुमान था कि इजद्दौला उनका सामना करेगा, पर उसने छेड़-छाड़ नही की। तेलियागढी से फरूकसियर बगैर रोक-टोक चले गए।

जब मुगल सल्तनत अपने अन्तिम दिनो मे पतनोम्मुख थी, तब राजमहल और इस क्षेत्रके प्रति उदासीनता बरती जाने लगी। मराठों से मुगलों का संघर्ष हुआ। राजमहल पर उनका कब्जा हुआ। राजमहल नगर और जिला पर कब्जा कर अलीवर्दी खां के लिए केवल मुर्शिदाबाद ही रह गया। अलीवर्दी खां के सेनापति मुस्तफा खा ने बगावत की। भास्कर पन्त की हत्या मुस्तफा खाँ ने अलीवर्दी के कहने पर की थी। अलीवर्दी ने उसे आश्वासन दिया था कि राजमहल उसे भास्कर पन्त की हत्या के बदले दे देगा। पर अलीवर्दी ने बाद में बातें पलट दी। मुस्तफा खां ने मराठों का साथ दिया। राजमहल में अलीवर्दी खा की पराजय मुख्यतः उसके कारण ही हुई थी। अलीवर्दी को बंगाल लौटने के लिए उसने विवश कर दिया। बाद में मुस्तफा भी युद्ध में मारा गया। उसे राजमहल नहीं मिला। मराठो का उसपर कब्जा हो गया। पहाडी रास्ता उन्हें प्राप्त हुआ। माभ्रो प्रवेश द्वार का उन्होंने निर्माण किया। अलीवर्दी

असहाय हो गया था। फिर भी उसे अंग्रेजो के षड्यन्त्र का पता चल गया था। हैदराबाद तथा तामिलनाड में अंग्रेजों को राजनीति से खेलते देखकर व्यावहारिक राजनीतिज्ञ अलीवर्दी को नया खतरा का अनुभव हुआ। पर वह स्वयं कुछ कर भी नही सकता था। वह तो मौत की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने मरते समय अपने प्रिय दौहित्र तथा उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को अंग्रेजो से सावधान रहने की सलाह दी थी। उसने यह भी कहा था कि अंग्रेजो को बंगाल की भूमि में कही भी किलाबन्दी करने या फौज रखने की इजाजत नही देना। सिराजुद्दौला ने ऐसा ही किया। कलकत्ता में जब अंग्रेजो ने किलाबन्दी आरम्भ की और सिराजुद्दौला के खिलाफ विद्रोह करने का षड्यन्त्र चलाया, तब सिराज ने हुक्म दिया कि कोई विदेशी उसके राज्य में किलाबन्दी या युद्ध की तैयारी नही कर सकता। पर अंग्रेजो ने उस पर ध्यान नहीं दिया। सिराज ने उनपर आक्रमण किया। बंगाल और बिहार में उनकी जितनी कोठियाँ थी, उसे उसने जब्त कर लिया। इसी बीच अंग्रेजो ने षड्यन्त्र रचकर मीरजाफर को अपने पक्ष में मिला लिया था। मीरजाफर अलीवर्दी के बहनोई थे और सिराज के वे सेनापति थे। अंग्रेजो ने जो बिहार-बंगाल में फूट डाली थी, वह देशद्रोह की भावना से भरी थी। उनके सामने वीरता और साहस से कुछ नही हो सका। १९ वर्षीय युवक सिराजुद्दौला ने अंग्रेजो को पहले पराजित किया, पर उसके भाग्य में सफलता नही लिखी हुई थी। हुगली और मोर नदी के संगम पर पलासी गाँव मे सिराजुद्दौला ने अंग्रेजो को घेरा। नवाब की फौज निर्णयात्मक हमला करने जा रही थी, पर सेनापति मीरजाफर ने ऐन मौके पर धोखा दिया। इसका फल यह हुआ कि २३ जून, १७५७ को विजयश्री

अंग्रेजो को मिली। सिराजुद्दौला ने भागकर राजमहल में शरण ली। दुर्भाग्य से उन दिनों मीरजाफर के भाई मीर दाऊद राजमहल में फौजदार थे। सिराज वेष बदले जहाजी बेडे में थे। उन्हें दानाशाह नामक एक आदमी ने पहचान लिया। दानाशाह समाज विरोधी तत्वो से बना हुआ व्यक्ति था। सिराज ने समाज विरोधी आचरण के कारण दण्ड स्वरूप उसके नाक और कान कटवा दिए थे। वह राजमहल में फकीर का जीवन बिता रहा था। सिराज को पहचानते ही, उससे बदला लेने की भावना उसके मन में जगी। दानाशाह ने मीरदाउद को सिराज के सम्बन्ध में सूचना दी। वह गिरफ्तार हुआ। उसे मुर्शिदाबाद भेजा गया। लाखो रुपये की उसकी सम्पत्ति लूट ली गई। उसको बचाने के लिए फौजी टुकडी राजमहल पहुँची, पर उसके पहले ही मीर मुहम्मद ने उसे गिरफ्तार कर मुर्शिदाबाद भेज दिया था। वहाँ मीरजाफर के बेटा मीरन ने सिराज की हत्या कर डाली। मीरन की कब्र राजमहल मे आज भी उपलब्ध है। सन् १७६० में उसपर चम्पारण में बिजली गिरी जिसके फलस्वरूप उसका देहान्त हो गया। पलासी युद्ध के बाद अंग्रेजो की सत्ता इस क्षेत्र में स्थापित हो गई। पर इस सत्ता के विरुद्ध पाँच वर्ष के अन्दर ही मीर कासिम ने विद्रोह किया। उसने अपनी सेना को काफी सुदृढ किया। अंग्रेजो को कई स्थानो पर उसने पराजित भी किया। ५ सितम्बर, १७६३ को राजमहल से ६ मील की दूरी पर उधुआनाला में मीर कासिम और अंग्रेजो के बीच महत्वपूर्ण संघर्ष हुआ। इस संघर्ष का उल्लेख श्री ब्रोमो ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ दि राइज एण्ड प्रोग्रेस ऑफ दि बंगाल आर्मी' में किया है। मीर कासिम वहाँ इस स्थिति में था कि वह अंग्रेजों को पराजित करता। पर उसके एक सेनापति ने

उसे धोखा दे दिया। मीर कासिम की वहाँ हार हो गई। पर मीर कासिम इससे घबड़ाया नही। राजमहल से इलाहाबाद गया। वहाँ जाकर उसने अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में एक संघ स्थापित किया, जिसके सदस्य थे—मीर कासिम, अवध के नबाब वजीर शुजाउद्दौला और बादशाह आलम। इस सघ के नेतृत्व में अंग्रेजों से बिहार को राहत दिलवाने के लिए एक विशाल फौज भेजी गई। २३ अक्टूबर, १७६४ को संघ की शक्ति को अंग्रेजो ने बक्सर में परास्त कर दिया। पलासी युद्ध के बाद अंग्रेजी सत्ता में जो कमी रह गई थी, बक्सर की पराजय ने पूरी कर दी।

पहाड़िया-जाति का विद्रोह

सन्ताल परगना के सबसे प्राचीन निवासी पहाडिया ही हैं। पहाडिया की एक शाखा मलार है। मेगास्थेनेस ने अपने यात्रा-वृतान्त में इस क्षेत्र के निवासियो का उल्लेख किया है और उनका नाम माली बताया है। मानववादियों ने माली को ही मलार के रूप में देखा है। मलार को ही माली माना है। आज भी पहाड़िया जाति विशेष रूप से मिर्जाचौकी के स्टेशन से सकरीगली स्टेशन तथा महाराजपुर स्टेशन से बडहरवा स्टेशन के बीच पर्वतों पर रहती है। पहाड़ की चोटियो पर उनकी बस्तियाँ बसी हुई हैं। राजमहल पहाडियों पर उनकी बस्तियाँ हमें दिखाई पड़ती हैं। गौता और पकौड़ अनुमण्डल में स्थित पर्वतमालाओ पर, घोर जंगल में भी उनकी कई बस्तियाँ हैं। पहाडिया जाति का राज्य पहले इसी क्षेत्र में था। आर्यों के आने के पहले राजमहल, पकौड, गोड्डा और दुमका अनुमण्डलों में उनका ही राज्य था। वे अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटे थे; बारकोप,

शकरूगढ; लकडागढ़, अम्बर तथा सुल्तानाबाद आदि उनके विशेष उल्लेखनीय राज्य थे। प्राचीनकाल से लेकर अकबर के समय तक वे किसी-न-किसी रूप में अपनी स्वतन्त्रता के लिए लडते रहे थे। बाहरी शक्तियों को उन्होंने कभी भी शान्तिपूर्वक रहने नही दिया। यत्र तत्र उनका विद्रोह होता रहा था। प्रमाण मिलता है कि उन्होने कर्ण एवं मगध के राजा सहदेव के समय में भी विद्रोह किया था। उन्होने शशाक का पहले विरोध किया था, पर जब वह उनके घर में हर्षवद्धन के भय से आया, तो उन्होने उसका साथ दिया। शशाक ने पहाडियो की एक फौज का निर्माण किया था; हर्षवद्ध न ने उनपर अपना आधिपत्य जमाया, फिर भी पहाडिया शान्ति पूर्वक नही रहे, विद्रोह करते रहे। अकबर के राज्य काल में उनका विद्रोह बहुत तीव्र हो गया था। उनके लिए मुगल हुकूमत अमान्य थी। अकबरने पहाड़ियों का दमन करने के लिए एक बहुत बडी फौज राजा टोडरमल के नेतृत्व में सन्ताल परगना भेजी। पहाड़ियों ने उनका खुलकर विरोध किया। गुरिल्ला-युद्ध की प्रणाली से राजा टोडरमल को पहले तो उन्होंने पस्त कर दिया। राजा टोडरमल एक व्यावहारिक सेनापति थे सघर्ष के बीच शान्ति और समझौते की नीति वे अपनाते थे। इस प्रकार वे अपनी सैनिक-शक्ति का भी सचय करते थे। पहाड़ियो ने समझा मुगल सेना हार गई, इसलिए वे शान्ति और समझौता चाहते हैं। परन्तु ऐसी बात तो थी नहीं, जब पहाडिया असावधान थे, उसी समय उन पर मुगलो ने आक्रमण कर दिया और पहाड़ियों की हार हो गई। उनके तथाकथित विद्रोह का दमन हुआ। पर यह बात स्वीकार करना ही पड़ता है कि सन्ताल परगना में पहाडियो ने नाम केलिए अकबर की अधीनता स्वीकार की थी, वास्तव में वे स्वतन्त्र थे। राजा मानसिंह जब

बिहार आये और राजमहल में अपनी राजधानी बनाई, तब उनका ध्यान पहाड़ियों की ओर गया। पहाड़ियों पर अपना आधिपत्य जमाने का कार्य उन्होने कूटनीति से आरम्भ किया। मानसिंह ने देखा, अपनी शक्ति के साथ ही साथ उनकी बाहरी शक्तियाँ भी थी। बंगाल, उडीसा तथा छोटानागपुर में मुगल हुकूमतों के विरोध में यत्र तत्र विद्रोह हो रहे थे। वे सभी विद्रोही पहाड़ियों की मदद करते थे और उन्हें विद्रोह करने की मन्त्रणा देते थे। मानसिंह ने पहले उन्ही विद्रोहियो का दमन करने का और पहाडियो से मेल-मिलाप का निश्चय किया। मानसिंह ने बंगाल, उडीसा तथा छोटानागपुर के विद्रोहियों का सफलापूर्वक दमन किया। उनके दमन के बाद पहाड़ियों की ओर उनका ध्यान गया। पहाडिया सरदारो का उन्होने अंत किया। उनके राज्यों को जब्त किया। कुछ समय तक बारकोप, मनिहारी, माँझघाटी, शकरूगढ, अम्बर तथा सुल्तानाबाद में पहाडिया सरदारों ने मुगलसेना का सामना किया, पर वे हार गये। मानसिंह ने उनके राज्यों को अपने राज्य में नही मिलाया। प्रशासकीय खर्च उनपर काफी था, आय नही के बराबर थी। वे राज्य एक प्रकार से मुगलो के ऊपर भार-स्वरूप ही थे। इस कारण राजा मानसिंह ने अपने सहयोगियो एवं मुगल राज्य के भक्तो के बीच उनका वितरण कर दिया। पहाडिया सरदारों का दमन करने में खेतौरी सरदारो ने मानसिंह को सहयोग दिया था। इस कारण राजा मानसिंह ने बारकोप, मनिहारी, मांझवेघाट तथा शकरूगढ़ खतौरी सरदारो को दे दिया। पाकुड अनुमण्डल के अन्तर्गत स्थित अम्बर में पहाडिया का बहुत बड़ा राज्य था। यह राज्य मानसिंह ने एक कन्नोज ब्राह्मण को दे दिया। सुन्दरवन के राजा प्रतापादित्य ने विद्रोह किया था। उसका दमन राजा मानसिंह ने उक्त ब्राह्मण

के सहयोग से किया था। उनकी सेवाओं के लिए राजा मानसिंह ने पहाडियो से अम्बर राज्य लेकर उन्हें सौंपा। पहाडियों का एक दूसरा राज्य सुल्तानाबाद था, जो पाकुड़ अनुमण्डल में महेशपुर और पकुडिया के बीच स्थित था। उस राज्य को मानसिंह ने अपने एक सहयोगी राजपूत को दिया।

पहाडियो को दबा तो दिया गया था, पर पहाड़ियों की जमीन पर इतिहास खेलता रहा। आज भी इतिहास वहाँ बिखरा हुआ है। इतिहास-कारों को उनकी जमीन बुला रही है। तेलियागढी और उधवानाला ये दोनों स्थान पहाडियों की जमीन पर स्थित हैं। इतिहास इन दोनो स्थानों से इस प्रकार लिपटा हुआ है कि बगैर उनका अध्ययन किये इतिहास की कई महत्वपूर्ण घटनाओं को हम समझ नही पायेंगे। पहाड़ियों की यह भूमि बहुत ही महत्व की है। मुगल सल्तनत जब भ्रातृ-युद्ध के कारण अशान्त थी, तब पहाडिया स्वतन्त्र थे। औरंगजेब के समय पुनः उनपर मुगलो का आधिपत्य था। बहादुर शाह के मरने पर जब देश में अराजकता फैली, तब वे पुनः स्वतन्त्र हो गए। मुगलो के लिए पहाडिया सर-दर्द बने रहे। शासन में जब कमजोरी आती थी, तब वे स्वतन्त्र हो जाते थे। शक्तिशाली शासको के समय भी वे नाममात्र इनके अधीन रहते थे। राजा मानसिंह के अतिरिक्त उन्हें किसीने नही दबाया। मराठो ने सन् १७४२ में राजमहल पर आक्रमण कर दिया। बगाल को लूटा। मुगल हुकूमत की शक्तियो का अन्दाज पहाड़ियों को लग गया। राजा मानसिंह के समय अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्नशील रहे। मौभबे घाट और लकडागढ़ उनका था। राजा मानसिंह ने पहा-ड़ियो से इन राज्यों को दण्ड-स्वरूप ले लिया था और अपने मददगार

खेतौरियों को दे दिया था। पहाड़ियों को इसका दुःख था, अतः उन्होंने मुगल राज्य के अराजकताकाल में मँझवे को अपने अधीन किया, खेतौरियों को उन्होंने मार भगाया। इतना ही नही लकड़ागढ के दुर्ग को नष्ट कर दिया। बारकोप, मनिहारी, अम्बर और सुल्तानाबाद भी पहाड़ियों के ही था। पर इन राज्यों के राजा पहाड़ियो से सहानुभूति रखते थे। उनके लूट पाट में साथ देते थे। कहा तो इतना जाता है कि मँझवे से खेतौरियों को मार भगाने के लिए इन क्षेत्रों के राजाओं ने पहाड़ियों को उसकाया था, उन्हें मदद भी दी थी। सुल्तानाबाद, जिसे महेशपुर राज्य भी कहा जाता है, उसकी रानी सर्वेश्वरी देवी को सन् १७८३ में क्लीवलैण्ड ने गद्दी से उतार दिया। रानी पर आरोप लगाया गया था कि रानी ने पहाड़ियो को लूट-पाट के लिए उसकाया है, उन्हें सहयोग दिया है। अंग्रेजों का ध्यान पहाड़ियो की ओर पलासी युद्ध के बाद ही चला गया था। वे समझते थे, जब तक पहाड़ियो पर नियन्त्रण नही रखा जायगा, तबतक शांति नही रह सकती। सन् १७६३ में उधवानाला में युद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद पहाड़ियों की भूमि पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। पहाड़ियों की जमीन चली गई, परतु उनपर अंग्रेजो का आधिपत्य नही हुआ। वह स्वतंत्र जाति इतनी आसानी से गुलाम नही बनायी जा सकती थी।

अंग्रेजो के सामने शासन का पहले प्रश्न नही था, उन्हें पैसा चाहिए था। उनका ध्यान पहले मालगुजारी की ओर गया। उन्हें अधिक से अधिक मालगुजारी चाहिए था। अंग्रेजों ने ५ लाख की जगह ५३ लाख वसूल किया। अंग्रेजों ने बेजा माँग एवं बेजा दबाव की नीति अपनायी थी। स्वयं लार्ड क्लाइव ने लिखा था "ऐसी अव्यवस्थ,

अराजकता, गडबडी, रिश्वतखोरी, लूटखसोट और आचार भ्रष्टता बंगाल के अलावा किसी देश में देखी-सुनी न होगी और न ऐसे लूट-खसोट के उपायों से इतनी सम्पत्ति और धन जमा किया गया होगा। इन नौकरो ने जबर्दस्ती रुपया ऐंठा है। कम्पनी के नौकरों के कारनामे इतने पतित हैं कि हर भारतीय उनके नाम से नफरत करते हैं।" कम्पनी के शासन ने इस क्षेत्रको बरबाद और कगाल बना दिया था। लार्ड क्लाइव ने ३० सितम्बर, १७६५ को कम्पनी के डाइरेक्टरो के नाम एक पत्र लिखा था—उसमें उसने स्वीकार किया था 'निर्दयता और अत्याचारो का जो सिलसिला कम्पनी के कर्मचारियो व उनकी आड में यूरोपीय एजेण्टो व भारतीव उप-एजेण्टों ने शुरू किया है, वह इस देश में अंग्रेजो के नाम पर एक स्थायी कलंक रहेगा।" पहाडियो की भूमि बंगाल सूबे के अन्तर्गत आ गयी थी। ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्य विलियम फुलर्टन ने सन् १७८७ में लिखा था—"पहले जमाने में बगाल के प्रदेश पूर्वी राष्ट्रों के अन्न के भण्डार और व्यापार के केन्द्र माने जाते थे। हमारे शासन के सुप्रबन्ध से २० वर्षों में ही उनके बहुत से भाग उजाड दिखाई पडने लगे। खेत अब जोते-बोये नही जाते, बड़े-बडे भूखण्डो पर अब जंगली झाड़ियाँ खड़ी हुई हैं, किसान लूटे जाते हैं, कारीगर सताये जाते हैं, अकाल का आगमन बार-बार होता है, जनसंख्या घटती जा रही है।" पलासी युद्ध के बाद ६ सालो में बिहार-बगाल से कम्पनी के नौकरों ने प्रायः ६ करोड़ रुपया भेंट, रिश्वत आदि के तौर पर लिया था। लार्ड क्लाइव ने कम्पनी के नौकरों की रवानगी भेंट की जाँच की थी, और उनके विरोध में अपना प्रतिवेदन कम्पनी के डाइरेक्टरो के पास भेजा था। सन् १७७० में बंगाल-बिहार में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। तीन करोड़ की आबादी उन दिनों बंगाल-

बिहार की थी। अनुमान लगाया जाता है कि उसमें एक करोड लोग मरे थे। पहाडियों की माली हालत पहले भी खराब थी, दुर्भिक्ष के कारण और भी खराब हो गई थी। पेट के लिए वे लूट-पाट करने लगे। गांव के गाव वे लूट लेते थे, खेतों से फसल काट लेते थे, खलिहान को उजाड़ देते थे। इतना ही नही, किसानो के पशुओ को भी वे चुराकर ले भागते थे। संगठित ढंग से उनका विद्रोह प्रारम्भ हुआ। पहाडियों द्वारा लूट-पाट पूर्व में महेशपुर राज्य से खड़गपुर तथा दक्षिण में गिद्धौर तक फैला हुआ था। लूट-पाट करने के लिए छोटे छोटे राजा और जमीन्दार उन्हें उसकाते थे। उससे किसान आतंकित हो गए। वे घर-बार को छोडकर इधर-उधर भागने लगे। फल यह हुआ कि खेत उजाड हो गए। सन्ध्या के बाद कोई नाव लेकर नदी में नही जाता था। राजमहल और तेलियागढी होकर डाक-कर्मचारी जाते थे, तब उन्हे पहाडिया लूट लेते थे और मार डालते थे। कहा जाता है कि पहाडियो ने एक सप्ताह में ४० गाँवो को लूटा था। पहाडिया पूर्णतः दोषी नही थे। क्लीवलैंड ने १७८३ में लिखा था—'घाटवालों ने तथा जमीन्दारो ने पहाडियो को लूटपाट करने के लिए उमकाया था। सुल्तानाबाद, राजशाही और वीरभूम के राजा लोग इन पहाडियो का एक दूसरे का गाँव लूटने के लिए प्रयोग करते थे। हर व्यक्ति इस लूट-पाट मे सम्बन्धित था, इसका फल यह होता था कि जो लूटे जाते थे, वे शिकायत भी नही कर सकते। वे फरियाद भी नहीं कर सकते थे।' पहाड़ियो के इस लूट-पाट के सम्बन्ध में बनारस प्रमण्डल के जज ने सन् १८०८ में कहा था—'ब्रिटिश प्रशासन के प्रारम्भ में वीरभूम और भागलपुर के बीच की जमीन अव्यवस्था की स्थिति में थी। सरकार और उसकी प्रजा के विरोध में पहाड़ियो ने विद्रोह किया था

भूमि के लोगों पर क्रूर आक्रमण होता था, और वे जंगली जानवरो की भांति जला दिए जाते थे।" यह बात सत्य है कि पहले अंग्रेजों ने पहाड़ियो की इस लूट-पाट की ओर ध्यान नही दिया। वे तटस्थ रहे। वे तो मानते थे—शान्ति व्यवस्था उनका काम नही है, उनका काम तो केवल लगान वसूल करना था। प्रजा की सुरक्षा का भार उनके ऊपर नही था। यह दायित्व था मुगल हुकूमत का। पर लूट-पाट का प्रभाव लोगो की माली हालत पर पडने लगा। फल यह हुआ कि वसूली कम होने लगी। कम्पनी अर्थ-सकट में आ गई। कम्पनी को अर्थ-सकट से बचाने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज बिहार-बगाल का गवर्नर बनाकर भेजा गया। उसने वस्तुस्थिति का अध्ययन किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बगैर शान्ति-व्यवस्था के अर्थ-सकट से मुक्ति नही मिल सकती। शान्ति-व्यवस्था मुगलों के हाथ में और लगान वसूली कम्पनी के हाथो में थी। द्वैध शासन के बीच मानव रह रहा था। उसने द्वैध शासन को ही अराजकता एव अशान्ति का कारण माना। अतः उसने निश्चय किया कि द्वैध शासन का अन्त होना चाहिए। शान्ति-व्यवस्था भी कम्पनी के हाथो में रहनी चाहिए। वारेन हेस्टिंग्ज के सामने लक्ष्य था—ब्रिटिश राज्य को स्थापित करना। वह मानता था—जबतक ऐसा नही होगा, तबतक न तो देश मे शान्ति स्थापित होगी और न तो मालगुजारी की वसूली ही होगी।

वारेन हेस्टिंग्ज ने आते ही विद्रोही पहाड़ियों की ओर ध्यान दिया। उसके सैनिक सलाहकार जेनरल बारकर थे। जेनरल बारकर ने गवर्नर को सलाह दी कि पहाड़ियों को दबाने के लिए एक विशेष सैनिक दल तैयार किया जाय। उसकी राय से सन् १७७२ में एक ८०० सैनिकों का एक दल तैयार किया गया और कप्तान ब्रुक के नेतृत्व में उसे पहाड़ियों के

विद्रोह को दमन करने के लिए भेजा गया। कप्तान ब्रुक को जंगल तराई क्षेत्र का सैनिक गवर्नर बनाया गया। जंगल तराई का क्षेत्र बहुत बड़ा था। कर्नल रेनल्ड ने जंगल तराई का एक मानचित्र बनाया था। उसे देखने से मालूम होता है कि सन्ताल परगना का उत्तर अंश तथा मुंगेर और भागलपुर का दक्षिण अंश जंगल तराई में शामिल है। कप्तान ब्रुक ने यह आदेश निकाला कि विद्रोही आत्म-समर्पण करें। उसने विद्रोह को दबाने के लिए दमन का सहारा लिया। जो जमीन्दार लोग विद्रोहियों के साथ थे उनपर भी नियंत्रण रखने की उसने व्यवस्था की। कप्तान ब्रुक वारेन हेस्टिंग्ज के आदेशों को दृष्टि में रखकर दो वर्षों तक पहाड़ी क्षेत्रों में रहे। इन दो वर्षों में उन्हे काफी सफलता मिली। पहाड़ियो के विद्रोह को दबाने में वे सफल हो गये थे। पहाड़ियो को लुटेरे-जीवन से कृषक बनने के लिए प्रेरणा दी थी। पर विद्रोह को दबाने में कप्तान ने जो नीति अपनायी थी, उसकी हम सराहना नहीं कर सकते। तिऊर के किला पर पहाड़ियों का अधिकार था, उसे अपने कब्जे में लाने के लिए कप्तान ने तोपो का प्रयोग किया। अनेक पहाड़ियों को मारा, पर उन्हें किला नहीं मिला। उसे उन्हें ध्वस्त करना पड़ा। पहाड़ी क्षेत्रों पर कप्तान ने जो विद्रोह-दमन के नाम पर अमानवीय काम किया था, वह कम्पनी के शासन पर कलक के रूप में रहे। पर जितना वे दमन करते थे, उतना ही विद्रोह बढ़ता था। गोली और तोपों के सामने पहाड़िया लोग जमकर लड़ते नहीं थे, पर यत्र-तत्र विद्रोह करते थे। कप्तान ने देखा गोली और तोपों से पहाड़ियों को डराना आसान है, पर उनपर नियंत्रण रखना आसान नहीं। अतः उसने अपने कठोर दमन-नीति में परिवर्त्तन किया। विद्रोहियों को गोली और तोपों से मार डालने के बदले, उन्हें वह

गिरफ्तार करने लगा। हजारो की सख्या में उसने पहाडियो को बन्दी बनाया। कप्तान ने उन्हे प्रेम से शान्त करने की चेष्टा की। बन्दियों के बाल-बच्चो एवं उनकी स्त्रियो के साथ उदारता और सहानुभूति का व्यवहार किया। इसका परिणाम अंग्रेजो के लिए अच्छा निकला। भोले-भाले पहाडिया कम्पनी के चालाक एवं धूर्त अधिकारियो के फेर में आ गए। वे अंग्रेजो पर विश्वास करने लगे। अंग्रेजों ने पहाड़ियो को जमीन पर रहने की प्रेरणा दी। उनका गाँव बसाया। केवल दो वर्ष में ही उन्होंने २८३ गावो की स्थापना करायी। ये गाव उधवा नाला और बारकोप के क्षेत्र में स्थापित किये गये थे। वारेन हेस्टिग्ज ने सन् १७८४ के दिसम्बर मास में डाइरेक्टरो के पास एक प्रतिवेदन दिया था। उस प्रतिवेदन में उसने स्वीकार किया था कि जंगली तराई में सैनिक व्यवस्था कायम कर एक ऐसे क्षेत्र को, जिसकी जानकारी नही थी, जहाँ जाना सम्भव नही था और जहाँ केवल डाकू ही रहा करते थे, प्रशासन के अधीन लाया गया है। वहाँ सभ्यता पूर्वक रहने की व्यवस्था कायम की गई। आगे चलकर उस प्रतिवेदन में कहा गया था कि जहाँ उनकी लूट-पाट से मालगुजारी में कमी होती थी, वह कमी ही दूर नही हुई, उस क्षेत्र से मालगुजारी भी प्राप्त होने लगी। उसी प्रतिवेदन में उसने यह आशा व्यक्त की थी कि थोड़े और कार्य किए जांय तो इस क्षेत्र से मालगुजारी और अधिक प्राप्त हो सकती है। अंग्रेज प्रशासकों की दृष्टि में कप्तान ब्रुक राजमहल की पहाड़ियो के बीच सभ्यता के अग्रदूत माने गए थे।

वारेन हेस्टिग्ज बिहार-बंगाल तथा उड़ीसा में द्वैध शासन का अन्त चाहता था। अपने उद्देश्यों में वह सफल हुआ। सन् १७७३ में रेगुलेटिंग ऐक्ट पास हुआ। ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने इस कानून को पारित कर

द्वैध शासन का अन्त कर दिया। ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुई। इन क्षेत्रों को जिलों में बाँटा गया। हर जिले मे एक कलक्टर रखे गये। पर जंगल तराई में कोई कलक्टर नहीं रखा गया। पूर्व की तरह इस क्षेत्र में सैनिक व्यवस्था चलती रही। कप्तान ब्रुक के बाद इस क्षेत्र के प्रशासक जेम्स ब्राउन हुए। सन् १७७४ में वे अपने पद पर नियुक्त हुए और सन् १७७८ तक जंगल तराई के प्रभारी सैनिक अधिकारी रहे। उनकी नीति वही रही, जो कप्तान ब्रुक की नीति थी। इन वर्षों को उसने भूमिजा लोगों के विद्रोह को दबाने में लगाया। लक्ष्मीपुर के जगन्नाथ देव के नेतृत्व में उनका विद्रोह हुआ था। पहाडिया लोगो ने भी विद्रोह किया था। अम्बर और सुल्तानाबाद मे असन्तोष फैला हुआ था। उसने पहाडियों को शान्त रखने के लिए एक योजना बनायी। आगे चलकर उसी योजना को क्लेभलैण्ड ने कार्यरूप में परिणत किया। पहाडियो की अपनी व्यवस्था थी। वे विभिन्न परगनों में बँटे हुए थे और प्रत्येक परगना मे एक सरदार रहता था उसे सहयोग देने के लिए एक सहायक होता था—जिसे वे नायक कहते थे। प्रत्येक गावमे उनका एक प्रमुख होता था—जिसे वे माँझी कहते थे। ब्राउन ने सरकार के सामने एक प्रस्ताव रखा कि सरकार उनके माझीको गावके प्रमुख के रूपमें स्वीकार कर ले और गाव की शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व उसके ऊपर छोड दे। सरदार और माँझियो के द्वारा पहाडियो से अपना सम्पर्क स्थापित करे। सरकार ने ब्राउन की योजना को सन् १७७८ में स्वीकृत कर लिया, पर एक वर्ष के ही अन्दर उन्हें अपना अधिकार क्लेभलैण्ड को सौंपना पडा। आते ही पहाडियों के सम्बन्ध को लेकर क्लेभलैण्ड ने वारेन हेस्टिग्ज से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। पहाडियो की सरलता एवं सत्यता से वह बहुत प्रभावित

हुआ था। उसने स्वीकार किया—यह पहाडिया स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। उन्हें कोई बन्धन स्वीकार नही। उनके सद्गुणो पर कैल्भलैंण्ड मुग्ध था। और उनके प्रति उसने उदारता की नीति अपनायी। उसने सरकार के सामने ६ सूत्री कार्यक्रम रखा, जो इस प्रकार था—(१) प्रत्येक प्रमुख, जिनकी अनुमानित संख्या ४०० थी, एक या अधिक व्यक्ति अपने यहाँ से तीरन्दाज सैनिक दल के लिए देगा। (२) प्रमुख ५० व्यक्ति को नियुक्त करेगा और उनके अच्छे चाल-चलन के लिए वह उत्तरदायी होगा। (३) भागलपुर कलक्टर के निर्देशन में, केवल भागलपुर जिला में वह दल काम करेगा। (४) सरकार के दुश्मन पहाडियो के दुश्मन माने जायेंगे। जो सरकार के विरोध मे विद्रोह करे, उनके विद्रोह को दबाने में वह दल सरकार को साथ देगा। (५) प्रत्येक पहाडी प्रमुख को, जो दल के एक डिवीजन का नेतृत्व करते हैं, ५) मासिक वेतन मिलेगा और उस दल के जो सदस्य होंगे उन्हे ३) मासिक वेतन मिला करेगा। आचरणहीनता प्रदर्शित करने पर उन्हे दण्ड देने की व्यवस्था की गई। (६) इस दल के आदमियो की एक प्रकार की भेष-भूषा रहेगी। अपनी योजना को कार्यरूप मे परिणत करने में कैल्भलैंण्ड को २६,४४०) का अनुमानित व्यय होने की सम्भावना थी। वारेन हेस्टिंग्ज ने कैल्भलैंण्ड की सैनिक निर्माण योजना को खर्च की दृष्टि से अस्वीकृत कर दिया। पर उसने कैल्भलैंण्ड की योजनानुसार सरदार को १०) मासिक और उनके नायब को ५) मासिक देना स्वीकार किया। उत्तरीय पहाड़ियो के सरदारो ने इस योजना को स्वीकार किया, पर दक्षिण के पहाड़ियो ने इसे अस्वीकार कर दिया। कारण अम्बर और सुल्तानाबाद में यह योजना लागू नही की गयी थी। उन दिनों दोनो क्षेत्र राजाशाही जिला मे पड़ते थे। कैल्भलैंण्ड ने

सरकार के सामने प्रस्ताव रखा कि इन दोनो परगनो को जंगल तराई क्षेत्र में मिला दिया जाय। यही हुआ। सन् १७८२ में तीरन्दाज-सैनिक-दल की भी स्वीकृति मिल गई। इस दल का नामाकन होने लगा। कुछ ही दिनों में १३०० आदमियो का यह दल संगठित हो गया। इस दल का प्रथम सेनानायक जुहार नामक एक व्यक्ति था, जो पहले डकैत था। उन्हें नियमित सैनिको की तरह कायदा-कानून में रहना पडता था। कैल्भलैण्ड ने इसकी भी स्वीकृति ले ली कि पहाडियो के मुकदमाओ की कार्यवाही सामान्य कोर्ट में न होकर उनके अपने ही कोर्ट में हुआ करे जिसका निर्णय उनके मुखिया ही किया करें। कैल्भलैण्ड का देहान्त २६ वर्ष की आयु में भागलपुर में हो गया। आज भी चिलीमिली साहेब के नाम से वे पहाडियो के बीच याद किये जाते है। उन्होने पहाडियो का रक्तपात नही किया, उनपर आतंक नही पैदा किया। उन्होंने केवल समभौता, सद्भावना एवं उदारता से काम लिया था। पहाडी क्षेत्रो में अग्रेजो को जो सफलता मिली थी—उसका एकमात्र कारण था कैल्भलैण्ड का व्यक्तिगत व्यवहार और उनका प्रभाव। वे कभी भी उनके बीच हथियारबन्द नहीं गए। उन्हें वे अपने साथ दावत में खिलाते थे, पहाडी क्षेत्रो में उन्होंने नियमित ढंग से बाजार बसाया। उन्हें पहाडी से उतर कर जमीन पर आने को उत्साहित किया। उन्होने उन्हे गेहू, जौ आदि का बीज दिया, उनसे खेती कराया। उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि उनपर किसी प्रकार का कर नही लगेगा। कैल्भलैण्ड के मरने के ४० वर्ष के बाद तक पहाड़ियो में उनकी नीति काम करती रही। बाद में उनके उत्तराधिकारियो में उत्साह की कमी होने के कारण उनकी उपेक्षा होने लगी। पहाड़ियो के प्रशासन के लिए अब्दुल रसूल खां नामक एक व्यक्ति नियुक्त किया गया।

पर इस व्यक्ति ने अपनी शक्ति का समुचित उपयोग नही किया। वह अपने को प्रशासक मात्र मानता था। उसके अभद्र व्यवहार से पहाडियो में असंतोष फैला, उनमें विद्रोह की भावना जगी। सरकार के सामने कई शिकायतें आयी। वे वहाँ से हटाये गये। सन् १८१८ में श्री सुन्दरलैण्ड पहाड़ी क्षेत्रो में पदस्थापित किये गए। उन्होंने पहाडियों की स्थिति की जाँच की और सन् १८१६ में एक प्रतिवेदन दिया, जिसे आज भी महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है। उन्होंने सरकार के पास एक योजना दी, जिसके फलस्वरूप दामिन-इ-कोह की सीमा को परिभाषित किया गया। सन् १८३७ में मिस्टर पोटेन्ट साहब दामिन-इ-कोह में अधीक्षक बनकर आये। पहले तो ब्रिटिश सरकार का यह प्रयास रहा कि पहाडियो का आपसलोगो से सम्पर्क नही होने दिया। यह भावना फैलाई कि अन्य भारतीय तुम्हारे शोषक हैं, उनसे दूर रहो। अपने लोगो से उनका सम्बन्ध विच्छेद करा दिया। जब सन्ताल आकर इस जिले में बसने लगे, तब पोटेन्ट साहब ने पहाड़ियो को सन्तालो से अलग रखने की चेष्टा की। समय ने सन्तालों को व्यावहारिक बना दिया था, वे पहाड़ियों से अधिक संगठित थे, परिश्रमी थे—साहसी थे। वे मारना और मरना जानते थे। उनका जीवन सामूहिक था। पोटेन्ट नही चाहता कि सन्ताल और पहा-डियों में सम्पर्क स्थापित हो। उसे भय था कि सन्तालों की देखा-देखी उनमें भी अपने अधिकार का ज्ञान-बोध होगा। उसने सन्तालो एवं पहा-डियों को एक गाँव में बसने नही दिया। दोनों के बीच संघर्ष की स्थिति बनाये रखा। पोटेन्ट के न चाहने के बाद भी दामिन—इ-कोह में संतालों की संख्या में वृद्धि होने लगी। सन् १७९० और १८१० के बीच संताल वीरभूम से आने लगे थे और दामिन-इ-कोह में बस्ती बसाकर रहने लगे

थे। उन्होंने जगल साफ किया, जगली जानवरो को भगाया, घरो का निर्माण किया और इस प्रकार बस्तियाँ बसायी। सन् १८३६ तक उन्होंने दामिन-इ-कोह् में ४२६ गाँव बसा लिया था। सरकार एवं सरकार के अधिकारी सन्तालो के साथ उस उदारता से पेश न आये, जो पहाड़ियो के प्रति प्रदर्शित की गई थी। फलस्वरूप सन्तालो का शोषण सरकार ने किया, उसके अमलो ने किया और सरकार के समर्थक महाजनो ने किया। शोषण की प्रतिक्रिया क्रान्ति होती है। क्रान्ति का जन्म शोषण के गर्भ से होता है। सन्ताल यह मानने लगे थे कि उनका जो शोषण होता है, वह सब सरकार के ही कारण है। अत. उस सरकार से उन्हे मुक्ति चाहिए। उसी मुक्ति के लिए उन्होने क्रान्ति की, जिसे 'सताल हुल' कहा गया—'संताल विद्रोह' कहा गया। पर मेरी दृष्टि मे भारत से अग्रेजो को भगाने का यह प्रथम जन-आन्दोलन था।



प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम

१६ वी शताब्दी का आरम्भ था। देश में अराजकता फैली हुई थी। बाहरी शक्तियाँ उससे लाभ उठा रही थी। पुर्त्तगाली भारतमे आ चुके थे। समय-सागर को चीरते हुए उनके वैभव की कथा इगलैंण्ड पहुँच रही थी। सन् १५७८ में सर फ्रासिस ड्रेक को होप अन्तरीप के रास्ते का पता लग चुका था। सन् १५९९ में इंगलैण्ड के कुछ व्यापारियो और जुहारो ने एक संघ बनाया था। उन्होने पूर्व में व्यापार करने के लिए ३४,३३३ पौण्ड जमा किया। इस प्रकार इस्ट इण्डिया कम्पनी को स्थापना हुई।

सन् १६०० मे इस कम्पनी को महारानी एलिजाबेथ से पूर्व मे व्यापार करने के लिए एक अधिकार पत्र मिला। सन् १६०८ में कप्तान हेंकिस भारत में आया था। वह भारत सरकार के नाम इंगलैण्ड के बादशाह जेम्स प्रथम का पत्र लेकर आया था। उन दिनो जहाँगीर भारत का बादशाह था। परिस्थिति अंग्रेजो के अनुकूल थी। नूरजहाँ की निगाहो से डच और पुर्त्तगाली गिर चुके थे। अत. मुगल दरबार में अंग्रेजो का स्वागत किया गया। राजदूत बनकर मुगल दरबार मे एक अंग्रेज रहने भी लगा। १०–१२ वर्षों के अन्दर भारत के विभिन्न अंचलो में कई अंग्रेजी कारखाने स्थापित किए गए। उनका मुख्य केन्द्र सूरत था। सूरत में स्थापित केन्द्र ने १ जनवरी, १६२० को निश्चय किया कि बिहार प्रदेश मे एक कारखाना खोला जाय। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर पहला अंग्रेज राबर्ट ह्यूम ५ जुलाई, १६२० को पटना पहुँचा। पटना उस समय पूर्व की सबसे बडी व्यापारिक मण्डी था। कपडा, चीनी, शोरे और अफीम, मुश्क, खाल, जडी-बूटी आदि के लिए पटना में एक बहुत बडी मण्डी थी। यह अंग्रेजो का आकर्षण-केन्द्र बना हुआ था। यातायात की असुविधा के कारण सन् १६५० के पूर्व अंग्रेजो की फैक्टरियाँ न खुली, पर सन् १६५१ के बाद बिहार में कई अंग्रेजी फैक्टरियाँ खुली।

इगलैण्ड में बारूद का आविष्कार हो चुका था। बारूद के लिए शोरा चाहिए था। शोरे की मांग वहाँ बढ रही थी। पहले इस्ट इण्डिया कम्पनी मसुलीपट्टम का शोरा इंगलैण्ड भेजती थी। पर सन् १६७० में पटना के सस्ते शोरे का ठीका लिया। पटने से भी शोरा विलायत भेजा जाने लगा। शाहजहाँ के समय शुजा बंगाल-बिहार का गवर्नर था। अंग्रेजो ने उसे धोखा देकर अंग्रेजो से माल पर अलग-अलग चुंगी लेने के

बदले साल में एक मुश्त ३,००० रुपये की रकम लेनी ठहरा ली थी। अंग्रेजों का व्यापार तेजी से बढ़ता जा रहा था। निर्धारित रकम बहुत ही कम थी। बिहार के गवर्नर सूबेदार शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों के माल पर बाकायदा ३॥ रु० सैकडा चुंगी बैठा दी। अंग्रेज व्यापारियोंने विरोध किया। पटना में कुछ देशी लोगो की दूकानें अंग्रेजों ने लूट ली। सूबेदार शाइस्ता खाँ ने विद्रोह को दबानेके लिए पटना की कोठी के प्रमुख मिस्टर पीकौक को पकडकर कैदखाने में डाल दिया तथा फिरंगी व्यापारियों का शोरा पटना से भेजना बन्द कर दिया। अंग्रेज जहाँ-तहाँ मुगल जहाजो पर डकैती करते रहे। शाइस्ता खाँ ने बिहार बंगाल में अंग्रेजो की सब सम्पत्ति जब्त करने और कम्पनी के नौकरों को जेल में डालने का हुक्म जारी किया। बाद में अंग्रेज व्यापारियों ने हर्जाना देकर पटना और बिहार में व्यापार करने की फिर से इजाजत पायी।

औरंगजेब के देहान्त के बाद मुगल साम्राज्य का क्षय आरम्भ हो गया था। अंग्रेजो ने मुगलो की कमजोरी से फायदा उठाया। धोखा, जाल-साजी का उन्होंने सहारा लिया। दमन और शोषण का उनका चक्र चला। लोगों में देशद्रोह की भावना आई। इसी बीच सन् १७५६ में १६ वर्षीय युवक सिराजुद्दौला बंगाल-बिहार का शासक बना। उसने अंग्रेजों को पराजित किया। पर उसके भाग्य में सफलता नहीं लिखी थी। अंग्रेजों ने बंगाल-बिहार में जो फूट बोया था, जो देशद्रोह की भावना भरी थी, उनके सामने वीरता और साहस से कुछ नही हो सका। नवाब की फौज निर्णयात्मक हमला करने जा रही थी, पर सेनापति मीरजाफर ने ऐन मौके पर धोखा दिया। इसका फल यह हुआ कि २३ जून, १७५७ को विजयश्री अंग्रेजों को मिली। बिहार में उनकी राज्य-सत्ता स्थापित

हुई। पर इस सत्ता के विरूद्ध पाँच वर्षों के अन्दर ही मीरकासिम ने विद्रोह किया। उसने अपनी सेना को काफी सुसज्जित किया था। नये ढग को उसने बन्दूकें बनवाई थी। लोगों का अनुमान था कि उसकी बन्दूकें विलायती बन्दूको से अच्छी थी। उसने पटने से अंग्रेजों को मार भगाया और उसपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। पर उसके एक सिपाही ने धोखा दे दिया। उसने गुप्त घाट का पता अग्रेजो को दे दिया। अंग्रेजों ने उसपर हमला तब किया, जब वह गहरी नीद में था। वह प्राण लेकर मुंगेर भागा। मीर कासिम ने इलाहाबाद में जाकर अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में एक संघ कायम किया, जिसके सदस्य थे—मीर कासिम, अवध के नवाब और बादशाह आलम। इस संघ के नेतृत्व में अग्रेजो से बिहार को राहत दिलवाने के लिए फौज भेजी गई। २३ अक्टूवर, १७६४ को संघ की सारी शक्ति को अंग्रेजो ने बक्सर में पराजित कर दिया। पलासी युद्ध के बाद अग्रेजी सत्ता में जो कमी रह गयी थी, बक्सर की पराजय ने उसे पूरी कर दी।

बक्सर की पराजय के बाद अग्रेजों ने शोषण करना प्रारम्भ किया। अंग्रेज शासक पहले व्यापारी थे। उन्होने हमारे अर्थ से खेला, हमारा काफी रक्त चूसा। धरती के लाल रोटी के लिए बेहाल हो उठे। इतिहासकार रेमजे म्योर ने अपनी पुस्तक 'दि मेकिंग ऑफ ब्रिटिश इण्डिया' में कहा है—'बंगाल-बिहार का सूबा उन दिनों (१७५६) संसार के सबसे अधिक उपजाऊ सूबो में समझा जाता था। इसकी भूमि मिश्र देश से भी अधिक उपजाऊ मानी जाती थी।" पर २० वर्ष के बाद सन् १७७७ में विलियम फूलर्टन ने, जो ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के एक सदस्य थे, बंगाल की दशा का वर्णन करते हुए लिखा था—"पहले जमाने में बंगाल के प्रदेश

पूर्व राष्ट्रों के अन्न के भण्डार और व्यापार के केन्द्र माने जाते थे। हमारे शासन के कुप्रबन्ध के २० वर्षों में ही उनके बहुत से भाग उजाड़ दिखाई पड़ने लगे। खेत अब जोते-बोये नहो जाते, बड़े-बड़े भूखण्डों पर अब जंगली झाड़ियाँ खडी हुई हैं, किसान लूटे जाते है, कारीगर सताये जाते हैं, अकाल का आगमन बार-बार होता है, जनसंख्या घटती जा रही है।'' इस शोषण से बिहार में सर्वत्र असन्तोष फैल रहा था। जब भी अवसर मिलता था, विद्रोह आरम्भ हो जाता था। बनारस के राजा चेतसिंह ने जब विद्रोह किया, बिहार के जमीन्दारो ने उनका साथ दिया। अवध के नबाब वजीर अली ने जब अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध एक षडयन्त्र रचा, तब टेंवरी के राजा मित्रजीत सिंह भी उनके साथ थे।

वास्तविक बात तो यह है कि सिपाही-विद्रोह के पूर्व बिहार में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हो गया था। अनेक लोगो ने बगावत के झण्डे फहराये थे। उनमें बहुतो के नाम का भी पता नही है। उन दिनों पत्र-पत्रिकाओ का भी अभाव था। इस कारण उनकी जानकारी नही है। अंग्रेजों ने उनकी उपेक्षा की। उनके प्रयासो से किसी सार्वजनिक रेकार्ड या पुस्तक में वे नही आ सके। स्वतन्त्रता संघर्ष का इतिहास लिखा जा रहा है। पर हमें यह स्वीकार करते हुए संकोच नहीं है कि अभी तक हम उनके कीर्त्ति-कलाप से वंचित हैं। उनमें सन्ताल-विद्रोह का बहुत महत्व है। अंग्रेजो के लगभग एक सौ वर्ष के शोषण और उत्पीडन के प्रभाव स्वरूप यह विद्रोह हुआ था।

संताल विद्रोह ३० जून, १८५५ को आरम्भ हुआ था। भारतीय इतिहास में ८ अगस्त, १६४२ का जो महत्व है, वही महत्व ३० जून, १८५५ को है। ८ अगस्त, १६४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस की एक

बैठक बम्बई में हुई थी, उस सभा में एक प्रस्ताव पास किया गया था और उस प्रस्ताव द्वारा अंग्रेजो से आग्रह किया गया था कि वे भारत छोड कर चले जायें। महात्मा गांधी ने उक्त सभा में ७० मिनट तक भाषण किया था एवं अपने भाषण के क्रम में बापू ने 'करो या मरो' का मंत्र दिया था। ठीक उसी प्रकार का संकल्प बिहार राज्य के संताल परगने जिले के अन्तर्गत राजमहल क्षेत्र के भगनाडीह गाँव में ३० जून, १८५५ को दस हजार सन्तालो के बीच सन्ताल नेता सिदो ने एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया था कि अंग्रेज उनकी भूमि को छोड दे। समवेत स्वर में प्रस्ताव स्वीकृत होने पर सिदो ने उसी समय कोर्त्ता, भादो एवं पुना माँझियों के द्वारा भागलपुर कमिश्नर के पास एक घोषणापत्र भेजा और उसमें उन्होने कहा कि '१५ दिन के भीतर अंग्रेज सन्तालों की भूमि से हट जाँय और शान्तिपूर्ण तरीके से संतालों को सतालों की जमीन पर शासन करने दें।' कम्पनी के अधिकारियो से तथा बडे लाट से स्वय मिलने का उन्होंने निश्चय किया। साथ ही साथ अपने साथियो को 'करो या मरो' का मंत्र दिया। महात्मा गाधी से ८७ वर्ष १ महीना १० दिन पूर्व संताल नेता सिदो ने अंग्रेजो से अपनी धरती छोडने को कहा था। साथ ही साथ उन्होंने अंग्रेजो को अपनी धरती से हटाने लिए 'करो या मरो' का महामंत्र अपने लोगो को दिया था। मुझे यह कहना पडता है कि ३० जून, १८५५ का वही ऐतिहासिक महत्व होना चाहिए, जो महत्व हम ८ अगस्त, १९४२ को देते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी सिदो के नेतृत्व में जो स्वतंत्रता संग्राम हुआ, उसे अंग्रेजो ने 'संताल हुल' या 'संताल विद्रोह' कहा। कुछ अंग्रेजो ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि वह विद्रोह अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में नही था, वह तो महाजनों के खिलाफ था। अंग्रेज

इतिहास लेखकों ने जब सिपाही विद्रोह को देशी राजाओं द्वारा सिपाहियों का बहकावा मात्र माना था, तब उनके लिए सन्ताल-विद्रोह को महाजनों के प्रति विद्रोह मान लेना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, आश्चर्यजनक बात तो यह है कि भारतीय इतिहास लेखकों का ध्यान इस घटना की ओर गया ही नहीं, जब कि हम देखते हैं, कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'नोट्स आफ इण्डियन हिस्ट्री' में इसका उल्लेख किया है। उनकी दृष्टि में 'सन्ताल विद्रोह' भारत की पहली जन-क्रान्ति थी। कार्ल मार्क्स से मैं सहमत हूँ। भारत में 'सन्ताल-विद्रोह' प्रथम जनक्रान्ति थी। जनता पर क्रान्ति लादी नहीं गई थी, जनता स्वयं क्रान्ति करने को उत्तेजित थी, एक भी नेता मध्य वर्ग से या उच्च वर्ग से नहीं आया था। जनता में से नेता उभरे थे। खेद की बात है, स्वतंत्र हुए हमें १७ वर्ष हो गये, फिर भी इतिहासकारों ने तथा-कथित सन्ताल-विद्रोह का समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका है। सिदो ने अंग्रेजों को भारत छोडने के लिए कहा भर ही नहीं था। उन्होंने स्वतन्त्र देश की प्रथम सरकार कायम की थी, अपनी शासन-नीति को उसने निर्धारित किया था, उन्होंने कर लगाने का तथा उसे वसूल करने के नियम बनाये थे।

सिदो ने आजादी की जो सुलगाई थी, अंग्रेज प्रशासकों ने सिदो को फांसी देकर यह सन्तोष कर लिया कि वे उस आग को बुझाने में सफल रहे, पर वह आग बुझी नहीं, वह तो जलती रही, तबतक, जबतक ब्रिटिश राज्य भारत में रहा। दो वर्ष के ही बाद पूरे देश में सिपाही-विद्रोह के रूप में वह आग भड़क उठी। बाल, पाल, लाल ने उसे एकबार फिर भड़काया, वही सिदो की आग गान्धी के रूप में धधक उठी, और उसका परिणाम क्या हुआ, वह हम सबों के सामने है। यह सच है कि सिदो की अर्चना तो दूर



महान् संताल नेता—सिदो

रही, उनकी चर्चा भी नही हुई। पर इससे सिदो की महानता कम नहीं हुई। वे तो उसी परम्परा में आते हैं, जिस परम्परा में हम अपने राष्ट्रीय नेताओं को रखते आये हैं।

अंग्रेज इतिहासकारो के अनुसार सन्ताल-विद्रोह का एकमात्र कारण था—महाजनो का अत्याचार। यह सत्य है—महाजनो ने सन्तालो को लूटा था, उनपर उनका जुल्म हुआ था, उनसे सन्तालो को असन्तोष था। पर सभी महाजनो के वे विरोधी नहीं थे। बहुत से महाजन उनके साथ थे। उग्र सन्ताल चाहते थे—सभी महाजनो को खत्म कर दिया जाय। उन्होने इस सम्बन्ध में ३० जून, १८५५ वाले अधिवेशन में एक प्रस्ताव भी लाया था; पर बहुमत से वह प्रस्ताव गिर गया। उन्ही महाजनों के वे खिलाफ थे जो अंग्रेजो के मददगार थे और उनकी ओर से वे सन्तालो से गल्ला खरीद करते थे। सन्ताल परगना से काफी सरसो उन दिनो विलायत भेजा गया था। कुछ ऐसे भी महाजन थे, जिनके माध्यम से सिदो ने वीर कुँअर सिंह से सम्पर्क स्थापित किया था। महाजनों ने काफी धन देकर सिदो की मदद की थी। अतः यह कहना कि 'सन्ताल-विद्रोह' महाजनो के जुल्म के कारण था, तर्कसंगत एवं युक्तिसंगत नही है।

सन्ताल-विद्रोह के कई कारण थे, जिनको प्रकाश में लाया ही नही गया। सन्ताल परगना में संतालो ने जंगल साफ कर खेत बनाया था। धरती उनकी थी। वे उसको अपनी माँ मानते थे। सन्तालो ने सन् १८५१ ई० तक सन्ताल परगना जिले मे १४७३ गाव बसा लिये थे। काफी जमीन को खेती के योग्य उन्होंने बनाया था। सरकार उन जमीनों पर मालगुजारी बाँधने लगी थी। मालगुजारी में काफी वृद्धि होने लगी थी। सन् १८३६-३७ में सतालों से मालगुजारी के रूप में २,६१७) रुपये

वसूल किये गये थे, वही सन् १८५४-५५ में उनसे ५८,०३३) रुपये वसूल किये गये। संतालों में यह भावना जगी, जंगल साफ कर खेतों का निर्माण उन्होंने किया, फिर वे मालगुजारी क्यों दें ? सरकार ने संतालो से मालगुजारी वसूल करने के लिए कुछ तहसीलदार बहाल किये थे। वे मालगुजारी वसूल तो करते ही थे, साथ-साथ अवैध रूप से अपने लिए भी वसूल करते थे। संताल-विद्रोह का दूसरा कारण था—न्याय बहुत मँहगा था और संतालो को न्याय मिल नहीं पाता था। न्यायपति भागलपुर, वीरभूम और ब्रह्मपुर में रहते थे। संतालो का कचहरी तक पहुँचना बहुत कठिन था। समीप के हाकिम थाना के दारोगा थे। उनसे न्याय पाना आसान नहीं था।

संताल-विद्रोह का एक और भी महत्वपूर्ण कारण था—अंग्रेज नीलहा। तबतक रंगो का आविष्कार नहीं हुआ था। यूरोप में नील से रंग बना करता था। नील की खेती से किसानो को भी लाभ था, अंग्रेज नीलहों को भी। यही कारण था कि सन् १८२९ में राजा राममोहन राय ने यह माना था कि नील की खेती लाभप्रद है। आरम्भ में अंग्रेज नीलहो ने संतालो को नील की खेती करने के लिए उत्साह दिया। उन्हें पहले कुछ लाभ मालूम हुआ, पर बाद में नीलहों ने संतालों का इतना शोषण किया कि वे उनसे तंग आ गये। नीलहो द्वारा किये गये अत्याचार की कहानियाँ श्री योगेशचन्द्र बागला ने समाचार चन्द्रिका और समाचार-दर्पण में दी थीं। श्री अक्षय कुमार दत्त ने भी तत्वबोधिनी पत्रिका में अंग्रेज नीलहों के अत्याचार के सम्बन्ध में लिखा था। संताल परगना के दुमका सब-डिवीजन में कोराया तथा आसनबनी में नीलहो की भारी कोठियाँ स्थापित हो चुकी थी। साहबगंज और राजमहल के इलाकों में भी नीलहों की

भारी कोठियाँ खुल चुकी थी। प्यालापुर, बलबत्ता, डकैता तथा गौडा में भी उन्होंने कोठियाँ स्थापित की थी। नीलहे सतालो का शोषण करते थे। पर सरकार के यहाँ कुछ सुनवाई नहीं होती थी। अन्त में लाचार होकर संतालो ने नीलहों के विरुद्ध २५ जुलाई, १८५५ को एक घोषणा-पत्र तैयार किया। घोषणा-पत्र की भाषा सताली थी; पर उसकी लिपि कैथी हिन्दी थी।

उन्ही दिनो अंग्रेज सरकार ने राजमहल के पास रेल लाइन बनवाना शुरू किया था। अंग्रेज ठीकेदारों को काम दिया गया था। संताल स्त्री-पुरुष उसमें मजदूरी करने जाते थे। अंग्रेजों द्वारा उनका धर्म लूटा जाता था। संताल सब कुछ सह सकता है, पर अपनी बालिकाओं का शील अपहरण नही सह सकता। उस समय कलकत्ता में 'सवाद प्रभाकर' नामक बंगला का एक दैनिक पत्र निकलता था। उसके बँगला सम्वत् १२६२ साल, तिथि १६ श्रावण-मंगलवार के अक में समाचार निकला था—

"जिला भागलपुर और वीरभूम के अंतर्गत सर्वत्र पहाड़ो में असंख्य सताल नामक बनवासी जाति वास करती है। अति अल्प समय में राजमहल के पास रास्ता (रेलवे लाइन) बनाने वाले साहबों ने वनवासियों की तीन स्त्रियो का बलपूर्वक अपहरण कर लिया था। इस पर बहुत से सताल एकत्रित हुए और साहबो पर आक्रमण किया। तीन अंग्रेजों को मार डाला और स्त्रियों का उद्धार कर लिया। इस पर और-और स्थानों के रास्ता बनवाने वाले अग्रेज भय के मारे अपना-अपना स्थान त्याग कर इधर-उधर भाग गए।"

जिस सम्वाद–प्रभाकर में यह समाचार प्रकाशित हुआ था, वह अंक आज भी दुमका के निकटवर्ती सूरी की रतन लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

खेतौरी वंश के लोगों की जमींदारी संताल परगने में थी। जंगल-तराई और बेलपत्ता स्टेट के वे मालिक थे। अंग्रेजों के शासन से वे भी ऊब गए थे। पर उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे अंग्रेजों से लोहा ले सकें। वे खुल कर आते भी नहीं थे। संतालों को उन्होंने बहकाया। संताल परगना जिले में स्थित लछिमपुर के खेतौरी राजा वीर सिंह ने सन् १८५४ में संतालों को संताल राज कायम करने को उत्तेजित किया। उस समय संतालों के नेता थे—वीर सिंह माँझी; सिंदरी के कोलाह परमाणिक और हथभगा के डोमा माँझी आदि। वीरभूम के रामा ठाकुर ने भी संतालों को जन-आंदोलन के लिए प्रेरणा दी।

संतालों का जन आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में आरम्भ हुआ। सन् १८५५ की जनवरी में उनके बीच से एक नेता उभर कर आया। उसका नाम था—सिदो। बघनाडीह के चन्नु माँझी का ज्येष्ठ बेटा था। चन्नु माँझी चार बेटों का बाप था। सिदो, कानू, चाद एवं भैरव—ये उनके चार लड़के थे। चारों साहसी और बहादुर थे। सिदो का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। ६ फुट के लम्बा थे। उनकी भुजायें विशाल थी। वे धुन के पक्के थे। उनका संतालों पर ही प्रभाव नहीं था, उनके व्यक्तित्व से चमार, कुम्हार, लोहार, डोम एवं मोमिन भी प्रभावित थे वे व्यावहारिक व्यक्ति थे। वे ऐसा मानते थे—जन-आंदोलन केवल संताल नहीं चला सकते। जन-आंदोलन के लिए सभी वर्ग का सहयोग उन्हें चाहिए था। यही कारण था—सिदो सभी वर्ग से सम्पर्क रखते थे। लोहारों ने उन्हें कुठार, टांगी, एवं अस्त्र-शस्त्र बनाकर दिया था। चमारों ने उस अवसर पर बड़े-बड़े नगाड़ों को बनाया था। भागलपुर प्रमण्डल के कमिश्नर ने २८ जुलाई, सन् १८५५ को अपने पत्र में स्वीकार किया

था कि संताल-विद्रोह मे लोहार, चमार, ग्वाला, तेली आदि जाति के लोगो का सहयोग सिदो को प्राप्त था ।

संताल जाति जिस समय उत्तेजित थी, उसी समय सिदो को सतालों के बडे देवता 'मराग बरू' ने एक सप्ताह में सात बार भिन्न-भिन्न रूपों मे दर्शन दिये । प्रथम बार मेघ के रूप मे, फिर अग्नि के रूप मे, तदनंतर टोपी पहने कुहासा से भरे हुए मानव के समान, फिर प्रचण्ड सूर्य किरण की छाया के रूप मे, फिर भूगर्भ से निकली छाया के रूप में तथा अंत मे धोती पहने सताल के रूप मे मरांग वरू का दर्शन सिदो ने किया । अंतिम दर्शन मे मराग वरू ने सिदो को एक ग्रंथ दिया, जिसमे कुछ लिखा हुआ नही था । उस ग्रथ को देते हुए सिदो से कहा—'तुम स्वतत्रता के सदेश को देश के कोने-कोने मे फैला दो , ताकि लोग आने वाले सकट के लिए तैयार रहे और सताल पहले की तरह स्वतंत्र हो सकें ।' इतना ही नही, देवता ने उन्हे आदेश दिया कि 'तुम संतालो का राज्य कायम करो । कम्पनी राज्य को खत्म करो । अग्रेजो, ठेकेदारो, नीलहों और उन देश-द्रोहियो से बदला लो, जो अंग्रेजी सल्तनत कायम होने में अग्रेजो के मददगार हैं । स्वयं तुम राजस्व वसूल करो, भैंसो के हल पर दो आना, बैंलो के हल पर एक आना सालाना कर वसूल करो । अगर कोई महा-जन या दारोगा इस कानून का विरोध करे, तो वह देश का दुश्मन समझा जाय और देश के नाम पर उसका वध कर दिया जाय ।'

सिदो को केवल 'मरांग–वरू' का ही दर्शन नही हुआ था । उन्हें एक दिन जगल में घूमते हुए, दूध के समान साफ कपडा पहने हुए एक स्त्री का दर्शन हुआ । उस स्त्री ने सिदो को कहा—'मैं तुमको सन्तालो का राजा नियुक्त करती हूँ । तुम जाकर सन्तालों के दुःख को दूर करो । अब

सन्तालो के ऊपर कोई सरकार, राजा, या महाराजा, या जमींदार या महाजन आदि कुछ नही रहा। तुम्ही सन्तालो के सब कुछ हो।' बताया जाता है कि सिदो को इतना आदेश देकर वह स्त्री अन्तर्ध्यान हो गई। सन्तालों की सबसे बड़ी देवी 'जहेरा-ऐरा' है। जिस देवी ने सिदो से मिलकर उसे आदेश दिया था, वह जाहेरा-ऐरा ही थी।

सिदो ने 'मारांग-वरू' और जोहेरा ऐरा के आदेश पहले अपने तीन भाईयों—कानू, चाँद और भैरव को सुनाया। बाद में सभी संतालो को सन्देश दिया गया। शाल की टहनी के द्वारा पूरे सन्ताल क्षेत्र में सन्तालो को एकत्र होने की सूचना दी गई। ३० जून, १८५५ को बघनाडीह में सिदो के दर्शन के लिए दस हजार सन्ताल आये। सिदो ने माराग-वरू और 'जाहेरा ऐरा' के सन्देश और आदेशों को सन्तालो को सुनाया। उन्होने 'मारांग वरू' के चरणो के चिन्ह भी, जो उनके निवास स्थान के चबूतरे पर उगे थे; सन्तालो को दिखाया। सन्तालो ने खुली सभा में सिदो को अपना राजा घोषित किया। उन्होने संताल राज्य की स्थापना की। कानू को सभा ने राजा सिदो के सलाहकार के रूप मे नियुक्त किया। उसे भी राजा की ही उपाधि दी। चाँद को प्रशासक और भैरव को सन्ताल राज्य का सेनापति बनाया गया। सन्तालो ने सभा में एक नारा दिया—'जुमीदार, महाजोन, पुलिस, आर राज रेन आमला को गुजुकमा' अर्थात् जमीदार, महाजन, पुलिस और सरकार के कर्मचारियों का नाश हो। सन्तालों ने निश्चय किया—वे सरकारी हुकूम को नही मानेंगे, और न सरकार को टैक्स देंगे। सरकार को जो भी सहयोग देंगे, वे उनके दुश्मन होंगे, चाहे वे सन्ताल ही क्यो न हो। सिदो और कानू पालकियों पर चलते थे। पालकी को सन्ताली भाषा में खुड़-खुडी कहा जाता है। चाँद

और भैरव घोड़ा पर चलते थे। आज भी सन्ताली लोक-गीतों में उसकी चर्चा आती है; जो इस प्रकार है—

"सिदो-कान्हू हुडखुड़ी भितोरे
चाँद - भैरो घोड़ा चुपोरे।
देखो रे, चाँद रे, भैरो रे,
घोड़ा भैरा, मुलिने-मुलिने।"

युद्ध करने के पूर्व सिदो गांधी जी की भाँति कम्पनी के अधिकारियों से कलकत्ता और भागलपुर जाकर मिलना चाहता था। पर घटनाएं बहुत तेज गति से भाग रही थी; सदर लैण्ड के बाद सन्तालो के निवास-क्षेत्र, जिसे दामिन कोह कहते हैं, उसका अधीक्षक पोटन साहब होकर आये। सदर लैण्ड ने सन्ताल और पहाड़ियो में भेद-भाव पैदा करना प्रारम्भ कर दिया था। चम्पीया नामक एक सताल हारण्डवा स्टेट से आकर बसलुभी नदी के किनारे सिलीगी नामक पहाड़िया बस्ती में बस गया था। पोटेन ने पहले उस बस्ती से सताल चम्पीया को निकालने के लिए पहाड़ियों को उसकाया, पर वह सफल नही हो सका। पोटन साहब के समय चम्पीया के दोनो लड़के हरम्बाँ और करामा ने पिपरा नामक एक संताल बस्ती बसायी थी। जंगीपुर का दारोगा—महेश लाल दत्त था। वह पोटन साहब का दाहिना हाथ था। पोटन साहब उसके द्वारा बहुतेरे जायज और नाजायज काम करते थे। पोटन साहब के सहयोगियो में अमाला पाड़ा के केनाराम भगत और बचा राम भगत महाजन भी थे। सतालो के शोषण करने में पोटेन साहब उन महाजनो का प्रयोग करते थे। इन महाजनों के पास दो सौ सिपाही थे। महेश लाल दत्त ने लिट्टीपाड़ा के विजय मांझी को बगैर किसी अपराध के पकड़ कर भागलपुर जेल मे भेज दिया, जहाँ कुछ

ही दिनों मे उसका देहान्त हो गया। इसका काफी प्रभाव संतालो पर पडा। महेश लाल दत्त ने पुनः हडामा माझी, चम्पीया माझी, आगाछिया के गरभू मांझी तथा पीपरा के लखन मांझी को पकड़ लिया और उन्हें भागलपुर जेल में चालान करने का आदेश दे दिया। स्वयं महेश लाल दत्त उन्हे भागलपुर जेल पहुँचाने के लिए निकल पडा। दारोगा के साथ और १६ आदमी थे। उसने निश्चय किया कि बडहित मे केनाराम भगत के सम्बंधी महेन्द्र भगत के यहाँ रात मे विश्राम किया जाय। बडहित के पास ही सताल राजा सिदो डेरा डाले हुए थे। पेडरकोल गाव के परगानायत ने तीन आदमियो को सताल राजा सिदो के पास भेजा और स्वय महेश लाल दत्त पर निगरानी रखने लगे। सिदो माझी से दारोगा की भेंट हुई। सिदो ने दारोगा से कहा कि सताल राज्य की प्रजा को गिरफ्तार करने का कम्पनी के नौकरो को अधिकार नही है। उन्हे वह मुक्त कर दे, पर दारोगा ने सिदो का अपमान किया। महेश लाल दत्त का ७ जुलाई, १८५५ को वध कर दिया गया। गोड्डा के नायब प्रताप नारायण का सोनारचक मे वध कर दिया। पंचकटिया मे सजावल खा नायब ने संतालो का विरोध किया। कानू ने उसका वध कर दिया। डाक और तार घरो को जला दिया गया। तार की लाइनो को काट दिया गया। पीरपैंती रेलवे स्टेशन पर सतालो का अधिकार हो गया।

संताल-विद्रोह की खबर चारो ओर फैल गई। सभी जगहों से अंग्रेज फौज संताल परगना पहुँचने लगी। ब्रह्मपुर से चार सौ फौज मिस्टर टुग्गुड़ के नेतृत्व मे भेजी गयी। ८ जुलाई को भागलपुर के कमिश्नर मिस्टर ब्राउन ने मेजर बौरो को राजमहल भेजा। दानापुर से फौज भेजी गई। वीरभूम बांकुडा, सिहभूम, मुंगेर, पुर्णिया के जिलाधीशो ने संताल परगना में अपनी-अपनी फौजें भेजी। सताल राजा सिदो ने संताली फौज को कई टुकडो मे बांट दिया। बीस हजार विद्रोही संतालो ने अम्बर परगने पर हमला किया।

वहाँ के राजा ने अम्बर राज-भवन खाली कर दिया। १२ जुलाई,१८५५ को सिदो ने उसपर दखल कर लिया। सन्तालो की एक टुकडी फुदकीपुर की ओर बढी। वहाँ नीलहे गोरे रहते थे। सतालो ने उन्हे मार डाला। सतालो ने नीलहे मिस्टर मसाक का भी वध किया; और उन्होने कदमशर में स्थापित उसकी कोठी को कब्जे मे कर लिया। प्यालापुर में नीलहो की कोठी थी, सताल फौज उसपर कब्जा करना चाहती थी। मेजर बैरो उनके रक्षार्थ बडी फौज लेकर वहा आ डटे थे। सताल फौज ने वहाँ पहुँच कर उनका सामना किया। वर्षा के कारण बारूद भीग गया था। बन्दूक काम नही कर रहा था। इसके फलस्वरूप सतालो का साहस बढ गया था। सरजेण्ट ब्रोडीन मारा गया। अग्रेज फौज भाग गई। नीलहे कोठियो को सताल फौज ने लूट लिया। पैलापुर सघर्ष में सिदो का दाहिना हाथ कानू भी मारा गया था। सतालराज कहलगाव से राजमहल तक दक्षिण मे रानीगंज तक फैला हुआ था। विजय पताका फहराती हुई संताल फौज पाकुड पहुँची। पाकुड में अंग्रेजों एव रेलवे अफसरो को बचाने के लिए सरकार की ओर से 'मारटेल टावर' बनाया गया था। यह टावर ३० फूट ऊँचा था और उसका घेरा २० फूट का था। अन्दर से गोलियाँ चलाने के लिए छिद्र बने हुए थे। अंग्रेजो ने उसी टावर मे घुसकर अपने प्राणो की रक्षा की थी। संतालो पर उस टावर के बने हुए छिद्रो से अंग्रेजो ने गोलियाँ चलायी थी। वही एकमात्र संताल-विद्रोह का स्मृति चिन्ह बाकी रह गया है।

संतालो ने वीरभूम के क्षेत्रो पर अपना कब्जा कर लिया। रघुनाथपुर और संग्रामपुर में अंग्रेजों को संताल फौज ने पराजित किया। पर महेश-पुर में संताल फौज को पराजित होना पड़ा। अनेक संताल मारे गए।

कई सन्ताल नेता गिरफ्तार हो गए। सिदो को इस पराजय से धक्का तो लगा, पर उसने पुनः बडहैत में आकर अपना संगठन किया। महाजनों ने खुलकर सन्ताल फौज के लिए रसद दिया। पर प्रकृति ने उन्हे धोखा दिया। बरसात का समय होने के कारण सिदो गुरिल्ला-युद्ध का संचालन ठीक-ठीक नही कर पा रहा था। इसी बीच एक देशद्रोही ने सिदो को २४ वी जुलाई को पकडवा दिया। बाद में उसे फाँसी दे दी गई।

सिदो के मरने के बाद भी सन्तालो ने आत्मसमर्पण नही किया। वे जहाँ-तहाँ अंग्रेजी फौज से लडते रहे। सरकार यह मानने लगी थी कि सन्ताल परगने में मार्शल ला जारी कर सन्तालो को नही दबाया जा सकता है। अतः कम्पनी सरकार ने सन्तालों से मेल-मिलाप करने का निश्चय किया। १५ अगस्त, १८५५ को एक घोषणा कम्पनी सरकार की ओर से निकाली गई। उस घोषणा में कहा गया—'जान पडता है कुछ सन्तालो ने सरकार के खिलाफ विद्रोह किया, लूटपाट की, लोगो के प्राण लिए और फौज का सामना किया, फिर भी उनमें से अधिकाश अपने अज्ञान और अपराध को महसूस करते हुए क्षमा चाहते हैं और पहले की तरह मिल-जुलकर रहना चाहते है। इसलिए यह घोषणा की जाती है कि सरकार प्रजा की भलाई चाहती है। अत· सन्ताल लोग पथभ्रान्त हो चुकने पर भी हाकिमो और अधिकारियो के पास दस दिनों के अन्दर आत्म-समर्पण कर दें तो जाँच के बाद नेताओं के सिवाय अन्य लोगो को क्षमा-प्रदान की जायेगी।' पर सतालो पर इस घोषणा का प्रभाव कुछ भी नही पड़ा, उल्टे संतालों ने समझा कि अंग्रेजी फौज में कमजोरी आ गई है। सरकार ने पूरे जिले में १४ नवम्बर, १८५५ को मार्शल ला लागू कर दिया। लगभग २५ हजार फौज पूरे जिले में रखी गयी।

सफल नेतृत्व के अभाव में संताल आप-से-आप शान्त हो गए। संताल-विद्रोह में लगभग दस हजार सन्ताल मारे गए थे।

सन्ताल-विद्रोह के पूर्व सन्ताल परगना नामका कोई जिला नही था। इस क्षेत्र का नाम जंगल-तराई था, उसे झारखण्ड भी कहते थे। कर्नल रेबेल ने जंगल तराई का एक नक्शा सन् १७७९ में बनाया था। सन् १७६५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बिहार-बंगाल की दीवानी सौंपी गई थी और उसके कुछ ही वर्षों के बाद वह नक्शा तैयार किया गया था। कैप्टेन ब्रूक और ब्राउनी ने जंगल-तराई का शासन सन् १७७२ से १७७९ तक किया था। नक्शा को ब्राउन ने कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स को सन् १७८७ में एक प्रतिवेदन के साथ भेजा। उस नक्शे को माकफेरसन ने अपने सेटलमेण्ट रिपोर्ट में प्रकाशित किया है। उस नक्शे को देखने से पता चलता है, जंगल तराई के कुछ अंश आज हजारीबाग, मुंगेर और भागलपुर में पड़े हैं। सन्ताल परगना में उस नक्शे के अनुसार जगल-तराई का क्षेत्र जामताडा और राजमहल अनुमण्डल पडता है। सन् १८५५ के ३० न० कानून के अनुसार सन्ताल परगना जिला का निर्माण हुआ और इस जिले के सर्वप्रथम उपायुक्त श्री एशली इडेन नियुक्त किये गये और इस जिले का प्रशासन अंग्रेजों ने विशेष कानून बनाकर किया। जबतक अंग्रेज रहे तबतक उन्होने सन्ताल परगना के लिए देश से भिन्न कानून बनाये और भिन्न ढंग से उसपर शासन किया।



स्वतंत्रता का अन्तिम-संग्राम

आज से २५ वर्ष पहले की बात है, समय तेज गति से भाग रहा था। घटनायें जल्दी-जल्दी अपना पट परिवर्त्तन कर रही थी। विश्व के रंगमच पर नये-नये नाटक खेले जा रहे थे। इन सब का प्रभाव मानव मन पर पड रहा था। अशान्ति एवं असन्तोष के बीच मानव पल रहा था। युद्ध की विकराल छाया धरती पर पड रही थी। दिसम्बर सन् १९४१ में जापान ने होगकाग पर कब्जा किया। १५ फरवरी,सन् १९४२ को सिंगापुर का पतन हुआ। पचहत्तर हजार ब्रिटिश और भारतीय सैनिक जापानियो द्वारा कैद हुए। मार्च, सन् १९४२ के अन्त होते-होते जावा और सुमात्रा आदि द्वीपो पर जापानियो का आधिपत्य जम गया। ७ मार्च, १९४२ को बर्मा का पतन हुआ। ६ अप्रैल को विजगापट्टम पर जापानी जहाज देखे गये। भारत अपनी रक्षा के लिए कुछ नही कर सकता था। महात्मा गाधी ने उस समय कहा था— 'भारत एक शव के समान है, जो मित्र राष्ट्रो के कन्धो पर बोझ की तरह पडा हुआ है।' उन्होने इगलैण्ड वासियो को कहा—'भारत को ईश्वर के भरोसे छोडकर चले जाओ, उसे अराजकता में छोड दो, घर चले जाओ।' साथ ही साथ उन्होने भारतवासियो को सलाह दी कि वे अंग्रेजी सत्ता से छुटकारा पाने के लिए जापान से कोई आशा न लगाएँ।

इस युद्ध का प्रभाव बिहार पर भी पड रहा था। छोटा नागपुर से

लेकर सोन नदी तक एक बड़े मोर्चे की तैयारी हो रही थी। स्थान-स्थान पर हवाई अड्डे और हवाई जहाज के उतरने के लिए रास्ते बनाये जा रहे थे। संताल परगने मे भी सैकडो बीघे जमीन जहाँ-तहाँ सरकार ले रही थी। लोग उससे परेशान थे। बहुत बड़ी संख्या में ब्रिटिश और अमेरिकन सेना इस जिले में जुटायी जा रही थी। कलकत्ता में बंगाल की खाडी में जापानी जहाजों को देखकर एक हलचल पैदा हुई थी, वहाँ एक भगदड मच गयी थी। बहुत से लोग कलकत्ता से भागकर इस जिले मे चले आये थे। मई, १९४२ के एक प्रतिवेदन में स्वीकार किया गया था कि सार्वजनिक चेतना में कोई उत्साहवर्द्धक प्रगति नही हुई है। दुश्मनो के ब्राडकास्ट से उनमें पराजित मनोवृत्ति आ रही है। ब्रिटिश विरोधी भावना से लोग प्रेरित हो रहे हैं। बाहर से भागकर लोग आते हैं, उनका भी प्रभाव लोगो पर पड रहा है। पर इस जिले के कुछ नेता गांवो में घूम-घूमकर रक्षा-दल तैयार करने मे लगे हुए थे। इसी बीच २१ मार्च, १९४२ को पूज्य राजेन्द्र बाबू दुमका आये। जिले भर के कार्यकर्त्ताओ को दुमका बुलाया गया। उन्होने उस दिन दुमका में एक सारगर्भित भाषण दिया। राजेन्द्र बाबू ने ब्रिटिश नीति पर प्रकाश डालते हुए बताया कि ब्रिटिश सरकार ने ब्रह्मा के पतन के बाद अंग्रेजों को ब्रह्मा से हटाने के लिए बडी-बडी सुविधा दी थी, पर भारतीयों को वहां मरने और सताये जाने के लिए छोड़ दिया था। पूज्य राजेन्द्र बाबू ने स्पष्ट शब्दो में कहा था— 'वह स्थिति इस देश में काग्रेस लाने देना नही चाहती है।' अतः उन्होने संताल परगने के कार्य-कर्त्ताओ को कुछ करने के लिए एक संकेत दिया। राजेन्द्र बाबू के उस भाषण से लोग बहुत अनुप्राणित हुए थे। पर उस सभा में एक व्यक्ति सबसे अधिक जोश में था, मालूम होता था कि वह राजेन्द्र बाबू के भाषण

से सबसे अधिक प्रभावित हो। वह चिल्ला उठा—राजेन्द्र बाबू की बातों पर हम प्राण दे देंगे। सभा के अन्त होते ही उसने आवाज दी—'अंग्रेजी हुकूमत को न मानो। आजाद सरकार क़ायम करो। गांव-गांव में पंचायत बनाओ। मिल-जुलकर काम करो। कांग्रेस का हुक्म मानो'—इन पांच वाक्यों में उसका पूरा राजनीति-दर्शन था। वह व्यक्ति उन पांच वाक्यों से अधिक न सोच सकता था और न सोचना चाहता था। वह व्यक्ति देखने में साधारण लगता था, पर बहुत गंभीर था। वह साहस का पुतला था। आग और तूफानों में खेलना उसे पसन्द था। उसको देखकर कोई प्रभावित हो या नहीं, पर उसके नाम से बडे-से-बडे अधिकारी आतंकित थे। सन् '४२ की क्रांति में उसकी जान का मूल्य २५ हजार रुपया तक आंका गया था। उसका नाम लाल हेम्बरम था। पर संताल परगना जिला उसे लाल बाबा के नाम से जानता था। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद तथा भारत के प्रथम प्रधान मंत्री प० जवाहर लाल नेहरू ने अपने इस कर्मठ सहयोगी को लाल बाबा के नाम से पुकारा था।

श्री लाल हेम्ब्रम संताल परगना के ही नहीं, भारतके अनमोल लाल थे। महल के कँगूरो को हमें देखने की आदत पड गई है, पर नीव की ईंट की ओर हमारी आँखें जाती कहाँ हैं ? इस देश को राष्ट्रीय भावना लाल बाबा ऐसे लोगों के त्याग एव बलिदान पर आधारित है। उसका आधार मजबूत है। जातिवाद, भाईवाद साम्प्रदायिकतावाद, प्रान्तीयतावाद आदि विचारो से इस देश की राष्ट्रीय भावना पर प्रभाव नही पड सकता। लाल बाबा इन सारे दुर्गुणो से मुक्त थे। वे इन्हें राष्ट्रीयता के शत्रु मानते थे। उन्होंने एकबार कहा—'भारत को जितना चीन और पाकिस्तान से आज खतरा नहीं है, उससे अधिक खतरा घर में फैले हुए इन दुर्गुणों

से है। वे इन दुर्गुणों को राष्ट्रीय चरित्र का कलंक मानते थे। अपने अन्तिम दिनों में इन दुर्गुणों से वे लड़ते रहे। उस संघर्ष में वे किसी का सामना करने को तैयार थे किसी भी क्षेत्र में अन्याय उन्हें सह्य नहीं था। गांधी जी की तरह वे भी यह कहते थे—अन्याय करने वाला उतना बड़ा पापी नहीं है, जितना बड़ा पापी अन्याय को सहने वाला है। कायर उनके लिए अक्षम्य थे। बहादुरों के प्रति उनकी श्रद्धा थी। उन्ही के नेतृत्व में संतालों ने अगस्त-क्रांति की, स्वतंत्रता के अन्तिम संग्राम को सफलता पूर्वक लडा। लाल बाबा का जन्म संताल परगने के सदर अनुमण्डल के अन्तर्गत बरमसिया सर्किल के सरैदाहा गाव में सन् १६०६ में हुआ था। उनका परिवार साधारण वर्ग का रहा है। विरासत में उन्हें देशभक्ति मिली थी। उनके दादा फागू हेम्ब्रम बहुत ही साहसी और देशभक्त थे। उनकी दादी श्रीमती मोहा मरण्डी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। लाल बाबा के पिता भादो हेम्ब्रम की गणना अमर शहीदो में होती है। बताया जाता है कि उनका जन्म सन् १८८७ ई० में हुआ था और उनकी मृत्यु ७ सितम्बर को भागलपुर कॅम्प जेल में हुई थी। साफा होड आदोलन के वे अगुआ थे। असहयोग आंदोलन के समय से ही वे कांग्रेस के साथ रहे, मरने के बाद ही उससे उनका सम्बन्ध टूटा। सन् १६४० में वे कांग्रेस टिकट पर संताल परगना जिला परिषद् के सदस्य चुने गए थे। वे अपने दोनो लडके लाल और बरियार को स्वतत्रता सग्राम में सौंप गये थे। अगस्त क्रांति के वे दोनो कुंअर सिंह और अमर सिंह थे। लाल बाबा को गिरफ्तार करने के लिए गोरी फौज ५ सितम्बर, १६४२ को सरैदाहा पहुँची। लाल हेम्ब्रम ने संघर्ष-संचालन के लिए एक संघर्ष समिति का निर्माण किया था। उस समिति के पाँच सदस्य थे—श्री लाल हेम्ब्रम,

श्री चलेखा मांझी, श्री भादो हेम्ब्रम, श्री वैद्यनारायण नायक और श्री हरि-हर राउत। उस समिति के लाल हेम्ब्रम अर्थ - विभाग के अध्यक्ष थे। उनके जिम्मे भोजनादि के खर्च की व्यवस्था रहती थी। अनाज और रुपया जमा करने का काम स्वय लाल हेम्ब्रम करते थे। पर अपने बाप के जिम्मे लाल ने कूटनीति विभाग को रखा था। संघर्षों मे कूटनीति का बहुत ही महत्व होता है। भादो हेम्ब्रम नये लोगों पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखते थे। उनके आचरण और व्यवहार पर निगरानी रखते थे। जब गोरी फौज लाल को खोजती हुई सरैदाहा पहुँची और लाल को वहाँ नहीं पायी, तब भादो हेम्ब्रम पर लाल का पता बताने के लिए बडी मार पडी। उन्हे गिरफ्तार कर दुमका लाया गया। लाल के घर को उजाड दिया गया और लाल हेम्ब्रम की माँ को भिखारिन की स्थिति में रहने के लिए सरकार ने विवश किया। लाल के पिता भादो हेम्ब्रम को चार वर्ष की कठोर सजा मिली और उसे भागलपुर जेल में रखा गया, जहाँ ७ सितम्बर, १९४३ को जेल में ही उनका देहान्त हो गया। लाल को माँ ने उन दिनों जिस कष्ट को सहा, वह बेमिसाल है। अगर उनकी तुलना की जा सकती है तो केवल अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद एवं अमर बलि-दानी रामप्रसाद बिस्मिल की माँ से। लाल के छोटे भाई श्री बरियार हेम्ब्रम को गोली लगी थी। आजकल वही बरियार हेम्ब्रम बिहार राज्य के कल्याण मंत्री हैं।

संताल परगना जिला का जन्म क्रांति के गर्भ से हुआ है। विद्रोह इस जिला का बाल-सखा रहा है। इस जिले का प्रशासन भारत के अन्य जिलो से भिन्न रहा है। बलूचिस्तान और संताल परगना के लिए ब्रिटिश भारत में अलग से कानून बनता रहा था। बलूचिस्तान के हर

और बिहार के सन्ताल अंग्रेजो से लडते रहे थे। अंग्रेज सन्ताल परगना में आये, पहाडियो ने संघर्ष किया, बाद में संतालो ने भी संघर्ष प्रारंभ किया। उस सघर्ष की प्रथम कड़ी सिदो माँझी थे और अंतिम कड़ी लाल हेम्ब्रम थे। लाल हेम्ब्रम के देहान्त से सिदो की परम्परा का अन्त हो गया।

काग्रेस की स्थापना देश में सन् १८८५ में हुई थी। बिहार में कांग्रेस की स्थापना सन् १६०८ में हुई, पर संताल परगना में कांग्रेस का जन्म सन् १६२० के पूर्व नही हो सका था। काग्रेस का जन्म संताल परगना में हुआ अवश्य था, पर इस जिले के एक चौथाई भाग में उसका प्रवेश सन् १६३५ के पूर्व नही हो सका था। संताल परगना का क्षेत्रफल ५,४७० वर्गमील है, पर १,३५६ वर्गमील भूमि का क्षेत्र दामिनकोह के नाम से पुकारा जाता है। इस क्षेत्र में काग्रेस का प्रवेश निषेध था। यद्यपि दामिनकोह में काग्रेस को ले जाने का श्रेय लाल हेम्ब्रम के पूज्य पिता भादो हेम्ब्रम को है, पर लाल हेम्ब्रम ने कांग्रेस को दामिनकोह में स्थायित्व प्रदान किया। कांग्रेस से लाल हेम्ब्रम का सम्बन्ध सन् १६३० में स्थापित हुआ था। वह सम्बन्ध दिन पर दिन तीव्र होता गया। एक समय ऐसा भी आया, जब दामिनकोह की अधिकांश जनता झारखण्ड दल में शामिल हो गई थी, पर लाल बाबा अनेक प्रलोभन के बाद भी अलग रहे। काग्रेस लाल को प्रिय संस्था थी, उसे छोडकर वे दूसरी सस्था में नही जा सकते थे। कुछ दिनो के लिए जब काग्रेस समझौता के मार्ग पर चल रही थी, तब सुभास बाबू के नेतृत्व मे काग्रेस के उत्साही लोगों ने रामगढ़ काग्रेस अधिवेशन के अवसर पर समझौता-विरोधी सम्मेलन किया और देश में अग्रगामी दल की स्थापना हुई। श्री हरि विष्णु कामथ दुमका आये। लाल बाबा अग्रगामी दल के सहकारी मंत्री चुने गये। अग्रगामी दल के सदस्यो के लिए लाल

कपड़े की कमीज और टोपी निर्धारित की गई थी। लाल हेम्ब्रम ने हजारों सन्तालों को अपने दल का सदस्य बनाया था। वे जब तब दुमका शहर में लाल कमीज और टोपी पहनकर हजारों-हजार सन्तालों को जुलूस के रूप में निकालते थे, तब ऐसा मालूम होता था कि ब्रिटिश सरकार का राज्य सन्ताल परगना के मुख्यालय में तो कम से कम नहीं ही है।

अग्रगामी दल के सघटन करने के पूर्व लाल हेम्ब्रम की ख्याति साफा होड़ आन्दोलन को लेकर सर्वत्र फैल गयी थी। साफा होड़ आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं था। यह आन्दोलन इस जिले मे सन् १८७० में बाबा भागीरथ माझी द्वारा आरम्भ हुआ था। वह आन्दोलन धार्मिक सह राजनैतिक था। बाबा का कहना था— वे काला रंग के आदमी हैं, धरती का रंग काला है। अतः धरती उनकी माँ है। अंग्रेज गोरे हैं, उनकी मा का रंग लाल होना चाहिए। अतः भारत को छोड़कर वे चले जायँ। बाबा भागीरथ ने देखा था कि पशुबल का सामना भारत पशुबल से नहीं कर सकता है। सन्ताल-विद्रोह को अंग्रेजो ने पशुबल से दबा दिया था। उन्होंने अनुभव किया था कि सत्ता से संघर्ष करने के लिए आत्म बल चाहिए आत्म-बल के लिए चरित्र चाहिए। उनका कहना था—जहाँ शक्ति में शील नहीं हो, जहाँ बल के साथ विवेक नहीं हो वहाँ शक्ति और बल दोनों व्यर्थ हैं। बाबा के सन्ताल विद्रोह के असफल होने का सबसे बड़ा कारण— लोगों में धार्मिक भावना की कमी बताती थी। इस कारण वे चाहते थे कि उनके लोग शुद्ध हो; उनमें चरित्र बल हो। महात्मा गांधी से लगभग ५० वर्ष पूर्व सन्ताल नेता बाबा भागीरथ ने देश मे ब्रिटिश सत्ता के विरोध मे अहिंसात्मक संघर्ष किया था— सवज्ञा मंत्र और सत्याग्रह का आन्दोलन किया था। यह सत्य है, उन्होंने अपने आंदोलन के लिए

' साफा होड ' शब्द का प्रयोग नही किया था। उनके द्वारा संचालित आदोलन का नाम खारवार आदोलन रखा गया था। पर दोनो आदोलनो मे बहुत कुछ साम्य था। इस प्रकार साफा होड़ आंदोलन के पिता बाबा भागीरथ माझी को कहा जा सकता है। पर साफा होड़ नाम से आंदोलन चलाने का श्रेय राजमहल के श्री भगवान दास अग्रवाल और दूमका के लम्बोदर मुखर्जी को है। सन्तालो को राम नाम का मंत्र दिया गया था। कादो नाम के एक सन्ताल को राजमहल के तत्कालीन एस. डी. ओ. श्री रावर्टसन ने राम नाम जपने के कारण इतना मारा कि वह अधमरा हो गया। इसका प्रभाव सन्तालो पर पडा। साफा होड़ आदोलन तेजी से चला। लाल बाबा सन्तालों को सफेद झण्डी देते थे, उन्हे जनेऊ पहनाते थे, मांस-मदिरा छुड़वाते थे। यह साफा होड़ धार्मिक आन्दोलन था। राजनीति से उसका सम्पर्क नही था। पर अग्रेज नौकरशाही इस आन्दोलन से घबडा उठी थी। राम नाम मंत्र लेकर सारङ्गी बाजा बजाते हुए, सफेद झण्डियो के साथ हजारो की संख्या में सन्ताल जब चलते थे, तब अग्रेजो के हृदय में उनसे आशंका पैदा होती थी। इसाई मिशनरी भी उनसे घबड़ा उठी थी। फिर क्या था? सरकार के अधिकारियो ने घर में तुलसी चबूतरा बनाना गैर कानूनी मान लिया था। राम नाम पर निषेध लगा दिया गया। इन अपराधों के लिए अनेक सन्तालों पर जुल्म किया गया। देबू मुरमू और घरन मुरमू ऐसे लोग इन धार्मिक कामों के लिए जब पीटे गये थे, तब लाल बाबा ने निश्चय किया कि अंगरेज राज्य के विरोध में विद्रोह किया जाय। पर इसी बीच महात्मा गांधी देवघर आये। साफा होड के कार्यकर्त्ता हजारों की संख्या में सफेद झण्ड़ी लिए महात्मा गाधी के दर्शन के लिये देवघर आये। महात्मा गांधी ने

साफा होड के लोगो के भजन सुनकर प्रसन्नता प्रगट की, पर उन्हें यह जान-कर आश्चर्य हुआ कि राम नाम लेने के कारण उन्हें दण्डित होना पड़ता है। उन्होंने देवघर से ही पादरियो के बडे विशप का ध्यान साफा होड के आदमियो की ओर आकृष्ट किया और उन्हे आर्थिक सहयोग दिया और बताया जाता है कि बापू ने चार या पाँच वर्षों तक इस आन्दोलन के संचालन के लिए आर्थिक सहयोग दिया था। साफा होड आंदोलन में काम करने के कारण लाल बाबा को बडी लोकप्रियता मिली थी। साफा होड आदोलन अगस्त-क्राति की भूमिका बना।

पूज्य राजेन्द्र बाबू के दुमका आने के बाद नेताओ को एक कार्यक्रम मिला। उनमें एक अपूर्व शक्ति आई। दामिन–इ–कोह के क्षेत्र में लोग घूम-घूमकर स्वयंसेवको को प्रशिक्षित करने लगे। उन्हे मरने और कुछ करने का मत्र देने लगे। ९ अगस्त के पूर्व नगडिया, मझलाडीह, शिकारी-पाड़ा ऐसे गाँवो मे सतालो की विराट सभायें हुई थी। राजेन्द्र बाबू का सन्देश लोगो को सुनाया गया था। ९ अगस्त के बाद सतालो में मरने और करने के लिए एक अपूर्व उत्साह देखा गया। २२ अगस्त, १९४२ को श्री विक्रम हांसदा के निवास स्थान जबडदाहा में दुमका अनुमण्डल के सताल कार्यकर्त्ताओ की एक सभा हुई। उस सभा में यह निश्चय किया गया कि दुमका–रामपुर हाट पथ पर बने जितने पुल है, उन्हे तोड दिया जाय और तार के खम्भे उखाड दिये जायँ। उसी रात को श्री पैका मुर्मू, श्री सुखू मुर्मू, श्री वरियार हेम्ब्रम, श्री विक्रम हाँसदा, श्री गोपाल हाँसदा, श्री मतला हाँसदा, श्री वर्षा मरराडी, श्री चन्द्रा टुडू, श्री भीखू मुर्मू आदि के नेतृत्व मे सतालो ने रामपुर हाट रोड पर स्थित मिल्लोडवरा नामक गाँव के पास तार के खम्भों को उखाड दिया और एक पुल को तोड दिया।

३० अगस्त को पुनः संतालो ने घनवासा सर्किल के अन्तर्गत कदमा नामक गांव में एक सभा का आयोजन किया। कदमा में श्री लम्बोदर मुखर्जी ने सन् १९४० में भारत माता की एक मूर्त्ति बनवाई थी। वहा दशहरा के अवसर पर एक विराट मेला लगता था। सतालो का वह एक तीर्थ स्थान बन गया था। अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में वह स्थान बहुत खतरनाक था। उस स्थान से वह सदैव सतर्क रहती थी। लाल बाबा को किसी सूत्र से यह ज्ञात हो गया कि उस दिन गोरी फौज कदमा पर छापा मारने वाली है। अतः उस दिन सभा नही हुई, पर वह सभा पथरा नामक गाव मे हुई। गोरी फौज ने कदमा पर छापा मारा, पर उसे न तो पैका मुर्मू मिल सके और न लाल हेम्ब्रम। पैका का घर मिला, उसे उन्होने लूट लिया। घर से पैका मुर्मू की माँ को निकाल दिया और उनकी माँ को कहा कि गोरी सरकार ने पैका मुर्मू को गोली मार देने का निश्चय किया है। उधर सतालो ने अपने सेनापती लाल हेम्ब्रम के नेतृत्व मे पथरा गाँव मे निश्चय किया कि शराब की भट्ठियाँ स्वाहा कर दी जायँ। पोचाई की दूकानें फूंक दी जायँ और सरकारी इमारतें भस्म कर दी जायँ। इसी निश्चय के अनुसार ३१ अगस्त को आसनबनी की शराब की भट्ठी को जला दिया गया। दूसरे दिन शिमला की भट्टी भी स्वाहा कर दी गई। बरमसिया सर्किल के गन्धर्वपुर गाव में जो पोचाई की दूकान थी, उसे भी जलाकर राख कर दिया गया। ५ सितम्बर, १९४२ को रामपुर हाट रोड पर बसे बरमसिया की भट्ठी को जला दिया। राजबांध सर्किल के अन्तर्गत पलासी गांव में एक पोचाई की दुकान थी, अभी वे उस दूकान को जलाने की तैयारी कर रहे थे कि तबतक गोरी फौज वहा आ पहुँची। वहां संतालो के सेनापति थे पैका मुर्मू। पैका ने निश्चय किया कि गोरी फौज

का वहा सामना किया जाय। श्री बरियार हेम्ब्रम और बडका हाँसदा ने यह ऐलान किया—स्त्री और बच्चे भीड से हट जायं। वे गोरी फौज से लड़ेंगे। स्त्री और बच्चो को भीड से हटाकर सताल नेता अपनी फौज लेकर खुले मैदान में आ गये। गोरी फौज का सचालन दुमका के तत्-कालीन अनुमण्डलीय पदाधिकारी श्री बंकिम चन्द्र घोष कर रहे थे और उनके सहायक थे श्री नकवी। संताल कार्यकर्त्ता श्री वेन टुडू गोली के शिकार हुए। वे शिकारी पाडा थाना के अन्तर्गत विसरीग्राम नामक गाव के रहने वाले थे। वे हरिदास टुडु के लडका थे। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ५०वर्ष से कम की नही थी। उनके मरते ही सतालो में भगदड हुई। अगस्त क्राति के अग्रदूत और सन्ताल-फौज के महान सेनापति श्री लाल हेम्ब्रम ने गरज कर आदेश दिया— भागो मत, सभी तीर चलाओ। तीर चलाकर कुछ सरकारी सैनिकों को संतालो ने घायल भी किया। उन्हें अधिक सफलता नही मिली। कई संताल सैनिक मारे गये, उनमे विशेष रूप से निम्नलिखित शहीदो के नाम स्मरणीय है— (१) कोका हासदा –शिकारी पाडा थाना अन्तर्गत बसी हुई सु दराफलम गाव के निवासी श्री नाले हासदा के पुत्र थे। शहीद होने के समय वे केवल बीस वर्ष के थे। (२) श्री मगल मुर्मू–सरकारी गोली से जब मगल मुर्मू की मृत्यु नही हुई, तब घायल मगल मुर्मू की देह को घसीट कर अन्य लाशो के साथ दुमका भेजा गया। मृत्यु के समय उनकी उम्र ३० वर्ष थी। वे मसानजोर सर्किल के करमाटार गाव के रहने वाले थे। (३) श्री गुडमा टुडू—बरमसिया सर्किल के घरकुच पहाडी के रहने वाले थे। ५७ वर्ष की आयु में उन्होने वीरगति पायी। घायलो की संख्या तो बहुत थी। सरैंदाहा के श्री वरियार हेम्ब्रम, धर्मपुर के रगदा मुर्मू, पथरा के श्री तुपु टुडू, सुंदरा

फलम के श्री मराडल मरराडी आदि को गोली लगी थी। चार आदमियो की जान लेकर तथा दर्जनो को घायल कर भी गोरी फौज संताल सेना नायक लाल हेम्बरम और पैका मुर्मू को नही पकड सकी।

लाल हेम्ब्रम के गाव के निवासी श्री भीखू मुर्मू, ठाकाजल के निवासी श्री चाँदराय टुडू तथा पतसर ग्राम के रहने वाले मुंशी हांसदा के नेतृत्व मे दुमका मुफस्सिल थाना एवं रांगा मसलिया थाना मे विद्रोह का काम आरंभ हुआ। भट्टियाँ जलायी गई, पोचाई की दूकानें लूट ली गईं, उसे जलाकर राख कर दिया गया। मुंशी हांसदा ने मसलिया थाना में अच्छा काम किया था। वहां उनके प्रमुख कार्यकर्त्ता रामखुडी के श्री घोरू मुर्मू, लतावड के धना बास्की, पलाती के लोप्सा सोरेन, खेला सोरेन और लगू हेम्ब्रम, भडरा के रगदा मुर्मू,राम खुडी के धन हेम्ब्रम,पुटकबरा के छोटू किस्कू, मुंशी हांसदा और उनके सभी साथियो को गिरफ्तार कर लिया गया। घोरू मुर्मू का देहात दुमका जेल में हो गया। श्री लगू हेम्ब्रम को जेल में इतना कष्ट दिया गया कि जेल से निकलते ही उनका देहान्त हो गया। चांद राय टुडू को साढे पन्द्रह वर्ष की सजा हुई और भीखू मुर्मू को इक्कीस साल की सजा मिली। भागलपुर कैंप जेल में वे पागल हो गये थे। लाल हेम्ब्रम ने महेशपुर थाना मे जाकर संताल कार्यकर्त्ताओं को उत्साहित किया। वहां उनके कार्यकर्त्ता थे—नरगितोला के श्री बुदू टुडू, खिजूर डागा के लोगदा मुर्मू, पथरा के चम्भू मुर्मू, खुरीडीह के प्रभु हेम्ब्रम, बेनापत्ती के सुफल मुर्मू, मोहल पहाडी के मंगल मरराडी, और पथरिया के सुरँया मुरमू आदि। देवीनगर की शराब की भट्टी तथा धाराचोर की शराब की भट्टी जला दी गइ। वे पकुडिया गये, लाल हेम्ब्रम का नाम सुनते ही वहां का दारोगा थाना खाली कर भाग गया, लाल हेम्ब्रम के नेतृत्व में खरौली हाट की भट्टी जलायी

गई। इन्ही भट्टियो के जलाने क्रममें श्री लोगदा मुर्मू, प्रभु हेम्ब्रम, भादू मुर्मू मतला सौरेन, बालो हेम्ब्रम आदि सतालो को जेल हुआ था।

राजवांध पलासी में जो गोली काण्ड हुआ था, उसके बाद पैका मुर्मू और लाल हेम्ब्रम फरार होकर काम कर रहे थे। सताल नेता इधर-उधर भटक गये थे। लाल बाबा सब लोगो को पुनः एक सूत्र में बाँधकर मोर्चा लेना चाहते थे। जहाँ-तहाँ लोगो को चिट्ठी लिखकर सूचनायें भेजी; स्वयं मलान-पहाडी, डहूजोर, लालगज, काशीडीह, फूलोपानी आये और लोगो को अग्रेजी सरकार के विरूद्ध लडाई छेड़ते रहने के लिए उत्साहित करते रहे। पुलिस अधिकारियो ने लाल हेम्ब्रम को डकैत कहा था। देशभक्तो को ऐसी उपाधियाँ पहले भी मिली थी; सिदो को अग्रेज सरकार ने लुटेरा कहा था, भागीरथ माझी को उन्ही लोगो ने आवारा कहा था। जब लाल बाबा के पूर्वजो को ऐसी उपाधि मिल चुकी थी, तब मुझे लाल बाबा को डाकुओ का अगुआ कहे जाने पर कोई आश्चर्य नही होता है। लाल हेम्ब्रम कुछ करने के पहले सूडी चुवा के हवाई अड्डे को नष्ट करना चाहते थे। उन्होने उसका निरीक्षण किया। पर यह काम आसान नही था। कुछ दिन के लिए वे बंगाल मे काम करने के लिए वीरभूम चले गये। वहाँ के सतालों को भी उत्साहित किया। वही उन्हे पता चला कि श्री सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द सरकार कायम किया है। लाल बाबा सुभाष बाबू के प्रिय कार्यकर्त्ता थे। अपने प्रिय नेता से मिलने के लिए लाल बाबा ने सिंगापुर जाने का निश्चय किया। कुछ दूर गये, पर कतिपय बाधाओ के कारण भारत में रहकर ही ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेने का उन्होने निश्चय किया। आजाद हिन्द फौज के अनुरूप उन्होने संताल परगना जिले में देशोद्धारक दल का सगठन किया। बताया जाता है कि उसमें

२ हजार से अधिक व्यक्ति सैनिक रूप में शामिल हो गये थे। लाल हेम्ब्रम उन्हें प्रति दिन सुबह और शाम कम से कम चार घण्टा तीरन्दाजी सिखाते थे। बाकी समय इस दल के सैनिको द्वारा गांव गाव में अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में वे प्रचार का काम लेते थे। गाव वालो से इन लोगो का कहना था— न तो अंग्रेजी हुकुमत मानो और न उनकी कचहरियो से न्याय की मांग करो। दुमका—भागलपुर रोड पर दुमका से १४ मील की दूरी पर लाठी पहाडी नामक एक स्थान है। १७ फरवरी, १९४३ को देशोद्धारक दल के सैनिको के साथ लाल बाबा वहा थे। कुछ देश-द्रोहियों ने इसकी सूचना पुलिस अधिकारी मिस्टर जे० ई० विशप को दे दी। उसने लाठी पहाडी पर आक्रमण कर दिया। सन्तालो का पता लगाने के लिये एक जासूस कुत्ता भेजा। कुत्ता कभी लाल हेम्ब्रम के पास आता था और कभी पागान मरराडी के पास। सन्ताल दल के प्रहरी जटा बास्की ने पुलिस के आगमन को सूचना दी। वे अभी सम्भल भी न पाये थे कि सशस्त्र पुलिस सतालो पर गोलिया चलाने लगी। सन्तालो ने उनका खुलकर सामना किया। पुलिस अधिकारी श्री एस० के० राय ने इस सघर्ष की कहानी अपनी रिपोर्ट में इस प्रकार लिखी है—

"... .. ...तब हम लोगो ने (पुलिस दल) पहाड के ऊपर झरना के पास जाने का विचार किया, जहां पर डकैतो के दल के रहने की संभावना थी। जब हमलोग ऊपर पहुँचे, तब एक समतल मैदान दिखाई पड़ा। वहाँ हम लोगों ने ढाई सौ व्यक्तियो को देखा, जिनके पास तीर-धनुष, बर्छे, कुल्हाडियाँ, लाटियाँ, एक बन्दूक तथा अन्य घातक हथियार थे। हमलोगों को देखते ही उनमे से कुछ लोग इधर-उधर भागने लगे। और कुछ ने अपने हथियारो एव पत्थरों से हम पर हमला किया। तब हम

लोगों ने भी अपनी बन्दूकें और रिवाल्वरो से उन पर गोलियाँ दागनी शुरू की। कइयो को घायल किया, जिनमें कम से कम तीन चार गिर पडे। चूंकि हमारी गोलिया निशाने पर नही बैठती थी और वे पुरानी भी थी, इसलिए अवसर पाकर डकैतो ने हम लोगो को चारो तरफ से घेर लिया। हम लोग पीछे हटे (Retreated) इसपर भी कुछ डकैतो ने गांधी जी की जय-जय कहते हुए तथा मार दो, पत्थर फेंको, पछाड दो, तीर मारो आदि उच्चारण करते हुए हम लोगो का पीछा किया। किन्तु किसी तरह हम लोग प्राण लेकर नीचे खुले मैदान में पहुँच गये और डकैत भी हम लोगों को खुले मैदान में पहुँचा देखकर पहाडो में भाग गए। जब हम लोगो का वे पीछा कर रहे थे, तब उन लोगो ने पुलिस सब इन्स-पेक्टर श्री जे० एच० कुमार के हाथ से एक बन्दूक छीन ली। पुलिस के बडे दारोगा श्री शुकदेव चौबे और छोटे दारोगा श्री द्वारका प्रसाद सिंह को घायल किया था।"

लाठी पहाडी संघर्ष से सम्बन्धित ४० व्यक्तियो को अंग्रेजी सरकार की अदालत ने १४ साल की सजा दे दी। उनमें निम्नलिखित १२ आदमियो को हाई कोर्ट ने निरपराध घोषित कर दिया— (१) श्री बडका मुर्मू (२) श्री अंग्रेज राय, (३) श्री अनमनी लायक, (४) श्री साहेबा मरण्डी (५) श्री दारोगा माझी, (६) श्री दधिषल कुमर, (७) श्री दुखन मड़ैया, (८) श्री तौजी राय, (९) श्री दीवान मड़ैया, (१०) श्री गंगा राय, (११) श्री लगन कुमार तथा (१२) श्री दीप्ति सोरेन। इन्हें रिहा कर दिया गया। जेल में जो रह गये थे–उन पर अनेक अत्याचार हुए थे। आठ आदमियो का जेल में ही देहान्त हो गया। (१) श्री मूदय हाँसदा, (२) हरिदास मुर्मू, (३) श्री तूना मुर्मू, (४) रजाम हेम्ब्रम, (५) सुन्दर हेम्ब्रम

(६) विदेशी राय, (७) पाण्डू मुर्मू और (८) लुथु टुडू जेल में से ही इस लोक से चले गये थे। फिर भी लाठी पहाडी संघर्ष के सेनापति लाल हेम्ब्रम और सहयोगी पगान मरण्डी, भत्त् सोरेन और रसिक लाल सोरेन को सरकार न पकड सकी। लाठी पहाडी के चारो ओर हवाई जहाज लाल को पकडने के लिए चक्कर काटते रहे, फिर भी लाल का कही पता नही चला। सारी शक्ति रख कर भी ब्रिटिश सरकार लाल को नही पकड सकी। इनाम का प्रलोभन भी कुछ काम नही कर सका। वही लाल हेम्ब्रम ने महात्मा गाधी के आदेश से सन् १९४५ के फरवरी में आत्म-समर्पण किया। उनपर मुकदमा चला। उनके विरोध में ब्रिटिश सरकार पर्याप्त साक्ष्य अपनी ही अदालत में प्रस्तुत नही कर सकी। अत: वे ४ फरवरी, १९४६ को मुक्त कर दिये गये। अगस्त क्रान्ति के फलस्वरूप १५ अगस्त, १९४७ को देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतत्रता के अंतिम संघर्ष में सन्तालो ने बहुत त्याग किया था। पूज्य राजेन्द्र बाबू ने भी इसे स्वीकार किया था।



ऐतिहासिक धरातल



● नृतत्व विज्ञान भारत के लिए कोई नया विज्ञान नही है। यह विज्ञान हमारे लिए उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी हमारी सभ्यता एवं संस्कृति है। मनु नृतत्व विज्ञान के प्रथम वैज्ञानिक थे और मनुस्मृति नृतत्व विज्ञान का प्रथम ग्रन्थ है।

● स्क्रेफस्रड ने 'सताल' शब्द को 'सांवताड' का विकृत रूप माना है और सुप्रसिद्ध नृतत्व विज्ञान के साहित्यकार श्री गोपाल लाल वर्मा ने संथाल का विकृत रूप संताल शब्द माना है। पर सताल आज व्यवहार का शब्द बन गया है।

' संतालो की अपनी कहानी है। उनकी सृष्टि कैसे हुई, वह उनकी धार्मिक भावनाओ से लिपटी हुई है। उन्होने अपनी सृष्टि की कहानी को अपने लोकगीतो में व्यक्त किया है। शुभ अवसरो पर वे उन्हे गाते हैं। शायद ही कोई ऐसा सताल होगा, जो यह नही जानता हो कि उनके पूर्वजो का जन्म हिहिडी-पिपिडी में हुआ है।

● सतालो ने राम - रावण युद्ध में राम का पक्ष लिया था और रावण से उन्होने संघर्ष किया था। उनका जीवन राममय हो गया था। राम नाम के लिए सतालो ने साफा होड आन्दोलन किया, मार खाई प्राण दिये।

● संताल परगना की धरती पर सतालो ने सबसे पीछे पैर रखा, पर इस जिले पर वे ऐसे छा गये कि संताल-विद्रोह के बाद जब इस जिले का नवगठन किया गया, तब इस जिले का नामकरण सतालो के नाम पर सताल परगना किया गया।



सन्ताल : एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन

नृतत्व विज्ञान भारत के लिए नया विज्ञान नहीं है। यह विज्ञान उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति है। मानव को समझने, उसे परखने एवं जानने की क्रियायें हमारे यहाँ मनु से ही प्रारम्भ हुई हैं। वे क्रियायें तब से अब तक चल रही हैं; पर उनका रूप बदलता रहा है। समय एवं परिस्थिति के अनुसार उनके रूप में परिवर्तन होना आवश्यक भी है, अनिवार्य भी है। पर यह सत्य है, जहां पहले नृतत्व विज्ञान में वैज्ञानिकता का अभाव था, अब वही उसका आधार पूरा वैज्ञानिक हो गया है। वैज्ञानिक आधार होने के कारण उसमे प्रामाणिकता अधिक आ गई है। नृतत्व विज्ञान में हमें मानव की उत्पत्ति एवं उनका विकास, मानव की सभ्यता, संस्कृति एवं सस्कारों के ज्ञान प्राप्त होते हैं। मनु स्मृति को मैं प्रथम नृतत्व-विज्ञान का महान ग्रन्थ मानता हूँ। मनु नृतत्व विज्ञान के जन्मदाता हैं। नृतत्व विज्ञान से हमें पता चलता है कि मानव किन-किन परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ आज यहाँ पहुँचा है। उसकी सस्कृति का निर्माण, उसमें परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन किन-किन परिस्थितियो में तथा किन-किन कारणों से हुए हैं— इन सारी बातों की जानकारी हमें नृतत्व-विज्ञान से हो पाती है। आज का मानव पहले के मानव से अधिक ज्ञानी हो गया है। पहले वह भवन में रहता था, अब वह भुवन में रहने लगा। पहले उसकी सीमा गुफायें तक थी, आज वह चाँद और सूर्य के घर में डेरा डालना चाहता है। यह

मानव के ज्ञान-विस्तार का ही द्योतक है। ज्ञान की वृद्धि से विद्वानों के सोचने की क्रियाओं में भी वृद्धि हुई है। इसी वृद्धि के फलस्वरूप हमारा नृतत्व विज्ञान है। पहले हमारे विद्वानों ने भौतिक ज्ञान के अध्ययन में अपने को ऐसा लगाया कि वह अपने को ही भूल गये। चाँद, सूर्य आदि ग्रहों के सम्बन्ध में हमें बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो गई थी, पर हम क्या हैं, हम कैसे यहाँ तक पहुँचे—इसपर सोचने की हमारी प्रवृत्ति कम होती जा रही थी। १८ वी सदी के बाद वैज्ञानिको ने विज्ञान के क्षेत्र में जितनी प्रगति की है, उतनी प्रगति एवं विकास मानव के अध्ययन में नही हो सका। अंग्रेज भारत आये, उन्हें भारत पर शासन करना था। भारतीयों के सम्बन्ध में उन्हें जानना आवश्यक था। सफल प्रशासक की ये सब विशेषताएँ होती हैं। अंग्रेज अपनी जानकारी के लिए हमारे लोगो के बारे में सोचने लगे, अध्ययन करने लगे। तब से हमारे देश में मानव-अध्ययन का नया युग आरम्भ होता है।

अंग्रेजो ने वैज्ञानिक ढंग से मानव-जाति, विशेषकर जनजातियों के सम्बन्ध में अध्ययन करने की सुदृढ योजनायें बनायी, संस्थायें कायम की और जनजातियो की संस्कृति पर खोजपूर्ण निबन्ध प्रकाशित करने के लिए संस्थाओं से पत्र-पत्रिकायें निकाली। उन संस्थाओं में 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' नामक एक संस्था कलकत्ता में १६ वी सदी के ८ वी दशक में स्थापित हुई। तब बिहार बंगाल का ही अंग था। जब बिहार बंगाल से अलग हुआ, तो १६१५ में 'बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' का जन्म हुआ। इन संस्थाओ से पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। बिहार की जनजातियो पर इन पत्रों के माध्यम से लेख लिखा जाने लगा। खोजपूर्ण निबन्धो से उनके ऊपर नया प्रकाश पड़ने लगा। एशियाटिक

सोसाइटी ग्रोफ बंगाल के जर्नल में संथालों के ऊपर काफी लिखा गया है। संथालों को चर्चा का विषय बनाया गया है। श्री पी० प्रो० बोडिंग[1] ने संतालों के सम्बन्ध में इस पत्रिका में कई निबन्ध लिखे हैं। श्री एल०

१. P. O. Bodding
1. On the different kinds of salutations used by the Santals— J. A. S. Bengal, LXVII, Part III (1898)
2. On Taboos and customs connected therewith amongst the Santals— J. A. S. Bengal, LXVII (1898), Page 1-24.
3. Ancient stone implements in the Santal Parganas— J. A. S., Bengal, LXX, Part III (1901)
4. Shoulder-headed and other forms of stone implements in the Santal Parganas— J. A. S., Bengal, LXXIII, Part III (1904)
5. Santals Traditions—J.A.S., Bengal, Part II (1916)
6. A note on the wild people of the Santals.— J. A. S., Bengal, XNVII (241-63)

प्रो० स्क्रफस्रड[१], डब्लू ०एस० शेरवील[२], श्री कालीपद मित्रा[३] एवं श्री बी० के० चटर्जी और प्रो० जे० डी० कुमार[४] आदि ने सतालों पर अच्छा प्रकाश डाला है। बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका ने भी सन्तालो पर विशेष महत्व दिया। नृतात्विक शोध में इस पत्रिका का बडा योगदान रहा है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि इस पत्रिका द्वारा बिहार राज्य में नृतात्विक शोध को जन्म दिया गया। इस पत्रिका में सन्तालो के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया। श्री पी० ओ० बोडिंग[५]

---

१. L. O. Skrefressed—
Notes on Fraternal Polyandry among the Santals—J. A. S., Bengal, 1906.

२. W. S. Sherwill—Notes upon a Tour through the Rajmahal Hills.—J. A. S., Bengal, 1851.

३. Kali Pada Mitra—The originals and Parallels of some Santal Folk Tales—J. A. S., Bengal, XXX (1929) Page. 101

४. B. K. Chatterjee & J. D. Kumar—The Somatic characters and Racial affinition of the Santals of the Santal Parganas.—J.A.S.B. (Science) Vol. XVIII—No. 1, 1952.

५. P. O. Bodding—
1. Some Remarks on the position of women Among the Santals.—Journal of

Bihar & Orissa Research Society, Vol.1, Pt. II, 1815. Page—213-18

2. The meaning of the word 'Buru & Bonga' in Santali. —Journal of Bihar & Orissa Research Society. Vol. XII, Pt. 1-1926, Page—63-77.
3. Further notes on the "Burus and Bongas" —Journal of Bihar and Orissa Research Society. Vol. XII, Pt. II, 1926 Page—286-88

१. A. Campbell—

1. "The Traditions of the Santals"—Journal of Bihar & Orissa Research Society, Vol. II, Pt. I, 1916, Page—15-29.
2. "Santal legends."—Journal of Bihar & Orissa Research Society, Vol. II. 1916, Page—191-200
3. "Superstitions of the Santals'—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. I, Part II, 1915, Page 213-28
4. Rules of succession and partition of properties as observed by the Santals—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. I Part II, 1915, Page 213-28

ने बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका के माध्यम से सन्तालों पर प्रकाश डाले हैं। मेमोरियल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल में भी श्री पी० ओ० बोडिंग[१] के कई निबन्ध सन्ताल परगना के सम्बन्ध में

---

5. Santal marriage customs—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. II, Part III, 1916, Page 304-37
6. Death and cremation ceremonies among the Santals'—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. II, Part IV, 1916, Page 449-56

२. G. Gausdal—

"The Khut system of the Santals"—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXVIII, Part IV, 1942, Page 431-9

३. K. Mitra—

The originals and parrallels of the stories in Mr. Bompas' Folklore of the Santal Parganas.—Journal of Bihar and Orissa Research Society, Vol. XII, Part IV, 1926, Page 560-84

४. S. N. Roy—

The conversion of the Santal to Hin-

प्रकाशित हुए थे। सन्तालों को समझने एवं बूझने में इन निबन्धों से बड़ी सहायता मिलती है।

अंग्रेजी में प्रकाशित कुछ मासिक पत्रिकाओं में सन्ताल सम्बन्धी निबन्ध निकलते थे। सन् १८४३ में 'कलकत्ता रिभ्यू' निकला और सन् १८७२ में इण्डियन एण्टीकरी नामक एक पत्र डाक्टर बार्गेस ने निकाला। इन पत्रों में सन्तालों के सम्बन्ध में लिखा गया। सन्ताल-विद्रोह पर पहला निबन्ध 'कलकत्ता रिभ्यू' में ही प्रकाशित हुआ था। पर भारत में १९२१ के पूर्व नृतत्व सम्बन्धी कोई स्वतंत्र पत्र नहीं निकला। पर उसका अभाव सब लोग अनुभव करते थे। इसी अभाव की पूर्त्ति करने के लिए नृतत्व विज्ञान-शास्त्री श्री शरत्चन्द्र ने सन् १९२१ में "मैन इन इण्डिया" का प्रकाशन किया। आज भी यह पत्र त्रैमासिक के रूप

duism—Journal of Bihar and Orissa, Research Society, Vol. II, 1916, P. 87-8

१. P. O. Bodding—

1. The Santals and Disease studies in Santal Medicine and connected Folk-lore, Part I, Memoires of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X, No. 1, Calcutta, 1925.
2. Santal Medicine, studies in Santal Medicine and connected folklore. Part II, Memoires of the Asiatic Society of Bengal, Vol.X, No. 2, Calcutta.
3. 'How the Santals live, Studies in Santal Medicine and connected folklore,

में राँची से प्रकाशित होता है। "मैन इन इण्डिया"[१] मे संतालों के सम्बन्ध में बहुत से निबन्ध निकले हैं और निकलते रहते हैं। इस पत्रिका की सेवा किसी भी शोध संस्थान से कम नही रही है।

प्रशासको ने भी संताल सम्बन्धी निबन्ध एवं पुस्तकें लिखी हैं। संतालो के सम्बन्ध में काफी श्रम कर डाक्टर बुचानन ने एक ग्रन्थ तैयार किया था, जो शायद अभी भी हस्तलिपि के रूप में 'इण्डिया हाउस' लन्दन मे सुरक्षित पड़ा हुआ है। सन् १८०७ में डा० बुचानन को कोर्ट ऑफ डाइरेक्टरो ने अपने अधिकार क्षेत्र के सर्वे के लिए नियुक्त किया था। सर विलियम हण्टर ने अपने 'एनल ऑफ बंगाल' में डाक्टर बुचानन को प्रामाणिक अनुसधाता एवं सर्वोत्तम रेखांक-वेत्ता माना है। सर्वे का काम तेजी से ७ वर्ष चला। तीन हजार पौण्ड उस पर खर्च किया गया, पर बाद में न जाने किस कारण से वह सर्वे का काम रोक दिया गया। सर्वे का काम बहुत व्यापक था। इतिहास, संस्कृति, संस्कार परम्परायें, धर्म, विश्वास आदि सम्बन्धी प्रत्येक जिले की जानकारी प्राप्त करना उसका लक्ष्य था।[२] इतना ही नहीं, प्रत्येक जिले के लोग, वहाँ के जंगल, खान

M. R. A. S. Bengal, Vol. X, No. 3, 1940

१. Andrew Archer—The Folk tales in Santal Society.—Man in India, December, 1944 224–32.

२. W. G. Archer—

1. The illegitemate child in Santal Society. Man in India, September 1944,

थेंग्री पडता था।[१] इस क्षेत्र में डाक्टर बुचानन सन् १८०९-१० में आदि के सम्बन्ध में भी जाँच करता था। विहार और उतर बिहार का सर्वे हो गया था। उसके बाद ही सर्वे का काम बन्द किया गया था। भागलपुर जिला के अन्तर्गत तब मुंगेर और संताल परगना का दो तिहाई

Pages 154-169.

2. More Santal Songs—Man in India, September, 1944. Page 141-4.
3. The Forcible marriage-Man in India, March, 1945. Pages 29-42.
4. Santal Rebellion Songs—Man in India, December, 1945.
5. Santal Transplantation Songs—Man in India, March, 194C. Page 6-7.
6. Ritual Friendship in Santal Society—Man in India, March, 1947. Page 57-60.
7. The Santal treatment of witchcraft—Man in India, June, 1947.
8. The Santal Rebellion—Man in India, December, 1945.

१. W. J. Culshaw—

1. "Early Records concerning the Santal, Man in India, September, 1945.

आये थे और उसका सर्वेक्षण किया था। उसका पूरा विवरण २५ जिल्दो में तैयार हुआ था, पर सन् १८३८ तक उनमें तीन ही विवरण प्रकाशित हुए थे। सन् १८२० में वाल्टर हैमिल्टन ने उन विवरणों के आधार पर 'ए ज्योग्राफिकल स्टैटीस्टीकल हिस्टोरिकल डिस्कीपसन्स ग्रोफ दि हिन्दुस्तान एगंड एडजैसेंट कन्ट्रीज' के नाम से दो जिल्दो में प्रकाशित किए थे। सन् १८३८ में मांडगोमरी मार्टिन ने डाक्टर बुचानन की हस्तलिखित सामग्री से संकलित कर 'दि हिस्ट्री, एंटिक्वीटी, टायोग्राफी एण्ड स्टन्टीस्टीक ग्राफ इस्टर्न इण्डिया' प्रकाशित किया। मांट गोमरी मार्टिन ने उक्त पुस्तक की भूमिका में कहा है कि धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से हस्तलिखित सामग्री से संकलन किया गया है। अतः उसके ग्रन्थो मे ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक तत्वों का अभाव है। फिर भी नृतत्व सम्बन्धी बातो पर काफी प्रकाश डाला गया है।

डाक्टर बुचानन के सर्वे के बाद मिस्टर सुन्दरलैण्ड की रिपोर्ट सन् १८१८ में प्रकाश में आई। उसी रिपोर्ट के आधार पर दामिन-इ-कोह की सीमा निर्धारित की गई। मिस्टर उड ने उसी रिपोर्ट को दृष्टि में रखकर सन् १८२६–१८३२ के बीच दामिन-इ-कोह की सीमा निर्धारित की। सतालो के जीवन की एक झांकी हमें कप्तान शेरवील के भागलपुर और बीरभूम जिले के रेभून्य सर्वे रिपोर्टों से मिलती है। ये रिपोर्टें सन् १८४८ से १८५२ और सन् १८५४ से १८५५ के बीच तैयार हुई थी। रेभेन्यू सर्वे के बाद ही सन् १८५५ में संताल विद्रोह हुआ तथा सताल परगना का जन्म हुआ। सर विलियम हन्टर ने संताल-विद्रोह के सम्बन्ध में अपना मत दिया है। उन्होने संतालों की भाषा,

धर्म, जाति, संस्कार एवं परम्पराओं पर प्रकाश डाला है। मिस्टर बुकलैण्ड ने 'बंगाल अन्डर दि लिफ्टेन्ट गवर्नर' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। उस ग्रन्थ से पता चलता है कि संताल परगना में सिपाही विद्रोह कैसे आया और तूफान कैसे शान्त हुआ। श्री उड ने सन् १८७३ से १८७६ तक संताल परगना का सर्वे किया था। उनकी सर्वे रिपोर्ट में भी संतालों के ऊपर प्रकाश डाला गया है। संताल परगना जिले के उपायुक्त एवं भागलपुर के आयुक्त के पत्राचारों में भी बहुत सी बातें आयी, जिनसे संतालों के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। मिस्टर डब्लू० बी० ओल्डहम ने उनसे चुनकर कुछ पत्रों को सन् १८८६ में प्रकाशित किया था। उन्होंने सन् १८६८ में संताल परगना ला को पुनः मुद्रित कराया था। यह पुस्तक आजतक प्रशासको के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करती है। ओल्डहम ने हमलोगो को 'सम हिस्टोरिकल एण्ड एथिकल एसपेक्टस ऑफ दि वर्दमान डिस्ट्रिक्ट' नामक एक पुस्तक सन् १८६४ में दी। मिस्टर ओल्डहम पाँच वर्ष तक संताल परगना में उपायुक्त रहे थे। उक्त पुस्तक के दो-तियाही अंश में उन्होने संतालों पर प्रकाश डाला है। संतालों के जीवन पर मिस्टर बेट की पुस्तक "स्टोरी ऑफ एन इण्डियन अपलैण्ड", सन् १६०५ में प्रकाशित हुई। सन् १६०६ में मिस्टर मैकफर्सन की सर्वे रिपोर्ट प्रकाश में आयी। उन्होने संताल परगना जिला का सर्वेक्षण सन् १८६८–१६०७ में किया था। इसमें उन्होने संतालों पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार रेजर की सर्वे रिपोर्ट में भी संतालो पर प्रकाश डाला गया है। जनगणना के अवसर पर जब नयी रिपोर्ट तैयार की गयी, तब तक संतालों पर उसमें कुछ न कुछ लिखा ही गया।

इसाई मिशनरियों ने संतालों पर काफी खोज की है। नृतत्व-विज्ञान

के क्षेत्र में उनकी बहुत बड़ी देन रही है। रोमन लिपि तथा संताली भाषा में उन्होंने कई पुस्तकें तैयार की है।[१] उन पुस्तकों का अपना महत्व है। इन पुस्तको में सांस्कृतिक पहलू पर विशेष ध्यान दिया गया है, ऐतिहासिक पहलुओ पर कम प्रकाश डाला गया है। एथनोग्राफी में भी सन्तालोंको चर्चायें आयी है। श्री कैम्बेल ने सन् १८५४ में एथनोग्राफी आफ इण्डिया लिखा। इन पुस्तको मे सतालो पर प्रकाश पडता है। श्री आर्चर नें

१. An introduction to the Santali language, 1852; by Jaronia Philips.

A vocabulary of Santalı Language. 1864; by Rev. E. L. Paksley.

A grammar of the Santalı Language.1873; by Rev. L. D. Skerpsrood.

Santalı-English & English-Santalı Dictionary, —1899, by Campbell.

Materials for a Santali Grammar. 1926; by Rev. P. O. Boadıng.

An introduction to Santali-1947, by Macphil.

Hor Koren Mare Hapram Koak Katha; 1924; by Rev. L. O. Skepsrood "Kolgan Haramak, ha lekak".

Santal Pargana reak itihas by Rev. C. H. Koomar.

Hor Kahini Ko by Rev. P. O. Boading.

ग्राठ खण्डों मे संतालो के विभिन्न पहलुग्रो पर प्रकाश डाला था। पर वह पुस्तक छपी नही, हस्तलिपि के रूप में रह गयी। ग्रार्चर साहब ने उस पुस्तक की कई टकक प्रतिया करायी थी, जो दुमका में उपलब्ध हैं।

स्वतत्र हो जाने के बाद नये ढंग से संतालों पर ग्रध्ययन ग्रारम्भ हो गया है। पटना विश्वविद्यालय में समाज शास्त्र (१९५१) ग्रौर बिहार विश्वविद्यालय मे नृतत्व शास्त्र (१९५३) तथा बिहार सरकार ने जन जातीय शोध परिषद (१९५४) तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक शोध मण्डल (१९५५) की स्थापना की। कुछ वर्ष पूर्व सामाजिक एवं सास्कृतिक शोध परिषद ने बिहार के ग्रादिवासियों पर एक सेमिनार कराया था। उस ग्रवसर पर कई निबन्ध पढे गए थे। इन निबन्धो के ग्राधार पर डाक्टर ललिता प्रसाद विद्यार्थी के सम्पादकत्व में 'बिहार के ग्रादिवासी' नामक पुस्तक निकली है। उसमें संतालो पर एक ग्रध्याय है, जिससे संतालो के सामाजिक जीवन पर प्रकाश पडता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के नृतत्व विभाग के ग्रध्यक्ष पी० सी० विश्वास की 'संताल ग्रौफ दि संताल परगना' बहुत ही खोजपूर्ण पुस्तक है।



'सन्ताल' शब्द की निरुक्ति

सन्ताल शब्द विभिन्न प्रकार से लिखा मिलता है। बंगला भाषा-भाषी लोगों के बीच उनके लिए सावंतेर शब्द का प्रयोग मिलता है। संताल, सन्थाल, सावंतेर ग्रादि शब्दो का प्रयोग संतालो के लिए किया

जाता है। संतालों ने अपने को सताल कहकर पुकारा जाना पहले पसन्द नही किया था। वह तो सन् १६१७ के बाद से अपने को वे संताल कहने लगे हैं। संतालो ने किसी अजनबी को अपना नाम और गोत्र बतलाना सिर्फ सन् १६१७ ई० से सीखा है। उससे पहले वे सिर्फ माँझी कहकर अपना परिचय दिया करते थे। संताल-विद्रोह के नेता सिदो के नाम के साथ माझी शब्द ही मिलता है। सन् १८७० में अहिंसात्मक संघर्ष बाबा भागीरथ के नेतृत्व में आरम्भ हुआ था। उनके नाम के साथ माझी शब्द ही लगा हुआ था। आज भी माझी शब्द का प्रयोग नाम के साथ होता है। सताल परगना में संतालो के नाम के साथ माझी का जोडा जाना कम हो गया है, पर सताल परगना के बाहर के संताल अपने नाम के साथ माझी ही जोडते हैं। मानभूमि, सिंहभूमि और मयूरभंज के सताल आज भी अपने नाम के साथ माझी शब्द जोडने में गौरव का अनुभव करते हैं। सताल परगना मे आज भी माझी की उपाधि गौरव की उपाधि है। वे गाँव के प्रमुख को माझी ही कहते हैं। जो व्यक्ति संतालों का धार्मिक अनुष्ठान करता है, उसे भी जोगमांझी वे कहते हैं। संताल माझी का प्रयोग आदर सूचक शब्द के रूप में करने लगे हैं। सताल उनकी जाति का बोधक शब्द बन गया है। फिर भी संताल जब आपस मे मिलते हैं, तब वे अपने को संताल नही कहते हैं[१]। वे अपनी जाति के

१ The Santals call themselves simply Hor, meaning man and state that they were formerly called Kharwar. It is only since 1917, that a Santal has learned to tell a Shangu,

बाहर के लोगों से जब सम्पर्क स्थापित करते हैं, तब वे अपने को संताल संथाल या सावंतेर कहते हैं। संताल अपने को 'होड़' भी कहते हैं। होड का प्रचलन अधिक है। जो हो, संताल शब्द संतालो ने बाद में अपनाया है।

'संताल' शब्द का पूर्व रूप संथाल रहा होगा—ऐसा माना जाता है, पर इन दोनो सताल और सन्थाल शब्दो के पूर्व १८ वी सदी में 'सान्ताड़' और 'सान्थाड' रहा था। वे सौंगताड भी कहलाते थे। साँओताड शब्द का भी प्रयोग हमें मिलता है। बंगला में साँओताड को साँओताल कहा जाता हैं, अंग्रेजो ने भी सांओताल शब्द का प्रयोग किया है। विभिन्न व्यक्तियो ने विभिन्न ढंग से इन शब्दो का प्रयोग किया है। एकरूपता का अभाव रहा है। सरकारी रेकार्डों में भी विभिन्नताएं हम पाते हैं। ये विभिन्नताएं १८ वी सदी में अधिक हैं। १९ वी सदी के कुछ दशको में मिलती हैं, पर बाद में संताल और संथाल शब्दो का ही प्रचलन रहा। कुछ समय तक संताल और संथाल दोनो में कौन-सा शुद्ध रूप है—इस प्रश्न को लेकर एक विवाद चला था। संथाल को संताल से अधिक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से शुद्ध माना गया था। पर संताल शब्द का अधिक प्रचलन होने के कारण सताल शब्द ही ग्राह्य हुआ। संथाल शब्द का जहाँ-तहाँ प्रयोग हो जाता है। जनता जिस शब्द को अपना लेती है, उसी

---

what his name and sept is prior to that, as a rule, he would simply say "Manjhi".

—District Gazetteer of Santal Pargana-1938. Page 120

शब्द को व्यवहार मे लाना हमें उचित जँचता है और ऐसा करना भी चाहिए।

संताल जाति का उल्लेख सबसे पहले लार्ड टेन्माउथ (सर जानशेर) ने किया है। उन्होने एक निबन्ध सन् १७६५ में एशियाटिक रिसर्चेज में लिखा था। उस निबंध का शीर्षक था—"हिंदुओं की कुछ असाधारण बातें, रीति-रिवाज तथा प्रथाएं"। इस निबन्ध में इन्होने सन्तालो को सून्ताड कहा है। सून्ताड शब्द के प्रयोग उस जाति के लिए उन्होने किया है, जो हजारीबाग के रामगढ अंचल मे रहती थी, जो एक असंस्कृत अनपढ जन-जाति थी।[१] इसके बाद औरो ने भी सन्तालो का उल्लेख किया

१. "The earliest mention of them appears to be contained in an article entitled "Some extra ordinary Facts, Customs and Practices of Hindus' by Lord Teignmouth (Sir John Shore), which was published in the Asiatic Researches of 1795. In this article they were designated "Saontars" and described as a rude and unliterate tribe residing in Ramgur (Ramgarh), the least civilized part of the company's possessions, who have reduced the detection and trial of persons suspected of witchcraft to a system."

—Santal Pargana Gazetteer (1910), Page 96

है। सन्ताल परगना में सन्तालों का उल्लेख सबसे पहले मॉंटगोमरी मार्टिन ने किया था। उन्होंने 'ईस्टर्न इण्डिया' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। उस ग्रन्थ में सन्तालों के सम्बन्ध में दो बार उल्लेख आया है। एक जगह पर सौंगताड कहा गया है और दूसरे जगह पर प्रेस की भूल के कारण तौंगताड कहा गया है। पर वास्तव में वह भी सौंगताड ही है। तौंगताड का जहाँ उसने उल्लेख किया है, वहाँ उसने लिखा है—केवल लाखेर दीवानी मे कुछ तौंगताड़ (सौंगताड) जो अपवित्र हैं, उन्हे ही गौ-सेवा करने की अनुमति दी गई है। अत्याचारी-व्यवहार का पहले भयंकर विरोध किया गया। फिर भी उनकी अशिष्टता का हठ बना रहा। मुख्यतः मेरे इस विश्वास का कारण यह है कि वे जादू-टोना में विचार रखने हैं। और, उनके साथ संघर्ष को वे बहुत खतरनाक मानते हैं। सौंगताड जो शुद्ध शब्द तब माना जाता था, उसका प्रयोजन माटगोमरी मार्टिन ने इस प्रकार किया है—"बिहार के सामान्य कृषक अपने कारबार स्वय जमीदारो के एजेण्टो के साथ करते हैं। फिर सोगनाड नाम की असभ्य जन-जाति के लोगों के बीच और इस जिले के लिए बगाल्ली बहुत भागो में ऐसा होना है कि उन लोगो के साथ जो भी कारबार हो, उसके लिए एक तरह का मुखिया नियुक्त किया जाता है।"[१] इससे श्री एस० मैकफर्सन ने संतालों को

---

२. "It is only in Laker dewani that some impure Taungtars have been permitted to work the cow, and the man of which opposition was at first made to such an atrocious innovation, but the obstinary of the bar-

तीन विशेषताएं निकाली है—हिन्दू विश्वासों के प्रति संतालों की उपेक्षा, जादू-टोना में उनका विश्वास और उनका पंचायत जीवन।[१] ये तीनों विशेषतायें आज भी संतालों में किसी न किसी रूप में कम और अधिक पायी जाती हैं।

संतालों के सम्बन्ध में, उनके प्रारम्भिक दिनों की स्थिति का वर्णन बुचानन हेमिल्टन की अप्रकाशित हस्तलिखित सामग्री के आधार पर श्री मैकफर्सन ने लिखा है[२]—"सौंगताड़ एक ऐसी जन-जाति के लोग हैं,

---

barians prevailed. Chiefly, I believe because they were thought powerful in witch craft, and because disputes with such people were considered as dangerous."

—From Montgomery Martin's Eastern India.
(Compiled from Buchanan Hamilton's manuscripts)

२. The first mention of the Santals in the (Santal Parganas) district occurs in Montgomery Martins' Eastern India (Compiled from Buchanan Hamiltan's manuscript) which contains—'The agents of the zamindars and it is only among the rude tribe called Saungtar, and in the Bengalese parts of the district that a kind of chief tenant is employed to transact the whole affairs of the community.— From Bengal District Gazetteers Santal Pargana, (1910). Page-96.

जिनकी भाषा विचित्र है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस जिले के अपेक्षा-

१. "These Passages as Mr. H. Mcpherson, I. C. S. points out, are interesting as they illustrate three peculiarities of the Santals viz—their contempt of Hindu prejudicies, their superstitious belief in witchcraft and their communal system, all of which survive in undiminished strength to the present day."

—From Bengal district Gazetteers, Santal Pargana, Page 96.

२. Further mention about the Santals at this early time has been obtained by Mr. (now Sir) Mc pherson from the unpublished manuscripts of Buchanan Hamilton, in which it is stated. The Saungtars are a tribe that has a peculiar language. So far as I could learn, about five hundred families are now settled in the wilder parts of the district. This, however, is a late event, and they come last from Birbhum in consequence of the annoyance which they received from its Zamindar. The original seat of this tribe, as far as I could learn from

कृत जंगली भागों में सम्प्रति इनके पाँच सौ परिवार बसे हैं। फिर भी यह बात बाद की है और ये पहले पहल वीरभूमि से वहाँ के जमीन्दारों के जुल्मो के कारण यहा आये। जहाँ तक इनलोगों से मुझे मालूम हुआ है, इस जाति का मूल स्थान पलामू और रामगढ है। वे जंगल साफ करने में विशेषज्ञ है। उसे वे खेत में बदलते हैं। पर वे प्रतिफल के रूप में भू-कर देते थे। जब कभी भी भूमि खेती करने योग्य होती है और उनसे परम्परागत भू-कर की माग होती है, वे बंजरभूमि पर, जो किसी दूसरे जमींदार की होती है, जाते हैं। पूरा गाव एक साथ ही चलता है और उनके गाव के मुखिया नये जमीन्दार से सभी के लिए बातें करता है, जितनी जमीन वह जोत सकते थे, उतनी धन-राशि वे कर के रूप में

---

them, is Palamau and Ramgarh. They are very expert in clearing forest and bring them into cultivation, but seldom endure to pay any considerable rent, and whenever the land has been brought into full cultivation and the customary rent is demanded, they retire to the wastes belonging to some other Zamindars. A whole village always moves atonce, and their headman (Manjhi) makes a bargain with the new landlord for the whole agreeing to pay a certain sum for as much land as they can cultivate.

—Page 96-97.

देने को तैयार हो जाते।

सर विलियम हन्टर ने सताल शब्द का प्रयोग किया है। उन्होने 'एनल्स ग्रोफ रूरल बंगाल' में लिखा है "सन् १७६० में भू कर के लिए जो स्थाई बन्दोबस्ती हुई उसके परिणाम स्वरूप जोत का सामान्य विस्तार हुग्रा ग्रौर नीचली भूमि जो जानवरो से भरी हुई थी, उससे मुक्ति के लिए सतालो को भाडा पर लगाया।"[१] ग्रागे चलकर संताल परगना गजेटियर में कहा गया—'१८२७ ई० तक में संताल लोग, गोड्डा सबडिवीजन के बिल्कुल उत्तरी हिस्से तक ग्रग्रसर हो चुके थे, जब कि दामिन–ई–कोह की सीमा मापकर ग्रलग करते समय मि० वार्ड को पतसंडा में तीन ग्रौर बारकोप में सत्ता-स सन्ताल-गांव मिले थे। सन्तालो के बारे में उनके मन में जो धारणायें बनी, वे बडी मनोरंजक हैं। उन्होंने लिखा है—'इस उल्लिखित सीमा रेखा के ग्रन्तर्गत सान्ताड नाम की जाति के लोगो द्वारा सस्थापित दो-तीन बस्तियाँ हैं। ये लोग सिहभूमि ग्रौर उसके ग्रास पास के रहने वाले हैं इनकी रहन-महन ग्रौर रीति-रिवाज एक से हैं। वे किसी खास जाति के लोग नही हैं। ये बहुत गठीले ग्रौर श्रमशील होते हैं।[२]

---

१. The permanent settlement for the land tax in 1790 resulted in a general extension of village, and the Santals were hired to rid the low lands of the wild beasts which, since the great famine of 1769, had everywhere encroached upon the margin of cultivation.—Page 97.

२. "By 1827, the Santals had got as far as

हमने ऊपर देखा है कि मैकफर्सन ने बुचानन के आधार पर संतालो के लिए सौंगताड शब्द का प्रयोग किया है, पर उन्होने अपनी सर्वे रिपोर्ट में संथाल शब्द का प्रयोग किया। उक्त प्रतिवेदन के केवल पारा ६ में ही उन्होने सथाल शब्द का प्रयोग कई बार किया है। उन्होने लिखा है—'सथाल परगना में दामिन–ई–कोह की उत्तरी पहाडी एक रक्षा स्थल है, जहाँ प्राचीन एव शुद्ध रूप सूरिया मलार आदिवासी को स्मृतियाँ सुरक्षित हैं।'[१] पुन. उन्होने संथाल शब्द का प्रयोग कर तेहुए लिखा है—'ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में ये कुछ जंगल और ऊँची

the extreme north of Godda sub-division, Mr. Ward when demarcating the Damin-i-Koh finding three Santal villages in Patsunda and 27 villages in Burkop. His first impression of the Santals are interesting. There are, he wrote, within this described line two or three villages established by the race of people called Sautars. These people are natives of the Singhbhum and adjacents country, their habits and customs are singular. —Page 97-98.

१. "In the Santhal Parganas the northern hills of the Damin-i-Koh are the refuge which has preserved the oldest and purest remnant of aboriginals, the Sauria Malar."

पहाड़ियाँ संथालों के आक्रमण की साक्षी हैं।'[१] उन्होंने फिर संथाल शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा है—'सथाल जो आबादी के सभी वर्गों पर अधिकता से छा गये, इनकी आबादी दामिन-ई-कोह में आबादी की दो-तिहाई थी।'[२] राजमहल और महगाँवा में सथालो को जन-सख्या के कारण का उल्लेख करते हुए उन्होने सन्थाल शब्द का प्रयोग किया है।[३]

---

१. These same forests and uplands in the early years of British domination witnessed the incursion of another unrelated tribe of aborigins, the Sontals who themselves all over the district, finding their way at a length to the eastern hills and confining their predecessors there to the more barren and in accessible fastnesses.

२. The percentage of the Sonthals falls below twenty, into other corners of the district, in the Mahaganwa than of north Godda, which is similar in many respects to the Contiguous portions of Bhagalpur district, and in the Rajmahal thana, which lies east of the hills and dejoins little from the ordinary tracts of lower Bengal.

३. The Sonthals are comparative new com-

उन्होंने अपनी रिपोर्ट में माना है, औरो से संथाल इस जिला (संथाल परगना) में नये आये हैं।

इतना ही नही बगाल सरकार के सन् १८७२ ई० के आज्ञा पत्र (पत्र सख्या ३५२७ ए-४, दिनाक ३० सितम्बर) में भी सथाल शब्द का प्रयोग हुआ है। उसमें लिखा है कि–'पाठशालाओ में बगला, हिन्दी, असामी उडिया अपने-अपने क्षेत्रो में पढ़ाई जायेगी। कुछ जिलो में आदिवासियो को, जहाँ उनकी आबादी अधिक है, और वे लोग अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं, जैसे छोटा नागपुर के कोल और सथाल परगना के सथाल।"[१] नृतत्वशास्त्री पडित सर हर्बट रिस्ने ने अपनी पुस्तक "भारत के लोग" में संताल शब्द का प्रयोग किया है। उन्होने लिखा है—सन्थाल, सावताड,

---

ers, dating from the end of the eighteenth or the begining of the nineteenth century.

—From final report of the survey and settlement report of Santhal Parganas, 1898-1907 by H. Mcpherson, I. C. S.

१. "The only languages to be taught in Pathsalas should be Bengali, Hindi, Assamese, Oriyah in the respective provinces and the aboriginal in the some of districts where their is a large aboriginal population using their own languages as the Kolas of Chhotanagpur, the Sonthals of Santhal Parganah."

द्राविड जातिके लोग है, जो भाषा की दृष्टि से कोलियरन है। वे पश्चिमी बंगाल, उतरी उडीसा, भागलपुर और संताल परगना। स्क्रेफस्डके अनुसार संताल सांवतोड का अशुद्ध रूप है।' स्क्रेफस्ड साहब ने सन्ताल को 'सौंवताड़' शब्द का विकृत रूप माना है।[१] सन्थाल शब्द का प्रयोग सन् १९०३ में बगाल के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर सर ए० पेडलर ने किया है। उन्होंने लिखा है—अन्त में मैं समझता हूं कि हमलोगों को छोटा नागपुर और भागलपुर के उन स्थानो में जहां बगला और हिन्दी नही समझी जाती हैं, वहाँ संताली को स्वीकृत करना पडेगा।'[२] इसी

१. "Sonthal, Sountars, a large Dravidian tribe, classed on linguistic grounds as Kolerian, which is found in Western Bengal, Northern Orissa, Bhagalpur and Santhal Parganas. According to Mr. Skrefsurd the name Santal is a corruption of Sountar."

—Sir Herbert Hope Risley : The people of India. Page 441.

२. "To sum up, I think that we have only to recognise the Sonthali in those places in Chhota Nagpur and Bhagalpur where Bengali or Hindi is not understood."

—Sir A. Peadlar; Director of Education, Bengal : Education Report, 1903.

प्रकार हम देखते हैं कि श्री हर्बट एलिकस्टार्क ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ बंगाल में देशी भाषा की शिक्षा में सताल शब्द को ही प्रयोग में लाया है। उन्होंने लिखा है—'मिशनरी सोसाइटियों के द्वारा जो स्कूल खोले गये, जैसे बर्लिन इभानजीलीकल मिशन, छोटा नागपुर, चर्च मिशनरी सोसाइटी, सन्थाल परगना, उन्हें उदार रूप से सहायता दी गई हैं।[1] भारतीय विद्वानों ने भी सन्थाल शब्द का प्रयोग किया है। स्वामी शिवानन्द तीर्थ ने अपनी पुस्तक नागवंश में सन्थाल शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है—'जब नागवंश के कुछ कुल के लोग पर्वतवास को छोडकर पर्वत-जंगल के समीप ही समस्थल में वास करने के लिए गए तो सन्थाल कहलाए।' डाक्टर मंगलदेव शास्त्री[2] और डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा[3] ने संथाल शब्द को प्रयोग में लाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौंवताड, सन्थाल और संताल—ये तीन

---

१. "Liberal aid had been given to schools opend by Missionary societies, such as the Berlin Evangelical Mission in Chota Nagpur, the Church Missionary Society in Santhal Parganas."

—Herbert Alick Strock : Vernacular, Education in Bengal, 1813-1912, Page 130-134.

२. डाक्टर मंगलदेव शास्त्री : तुलनात्मक भाषा शास्त्र, पृष्ठ २६०

३. डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृष्ठ ३७

शब्दों के प्रयोग हुए हैं। मुझे तो ऐसा लगता है,—सांवताड़ से सामताल हुआ होगा और सामताल से सन्थाल हुआ होगा। अंग्रेजों ने भारतीय उच्चारण करते समय 'थ' को 'त' किया है और संथाल को उन्होंने सताल कहना प्रारम्भ किया। स्क्रेफसड ने 'सन्ताल' को सांवताड़ का विकृत रूप माना है, और सुप्रसिद्ध नृतत्व शास्त्री श्री गोपाल लाल वर्मा ने संथाल का विकृत रूप संताल को माना हैं।

संताल शब्द का प्रयोग कैसे हुआ, इस पर भी विचार करना है। कोल्थान हाड़ाम के कथनानुसार स्क्रेफसड महोदय ने लिखा है—'हाड़ाम को रेयकथा।' उसमे उन्होने लिखा है कि सन्ताल नाम Daoigra Khalak के कारण आया है। इसका अर्थ होता है "गो के मांस का दोना।" सन्ताल नाम क्यों पडा है? स्क्रेफसड साहब ने कहा कि गो मास का दोना ग्रहण करने के कारण पड़ा है। फिर हमें 'हापड़ाम-पुथी' में भी मिलता है कि जब माधो सिंह के डर से संताल पंजाब से भागे तो रास्ते में गो का चमडा टागते आये ताकि माधो सिंह यह समझे कि इस ओर से सन्ताल नही गये हैं।[१] पर वह विचार उचित नही है। श्री डब्लू० बी० ओल्डहम[२] के विचार से यह सन्ताल नाम सामतवाल का

---

१. श्री वालकिशोर बासकी अरमान: संताल संस्कृति पर शोध आवश्यक- प्रकाशका आदिवासी विशेषांक, गणतंत्र दिवस, जनवरी, १६५७ पृष्ठ ६८

२. Mr. W. B. Oldham, C. I. E. is of opinion that the name is an abbreviation of Samanta-wala, Samanta, he says in another name given to Modern Silda Parganas in the Midnapore

संक्षिप्त रूप है। वे कहते हैं कि सामंत मेदनीपुर जिले के आधुनिक सिलडा परगने का दूसरा नाम है; जहाँ से, जैसा कि वार्ड साहब ने सन् १८२८ में पता लगाया है, सन्ताल लोग अपना यहाँ आना बताते हैं। —यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि सिलडा परगने का स्थानीय नाम सामंत भई है, पर सन्ताल लोग उसे सामन्त भुई कहते हैं। उसकी परम्परागत बात यह है कि उस भूभाग का यह नाम इसलिए पडा कि उसे एक सामन्त राजा अर्थात् दिल्ली के बादशाह के सेनापति ने जीता था।

---

district whence the immigrant Santals discovered by Mr. Ward in 1828 deposed that they had come. .... It may be mentioned that the Silda Pargana is known locally as samantbhui, but by the Santals (who elide them) as Santbhui, the tradition being that the country was so called because it was conquered by a Samant Raja I. C. C. general of the emperor of Delhi. There are, moreover, signs of fairly old Santal settlement in the Pargana and around about is a dense population of Santals accounting for over one third of theinhabitants. There is also a tract called Samantbhum In Bankura district which the Santals claim to have colonised.

—गजेटीयर आफ़ दी संताल परगना, पृष्ठ १२०

साथ ही उक्त परगने में काफी पुरानी बस्तियों के चिन्ह भी हैं, और इसके इर्द-गिर्द वहाँ की कुल जनसख्या की एक-तिहाई से ऊपर सन्तालों की घनी आबादी भी है। बाँकुड़ा जिले में भी सामन्तभूम अथवा सांतभूम नामक एक भूभाग है, जिसे सन्ताल लोग अपना निवास-स्थान मानते रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बगाल के सामंतभूम अथवा सौंतभूम के निवासी होने के कारण, जब वे लोग सन्ताल परगना में आये तब उन्हें साँवताल कहा जाने लगा। आज भी हम देखते हैं कि अन्य देश के प्रवासियों को हम, जब उसका हम नाम नहीं जानते हैं, तब उसके निवास स्थान के नाम से पुकारते हैं। नेपाल देश का कोई कर्मचारी रहता है, तो हम उसके नाम से उसे नहीं पुकारते, नेपाली कहकर ही पुकारते हैं। गोरखपुर से बहुतेरे मजदूर काम करने बिहार में आते हैं, उन्हें हम गोरखपुरिया कहकर पुकारते हैं। पर श्री पी० ओ० बोडिंग का दूसरा ही मत था[१]—उनके सम्बन्ध में। उन्होंने लिखा है—'बहुत सम्भव है कि

---

१. "That Sant and Saont are to be derived from the originally sansteking word. Samanta seems to be very probable. There is no doubt that the word itself is of Aryan origin. If a translation of the word is sought, the original meaning would be something like 'border men' but as they have probably got the name in the way mentioned, the meaning

सांत और सावंत की उत्पत्ति (मूलतः संस्कृत) सामंत शब्द से हुई है। निस्सन्देह इस शब्द का मूल आर्य-भाषाओं में है। यदि इस शब्द के अनुसार खोजा जाय तो इसका अर्थ करीब-करीब सीमावासी लोग होगा। परन्तु चूंकि उन्हें यह नाम ऊपर लिखे तरीके से मिला, इसलिए इस शब्द का प्रयोग करनेवालों का जो आशय था, इसका अर्थ वह नहीं होगा, ये सांवतेर हैं।" एक और भी मत हो सकता है, सन्ताल परगना के ही सन्ताल केवल सन्ताली कहलाते हैं, बाकी जगह के सन्ताल इस नाम से नहीं पुकारे जाते हैं। मध्य प्रदेश के सन्ताल आज भी खरवार ही कहलाते हैं। बाबा भागीरथ मांझी ने जब अहिंसात्मक आन्दोलन सन्ताल परगना में आरम्भ किया था, तब उनके आन्दोलन को खारवार आन्दोलन ही कहा गया था। मानभूमि के सन्ताल को 'मान होड', सिंहभूमि के सन्ताल को 'सिंज होड', ध्वालभूमि के सन्ताल को 'धाड़ होड़' तथा मयूरभज के सन्ताल को 'मंज होड़' कहा जाता है और इसी प्रकार सन्ताल परगना के सन्ताल और सातभूम के जो सन्ताल है, उन्हें सात होड़ ही कहा जाना चाहिए था। सन्ताल उनका नाम अंग्रेजों के चलते पड़ा है। यहाँ दो प्रकार के आदिवासी रहते हैं— एक पहाड के ऊपर रहते थे और दूसरे समतल भूमि पर। मलार और सूरायी जाति पहाड पर रहती थी, सांत भूम के सांत होड़ समतल भूमि पर रहते थे। बंगला उच्चारण में उन्हें सामताल कहा गया, जो अंग्रेजी में सावताड़ होगा, वही बाद में सन्थाल हुआ। अंग्रेजी में

---

implied by the users of the word would not be that they are Sountars."

—गजेटीयर आफ दी संताल परगना

हिन्दुस्थान को हिन्दुस्तान लिखा जाने लगा। आज हम हिन्दी में हिन्दुस्तान ही लिखते हैं, इसी प्रकार मेरी समझ से सन्थाल को सन्ताल लिखा जाने लगा।



संतालों की उत्पत्ति

मानव सृष्टि की कहानी प्रायः सभी जाति में एक ही प्रकार की है। हर जाति के पास एक कथा है; उसी को आधार बनाकर मानव-सृष्टि की चर्चा होती है। मानव सृष्टि का आधार लोगों की धार्मिक भावना रही है। धार्मिक तत्वो से पूर्ण मानव-सृष्टि की कहानी रही है। मानव और धर्म का सम्बन्ध कुछ ऐसा रहा है कि बगैर धर्म का मानव का अस्तित्व ही नही माना जा सकता। "आदिवासी जीवन में धर्म और धार्मिक भावनाओ का विशेष महत्व है। प्राकृतिक चेतना के स्पष्टीकरण में जो बातें कही गई हैं, वह काल्पनिक बातें नही हैं। वे ऐसी घटनाएँ नही हैं, जिसकी कोई सम्भावना नही है। वे बातें तो कुछ ऐसी हैं, जिनसे विचार एव अनुभूति के पथ सकेत मिलते हैं। उनसे मानवी-जीवन के तथ्य का आभास हमें प्राप्त होता है।[१]" हम जान पाते हैं—मानव की कथा, उसकी सृष्टि

---

१ "The sacred lore of the tribe is not a fanciful tale told in explanation of natural phenomenon and in explicable events. But a method of expressing certain ways of thinking and

सम्बन्धी तथ्यों का हमें ज्ञान होता है। पर उससे एक अंश भी उत्पन्न होता है। व्यवहार और प्रयोग के कारण धार्मिक भावनाओं से हमारा विचार, हमारी अनुभूति में जब भिन्नता आ जाती है, तब सत्य तथ्यों का दुरुपयोग होने लगता है। धार्मिक भावनाएं मिटने लगती हैं। भौतिक ज्ञान मानव प्राप्त करने लगता है पर वह अपने को खोने लगता है। वह अपने को इतना खो देता है कि उसकी धार्मिक भावना मिट जाती है। मानव-सृष्टि की कहानी उसे काल्पनिक लगने लगती है। उसमें उसका विश्वास उठने लगता है।

सन्तालों की अपनी कहानी है। उनकी सृष्टि कैसे हुई—वह उनकी धार्मिक भावनाओं में लिपटी हुई है। पर उसकी जो जानकारी सन्तालों को पहले थी, वह आज नहीं है। अपनी सृष्टि की कहानी वे भूलते जा रहे हैं। उसकी अपेक्षित जानकारी कुछ वृद्ध व्यक्तियों में है। उनको छोड़कर, किसी को उसके व्यापक स्वरूप का ज्ञान नहीं है, ज्ञान कुछ लोग रखते है, तो वे भी उसकी बाह्य रूप रेखा का। सन्तालों ने अपनी सृष्टि की कहानी अपने लोक-गीतों में व्यक्त की है। शुभ अवसरों पर उसे वे गाते हैं। उससे उन्हें पता चलता है कि मानव की सृष्टि कैसे हुई है। वे गीत प्रायः काको छठिहार के समय गाया जाता है। काको छठिहार सन्तालों के जीवन में बहुत महत्व रखता है। जब तक यह समारोह नहीं होता, तब तक सन्ताल लड़की को न तो शादी हो सकती है, और न मरने पर पर उसका दाह कर्म ही हो सकता है। उस दिन सन्ताल अपने

---

feeling about the faits of life and of regulating human action."

—E. O. James, Comparative Religion, Mathuen, 1938. Page 335.

बच्चे को सन्ताल-समाज की पूरी सफलता देते हैं। उस अवसर पर वे एक गीत गाते हैं। उसमें मानव-सृष्टि की कहानी रखते हैं। वे बच्चे को बताते हैं कि सन्तालो की उत्पत्ति कैसे हुई है। जोमसिम व्रत तथा करमा त्योहार के समय भी वे उक्त गीत को गाते हैं। गाँव के प्रमुख को उक्त धार्मिक गीत को गाना पडता है। आज कल इस गीत को अन्य लोग भी गाते हैं, कारण सभी गाँव के प्रमुख उक्त गीत से अवगत नही हैं। यह स्थिति अच्छी नही है।[१] केवल वे समारोहों में ही अपनी सृष्टि की कहानी को कहते हैं, उनके अन्य रीति-रिवाजो में उसकी अभिव्यक्ति होती रही है। फिर भी ऐसे बहुत कम लोग मिलते हैं, जिन्हें मानव-सृष्टि सम्बन्धी पूरा गीत याद हो, पर ऐसे बहुत मिलते हैं, जिन्हे गीत का कुछ अश याद है। शायद ही कोई ऐसा सन्ताल होगा जो यह गीत न जानता हो।

"हिहिडी मा जेनोम होयतो,
पीपिडी मा गढिलो,
माधोसिंग नो पिडराली जा।
जो, जप, चाय, चम्पा गाडा।"

१ "The village headman has to recite the myth, but not every headman now is capable of doing so. These decay of the ritual is leading to the disappearance of the ancient myth."

—T. W. J. Cushaw : Trible Heritage, London, 1949, Page 64.

अर्थात्—सन्तालो का जन्म हिहिड़ी पिपिडी देश में हुआ था। सन्ताल जाति उसी देश में जन्मी तथा बढ़ी। माधो सिंह के चलते उन्हें जन्मभूमि छोड़कर भागना पड़ा और चम्पागढ़ को चले आये।

सन्तालो को एक गीत और हमने गाते सुना है। उस गीत से पता चलता है कि एक जमाने में सन्ताल पंचनद नामक देश में रहा करते थे— गीत की कुछ कड़ियाँ इस प्रकार की हैं :—

"नुमिम मारांग बान्दा छाड़ा,
चेदाक् पोरायनी पायड़ें रे दो
देलाङ पोरायनी मोड़े नॉय दिसाम ते,
देलाङ पोरायनी दाक् ताला ते।"

अर्थात्— "हे कमल! तुम इतने बड़े तालाब को छोड़कर छिछलेदार पानी में क्यो हो? तुम पंचनद वाले देश पजाब चलो, वही पानी के बीच रहोगे।"

सन्तालो को अभी भी अपनी जन्मभूमि तथा अपनी आदि भूमि से ममता नही छूटी हैं। उनके दिलो में उसकी स्मृति बनी हुई है। 'मोड़े नॉय' का अर्थ होता है—पाँच नदी वाला प्रदेश। झेलम, चिनाव, रावी, सतलज और व्यास—ये पाँच नदियाँ, और उसी देश में वे सन्तालो को चलने के लिए उस गीत के माध्यम से कह रहे हैं। ऐसा लगता है, उन्हें आज भी पंजाब से स्नेह है, उससे सन्तालों का मोह और ममता नहीं छूटी है।

सन्तालो की सृष्टि की कहानी में विभिन्नतायें देखी जाती हैं। पर उन विभिन्नताओ से कहानी के स्वरूप में बहुत अन्तर नही पड़ता है।

तथ्य प्रायः एक ही रहता, पर कहने की शैली में थोड़ा अन्तर आ गया है। श्री बोडिंग महोदय ने श्री एल० ओ० स्क्रीफस्रड की सन्ताली भाषा की पुस्तक जो सन् १८८७ में छपी थी, उसका अनुवाद 'सन्तालों की परम्परायें और संस्थान' के नाम से किया है। उक्त ग्रन्थ में सन्तालों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूरा विवरण दिया हुआ है। सन्त ए० केम्प-बेली ने सन् १९१६ में 'दि जर्नल ओफ बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' में सन्ताल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है। उसी लेख के आधार पर सर जेम्स फ्रेजर ने सन्तालों की सृष्टि पर लिखा है। फ्रेजर के अनुसार सन्ताल की सृष्टि इस प्रकार हुई है[१]—"मानव सृष्टि की संताली कहानी सृष्टि और विकास के संगम हैं। कारण, उसके अनुसार मानव की उत्पत्ति दो मूर्तियो से हुई है, जो मानव की आकृति की मिट्टी की बनी हुई थी। पर बाद में अचानक वे पक्षियो में बदल गईं। उनसे अण्डे हुए

---

१. "This Santal story of the origin of man combines the principles of creation and evolution, for according to it mankind is ultimately derived from two images, which were modelled in human form out of forth or damp clay, but were afterwards accidently transformed into birds, from whose eggs the first man and woman of flesh and blood were hatched."

—T. G. Frazer; Folklore in the old Testament, Macmillan, 1918, Vol. 1, Page 22.

ग्रौर वही ग्रण्डे रक्त ग्रौर मांस सहित ग्रादि नर ग्रौर नारी के रूप में प्रकट हुए।'

सन्तालो के पूर्वजो के कथनानुसार जो विभिन्न विद्वानो ने सन्ताल सृष्टि की बातें ससार के समक्ष रखी हैं, इस प्रकार हैं—

'संसार पहले जलमय था। सर्वत्र पानी ही पानी था। पानी के नीचे धरती थी। पानी के देवता ने ठाकुर से कहा—मानव की सृष्टि होनी चाहिए। ठाकुर को भी यह बात पसन्द ग्रा गई। उन्होंने नदी की देवी मालिनी बुढी को ग्रादेश दिया कि वे दो मूर्तियाँ बनायें। उनके ग्रादेशानुसार मालीन बुढी ने पानी के फेन से दो मूर्तियाँ बनाई। दोनो मूर्तियाँ मानव की ग्राकृति की थी। मूर्ति बनकर सूख भी नही पायी थी कि घोड़े के रूप वाला देवता ग्राया ग्रौर उसने मूर्ति को तोड दिया। ठाकुर ने कहा—उसने डाह से मूर्ति को तोड दिया है। उसने घोड़े की ग्राकृति के देवता की बडी भर्त्सना की। पुनः मूर्तियाँ बनायी गई। उसे सुखाया गया। मूर्तियो के देखते ही जल के ग्रन्दर रहने वाले देवता एवं जानवर सभी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने ठाकुर से कहा—मूर्तियो को प्राण मिलना चाहिए। स्वयं ठाकुर को भी उन मूर्तियो के प्रति एक मोह उत्पन्न हुग्रा। उन्होंने उन मूर्तियों को प्राण देने का निश्चय किया। ग्रपने निवास स्थान से जीवित प्राण-शक्ति लाने को मालिनी बूढी को उन्होंने ग्रादेश दिया। मालिनी बूढी को उन्होंने ग्रागाह कर दिया था कि घर में टगी हुई प्राण-शक्ति को लाना; वही मानव की प्राण शक्ति है। बाहर में जो प्राण-शक्ति टंगी हुई हैं, वे सभी पक्षियो एव जानवरो की है। मालिनी बूढ़ी नारी थी, घर में जो प्राण-शक्ति थी, वे उसके हाथों की पहुँच के बाहर थीं। खाली हाथ वापस ग्राना उसे उचित नहीं लगा। वह ग्रपने

स्वप्न का साकार रूप चाहती थी। वह अपनी मूर्तियों में प्राण चाहती थी। अतः वह बाहर में टंगी प्राण-शक्तियों को लेकर ठाकुर के पास पहुँची। ठाकुर ने उन मूर्तियों में प्राण फूँक दिया। मूर्तियाँ जी उठी। मूर्तियाँ पक्षी बनकर उड़ने लगी। पक्षी के स्वरूप में उन मूर्तियों को देखकर ठाकुर को बहुत दुःख हुआ। मालिनी बूढ़ी को उन्होंने जलाकर राख कर दिया। पानी से ऊपर उठकर वे उड़ने लगे। ठाकुर ने पक्षियों का नामकरण किया। नर पक्षी को हँस कहा गया और नारी पक्षी का हँसनी नाम पड़ा।

"हँस और हँसनी --उड़ते उड़ते थक गये। उन्हें विश्राम के लिए स्थान चाहिए। देवताओं से उन्होंने आग्रह किया। देवताओं ने ठाकुर के सामने बातें रक्खीं। ठाकुर ने धरती बनाने का निर्णय किया। धरती बनाना आसान काम नहीं था। धरती पानी के नीचे थी, उसे ऊपर लाना था। पानी की छाती चीरकर धरती को ऊपर लाने की चेष्टायें आरम्भ हुईं। पानी के अन्दर रहने वाले जानवरों से सहयोग लिया गया। केकड़ा, मगर, मछली, जोंकटी और कछुआ आदि को धरती-निर्माण करने को कहा गया। ठाकुर ने पानी के देवताओं से धरती के निर्माण के लिए कहा था। पर धरती के देवताओं के लिए पानी से ऊपर धरती लाना सम्भव नहीं हुआ। सभी देवताओं ने अपनी असमर्थता प्रकट की। ठाकुर ने सबसे पहले सोस को पुकारा। उससे उन्होंने कहा—'क्या तुम पानी से ऊपर धरती को ला सकते?' उसने जवाब दिया—'हाँ, मैं जमीन को पानी के नीचे से ला सकता हूँ।' उसने प्रयास किया, धरती को लेकर ऊपर आने की उसने चेष्टा की; पर धरती पानी में गलकर पुनः धरती का अंश बन गई। वह असफल रहा। उसकी असफलता के बाद कछुआ ने कहा—'मैं धरती को पानी के नीचे से ला सकता हूँ।' उसे भी ठाकुर ने अवसर दिया। पर उसे

भी सफलता नहीं मिली। जल-मछली को बुलाया गया। उसे धरती बनाने को कहा गया। उसने भी प्रयास किया, पर पानी के प्रवाह में उसका प्रयास बह गया। केकडा ने भी प्रयास किया, पर उसे भी सफलता नही मिली। अन्त में ठाकुर ने जोकटी (चेरा) को बुलाया। उसे भी धरती निर्माण का काम सौंपा गया। ठाकुर को यह ज्ञान था कि जोंकटी मिट्टी खाती है, और मिट्टी का ही वह पैखाना करती है। अतः जो मिट्टी वह ऊपर ले जायेगी, वह पानी में गल नही सकती। जोकटी ने यह काम प्रारम्भ करने के पूर्व ठाकुर से कहा कि—'पानी से ऊपर वह धरती को ला सकती है, पर उसका एक शर्त है—कछुआ को बुलाया जाय, उसके ऊपर एक सोने की थाली रक्खी जाय; वह मिट्टी खायेगी और पानी से ऊपर आकर सोने की थाल में पैखाना करेगी।' इस प्रकार वह मिट्टी को ऊपर लायेगी और धरती का निर्माण हो सकेगा। ठाकुर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कछुआ को सीकड में बाधा गया। देवताओं ने कछुआ के चारो पैरो को बाँध दिया। मिट्टी खाकर जोकटी फेंकती गयी। वह फेंकी हुई मिट्टी कछुआ के पीठ पर सूखकर जमीन होने लगी। जमीन एक समान नही होने लगी। जो जमीन ऊँची हुई, उसे पहाड कहा जाने लगा, जो जमीन समतल थी—वह धरती कहलायी। ठाकुर ने उस जमीन पर घास और वृक्ष पैदा किया।' जब धरती डोलती है, भूकम्प होता है, तब सन्ताल यह मानते हैं कि कछुआ का पैर हिल गया, इसलिए धरती डोलती है। हिन्दू संस्कार में भी यही बात है। शेषनाग के फन पर यह धरती पड़ी हुई है। 'हंस और हँसनी को रहने के लिए वृक्ष मिल गये। उसपर उनलोगों ने खोंता लगाया। उनके खाने के लिए पर्याप्त घास पैदा हो गया था। कुछ काल के बाद पक्षियों के जोड़े ने दो अण्डे दिये।

उन अण्डों से एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई। इनके जन्म से उनके सामने कई समस्यायें उत्पन्न हो गयीं। उन्हें कैसे रक्खा जाय, कैसे पाला जाय; उनके लिए ये चिन्ता के विषय थे। वे चिन्ता में विलाप करने लगे—

"हाय ! हाय !! जालापुरी रे
हाय ! हाय ! तु किन मानेवा
हाय ! हाय ! बुसाडा कान किन,
हाय ! हाय ! उकिन मानेवा
हाय ! हाय ! तोकारे दोही किन
हाय ! हाय ! दो से लावाय वेन,
हाय ! हाय ! माराञ्ज ठाकुर दोर
हाय ! हाय ! बुसाड आकान केन
हाय ! हाय ! नुकिन मानेवा
हाय ! हाय ! तोकारे दोहोकिन"

अर्थात्– जब अण्डे से मानव की सृष्टि हुई, तब दोनों— हँस और हँसनी विचार में पड गये कि उन दोनो मानव को कहाँ रक्खा जाय और उन्हें कैसे रक्खा जाय। अतः वे पक्षी दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं—'हाय, ये दोनों मानव अथाह समुद्र में उत्पन्न हुए। हाय ! उन्हें कहाँ रक्खा जाय। हाय ! ठाकुर जी को खबर दूं कि दो मानव का जन्म हुआ है। हाय ! इन दोनों मानव को वे कहाँ रक्खें।"

हँस और हँसनी—अपने दोनों मानवी सन्तानों के लिए ठाकुर जी के पास गये। उन्होंने ठाकुर जी के सामने अपनी कठिनाईयों को रक्खा, उनसे फरियाद की। उनसे उन्होंने राय मांगी कि वे कैसे उन्हें रक्खें, कैसे

पालन-पोषण करें। ठाकुर जी ने उन्हें हर प्रकार से सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने पक्षियों को रुई दी और उनसे कहा—जो तुमलोग खाते हो, उसी का रस रुई में भिगाकर उनके मुंह में डाल दो। पक्षियों ने ऐसा ही किया। उनका पालन-पोषण इस प्रकार होने लगा। कालक्रम में यह प्रश्न उठा कि उन्हें कहा रक्खा जाय। फिर उन्हे चिन्ता सताने लगी। ठाकुर जी के पास वे पुन: आये। उनके रहने के लिए ठाकुर जी से उन्होने स्थान की माँग की। ठाकुर जी ने उन्हे आदेश दिया कि वे उड़कर देखें कि कही स्थान है या नही। जहाँ स्थान मिले, वहीं इन्हे रक्खे। वे दोनो उड गये—स्थान की खोज की। वह स्थान 'हिहिडी पिपिडी' था। ठाकुर की आज्ञा से दोनो पक्षियो ने अपनी मानवी सन्तान को उस स्थान पर रख दिया। वह स्थान आज बबूल स्थान कहलाता है। बालक का नाम पिलचु हाडाम और बालिका का नाम पिलचु बुडही पडा। वहाँ दोनो को खाने के लिये सुमतु बुकुच् याने सावाँ घास का दाना मिला। उसी दाने को खाकर वे सयाने हुए। पर उन्हे ज्ञान प्राप्त नही हुआ। उन्हे अनुभूति नही हुई। लज्जा की भावनायें उनमें जन्म नहो पायी।

पिलचु हाडाम और पिलचु बुडही का कुशल-क्षेम जानने के लिए ठाकुर ने लिटा देवता को भेजा। लिटा देवता सूर्य्य का देवता कहलाता है। लिटा ने जाते ही उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित किया। उसने अपने को उनका नाना बतलाया। अपने नाती और अपनी नतिनी का कुशल-क्षेम उसने जानना चाहा। उसने उन्हें बताया—जीवन का सुख क्या है। देखता हूँ, तुमलोग अच्छे हो, कुशल से हो, पर तुम्हें आनन्द नही मालूम है। तुम्हें जीवन के सुख का अनुभव नही हुआ है। पोचोई बनाओ, उसे पान करो, वह बहुत मीठा होता है। वह आनन्ददायक होता है। उन्हे लिटा ने

पोचाई बनाने की कला को सिखलाया। उसके पान की क्रियाओं को भी बताया। 'मराङ्ग बुरु' के नाम पर पहले पोचोई को गिराकर पान करना चाहिए, यह शिक्षा लिटा ने उन्हें दी। लिटा उन्हें यह शिक्षा देकर और यह वचन देकर कि वह पाँच दिनो के बाद पुनः उन्हें देखने आयेगा, चला गया। पाँच दिनो के बाद लिटा जब उनके पास आया, तब उनके सामने आने में पिलचु हाड़ाम और पिलचु बुडही को लज्जा होने लगी। पहले वे नगे रहते थे, तब उन्हे अपने शरीर का ज्ञान नही था— तब वे नंगे रूप में लिटा देव के सामने चले आते थे, पर पोचोई पान करते ही उनमें नवीन चेतना आयी। ज्ञान का आलोक उन्हे प्राप्त हुआ। जब लिटा लौटकर उन्हें देखने आया, तब उनमें काफी परिवर्त्तन उसने पाया। उसने उन्हे सलाह दी कि वृक्ष की छाल से अपनी लज्जा को ढँककर वे गुफा से बाहर आयें। छाल से तन को ढँककर वे बाहर तो आये, पर लिटा से नजर मिलाने की शक्ति उनमें नही थी। यौन सम्बन्ध उनमें हो चुका था। तब तक वे उन्हें गलत काम समझते थे। लिटा मे यह बात छिपी नहीं रही। लिटा ने यौन सम्बन्ध की प्रक्रियाओ को मानव-विकास के लिए अनिवार्य बताया। दोनों आनन्द से रहने लगे। कालक्रम में उन्हें सात लडके और सात लडकियाँ हुई। सातो लडकों तथा सातों लडकियो के नाम का पता हमें नही चल सका। सन्ताल उन्हे भूल गये हैं। बड़े लड़के का नाम सोन्डरा, दूसरे का नाम सान्डहोम, तीसरे का नाम चादे, चौथे का नाम माते और सबसे छोटे का नाम आचारे देलहु था। बडी लड़की का नाम छिता, दूसरी का नाम कवरा, तीसरी का नाम हिसि और एक का नाम डुमनी था। बाकी का नाम सन्ताल भूल गये हैं। उपलब्ध साहित्य में भी उनका नाम नहीं आया है। अतः इतने ही नामों से हमें

सन्तोष करना पड रहा है।

लडके और लडकियों को बढ़ते देखकर पिलचु हाड़ाम और पिलचु बुड़ही को चिन्ता होने लगी कि इन लोगों की शादी कहाँ की जाय। आगे चलकर अगर इन्हें यह ज्ञान हो जाय कि वे सब भाई-बहन हैं, तो शादी होने में कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। मानव का विकास ही बन्द हो जायेगा। अतः यह निश्चय किया गया कि पिलचु हाड़ाम लड़कों को लेकर एक दूसरे स्थान पर रहें और पिलचु बुड़ही लड़कियो को लेकर अलग रहें। अलग-अलग रहने से लडकियो या लड़कों को एक दूसरे को जानने या परखने का अवसर नही मिलेगा। ऐसा ही हुआ, लडके बाप के साथ रहने लगे और लडकियाँ माँ के साथ। लडके शिकार खेलते थे, खेत बनाकर जोतते और बोते थे—वे हट्टे और कट्टे हो गये। लडकियाँ माँ के साथ साग-सब्जी खाकर जीवन निर्वाह करने लगी। समय बीतता गया। शैशव से उनमें जवानी आयी, जीवन में बसन्त आया, मादकता आयी। एक दिन लडके अकेले खान्डेराय नामक जंगल में शिकार करने को गये। उसी दिन लड़कियाँ भी सुंकुच वीर से साग लेने गयी थी। पत्ता तोडने के बाद चापा किया नामक बरगत की छाया में जमा होकर बरगत की डाल में झूला झूलने लगी। बाद में वे नाच करने लगी। उस अवसर पर उनके स्वर कण्ठ से यह मधुर गान निकल रहा था—

"मुचको मुंचका माको
दु गुत् दुंगुदोक् नायो।
चापाकिया बाडे लावार
डार रेको दुंगुत् दुंगुदोक्।"

गीत का अर्थ—चापकिया बरगत के वृक्ष के नीचे चिड़ियों की भीड़

लगी हुई है, तथा बरगद की डाली पर मीड़ लगी हुई है।

खण्डेराय जंगल में शिकार करने गये हुए लड़कों ने हरिण को मारा। वे उसे लिये हुए घर जाना चाहते थे। इसी बीच लड़कियों के गीत उन्हें सुनायी पड़े। गीत सुनकर उनकी ओर वे चले गये। वे उनके साथ नाचने लगे। नाचते-नाचते वे उतावले हो गये; बड़ा लड़का बडी लड़की के साथ, छोटा लड़का छोटी लड़की के साथ तथा अन्य लड़के अपने-अपने वयः क्रम के अनुसार लड़कियों के साथ अलग अलग हो गये। बड़ा लड़का और बड़ी लड़की हरिण को देखने के लिये बाहर गये; और बाकी लड़कियाँ वहीं गीत गाने लगी। उनके गीत के बोल थे —

"बाडे लातार लातार ते जेल होपोन।
नायो ! ओले गोदे बोइ बिन्दी जेल होयोन !"

अर्थात् — बरगत के वृक्ष के नीचे हरिण का बचा है, माँ ! देखें ! और जल्द देखें—देखते ही मालूम हो जाता है कि कोई बिन्दी हरिण है।

अलग-अलग जोड़ी लगा कर लड़कियाँ अपनी माँ के पास आयीं। जोड़ियों को देखकर पिलचु बुड़ही बहुत प्रसन्न हुई। उसने निश्चय कर लिया कि जोड़ियों को वैवाहिक बन्धन में जकड़ दिया जाय। माँ के इस निश्चय से लड़कियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होने अपने-अपने साथी युवकों को इस सुसंवाद से परिचित कराया। लड़कों ने जाकर अपने पिता पिलचु हाड़ाम से सारी घटनाओं को विस्तार पूर्वक बताया। पिलचु हाड़ाम को इससे बहुत आनन्द हुआ। उन्होने भी अपने लड़कों की शादी उनके द्वारा चुनी हुए लड़कियों से करने का निश्चय कर लिया। पिलचु हाड़ाम और पिलचु बुड़ही ने मिलकर जोड़ियों को वैवाहिक बन्धन में बाँध दिया। वे एक दम्पति की तरह रहने लगे। अलग-अलग कोठरियों में

उनके रहने की व्यवस्था की गई। उनके लिये सामाजिक नियम बनाये गये। उन नियमो को पालन करने की आज्ञा दी गई। उन्हें शिक्षा दी कि जो सामाजिक नियमो को भग करता है, वह समाज द्वारा दण्डित होता है, मानवी कल्याण का वह बाधक होता है।'



सन्तालों का विकास

सन्तालो के आदि पुरुष और आदि नारी—पिलचु हाडाम और पिलचु बुढ़ही का प्रथम निवास स्थान हिहिडी पिपिडी में रहा था। वही उन्होंने सात लड़को और सात लडकियो को जन्म दिया। कालान्तर में उन्ही सातो लड़को और सातो लड़कियो की शादी हुई। उनके बाल बच्चे हुए। उनकी जनसंख्या में वृद्धि हुई। हिहिडी पिपिडी में उनके निवास स्थान में कमी हो गई। जन-सख्या के अनुपात में उन्हे धरती चाहिए थी। उन लोगों ने धरती की खोज के लिए हिहिडी पिपिडी को छोड़ा, वे हराता आये। हराता आरारात पहाड़ के निकट का स्थान माना जाता है। वहाँ वे कुछ अर्से तक रहे। पर उनके निवास-स्थान की समस्या वहाँ हल नहीं हो पायी। वे धरती की खोज में आगे बढे। वे खोजकमा आये। वहाँ ये काफी अर्से तक रहे। वहाँ उनमें अनेक बुराईयाँ आ गयीं। उनका जीवन वहाँ विलासी हो गया। दिन-रात वे सुरा और सुन्दरियो में रहने लगे। मानव का पतन प्रारम्भ हो गया। उनके जीवनमें लौकिकता के

अतिरिक्त कुछ रह नहीं गया था। पाप की क्रियाएं पराकाष्ठा पर थीं। मानव के इस पतन पर ठाकुर जी को बहुत खेद हुआ। उन्होंने मानव को अभिशप्त किया। प्रलय हो गया। सन्ताल गीतों में उस प्रलय का एक रूप हमें मिलता है—

'एयाय सिञ एयाय जिन्दा सेंगेल दागे हो,
एयाय सिञ एयाय जिन्दा जाड़ाम-जाड़ाम हो,
तोकारे बेन ताहेँ काना मानेवा ?
तोकारे बेन सोरो लेना
मेनाक् मेनाक हाराता हो
मेनाक केनाक बुरू दान्देर हो,
ओना रे लिञ ताहे काना यालिञ दो
ओना रे लिञ सोरो लेन।"

अर्थात्—सात-दिन, सात रात अग्नि-पानी हुआ हो, सात दिन - सात रात छमा-छम होता था, तब हे दोनो मनुष्य ! तुम कहाँ घुसे हुए थे ? हे हे हराता ! हे हे ! उस पहाड की गुफा में हम दोनो छिपे हुए थे।

प्रलय के कारणों पर सन्ताल परम्परा में विशद वर्णन मिलता है। सन्ताल शब्दो में उसका कारण था—"कादा बीट कील लीखे नाको।" इसका अर्थ होता है—तत्कालीन मानव जानवरों के सदृश लैंगिक क्रियायें करते थे। उनकी विलासिता ही उनके पतन का कारण थी। एकबार और एक नर और एक नारी को ठाकुर जी ने हाराता पहाड़ में सुरक्षित रक्खा। वे ही दोनों बचे, बाकी सभी का अन्त उस प्रलय में हो गया। प्रलय के बाद जब पानी बन्द हुआ, अग्नि की वर्षा खत्म हुई, तब दोनो पानी के बाहर आये। उन्हें अपने किसी सम्बन्धी से भेंट न

हुई। उन्हें कोई मानव दिखायी ही नहीं पड़ा। उन्होंने गिरे हुए एक भैंस को देखा और एक लकड़ी के नीचे दबे हुए गाय को पाया। गाय का एक भाग जलकर खत्म हो गया था, दूसरा भाग अच्छा था। उस स्थिति का वर्णन हमें उनके गीतो में इस प्रकार मिलता है—

" हुमे हुमे हो, गाय मा काडकेला
डिगीरे डिगीरे हो बिन्धाडेन वितकील।"

गाय को निकालने के बाद वे दोनो हारात में ही रह गए। वहाँ दोनों के बाल बच्चे हुए, उनकी संख्या में वृद्धि हुई। हारात में उतनी धरती न रही, जितनी धरती की उन्हें अपेक्षा थी। अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए सांसङ्ग बेड़ा गये। काबुल देश के दक्षिण में जो पीत सागर है, उसे ही सासङ्ग बेड़ा' माना जाता है। उस स्थान की धरती भूरी रंग की थी और वहाँ के बालू का रंग पीला था। 'सांसङ्ग-बेड़ा' का अर्थ यह लगाया जाता है—पीत सागर की तलहटी। लोगो का अनुमान है कि वह स्थल ' मेसोपोटामीया ' का वह स्थल है, जो ट्रिग्रस और यूफ्रेटस के मध्य में पड़ता है। उस स्थल में वे काफी दिनों तक रहे। वही वे गोत्रों में विभाजित हुए। वहाँ वे सात ही गोत्र में बँटे थे—किसकू, मुंमू, हेम्ब्रम, सोरेन, हंसदा, मारण्डी, टूडू, यही उनका मूल गोत्र बना। बाद चलकर पाँच गोत्रों में और वे बँटे। उनके पाँच गोत्रों का नाम इस प्रकार है—बासकी, बेसरा, चौड़े, पूरियाँ और बेदिया। उपलब्ध साहित्य से यह पता नहीं चलता है कि बाद में गोत्रों के जो पाँच और विभाजन हुए—वे कहाँ पर हुए हैं। साहित्य मौन है, सन्तालों को इसकी समुचित जानकारी नहीं, पर इतना तो सत्य है कि ' सांसङ्ग बेड़ा ' में इन पाँचो गोत्रों का विभाजन नहीं हुआ था। वे बहुत बाद के विभाजन है। जाति में और गोत्रों में

विभाजित होने के बाद सन्तालों के पूर्वजों ने अपने पशुबल से तथा अपने विवेक से दूसरों पर आधिपत्य जमाया था। ईसाई ग्रन्थों से पता चलता है कि इस क्षेत्र का पहला प्रशासक 'निमरोद' था। उसने 'बेबीलोन' नगर को बसाया था। बेबीलोन सभ्यता का उसे पिता माना जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सन्तालो के पूर्वजों और निमरोद के वंशजों में उस क्षेत्र के आधिपत्य के लिए संघर्ष हुआ होगा। ईसाई ग्रन्थों में निमरोद के वंशजों का विस्तृत उल्लेख नही मिलता। ये ग्रन्थ उनके संबंध में मौन हैं। ऐसा लगता है कि सांसङ्ग बेड़ा में सन्तालो के पूर्वजों ने उन्हें दबाकर उस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। सांसङ्ग बेडा में सन्तालो के पूर्वजों की जो कृतियाँ हैं, वे आज भी सन्ताली लोक गीतो में उल्लिखित हैं। ईसाई ग्रन्थो से इतना तो पता चलता ही है कि निमरोद के वंशज अपने घर बेबीलोन को छोड कर दूसरे स्थान में चले गये। सन्तालों के पूर्वज वहाँ आकर बस गये, वहाँ उन्होने शासन किया। वहाँ उन्हें एक नयी सभ्यता मिली। उससे वे बहुत प्रभावित हुए थे। सन्ताली लोक-गीत में हम पाते हैं—

हिहिड़ी पिपिडी रे बोन जानाम लेन,
खोज कामान रे बोल खो लेन,
हारा रे बोन हारा लेन,
सांसाङ्ग बेडा रे बोन गातेना हो।

अर्थात्--एक सन्ताल गीत में कहता है कि 'हिहिडी पिपिडी में हम लोगों ने जन्म लिया, खोज कामान में हम लोग नष्ट हुए, हारात में बसे और पुन: सांसङ्ग में हम लोग गोत्र में बँटे।' 'सांसङ्ग-बेड़ा' में काफी अर्से तक रहने के बाद, आबादी काफी हो जाने के कारण, उन लोगों ने उस स्थान

को छोड़ दिया, और जरपी देश में चले गये। अनुमान किया जाता है कि जरपी देश पारस देश का कोई अंचल होगा। वहाँ से भी कुछ दिन रहने के बाद वे लोग काइराडा देश में चले गये। काइराडा देश, अनुमान है, अफगानिस्तान देश रहा होगा। वहाँ वे लोग काफी दिनों तक रहे। वहाँ से वे लोग कन्दहार आये। वे लोग जहाँ भी गये, अपने साथ बेबीलोन-सभ्यता को लेते गये। हर स्थान में उन्होंने नगर बसाया, दुर्ग बनाया घरों के दीवालों पर चित्रकारी की। सन्तालों के पूर्वजों ने बेबीलोन-सभ्यता की सुरक्षा की थी, उसे उन्होंने विकसित किया था, उसे व्यापक बनाया था। सन्ताली लोकगीतों मे इस प्रसंग का व्यापक उल्लेख मिलता है—

चेते लागित् मापाक् काना कोइ डा को
धांव धाव कान्दाहारी रे ?
चेते लागित् गोपोच् काना बादोलो को
धाव धांव कान्दाहारी रे ?
सिमा लागित् मापाक् काना कोइ डा को
धांव धाव कान्दाहारी रे ?
हान्डी लागित् गोपोच् काना बादोलो को
धाव धांव कान्दाहारी रे ?

अर्थात्—कोइएडा सब किस लिए मार काट कर रहे हैं। कन्धार में किस लिए इतनी भीड़-भाड़ है। किस लिए एक दूसरे को कन्धार में मार रहे हैं ? कन्धार में धायें-धायें कोइरडा की सीमा पर मार-काट किस लिए कर रहे हैं ? धायें-धायें कन्धार में जगह के लिए मार काट कर रहे हैं।

"तिरी हो ! बिजू निङगाल को रेङगेच्एन,
तिरी हो ! बारेब को तेताड़ेन
तिरी हो ! कान्दहारी रे
तिरी हो ! निन्दीया को तुरीच नारांड़
तिरी हो ! सेटेराको बान्दी होडो
तिरी हो ! कान्दाहारी रे।"

प्रर्थात्—मेरी माँ भी गरीब हो गई। भाई-भाई भी पियासा कन्धार में बेन,

"बेरेद् बेरेद् बेरेद् गातेब हो।
चिरगाल चिरगाल चिरगाल मेसे गातेब हो।
कोइन्डा को मापाग् काना गोपोच् गातेब हो।
बादोली को मापाग् गोपोच् कान ! हो गातेब हो।
चेते लागिद् मापाग् काना ? गातेब हो।
चेते लागिद् गोपोच् काना ? गातेब हो।
चेते लागिद् लेपेद् काना ? गातेब हो।
चेते लागिद् लेपेद् गोपोच् कान हो गातेब हो।"

प्रर्थात्—हे मित्र शीघ्र उठो और सावधान हो जावो कोइंडा लोग मार काट कर रहे हैं तथा बादोली लोग संहार कर रहे हैं।

हे मित्र वे लोग क्यों मार काट कर रहे हैं तथा आपस में क्या युद्ध कर रहे हैं।

सिमा लागिद् मापाक् काना गातेब हो।
डान्डी लागिद् गोपोच् काना गातेब हो।
कोइन्डा को लेपेद् काना गातेब हो।
बादोली को लेपेद् गोपोच् काना हो गातेब हो।

कोइएंडा, कन्धार और बादौली तीनों जगहों के सम्बन्ध में अनुमान है कि अफगानिस्तान में पड़ता है। अफगानिस्तान में इन नगरों के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य आरम्भ हो गया है।[१] कहा जाता है कि इन स्थानों में संतालों के पूर्वजो को सदैव संघर्ष करना पड़ा था। उन्हें शांति पूर्वक नहीं रहने दिया गया था। संघर्ष में काफी संतालों के पूर्वज मारे गये थे। संताल शांति चाहते थे। शांति पूर्वक रहने के लिए वे अपने बाल बच्चों के साथ पूर्व की ओर चल पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि वे चीन और तिब्बत में जाकर बसेंगे। पर मार्ग में अनेक बाधायें आयीं। हिमालय की ऊँची चोटियों को पार करना और घने जंगल से जाना आसान नहीं था। अतः उन्होने अपना निश्चय बदल दिया। वे भारत में आये।



१.University Museum of the University of Pennsylvania and the Kabul Museum in Afganistan will institute a research this summer (1953) for the lost cities of ancient Afganistan.

The expedition will seek long buried evidences of a pre-historic civilization about which almost nothing is known.

—The Indian Nation, dated 7. th. April, 1953.

भारत में सन्तालों का आगमन

संतालों के पूर्वजों को, जब कोइरुडा, कन्धार और बादोली में, वहाँके निवासियोंने शांति पूर्वक रहने नहीं दिया तब वे उन स्थानों को छोड़ कर भारत आये। पंच नदियों के देश में वे आये। पंजाब को वे आज भी अपना पवित्र स्थान मानते हैं। उनके उपलब्ध लोकगीतों में पंच नदियों की महानता उल्लिखित है। पंजाब में पहुँचने के लिए दो प्रवेश द्वार मिले। पहले का नाम उन्होंने 'सिन दुवार' और दूसरे का 'बांही दुवार' बतलाया है। लोगों का अनुमान है कि एक खैबर पास है और दूसरा बोलन पास है। " सिन दुवार " के पास पहुँचने पर चट्टान उनका बाधक हो गया। उसे तोड़कर अन्दर आना उनके लिए कठिन मालूम होने लगा। पर उन लोगों ने साहस नहीं खोया। उनके दो साहसी युवकों ने यह निश्चय किया कि चट्टानों को तोड़ कर वे मार्ग बनायेंगे। एक का नाम था- जोहान पाथिका और दूसरे का नाम था- कमीकरण। दोनों साथी थे, शक्तिशाली थे और थे धुन के पक्के। उन्होंने तीर-धनुष से उस पत्थर की चट्टान को मार कर टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया। पत्थर की छाती को तोड़कर सन्तालों के क्रमवर्ती पूर्वजों ने भारत में आने के लिए एक प्रवेश द्वार बनाया। प्रवेश द्वार पार कर वे अन्दर आये। ' बांही दुवार ' में भी ऐसी स्थिति का उन्हें सामना करना पड़ा। वहाँ भी पत्थरों के द्वारा उन्हें रास्ता बन्द मिला। लौट जाना भी उनके लिए आसान नहीं था। पार करना तो उनके लिए कठिन पड़ रहा था, असम्भव-सा लगता था। ' बाही दुवार ' वाले लोगों ने भी पत्थर से लड़ना निश्चय किया। पत्थर की चट्टानों को वे पराजित करेंगे—उनके दो

नवयुवकों ने यह नारा दिया, जिनमें एक नवयुवक का नाम उलूमा पर्यिका था और दूसरे का नाम भालूआ विजयी था। चट्टानों से संघर्ष मोल लेना बच्चों का खेल नहीं था। प्राणों की बाजी लगाकर उन्होने पत्थरों से संघर्ष किया। पत्थरो की हार हुई, सन्तालो के पूर्वजो ने बाजी मार ली। पत्थरो ने आत्म समर्पण किया। उन्होने तीर-धनुष से प्रवेश द्वार बनाया। जिस प्रकार सिंह दुवार से कुछ सन्तालो ने प्रवेश किया था, उसी प्रकार से अन्य सन्तालो ने 'बांही दुवार' से प्रवेश किया। इन दोनो प्रवेश-द्वारों से वे चम्पा देश में आये--पाँच नदी वाले देश में आये। वहाँ उस समय वीर होड रहा रहते थे। हो सकता है, उन्हे उन लोगो से संघर्ष भी करना पड़ा हो। वे लोग भी बहुत साहसी थे। उपलब्ध साहित्य उनके संबन्ध में मौन है। मुझे ऐसा लगता है कि वीर होड़ लोग सन्तालो के आने पर अपनी धरती को छोड़कर अन्यत्र चले गये होगे। चम्पा में उनकी आबादी बढ़ी। उनका क्षेत्र व्यापक हुआ। पूरे सिन्धु घाटी की भूमि पर उनका विस्तार हो गया। सिन्धु घाटी का नीचला अचल, जो आज 'सिन्ध' है, उस समय 'चई' कहलाता था, उसे भी सन्तालो के पूर्वजो ने अपने कब्जे मे किया। वे अपने पूरे क्षेत्र को 'चई चम्पा' कहते थे। उन्होंने अपने को १२ गढो मे बाँट दिया। प्रत्येक के लिए अलग-अलग दुर्ग बनाया गया। शत्रुओ से अपनी रक्षा के लिए ऐसे दुर्ग बनाये गये थे। सन्ताल अपने साथ बेबीलोन-सभ्यता लेते आये थे। यहाँ पर उस सभ्यता में काफी परिवर्द्धन और संशोधन हुआ था। अब तक जहाँ-जहाँ रहे थे, उससे अधिक अवधि में सन्ताल इस क्षेत्र में रहे। उन्होने अपनी स्थायी निवास भूमि इस क्षेत्र को बनाया। वे तब तक उस भूमि में रहे, जब तक आर्यों का प्रवेश उस भूमि में नहीं हुआ। सन्तालो परम्परा में कहीं-कहीं सात

नदियो का उल्लेख मिलता हैं। वे सात नदियाँ इस प्रकार है—सिन्धु, झेलम, चेनाव, रावी, ब्यास, सतलज और घाघरा। चम्पा को वे सन्ताली भाषा में ऐसी नई 'डीसोम चम्पा' कहते हैं। इसका अर्थ होता है—सात नदियो का देश चम्पा। सिन्धु नदी महान नदी है। झेलम, चेनाव, रावी, ब्यास, सतलज उसकी सहायक नदियाँ हैं। घाघरा नदी भी उसकी ही एक सहायक नदी मालूम पड़ती है, जो बाद में सूख गई। बाद के सन्ताल साहित्य में पाँच नदियो का ही उल्लेख मिलता है। सन्तालों की परम्परा से यह ज्ञान होता है कि वे तब तक उस धरती पर रहते है, जब तक उस धरती में उत्पादन की शक्ति रहती हैं। जब धरती की उत्पादन शक्ति कम होने लगती है, तब वे उस स्थान को त्याग देते है। सन्ताल परम्परा में, उनके लोक गीतों में, 'हरिहाट' केट मारचाकेडाको, शब्द कई बार देखने को मिले हैं , इसका अर्थ होता कि वे वहाँ तब तक रहे, जब तक धरती की उत्पादन शक्ति में ह्रास नही आया। 'चयी चम्पा' की भूमि में उत्पादन शक्ति काफी थी। सात नदियाँ उसे सींचती थी। उसे उर्वरा बनाये हुई थी। यही कारण था, सन्तालो के पूर्वजो ने जमकर वहाँ निवास किया।

चयी चम्पा में १२ दुर्ग का उन्होने निर्माण किया, और प्रत्येक गोत्र के जिम्मे एक-एक दुर्ग को सौंपा। यही कारण है, प्रत्येक गोत्र को अपना अलग-अलग गढ़ था—अपना दुर्ग था। उसकी सुरक्षा का भार उनपर था। चम्पागढ़ मुर्मू गोत्र को मिला था। कोइरण्डा गढ़ के मालिक किस्कू थे, खायेरीगढ़ हेम्ब्रम गोत्र के अधीन था, बादौलीगढ़ मारण्डी गोत्र के लोगों के जिम्मे था। सीमगढ़ के स्वामी टुडू थे। उनके अन्य गढ़ों का नाम इस प्रकार मिलता है, चयीगढ़, खेन्दारीगढ़, कोकरागढ़, धूनिसागढ़,

लायोगढ़, तेलांग गढ़ और तीलायी गढ़। सबसे महत्वपूर्ण गढ़ उनका चम्पागढ़ था। उसका क्षेत्र व्यापक था। उसका निर्माण कलात्मक ढंग से किया गया था। उसका सौन्दर्य और उसका वैभव सन्ताल साहित्य में भव्य ढंग से वर्णित है।

इस क्षेत्र में प्रत्येक गोत्र को केवल अलग-अलग गढ़ ही नही मिला। उनके कामों को भी वर्गीकृत किया गया। मुर्मू को पुरोहित का काम दिया गया। उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन करना था। वे बहुत श्रद्धा से समाज में देखे जाते थे। उन्हें ठाकुरजी का प्रतिनिधि माना जाता था। उन्हें संताल श्रद्धा से मुर्मू ठाकुर कहा करते थे। किस्कू के जिम्मे प्रशासन का काम था। वे राजा माने जाते थे। किस्कू गोत्र के ही लोगो को राजा बनाने का उनका नियम था। इस नियम को वे भंग नही करते थे। बहुत सम्मान के साथ सन्ताल उन्हें किस्कू राजा के नाम से पुकारते थे। हेम्ब्रम गोत्र के लोग बुद्धिजीवी थे। वे किस्कू राजा के सलाहकार होते थे। वे उनके मन्त्री का काम करते थे। प्रशासन के सुचारू रूप से संचालन के लिए फौज का रहना अनिवार्य होता है, विशेष कर जब शत्रुओं की आशंका बनी रहती है। सोरेन गोत्र को सैनिक का काम दिया गया है। गढ़ों की सुरक्षा का काम उनके जिम्मे था। अच्छी अर्थ व्यवस्था ही सफल प्रशासन का आधार होती है। सन्तालों ने सन्तुलित एवं अच्छी अर्थ-व्यवस्था के लिए अर्थ को मारण्डी गोत्र के लोगों के जिम्मे किया। वे व्यापारी थे और वे राजा के बैंक। राजा को जब धन की आवश्यकता होती थी, वे उसे पूरा करते थे। राज्य-सेवकों का वेतन वे देते थे। टुडू के जिम्मे लोहार का काम दिया गया था। वे सैनिकों के लिए तीर-धनुष बनाते थे। अन्य गोत्रों को इसी प्रकार

और काम सौंपे गये थे। 'बीर होड़' जो सन्तालों के पूर्व पंजाब में रहते थे, पराजित होने के बाद सन्तालों के दास हो गये। उन्हें किस्कू राजा का सभी काम करना पड़ता था। उन्हें राजा के हाथी और घोड़ों की देखभाल करना पड़ता था। सन्ताली परम्परा में एक लोककथा है, उससे पता चलता है कि राजा किस्कू के हाथी ने एक बार रस्सा तोड़कर खेतों को बर्बाद कर दिया। खेत की बर्बादी राष्ट्रीय क्षति मानी जाती थी। राष्ट्रीय क्षति पहुँचाने वालों को सन्ताल काफी कठोर दण्ड देते थे। हाथी की देखभाल करने की जिम्मेवारी 'बीर होड़' के ऊपर थी। उन्हें ऐसा लगा कि उनकी लापरवाही के कारण हाथी ने रस्सी तोड़कर खेत को बर्बाद किया है। अतः उन्हें दण्डित होना पड़ेगा, इसलिए वे सब घरबार छोड़कर किस्कू राजा के डरके मारे भाग गये। रास्ता में 'बीर होड़' की किसी महिला को एक बच्चा हुआ। उस बच्चे को पत्तों के नीचे छिपा कर वे चलते बने। किस्कू राजा को जब सारी बातों का पता चला, तब 'बीर होड़' को दण्डित करने के लिए उन्होंने आदमी भेजा। सैनिक भेजे गये, पर उन्हें 'बीर होड़' नहीं मिल सके। मार्ग में उन्हें वह बच्चा मिला। बच्चा देखने में बहुत सुन्दर लगा। उसे लेकर वे वापस आये। किस्कू राज-परिवार में वह बालक पलने लगा। उसकी जाति का कोई पता नही था—अतः उसका नाम माधो सिंह रक्खा गया। आज भी पंजाब में कुछ आदिवासियों की उपाधि सिंह है। माधो सिंह बहुत ही शक्तिशाली निकला। वह साहसी, शीलवान और वीर था। वह चाहता था सन्ताल कुमारी से शादी करना। संताल अपनी जाति से बाहर अपनी लड़की देना अपमान मानते हैं। तब का नियम तो और भी कठोर रहा होगा। संताल अपना प्राण दे सकता है, पर अपनी लड़की की अपनी जाति से

बाहर शादी नही कर सकता है। माधो सिंह को अपनी लड़की देना वे अपना अपमान मानते थे। माधो सिंह से यह बात छिपी नहीं रही। उसे बहुत क्रोध हुआ। उसने निश्चय किया कि वह बलात् किसी संताल कुमारी से शादी करेगा। संताल कुमारियों से बलात् शादी करना आसान काम नही था। माधो सिंह जानता था कि किसी संताल कुमारी के सर पर बलात् सिन्दूर लगाने से वह उसकी पत्नी बन जाती है। उसे उस पुरुष के साथ पत्नी बन कर रहना पड़ता है। पर साथ ही साथ संतालो मे यह नियम था कि वह अगर उस पुरुष के साथ रहना पसन्द न करे तो वह उसको त्याग सकती है। माधो सिंह को समाज में एक स्थान प्राप्त था। राज-परिवार में वह पला था। बुद्धि और बल के चलते राजा का दीवान हो गया था। सत्ता पर उसका रोब-दाब था। फिर भी संतालो ने निश्चय किया कि वे मिट जायेंगे, पर अपनी बेटी उसे नहीं देंगे। माधो सिंह से संघर्ष करना उनके लिए आसान नही था, अतः उन्होंने अपनी धरती को त्याग दिया और माधो सिंह के डर से नीचले भाग में चले गये। कुछ लोग वहाँ रह गये हैं। कहा जाता है, उस चम्पागढ में अभी भी कुछ संताल लोग हैं। पंजाब में संतालो की कुछ आबादी मिलती है, वे सभी उनके ही वंशज हैं। संताल के समान काला रंग के वे नही हैं, उनका रंग काश्मीरी लोगों के समान गोरा है। उन्हें संताल नही कहा जाता है। संतालो को, जो संताल परगना के बाहर बिहार में ही हैं, संताल नही कहा जाता है। पर हैं वे उनके ही वंशज। बताया जाता है, कुछ वर्ष पूर्व कुछ संताल उस क्षेत्र में गये थे। उनलोगों ने अपनी भाषा में उनलोगों को बोलते सुना। उन्हें पहले तो विस्मय हुआ, पर बाद में उन्हें यह बताया गया कि उनके पूर्वज संताल ही थे। वे भी संताल

ही है। ईसाई मिशनरी से प्रकाशित कुछ ग्रन्थों में ऐसी बातों का उल्लेख मिलता है। श्री कुमार ने संतालों के इतिहास में इस घटना का उल्लेख किया है। उनसे पंजाब से लौटे हुए एक संताल ने स्वयं ऐसा कहा था।

पंजाब से भाग कर चलते–चलते नर्वदा के आस-पास की जगह में वे रहे। नर्वदा के पास की भूमि से उनके द्वारा प्रयोग में लाये गये अस्त्र मिले हैं। वे अस्त्र कुछ ऐसे ही पाये गये हैं, जिन्हें सन्ताल लोग ही प्रयुक्त करते थे, और जातियो के पास ऐसे अस्त्र नही थे। वही से पूर्व की ओर चलते-चलते छोटा नागपुर की ओर वे चले गये। कहा जाता है कि सन्तालों का चम्पागढ़ हजारीबाग में था। उसी चम्पा देश में उन्होने राज भोग किया। चम्पा की कहानी लेकर काफी विवाद हुआ। उस विवाद पर यहा प्रकाश डालना उचित नही है और न उसका कोई औचित्य ही है। माधो-सिंह की जो कहानी ऊपर आती है, वह भी हजारीबाग की ही कहानी है; हजारीबाग के चम्पा से ही सन्तालो को उसने भगाया था। चम्पा राज्य भागलपुर में भी था। वहां के लोग जावा और सुमात्रा में जाकर व्यापार करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मेगास्थनिज भारत आया था। उसने भी भागलपुर स्थित चम्पा को देखा था। उसने उसका उल्लेख किया है। उस चम्पा की सीमा लखीसराय से राजमहल तक बतायी जाती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि सन्तालों को नाम बहुत प्रिय थे। आज भी हम देखते हैं कि अपने पूर्वजो के नाम पर अपने बाल बच्चो का नाम वे रखते हैं। ऊपर पंजाब में उनके बारह गढ़ों का नाम आया है। उनमें हम देखते हैं कि जिन स्थानोपर वे रह रहे थे उन स्थानो के नाम पर अपने गढ़ों का नामकरण उन्होंने किया था। चम्पा उनका बहुत प्रिय नाम रहा होगा। चम्पा का वर्णन उनके साहित्य में विराट् रूप से हुआ है। उसकी तुलना वे देवपुरी से

करते थे। ग्रतः जहां-जहां गये होंगे, वहां-वहां चम्पा नाम का नगर बसाया होगा। यही कारण है, चम्पा नाम के कई नगर हमें मिलते हैं। पर वास्तविक बात तो यह है कि उनका चम्पा पंजाब में ही था। पंजाब को छोडते समय अपने साथ वे उसकी स्मृति लेते गये होंगे ग्रौर जहां वे बसे होंगे, वहां का नाम चम्पा दे दिया होगा। कन्धार से एक ही बार सीधा तो वे छोटानागपुर नहीं ग्राये होंगे। बीच-बीच में उनका ठहराव हो गया है। रामायण-काल में उनका निवास स्थान मध्य प्रदेश में था— ऐसा पता चला है। श्री गोपाल लाल वर्मा की धारणा है कि सन्तालों के चम्पा की सीमा लखीसराय से राजमहल तक रही थी। उन्होंने मुझे सम-झाने का ग्रसफल प्रयास किया था। उस सम्बन्ध में उनका कुछ निबन्ध भी छपा था। सन् १३५३ के बाद मुहम्मद तुगलक के सैनिकों के सरदार इब्राहिम ग्रली के कारण सन्तालों की बड़ी क्षति हुई थी। वे बहुत सताये गये थे। गंगा के उस पार मुसलमानी राज्य कायम हो चुका था। गंगा के उस पार की भूमि को मलेच्छों की भूमि कहा है। उस पार जाना वे पाप समझते थे। उनका इस सम्बन्ध में एक लोक गीत है।

हजारीबाग में चम्पा नगर का उल्लेख मिलता है। वहां से हिन्दुग्रों ने संतालो को निकाला था। १८ वी सदी के ग्रन्त में उसी ग्रोर से सन्ताल सन्ताल परगने में ग्राये थे। २०० वर्ष पूर्व के जिस चम्पा में ग्राये थे, मेरी समझ में नही ग्राता कि वे कैसे उसे भूल जाते। हजारीबाग का जो इतिहास हमें मिलता है, उसमें चम्पागढ़ का उल्लेख नहीं है। हजारीबाग के चम्पागढ़ से निकाले गये थे— यह उनके एक लोक गीत से पता चलता है, कोई सन्ताल ग्रपनी बहन को सान्त्वना दे रहा है —

"दादारे इन्दान सिंग मान्दान सिंग
दादारे गेना कान्दो न रिकजो
वाहिन गे हांथे का संखा बेचोड
वाहिन गे काते का सोनां बेचोड़
वाहिन गे ताव होंना लेवो चम्पागढ़।"

अर्थात्—इन्दन सिंह और मन्दन सिंह चम्पागढ़ के पराजित होने पर बहन से कहते हैं कि हे बहन! तुम रोओ मत, चम्पागढ़ प्राप्त करने के लिए हम हाथो का शांखा बेचेंगे, कान का सोना बेचेंगे। हमलोग, हे बहन! चम्पागढ़ फिर लेंगे।

मेरा निश्चित मत है कि उनका चम्पागढ़ असल में पंजाब में ही था। वहांसे हटने के बाद वे जहां-जहां बसे वहां-वहां चम्पागढ़ का निर्माण किया। अंग देश की राजधानी जो चम्पागढ़ था, उससे उसका सम्बन्ध नहीं था। उसका उल्लेख वायु-पुराण तथा ब्रह्म-पुराण में आया है। उनसे ज्ञात होता है कि एली वंशी राजा पुरूरवा के पुत्र ययाति भारत वर्ष के प्रथम चक्रवर्ती राजा हुए थे। ययाति के चौथे पुत्र अणु थे, जिनके पुत्र शिवि थे। शिवि के भाई तितिक्षु ने वर्तमान मुंगेर तथा भागलपुर में एक राज्य अंग के नाम से स्थापित किया था और चम्पा नगर बसाया था। अतः सन्तालों के चम्पागढ़ से उसका सम्बन्ध जोड़ने का कोई अर्थ नहीं है।

सन्तालो ने चम्पागढ़ में एक राज्य व्यवस्था को जन्म दिया था। राज्य तंत्र शासन व्यवस्था होते हुए भी उन्होंने अपने राज्य को प्रशासन की दृष्टि से अंचलों में विभाजित किया था। प्रत्येक अंचल में परगनायात रखे जाते थे; जो अच्छे प्रशासन एवं जन-कल्याण के लिए राजा के समक्ष उत्तर-दायी थे। वे कर को मांझियों से वसूल कराते थे। मांझी गांव के प्रमुख होते

थे। उनके आदेश पालक गोडयत होते थे। राजतन्त्र तो न रहा, पर वह व्यवस्था आज भी सन्तालों में है।



सन्तालों का आर्यों से सम्बन्ध

वैदिक कर्मकाण्ड में जिन्हें विश्वास नहीं था, जो उसे नहीं मानते थे, उसमें आस्था नहीं रखते थे–वे सभी व्यक्ति आर्यों की दृष्टि में अनार्य थे। ऐसे व्यक्तियों के लिए उनका एक व्यापक शब्द था—असुर। असुरों का उल्लेख आर्यों के ग्रन्थों में बहुत आया है। वेदों में उनका उल्लेख है। आर्यों के पहले भारत भूमि में संताल आये थे। उन्हें आर्यों ने असुर कहा है, दस्यु कहा है। वैदिक साहित्य, ब्राह्मण साहित्य और महाकाव्य-साहित्य में काफी सामग्री है, जिनके आधार पर यह माना जा सकता है कि वे लोग भारतवर्ष में बाहर से आये थे। भविष्य पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि असुर नमकीन सागर के पार से आये थे। सागर का जल नमकीन होता है, अतः नमकीन सागर के पार का उन्हें बताया गया है। उनके स्वरूप एवं आकृति के वर्णन करते हुए उन्हें "हिराम हस्ताः असुराः" कहा गया है। उन्हें सोने के हाथ वाला कहा गया है। सोना का रंग पीला है। संताल परम्परा के अनुसार वे पीत सागर से आये थे, उनका रंग हो सकता है— पीला ही पहले हो, बाद में भारतीय जल-वायु के कारण उनका रंग काला हो गया हो। आगे उसी ग्रन्थ में उनके रंग के सम्बन्ध में कहा गया है—वे शुभ्र रंग के थे। शुभ्र का अर्थ होता है—

सफेद। सफेद रंग का अर्थ हम गोरे रंग से ही लेते हैं। कहा जाता है कि असुरों का उल्लेख वेदों में हीन दृष्टि से ही आया है। पर यह बात सत्य नहीं है। अनेक देवताओं के लिए भी श्रद्धा से असुर शब्दों का प्रयोग हुआ है। वरुण को असुर की उपाधि से विभूषित करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है—

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भीणन्ति।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि जन्म विश्णूमृधः शिश्रयो जीवसेनः।

[ऋग्वेद २ : २८ : ७]

अर्थात्—हे वरुण, हमलोगों को मत मारो; अपने उन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग मत करो, जिन्हें तुम पापियों पर करते हो। तुम्हारे प्रकाश से हम दूर नहीं रहें, हमलोगों के शत्रुओं का अन्त करो, ताकि हमलोग रह सकें।

इन पंक्तियों में वरुण को असुर माना गया, और उन्हें शत्रुनाशक के रूप में ग्रहण किया गया है। सूर्य्य देव के लिए भी ऋग्वेद में असुर शब्द का प्रयोग हुआ है। कहा गया है—

"हिरण्य हस्तो असुरः सुनीथः सुमृलीव स्ववां यात्वर्वाङ्।
अपसेधन्नक्षसो यातुधानान् अस्थाद्देवः प्रतिदोषः गृणानः।

[ऋग्वेद १ : ३५ : १०]

अर्थात्—सोने के हाथ वाला देव शक्ति, जो अच्छा पथ दर्शक है, जो भव्य है, कल्याण कर्त्ता है, तुम आओ। राक्षसों एवं शोषणकर्त्ताओं को भगाते आओ। देव! विपरीत परिस्थिति में तुम्हारा उदय होता है, जो मंगलकारी है।

इन पंक्तियों में सूर्य देव को असुर कहा गया है। यहाँ असुर का अर्थ है—विशाल धन के स्वामी। आग देव के लिए भी असुर शब्द का प्रयोग

इस रूप में किया गया है—

"त्वमग्ने रुद्रो असुरो महोदिवस्त्वं शर्धोमारुतं पृक्ष ईशियो।
त्वंवा तैररूणैर्यासि शंगयस्त्वं पूवा विधतः पासित्मना: ।"

[ऋग्वेद २: १: ६:]

अर्थात्— 'हे अग्निदेव ! तुम्ही रुद्र हो ! देवलोक के असुर हो। पवन के तुम अतिथि हो ! तुम पालक शक्ति हो ! तुम्हारी ज्योति रंगीन वायु के साथ जाती रहती है वह हमलोगों के घर में आनन्द लाती है। अपने आराधकों की तुम अपनी शक्ति से, सुरक्षा करते हो, तुम धन्य हो।' यहां अग्निदेव को असुर रूप में शत्रु नाशक एव मंगलकर्त्ता के रूप में याद किया गया है। इतना ही नहीं अग्नि वैश्वानर का भी असुर ही के रूप में उल्लेख किया गया है —

"पिता यज्ञानमसुरो विपश्चिता विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्।
आविवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भदन्ते धामभि: कविः।"

[ऋग्वेद ३: ३: ४]

अर्थात्— हे यज्ञों के पिता; जो अराधना करते हैं, उनके तुम महाप्रभु हो। अग्नि यज्ञों के नियम और परिचायक है। तुमने संसार में दो स्वरूपो में प्रवेश किया है। अनेक लोगों का प्यारा सन्त अपने प्रारम्भ में ही गौरवान्वित होता है।

यहां अग्नि वैश्वानर को शक्ति प्रदत्ता देव के रूप में, असुर की उपाधि देकर स्मरण किया गया है। ऋग्वेद में असुर शब्द का प्रयोग १०५ बार अच्छी भावनाओं से किया है। फिर भी ऋग्वेद में असुर शब्द का प्रयोग १३ बार हीन भावनाओं के रूप में आया है। ऋग्वेद में हम देखते हैं कि असुरों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है। वैदिक आर्यों ने

उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। वरुण असुरों के देवता थे। वे उनके पथ-दर्शक देव थे। आज भी सन्ताल गीतों में वरुण को याद किया जाता है। विश्वमित्र उनके पुरोहित थे। असुरों ने उन्हें अपना सेनापति बनाया था। समुद्र सन्ताली तत्वों का द्योतक है। वैदिकी आर्यों ने सन्तालों से संघर्ष किया। पर असुरों को वे आसानी से हरा नहीं पाये। कारण सन्तालों पर वरुण देव की कृपा थी। वरुण ने मायाविन के रूप में माया शक्ति को प्राप्त कर सन्तालों को योगदान दिया था। यही कारण था, सन्तालों ने वैदिक आर्यों का बहादुरी के साथ सामना किया था। देवासुर संग्राम हुआ था। आर्यों ने अपने को देव माना था और सन्तालों को असुर। पहले आर्यों की हार हो गई। पर बाद में आर्यों की जीत हुई। असुरो ने अपनी सैनिक कला को भुला दिया था। उनमें विलासिता आ रही थी। वे आरामतलबी हो रहे थे। हजारों की सख्या में सन्ताल मारे गये। वे इतना दबा दिये गये कि उन्हें सर उठाने का साहस पुनः नही हुआ। यह संघर्ष एक-दो वर्ष नही चला। सैंकडो वर्षों तक चलता रहा। वैदिक संस्कृति तथा असुर संस्कृति में जब युद्ध हुआ, तब असुरो के प्रति दुर्भावनायें उत्पन्न हुईं। पातञ्जलि ने उन्हें "मृध्रावाचः" कहा। यह शब्द उन्होंने इसलिए उनके लिए प्रयोग में लाया था कि उनकी भाषा, जो वे बोलते थे, बोधगम्य नही थी। व्याकरण की उसमें त्रुटियाँ थीं। अतः उन्हें 'म्लेच्छ' कहा गया। देवासुर संघर्ष में असुर 'हे अरयः, हे अरयः' का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते थे, वे "हेलयो, हेलयो" शब्दों से पुकारते थे, जो अशुद्ध उच्चारण था। इन सब कारणों से पातञ्जलि ने संतालों के पूर्वजों को पूर्वदेव ही कहा है। बाद में, देवासुर संग्राम के बाद उनके लिए हीन बोधक शब्दों का प्रयोग हुआ है। संघर्ष के बीच संतालों पर आर्य संस्कृति

का प्रभाव कम नही पडा। उनके लोक गीतों में तथा उनकी लोक कथाओं में इसका विस्तृत उल्लेख मिलता है। ईसाई मिशनरी ने गोविंदपुर के दुर्लभ मुमूं नामक एक संताल के कथन को इस प्रकार अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है[१] जिससे ज्ञात होता है कि संतालो पर आर्य-सभ्यता का पूर्ण प्रभाव जम गया था।

'पिलचु हाड़ाम और पिलचु बुड्ही के बड़े लड़के का नाम था- करमू सोन्डरा सीन और उनकी बडी लडकी का नाम था- हिसी। उन्हें दो लडका हुआ। एक का नाम कारमू था और दूसरे का नाम धर्मू था। कारमू हाँसदाक गोत्र के थे और उनके ममेरा चाचा किस्कू राजा और धनी मारण्डी थे। किस्कू चम्पागढ में रहते थे और मारण्डी सीरूलागढ़ में। दोनों गाँवो में सीता-नाला नदी बहती थी। स्नान करने और पीने का पानी लेने के लिए दोनो गाँव के लोग उस नदी को जाते थे। एक दुलहिन को लेकर उनमें झगडा हो गया। झगडा में किस्कू ने कारमू और धर्मू के पिता को जान से मार डाला। इसके बाद दोनो को अभावो से संघर्ष करना पडा। एक दिन भिक्षा मागने के लिए घर से निकले, कम्पानगर में माँगते हुए चले गये। वे नदी के तट पर पहुँचे। करमा वृक्ष के नीचे धर्मू सो गया। उसे नींद आ गई। उस नदी का नाम था तटी भारी। यह वह स्थान था जहाँ मराङ्ग बरु ने सबसे पहले कपडा का वस्त्र तैयार किया था। उसके नीचे उसको एक बाँध बाँधना था। वह स्थान सादोचार घाटी कहलाता था। उसके ठीक नीचे उन्होने स्नान किया था। इसलिए वह स्थान स्नान-स्थान के नाम से पुकारा जाता है।

१. W. J. Culshaw: Tribal Heritage, A study of the Santals, London. 1949. Page 115 to 120.

उक्त वृक्ष के नीचे से करमा गोसाईं प्रकट हुए। धमूं को स्वप्न में उन्होंने दर्शन दिया। स्वप्न में उन्होंने धमूं से कहा— हे धमूं, करमा वृक्ष लगाओ। उसके पत्ते से बाजा बनाओ। उसके नीचे नतमस्तक हो; उसे तीन बार श्रद्धा से प्रणाम करो। उसके बाद परिक्रमा करो। नदी के पास एक गाय बछिया के साथ मिलेगी। पत्थरों के नीचे कपड़ा मिलेगा; वहाँ एक बाँसुरी मिलेगी। उन सभी चीजो को यहाँ लाओ। धमूं ने जाग कर उस स्वप्न को मूर्त्त रूप देना आरम्भ किया। करमा वृक्ष को उसने रोपा। उसने देखा एक गाय अपने बछड़े के साथ उस स्थान पर खड़ी है। उसने पत्थर से कपड़ा लाया और माथे पर बाँधा और गाय को लिए वह घर वापस आया। जब वह घर पहुँचा, तब उसकी मां ने उसे कुछ हल्दी और पानी एक बर्त्तन में लाने को कहा। उसने पानी से गाय के पैरों को धोया। इसके बाद उसे उसने बांध दिया। इसके बाद धमूं प्रत्येक दिन गाय के लिए नदी जाता था। वह करमा के वृक्ष रोज रोपता था। उसके चारो ओर परिक्रमा करता था। करमा गोसाईं ने उस परिवार को आशीर्वाद दिया। परिवार की वृद्धि हुई। सुख और शांति मिली। उनके पशुधन में वृद्धि हुई। वे धनी हो गये। एक दिन मां ने आकर कारमू और धमूं से कहा— करमा उनके घर के छत्ता पर उगा है, भण्डार में धान के बीज उग रहे हैं; चावल के नीचे दूबी घास बढ रहा है, पूर्णिमा के तीन दिन बाकी हैं। उस दिन करमा को घर के सामने रोपो। और सभी पड़ोसियों को उस दिन अपने यहां आने को निमन्त्रण दो। जब गाव के सभी लोग जमा हो गये, धमूं ने करमा के दो वृक्ष रोपे। दो कुमारी लड़कियो ने उस स्थान को गोबर से लीपा। तीन बार धमूं ने परिक्रमा कर करमा की पूजा की। उसकी मां थाली में

कुछ चावल, कुछ दूबी घास, घी, हल्दी में रंगा हुआ कपड़ा का टुकड़ा लायी। करमा वृक्ष पर करडा चढ़ा दिया। उसने भी तीन बार उसकी परिक्रमा की और घर वापस चली आयी। बाद में मां और दोनों भाईयों ने कहा— हमलोगों ने करमा रोपा है। पर हमलोग नाचें कैसे। उन्होंने यह गीत गाया —

हनुमान जो मारी बेरे पुता कि नाहे कारावे
हनुमान जो मारीवो गो आयो चाम छुलावो
चामा जो छुलावे रे पूता कि नाहे कारावे
चामा जो छुलावो गो आयो मादोले छावावो
मादल जो छावा बेरे पुता कि नाहे कारावे,
मादोल गो घवाघो गो आयो कारामे गाड़ाबो
काराम जो गाडा बेरे पुता कि नाहे नाचावे
काराम जो गाडावो गो आयो गोडेत निफूर डान्ही माथायेत्

अर्थात्— 'हे पुत्र! हनुमान को मार कर क्या करोगे ?
माँ हनुमान को मार कर चमड़ा छुड़ायेंगे।

चमड़ा छुड़ा कर क्या करोगे ? चमड़ा छुड़ाकर मा मादर बनायेंगे। हे पुत्र, मादल बनाकर क्या करोगे ? हे मा मादल बनाकर काराम गाड़ेंगे। काराम गाड कर पुत्र कैसे नाचोगे? मा! काराम गाडकर, मा! पैर में तथा माथा में नूपुर बाँध कर नाचेंगे। उनलोगो ने रात भर गीत गाया और नाचा। वो कुंआरी लड़कियां करमा वृक्ष की शाखाओं को एक झरना के पास ले गयी, जो गांव के बाहर था और उनको झरना के पानी में प्रवाहित कर दिया। उन्होंने स्नान किया और घर वापस आ गये।

कपड़ा गाँव के एक गरीब को दे दिया। धमूँ प्रतिदिन करमा के चारों ओर परिक्रमा करता था। पशु के पालन की ओर अपेक्षित ध्यान वह नहीं देता था। इससे कारमू उससे नाराज रहा करता था। उसने एक दिन करमा के वृक्ष को उखाड़ फेंका। इस घटना के बाद भाग्य ने पलटा लिया। वे ऐसे गरीब हो गये कि एक धनी के यहाँ मजदूरी करने लगे, उसके खेतो में धान रोपने लगे। उन्हें मजदूरी में जो मिलता था, वह भी लापता हो जाता था, उन्हें कुछ नहीं मिल पाता था। उनका मालिक उन्हें कल अधिक मिलेगा—ऐसा आश्वासन देता था। क्रम से तीन दिनों में ऐसी घटना घटी। भाइयो को क्रोध हुआ। उन्होने निश्चय किया कि जितना धान उन्होने रोपा है, उसे उखाड़ फेंका जाय। जब ऐसा करने जा रहे थे, तब उन्हें एक वृद्ध व्यक्ति मिला। उसने उन्हें ऐसा करने से रोका। उसने कहा—ऐसा करने से प्रभु रंज होंगे। तुमलोगो पर जो घटनायें घट रही हैं, वह तुमलोगो के पापो के कारण। करमा गोसाईं की अर्चना करो। उन्हें तुमलोग समुद्र के किनारे पाओगे। वे कौड़ी के रूप में मिलेंगे। उनके पास जाओ और उनकी आराधना करो। स्मरण रखना, वहाँ और भी पवित्र आत्माएँ मिलेंगी, उनकी पूजा मत करना; दोनों भाइयों ने अपने निश्चय को बदल दिया। वे उस वृद्ध आदमी से और जानकारी प्राप्त करना चाहते थे, पर तब तक वह वृद्ध व्यक्ति लुप्त हो गया। उन्हें ऐसा लगा कि कन्दू देव स्वयं उपदेश देने आये थे।

वे करमा गोसाईं की खोज में निकले। वे एक गाँव में आये, और एक वृक्ष के नीचे ठहरे। गाँव का नाम उजारकी था। करमू ने धमूँ से कहा—गाँव से कुछ खाना मांग कर लाये; उसे भूख लगी है। धमूँ गाँव

में गया और वहाँ से कुछ अन्न लाया, पर उसमें केवल मोठा ही मिला। उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्हें दुःखित देखकर वृक्ष ने जानना चाहा कि वे कहाँ जा रहे हैं। जब उनलोगो ने वृक्ष को बताया कि वे करमा गोसाँई के पास जा रहे हैं, तब वृक्ष ने करमा गोसाईं के लिए एक सन्देश दिया। उसके नीचे रत्न गड़ा हुआ है, वह उनकी रक्षा करते हुए थक गया है। वे दोनों भाई अजय जंगल में आये। वहाँ उन्होंने एक गाय और एक बछड़ा को देखा। आम के वृक्ष के पास गये। करमू ने धर्मू से कहा—आम लाओ, भूख मिटे। आम धर्मू ने लाया, पर उसमें कीड़े होने से वे खा नहीं सके। वे झालदा गाँव में गये, उन्हें एक धनी व्यक्ति से भेंट हो गई। जब उसे मालूम हुआ कि वे करमा गोसाईं की खोज में जा रहे हैं, तब उसने करमा गोसाईं से यह कहने को सन्देश दिया कि विशाल सम्पत्ति की देखरेख करने में वह असमर्थ है। खजीपुर में उन्हे एक धनी से भेंट हो गयी; वह पशु धन का धनी था। जब उसे मालूम हुआ कि वे लोग करमा गोसांई के पास जा रहे हैं, तब उसने कहा कि करमा गोसांईं के पास उसका यह सन्देश पहुँचा देना कि वह पशुधन की रक्षा करने में अपने को असमर्थ पा रहा है। अन्त में उन्हें करमा गोसाईं कौडी के रूप में मिले। उन्होंने दोनो भाइयो को अन्य देवताओ को प्रणाम करने को कहा। दोनो भाइयों ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि वे तो उनकी आराधना करने आये हैं। करमा गोसाईं से उन्होंने अपनी भूलें कहीं और क्षमा मांगी। करमा गोसाईं ने आशीर्वाद दिया। उन्होने दोनों भाइयों से कहा—'बगैर गाँव वालो की सलाह के कोई काम नहीं करना; प्रत्येक दिन करमा रोपो और कोई पाप न करो। तुम्हारा दिन पहले सा-हो जायेगा। उन्होने दोनो भाइयो से कहा कि जिन व्यक्तियो ने उन्हें सन्देश

देने को कहा है, उनसे वे कह देंगे कि वे अपने धन को ब्राह्मण या किसी वैष्णव को दे देंगे, तब उनका कल्याण होगा, भाग्य खुलेगा। वे घर वापस आये और मार्ग में उन व्यक्तियों को करमा गोसांई का सन्देश दिया कि करमा गोसाईं ने कहा है, वे अपना धन किसी ब्राह्मण या किसी वैष्णव को दे दें। उन व्यक्तियों ने इन भाइयों को कहा—वे ब्राह्मण या वैष्णव कहाँ पायेंगे। तुम्ही दोनो भाई मेरे लिए ब्राह्मण और वैष्णव हो। हमलोगो के पास जो कुछ है, तुमलोग लेते जाओ। इस प्रकार उन्हें मार्ग मे काफी धन मिला। घर पहुँच कर उन्होंने वैसा ही काम किया, जैसा करमा गोसांई ने उन्हे करने को आदेश दिया था। उन्होने करमा वृक्ष को रोपा और इस प्रकार वे पुनः धनी हुए। अपने विवरण को अन्त करते हुए दुर्लभ मुर्मू ने कहा— 'इस प्रकार वे अब करमा को नही रोपते, पर आज भी सरत मास की पूर्णिमा को बहुतेरे गांव में करमा रोपा जाता है। वे इसलिए रोपते है कि करमा गोसाईं ने उन्हे रोपने का आदेश दिया था।

आर्यों का प्रभाव सन्तालो पर कैसा पडा था— इस कथन से स्पष्ट हो जाता है। मुझे तो ऐसा लगता है, सन्ताल और आर्य संघर्ष करते-करते जब थक गए होंगे, तब वे एक साथ रहने लगे होंगे। आर्यों के वैदिक धर्म का उन पर प्रभाव इस प्रकार पडा। बाद में तो आर्य और सन्ताल एक दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बटाने लगे थे। उनके बीच से शत्रुता मिट गई थी, उनमें भाईचारा का भाव देखा गया था। सन्तालों का अन्य आदिवासियो के साथ संघर्ष हुआ था। जब आर्य अन्य आदिवासियों से लड़ रहे थे— तब सन्तालों ने आर्यों का साथ दिया था। सबसे बड़ा उदाहरण त्रेता युग का है। सन्तालो ने रावण का नही, राम का साथ दिया

था। त्रेता युग में एक तरफ सन्तालों ने दूसरा चम्पागढ़ बनाकर फिर अन्य गढ़ में अपने को वर्गीगत कर रखा था ; वही हम देखते हैं कि आर्य भी कई जातियों में बँट गये थे, जमुना और गंगा घाटी की जमीन में आ बसे थे। आधुनिक अवध में कौशल नरेश थे, उत्तर बिहार में विदेह राजा थे। उसी प्रकार के और भी अन्य आर्य राज्य थे। कोशल राजा के पुत्र रामचन्द्र थे और विदेह राजा की पुत्री सीता थी। दोनों की शादी हुई थी। आर्य लोग उपजाऊ भूमि पर रहते थे। सिंधु, जमुना और गंगा की घाटी उत्पादन के लिए बहुत प्रसिद्ध थी। आर्य लोग उसी भूमि में रहते थे। सन्ताल लोग उन दिनों जंगल के बीच नया चम्पागढ़ बसाकर रह रहे थे। दोनो अपने क्षेत्र में रहते थे— किसी दूसरे से उनका मतलब नहीं था। उनकी अपनी समस्या थी, उन्हीं समस्याओं में वे उलझे हुए थे। सन्तालों के पूर्वज निषाद दास भी कहलाते थे। सन्ताली परंपरा से यह ज्ञात होता है कि त्रेता काल में सन्ताल गंगा के दोनो तटों के अधिकारी थे। गंगा के आर-पार जाने में वे कर लिया करते थे। सन्ताल परम्परा कहती है— 'सेदेय जुगरी गान नाये, ओन परोम ओन परोम् दोखोव् टे ही कानता लिया' अर्थात्—प्राचीन काल में सन्ताल गंगा के दोनों पार के मालिक थे। सन्तालों के पूर्वज निषाद दास का ही उल्लेख रामायण में आया है, संताल ऐसा मानते हैं।[१] रामायण के अयोध्या काण्ड में *राम-निषाद-मिलन तथा भरत-निषाद-मिलन* का वर्णन आया है। यह बहुत ही रोचक है। राम के प्रति संतालों की भक्ति भावना जो व्यक्त हुई है, वह अपूर्व है।

---

१. **Shree J.Sorkar Soren, The Adibasi, Past and Present, page 70.**

भरत जी समाज के साथ राम से मिलने जंगल आ रहे थे। निषादराज को आशंका हुई कि भरत जी राम जी पर आक्रमण करने आ रहे हैं। पर उन्हें रामजी से लड़ने के पूर्व निषादों से याने सन्तालों से लड़ना पड़ेगा। उसने अपनी जाति वालों से कहा— सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हाथों में कर लो और फिर उन्हें डुबा दो और सब घाटों को रोक दो। उसने आदेश देते हुए कहा—

" समर मरन पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छन भंगु सरीरा।
भरत भाई नृपु मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइअ मीचू।"
स्वामी काज करिहउँ रन रारी। जस धवलि हउँ भुवन दस चारी।
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें।
साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न देखा।
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू।"

युद्ध करने के पूर्व निषाद राजा भरत से मिले। मुनीश्वर वशिष्ठ जी ने बताया कि निषादराज राम जी के सहयोगी हैं। इतना सुनते ही निषाद राज को भरत जी ने अपने अंकवार में ले लिया। सन्तालों ने राम जी की बनवास की अवधि में बड़ी सेवा की। उन्हें सन्तालों ने सहयोग दिया। शबरी को भी सताल अपने ही खेरवार वंश का मानते हैं।[१] शबरी ने राम को भोजन कराया था— यह रामायण से हमें मालूम होता है। जब सीता हरण को लेकर राम और रावण में संघर्ष हुआ, तब संतालों ने राम का साथ दिया और रावण से वे लड़े। जब युद्ध के बाद वे वापस आये, तब लक्ष्मण ने उन लोगों को पंचायती व्यवस्था का आदर्श बतलाया

१. Trimothy Tilkai Murmu; The Adibasi; Past and Present; page. 81.

ग्रौर पंचायती समाज में रहने की शिक्षा दी।

महाभारत में भी संतालो के पूर्वजो की कहानी ग्रायी है। महाभारत की कहानी द्वापर की है। द्वापर युग में संताल दूसरा चम्पागढ बनाकर जंगल में रह रहे थे। उनके सरदार का नाम था– हिराएयधनुवा। वह बहेलिया था। एकलव्य उसी का लड़का था। वह जंगल में रहता था पर धनुर्विद्या में जो ख्याति उन दिनो द्रोणाचार्य को मिली थी, उससे वह परिचित था। वह भी धनुर्विद्या सीखना चाहता था। उसे जब यह ज्ञात हुग्रा कि द्रोणाचार्य कौरव ग्रौर पाराडवों के शिक्षक हैं, तब वह हस्तिनापुर के लिए चल पड़ा। वह हस्तिनापुर पहुँचा। राजकुमारों से भेंट हो गई। वे एक चिड़ियाँ पर निशाना लगाना चाहते थे, पर निशाना लग नही रहा था। एकलव्य ने उसे एक ही वाण से मार दिया। यह देखकर राजकुमारों को उसके प्रति विद्वेष हुग्रा। जब उन्हें मालूम हुग्रा कि एकलव्य उनके गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखने के लिए ग्राया है, तब उन्होने एकलव्य को गलत बातें बता दी। ग्राचार्य द्रोण का नियम था कि वे प्रातःकाल किसी व्यक्ति का दर्शन नही करते थे। राजकुमारो ने एकलव्य से कहा कि ग्राचार्य से मिलने का उत्तम समय है प्रातःकाल। एकलव्य ग्राचार्य के दर्शन के लिए प्रातःकाल उनके निवास स्थान पर गया। ग्राचार्यजी ने जगते ही उसे देखा—उन्हें एकलव्य पर बहुत रंज हुग्रा। जब उन्हें यह मालूम हुग्रा कि एकलव्य संताल है–ग्रनार्य है, तब उन्हें ग्रौर भी क्रोध हुग्रा। उन्होने एकलव्य को ग्रपना शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया। एकलव्य घर वापस ग्रा गया। पर उसका उत्साह नही गया। जंगल में ग्रपनी राजधानी चम्पागढ़ में द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर उसके समक्ष धनुर्विद्या सीखने लगा। उसमें लगन थी। शीघ्र ही धनुर्विद्या में वह

पंडित हो गया। एक दिन अचानक द्रोणाचार्य उस जंगल में चले गये। उन्होंने देखा–एकलव्य उनकी मूर्त्ति बनाकर धनुर्विद्या सीख रहा है। उन्हें आश्चर्य से अधिक विस्मय हुआ कि बगैर शिक्षक के वह प्रशिक्षण ले रहा है। एकलव्य ने अपने गुरु को पहचान लिया। उसने उनका सम्मान किया। उसने द्रोणाचार्य से कहा– यद्यपि उन्होंने उसे शिष्य के रूप में ग्रहण नही किया है, तथापि उन्हें ही अपना शिक्षक मान कर वह धनुर्विद्या ले रहा है। द्रोणाचार्य ने यह निश्चय कर लिया था कि अर्जुन से बडा इस जगत में धनुर्विद्या में कोई नही रहेगा। पर उन्होंने देखा एकलव्य अर्जुन से भी आगे बढ रहा है। अतः उन्होंने गुरुदक्षिणा में एकलव्य से उसके दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लिया। एकलव्य ने उन्हें अपना अंगूठा काट कर दे दिया। एकलव्य को सन्ताल अपना मानते हैं। उन्हे एकलव्य पर गौरव हैं। वे उस पर अभिमान करते हैं।[1]

१. It is hard to ascertain to which of the Kherwar tribes Eklabya did belong. The auothor is of the opinion that he belonged to the Santhals, for the name of "Loba" is common among the Santhals. There are other good reasons besides this and they will be mentioned in their appropriate places later. Never mind all the Adivasis of the Kherwar Race should now be proud of Eklabya, for he belonged to none but to the Kherwar Race.
Trimothy Tilkai Murmu. The Adibasi. page 89

रामायण और महारत के बाद भी सन्तालों का जीवन शान्त रहा। उन्हें संघर्षों का सामना नहीं करना पड़ा। सन्ताली परम्परा से ज्ञात होता है कि कई शताब्दियों तक सन्तालों और आर्यों में कोई संघर्ष नहीं रहा। वे एक मित्र के समान रहते थे। सन्ताल भी हिन्दुओं के देवी-देवताओं को मानने लगे थे। राम उनके आराध्य बन चुके थे। मुझे तो ऐसा लगता है कि उनका आर्यकरण भी उन दिनों होने लगा था। अनार्य सभ्यता पर आर्य सभ्यता एवं आर्य संस्कृति की छाप साफ थी। ईसा के जन्म के ६०० वर्ष पूर्व का प्रामाणिक इतिहास अभी तक हमें उपलब्ध नहीं हुआ है। अतः आर्यों के इतिहास के आधार पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। पर सन्ताल संस्कृतियाँ भी उसके सम्बन्ध में मौन हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हजारों वर्षों तक सन्तालो और आर्यों में संघर्ष नहीं हुआ था। पर बाद में वह स्थिति नही रही। स्थिति में परिवर्त्तन हुआ। दोनों जातियो में संघर्ष हुआ। सन्तालों की परम्परायें कहती हैं— बाद में हम लोगो का उनके (आर्यों के) साथ कई सघर्ष करने पड़े और आज तक भी उनके साथ सम्बन्ध नही हो सका है।[1] पर मौर्यों के पूर्व आर्यों से सन्तालों का सघर्ष हुआ है, ऐसा एक भी प्रमाण नही मिलता है। मौर्यों एव गुप्त काल में सन्तालो के क्षेत्रो के स्वामी आर्य हो गये थे। सघर्षों के बाद हो सकता है, सन्तालो ने आत्मसमर्पण किया हो; पर इतना तो माना ही जाता है कि उस काल में भी सन्तालों को पूरी स्वतन्त्रता थी।

---

१. " But afterwards we had many wars against them; and we have no peace with them. P.o. Bodding; The traditions and Institutions of Santhals, page 11.

मौर्य एवं गुप्त सम्राटों के आधिपत्य को स्वीकार करते हुए, वे स्वतन्त्र थे।[१] पुष्यमित्र (ईसा के पूर्व १८४-१४६ वर्ष), समुद्रगुप्त (ई० ३२६ से ३७५ ई०) और कुमारगुप्त (ई० ४१३-४५५) ने अश्वमेध यज्ञ किया था। अपने को उन लोगों ने चक्रवर्ती राजा घोषित किया था। सन्तालों ने भी उनका आधिपत्य स्वीकार किया था।

गुप्त राज्य के पतन के बाद आर्यों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। यह सत्य है, एक बार हर्षवर्द्धन ने आर्यों की खोई हुई शक्ति का संचय किया। सभी शक्तियों को शक्ति के द्वारा एकता के सूत्र में बाँधा; पर उसके मरते ही पुनः वही स्थिति आ गई। हर्षवर्द्धन का देहान्त क्या था, भारतीय गगन से आर्य संस्कृति एवं आर्य राज्य का भाग्य-सूर्य का अस्त होना था। काफी अर्से तक अन्धकार फैला रहा। राजपूत शक्तियाँ प्रकाश में आयीं। उन्होंने अपनी - अपनी शक्ति का एक ऐसा परिचय दिया कि इतिहास में राजपूत-युग के नाम से एक अध्याय ही खुल गया। राजपूत-युग भारतीय इतिहास में ई० ७०० से ११०० तक के बीच की अवधि में रहा। अशांति संघर्ष एवं अव्यवस्थायें— इस युग की विशेषताएँ रहीं थीं। सन्तालोंने खुलकर और अप्रत्यक्ष ढंग से भी संघर्ष किया था। ऐतिहासिक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि सन्तालों से जो संघर्ष हुआ है, उसका कम अंश ही शक्ति द्वारा हुआ है। कुछ संघर्षों में शक्ति का प्रदर्शन दोनों की ओर से हुआ था; पर उन संघर्षोंका व्यापक उल्लेख न तो आर्य साहित्य में मिलता है और

१. ' They enjoyed a sort of freedom in their free tracts. "
E. Dc. Maulder— Tribal India Speaks; page 18

न सन्ताल परम्परायें उनपर व्यापक एवं स्पष्ट दृष्टि डालती हैं। इतना कह देना कि राजपूत-युग में संतालों पर आर्यों का अत्याचार हुआ था, संतोषजनक नही है। अनुसंधान के इस युग में ऐसी बातों पर विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। राजपूत-काल में राजस्थान, मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश और मध्यप्रदेश आकर्षण के केन्द्र रहे थे। उस समय इन प्रदेशो में संतालों के पूर्वज रहते थे। सन्तालो की स्मृतियाँ आज भी उन मूर्त्तियों में हैं। "आज उन प्रदेशो में जिन गढो के नाम मिलते हैं, वह सन्तालों की अनुकृति हैं। सन्ताल तो यह मानते हैं– वे सब गढ उनके थे, राजपूतो ने उन्हे पराजित कर तथा उन प्रदेशों से उन्हें निकालकर उन गढो का नाम बदल दिया।" इसका हमे कोई प्रमाण नही मिला है। राजस्थान के किरातगढ, इन्द्रगढ़, मन्दालगढ और प्रतापगढ; मध्यभारत के मल्लाहगढ, मकसूदनगढ़, राजगढ, बजरंगगढ़, ईशगढ,रघुगढ़ और नरसिंहगढ़; विन्ध्यप्रदेशमें अजयगढ टीकमगढ़, बन्धुगढ तथा मध्यप्रदेशके नृसिंहगढ,बिजारगढ, रामगढ़, चौरागढ, ग्वालियरगढ, जयतगढ, खिराबगढ, दोनागढ, धारनगढ, बिल्थागढ, रायगढ, धर्मराजगढ आदि गढों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे सब पूर्व में सन्तालों के पूर्वजो के रहे हैं जो राजपूत काल में राजपूतो के हो गये और राजपूतो ने उनका नाम बदलकर अपने या अपनी परम्परा के अनुरूप रखा है। पर सन्ताल इसके समर्थन में कोई प्रमाण नही दे पाये हैं।

राजपूत-युग में और मुसलमानो के भारत आगमन के बाद सन्तालों का प्रवेश बिहार प्रदेश में अधिकता से होने लगा। पहले बिहार में वे छोटा नागपुर में आये और बसे। बिहार में सबसे पहले वे रामगढ़ में आये। रामगढ़ में उन्होने अपनी परम्परा के अनुसार चम्पागढ़ की स्थापना की।

सन्तालों की परम्पराग्रो के ग्रनुसार इस चम्पागढ़ से सन्तालो को इन्दन सिंह ग्रौर मदन सिंह ने निकाला ग्रौर वे बिहार के ग्रन्य क्षेत्रों में चले गये। बंगाल में भी वे फैले। वीरभूमि में ग्राज भी सन्ताल काफी संख्या में रहते हैं। ग्रासाम ग्रौर मनीपुर में भी उनका फैलाव हुग्रा। पूर्वी पाकिस्तान ग्रौर नेपाल में भी सन्ताल काफी संख्या में पाये जाते हैं। यह सत्य है– संताल परगना में सन्तालों की संख्या सभी जगहों से ग्रधिक है, पर सन्ताल बिहार के मुंगेर, भागलपुर, पूर्णिया, हजारीबाग, सिंहभूमि ग्रादि क्षेत्रो में भी फैले हुए हैं।



सन्ताल परगना में सन्तालों का आगमन

युगो तक सन्ताल घुमक्कड जाति रही है। परिस्थितियो के ग्रनुसार वे ग्रपना स्थान बदलते रहे थे। वे छोटानागपुर एवं उसके ग्रास-पास ग्राये ग्रौर वही जम गए। लोगो का कहना तो यह है कि सन्तालों की जो परम्परायें हैं, उनका जन्म छोटानागपुर में ही हुग्रा है। वे कई शताब्दियों पूर्व से इस ग्रंचल में रहते ग्रा रहे हैं। "चेष्टायें तो यह हुई हैं कि सन्तालों की परम्पराग्रों में जो देश, नदी, गढ, जंगल ग्रादि ग्राये हैं, उनकी खोज छोटानागपुर ग्रंचल में की गई है ग्रौर उसी प्रकार का नाम वहां पाया गया है। उदाहरण ऐसे मिले हैं कि बहुत–सा स्थान ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध सन्तालो के परम्परागत स्थानो से बताया जाता है। उनका नाम वही है, जो उनकी परम्परा में है ग्रौर जहां उनकी संस्थाग्रों के जन्म हुए हैं, जहाँ

वे विकसित हुई हैं।" [१] पर ऐसी धारणाओं का खण्डन भी हुआ हुआ है। सन्तालों के पास कोई लिखित साहित्य नहीं है। वह तो एक ऐसी जाति रही है कि उसका इतिहास लिखित नहीं, मौखिक रहा है। उनके यहाँ ऐसा कोई कवि नहीं हुआ जो उनकी कहानियों को—उनकी परम्पराओं को लेखनीबद्ध करता। अपने सुदूर विगत को वे अपनी स्मृति में सुरक्षित रख सकें, ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती और न उनका अधिक ऐति-

१. Efforts have been made to identify the countries rivers, forts etc. mentioned in the traditions of the santals with those of similar names in Chhotanagpur. Localities have in many instances been found bearing traditional names, and the inference has been drawn that it was here that the traditions of the santals took their rise and that their institutions were formed. But only a slight knowledge of those traditions is necessary to show that they belong to a much more remote period than the location of the Santals in chotanagpur and to countries separated from it by many hundreds of miles."

—Dr. Campbell: Traditional Migration of Santal Tribes,
Indian Antiquary 1894—Page 103-4.

हासिक महत्व ही हो सकता है। फिर भी, अगर सन्तालों की परम्पराओं को उनके नये देशपरिवर्त्तन का आधार माना जाय तो उनमें बहुत से वास्तविक तथ्यों का पता चलेगा।[१]

श्री बोडिंग ने सन्तालो के देश परिवर्त्तन पर वैज्ञानिक ढंग से बहुत व्यापक रूप में अध्ययन किया है और उनके अध्ययन का निष्कर्ष है कि सन्ताल छोटानागपुर में छः सौ वर्ष पूर्व से रह रहे हैं। आगे मैंने यह कहा है कि सन्तालो को अपने पुराने नामों से बहुत अधिक मोह है, और उसी मोह-ममता से वे अपने नामों को ढोते रहे हैं। वे जहाँ-जहाँ बसे वहाँ-वहाँ अपने पुराने स्थानों के नामों को रखते गये हैं। उनके पास लिखित इतिहास है नही, इस कारण उनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक उलझन बढ़ जाती है। छोटानागपुर क्षेत्र में उनके ६०० वर्ष पूर्व रहने का कोई

१. "A people whose only means of recording facts consists of tying knots in strings and have no bards to hand down a national epic by oral tradition, can hardly be expected preserve the memory of their pasts long enough or accurately enough for their accounts of its to possess any historical value. If, however, the legends of the Santals are regarded as an account of recent migrations, their general purpose will be found to be fairly in accord with actual facts.

—Sir Herbert Raisley : Tribes and Castes of Bengal, Vol I-Page 228

प्रामाणिक प्राधार नही मिलता है। ऐतिहासिक आधारो पर यह कहा जा सकता है कि रामायण काल में सतालो के पूर्वज काशी के पश्चिम में गंगा के दोनो किनारो पर रहते थे। निषाद राज्य उनका ही था। पश्चिम से पूर्व की ओर वे बढते गये हैं।

सन्ताल परगना में संतालों का आगमन १८वी सदी के अन्तिम तीन दशको में हो गया था और १९वी सदी के प्रथम दशक में लखेर दिवानी में, जिसके अन्तर्गत हरुडवा और बेलपत्ता पड़ता है, उसमें काफी संख्या में सन्ताल आकर बस गये थे। श्री डाक्टर बुचानन की हस्तलिखित सामग्रियो के आधार पर मैकफर्सन ने लिखा था—"सांगताड जाति के लोग, जो एक विशेष भाषा बोलते हैं, जहाँ तक मैं जानता हूं जिलेके विभिन्न अंचलों में उनके ५०० परिवार बसे हुए हैं। उनका आगमन नया हुआ है। जमीन्दार से रंज होकर वे वीरभूमि से आये हैं। जहाँ तक मैं जान पाया, उससे पता चलता है कि वे लोग पलामू और रामगढ से आये हैं। वे जंगल साफ करने में विशेषज्ञ हैं, वे उसे काट कर खेत बनाते हैं।" जब वे खेत बनाते थे, तब उनसे परम्परागत कर की माग होती थी। वे दे नही पाते थे, और अपनी मेहनत से बनाये हुए खेत को वे छोडकर दूसरे जमीन्दार के यहाँ चले जाते थे, और उसी क्रम में जंगल काटकर, बंजर भूमि की छाती को चीरकर वे खेत बनाते थे। वहाँ भी उनकी वही स्थिति होती थी। इस प्रकार वे जिले भर में फैल गये। उस समय सन्ताल परगना के दो अनुमण्डल देवघर और जामताडा वीरभूमि जिले का अंचल था।[1] सर विलियम हन्टर ने यह माना है कि १७९० में स्थायी बन्दोबस्ती के कारण

१. Page 30 of Mr. H. Macpherson's Final Report of the S. P. Settlement. 1898–1907.

कृषि का सामान्य विस्तार हुआ; सन्तालों को नीचली जमीन से जंगली जानवरों को भगाने के लिए किराया पर लगाया गया। सन्१७९० में जो महान अकाल पड़ा था, तबसे जमीन को उपजाऊ बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। परिस्थितियाँ ऐसी अवलोकनीय थी कि उनकी चर्चा लन्दन में हुई थी। सन्तालों के जीवन में १७९२ से एक नया इतिहास प्रारम्भ हुआ।[१]

१९ वी सदी के दूसरे दशक में उनका इस जिले में अधिक विस्तार हुआ। सन् १८१८ तक गोड्डा मनुमण्डल में उनका फैलाव हो गया था। दामिन-ई-कोह में वे प्रवेश करने लगे थे। अंग्रेज प्रशासक यह नही चाहते थे कि पहाडियों से उनका सम्पर्क बढ़े। वे पहाडियों को अलग रखना चाहते थे। पहाड़ियों को शान्त करने में अंग्रेज सफल हो चुके थे। उन्हें भय था कि संतालो के सम्पर्क में आने के बाद उनका वही रूप न हो जाय, जो पहले था। दामिन-ई कोह में उनका प्रवेश निषेध करने की कुचेष्टा की गई, जब वे सफल न हुए तो दोनों में लड़ने की भावना पैदा की

१. "The permanent settlement for the land tax in 1790 resulted in a general extension of tillage, and the santals were hired to rid the lowlands of the wild beasts which since the great famine of 1790 had everywhere encroached upon the margin of cultivation.This circumstance was so noticeable as to find its way into London papers, and from 1792, a new era in the history of Santal dates.

—Sir William Hunters Annals of Bengal.

गई। 'हरमा-मिलेवा' एक आंचलिक उपन्यास है, जो सन्तालों के लोक-जीवन एवं सन्ताल-विद्रोह पर आधारित है, उसके प्रथम पृष्ठ के चमरा और हरमा के वार्तालाप से पता चलता है कि उन्हें आशंका है कि पहाड़ियों ने नदी का बांध तोड़ कर नदी के जल को बहा दिया है। चम्पिया नामक एक सन्ताल ने दामिन-ई-कोह में जब नयी बस्ती बसायी, तब पहाड़ियों से अधिक अंग्रेजों का ही उसे विरोध मिला। उसके पुत्र हरमा ने पिपरा नामक गाँव की स्थापना की। सन् १८१८ में सुन्दर लैण्ड ने एक प्रतिवेदन बंगाल सरकार के पास भेजा था। उस प्रतिवेदन में उसने लिखा था कि सन्तालों को उन्होंने धामसाई, जामनी, हिरणपुर, हाथवाड़ा के सरभी परगना और सुल्तानाबाद अनुमण्डल में स्थित दामिन-ई-कोह के आसपास और आस-पास में देखा है। सन्तालों का विस्तार, अंग्रेजों के न चाहने पर भी दामिन-ई-कोह में बढ़ता गया। सन् १८२७ तक गोड्डा की अन्तिम उत्तरी सीमा तक फैल गए। मिस्टर वड जब दामिन-ई-कोह का सीमा-निर्धारण कर रहे थे, तब उन्हें पटसुन्दा क्षेत्र में तीन सन्ताल गाँव और बारकोप में २७ सन्ताल गाँव मिले थे। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में सन्तालों के सम्बन्ध में एक रोचक वर्णन दिया है। उन्होंने कहा है कि वर्णित रेखा के अन्दर दो या तीन गाँव ऐसे हैं, जो एक जाति के लोगों द्वारा बसाये गये हैं, जिन्हें सौंथाड़ कहा जाता है। वे सिंहभूमि एवं उसके आस-पास के रहने वाले हैं। उनका व्यवहार एवं आचरण अपने ढंग का है। वे उपजातियों में बँटे हुए नहीं हैं। वे परिश्रमी एवं उद्योगशील हैं। वे अपने देश को छोड़कर इस जिला में आये हैं, जो जंगलों से भरा है। जमीन्दारों ने उनका स्वागत किया। उन्हें बसने के लिए निमन्त्रण दिया। उन्होंने रहने के लिए उन्हीं स्थानों को चुना, जो जंगली जानवरों से भरे हुए थे और खतरनाक

थे। उन्हें ऐसी भूमि से ममता भी थी। ऐसी भूमि को वे जंगल काट कर खेत बनाते थे और जब वह भूमि रहने योग्य हो जाती थी, तब वे पुनः ऐसे ही जंगलो में जाकर बसते थे। वे ऐसे जंगल काटते गये और बंजरभूमि को खेत बनाते गये। सन्तालों ने अपने रक्त और पसीना से सींच कर सन्ताल परगना की जमीन को आबाद किया है। जमीन्दार उन्हें एक हल के लिए उनके श्रम के प्रतिदान में एक रुपया दिया करते थे। वे मेहनती थे, उन्हें अपने श्रम पर संतोष था। जमीन्दार जो देते थे— उसे वे ग्रहण करते थे। आना-कानी उनके स्वभाव के विपरीत था। अतः जमीन्दार उन्हें बहुत मानते थे। वे जंगल साफ करने के काम में सन्तालों को लगाते थे। जंगल मात्र जंगली जानवरों से ही भरा नही था ; वहां की जलवायु भी कुछ ऐसी थी कि सन्तालो के अतिरिक्त दूसरों से जंगल काट कर खेत बनाना सम्भव नही था। सन्ताल सन्ताल परगने की भूमि के निर्माता हैं। उनके नाम पर इस जिला का नामकरण होना उचित ही है। जमींदारों के साथ उनका स्वभाव मधुर था।

मिस्टर उड ने माना है कि सन्ताल सिंहभूमि से आये हैं। मिस्टर उड को पूछताछ के क्रम में यह पता चला है कि वहाँ अशांति होने के कारण वे सिंहभूमि को छोड़कर आ रहे हैं।[1] ओल्डहम ने यह माना है कि सिंहभूमि जिले की दालभूमि से ही वे आये हैं। सिंहभूमि में किस प्रकार की अशांति थी, उसकी जानकारी नहीं मिलती है। दालभूमि तब तक मेदिनीपुर जिला का अंग था। उपलब्ध संताल-साहित्य से पता चलता है कि मेदिनीपुर जिला से संताल संताल परगना में आये थे। हिम्लटन ने

१. W. B. Oldham: Ethnical Aspects of the Burdwan Districts, Page xxii

अपने 'हिंदुस्तान' में इसे स्वीकार किया है। यह पुस्तक सन् १८२०में प्रकाशित हुई थी। हो सकता है मिस्टर उड के समय दालभूमि सिंहभूमि की अंग बन गया हो। इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। मेदिनीपुर के दालभूमि से सन्ताल इसलिए आये थे कि वहां उनकी उपेक्षा होती थी। वे नीच समझे जाते थे। अपने गाँवों में उन्हें उच्च जाति के लोग बसने नहीं देते थे। उनसे किसी प्रकार का सम्पर्क वे स्थापित नहीं रखते थे। सन्तालों को वे मानव नहीं समझते थे। जमीदार उनसे मेहनत कराते थे, पर न उन्हें भर पेट खाना देते थे और न उनका संतालों के साथ व्यवहार ही अच्छा था। उनपर शोषण और दमन इतना हुआ कि सन्ताल तंग आकर दालभूमि को छोड़कर सन्ताल परगना में चले आये। यहां उन्हें जमींदारों का सद्व्यवहार मिला, उपेक्षा नहीं मिली। खेत गांव और जंगलों के बीच में पड़ता था। जंगली जानवरों से खेत बर्बाद होता रहता था। संतालों ने केवल खेतों का ही निर्माण नहीं किया, बल्कि खेतों के साथ साथ उनके उपज की सुरक्षा की भी व्यवस्था की। सन्तालों के संताल परगना में आने के बाद सताल परगना चावल उत्पादन के क्षेत्रों में आ गया। चावल के लिए बचत जिला माना जाने लगा। सन्ताल परगना में संतालों के आगमन के सम्बन्ध में सन्ताल परगना के तत्कालीन उपायुक्त श्री कारस्टेयर्स [१] ने अपनी पुस्तक में लिखा है—भागलपुर के ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट श्री सुदरलैण्ड के प्रतिवेदन में, जो सन् १८२० में लिखा गया था, प्रथम बार सन्तालों के संताल परगना में प्रवेश होने का उल्लेख आया है। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि पहाड़ी क्षेत्रों में एक नयी जाति,

---

१. R. C. Carstairs : "The Little World of an Indian District officer."

जिसके सम्बन्ध में पहले सुना नहीं गया था जिसे संताल या सूतांर कहा जाता है, आ बसे हैं। उसी प्रतिवेदन से यह पता चलता है कि इस जिले में सन् १८१० के लगभग उनके सम्बन्ध में चर्चा होने लगी थी और वे दक्षिण पश्चिम से आये थे। कारस्टेयर्स साहब ने माना है कि सुंदरलैण्ड भागलपुर के अधिकारी थे और उन्हें वीरभूम से कम सम्बन्ध था, जहाँ सन्ताल पहले से रहते थे।



जीवन-दर्शन



.... कुछ ऐसे मानव हैं, जो आज की प्रगति से दूर हैं। उन्हें हम असभ्य, अप्रतिशील तथा पिछड़ा हुआ कह कर उनकी उपेक्षा करते हैं। उनकी दुनिया छोटी है, पर है वह अनूठी। उनका सम्बन्ध दूर से नहीं है, वे अपनोंके बीच रहते हैं। अपने सुख-दुःख को बाँट कर अपनी ही सीमाओं में वे रहते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को हम सन्ताल के नाम से पुकारते हैं।

.... सन्तालों के पास वेद, ब्राह्मण और उपनिषद के समान महान ग्रन्थ नहीं हैं। पर उनके पास लोक कथायें और लोक-गीत बहुत हैं। उनसे पता चलता है कि सन्तालों की पंचायतें बहुत पुरानी हैं। सन्ताल लोक-कथाओंसे पता चलता है कि त्रेता युग में भगवान रामचन्द्र के निर्देशानुसार लक्ष्मण ने सन्तालों की पंचायती व्यवस्था तथा सामाजिक संगठन को दृढ़ किया था।

पंचायती जीवन : एक आदर्श

आज का मानव प्रगति के पथ पर इतना आगे बढ़ गया है कि अब उसके आगे रास्ता नहीं रह गया है। अब उसे भवन पसन्द नहीं, वह तो भुवन में रहना चाहता है। वह प्रगतिशील मानव किसी भी सीमा को नहीं मानता। उसकी यह प्रवृत्ति उसे सभ्य और गतिशील घोषित करती है। वह तो आज यह भी दावा करने लगा है कि वह चाँद को स्पर्श करेगा, आकाश में घर बनायेगा। उसके पैरों में आज पख लग गए हैं। ऐसा मानव सामाजिक बन्धनों को नहीं मानता है। ऐसी सीमाओं को तो वह प्रगति का बाधक मानता है। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो ऐसी प्रगति से दूर हैं। असभ्य, अप्रगतिशील और पिछड़ा हुआ कह कर हम उनकी उपेक्षा करते हैं। उनकी दुनिया छोटी है, पर वह अनूठी है। उनका सम्बन्ध दूर से नहीं है, वे अपनों के बीच रहते हैं। अपने सुख-दुःख को बाँट कर अपनी ही सीमाओं में वे रहते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को हम सन्ताल के नाम से पुकारते हैं। संतालों के सम्बन्ध में कुछ लोगों की धारणायें है कि उनका कोई सामाजिक जीवन नहीं है। ऐसे ही लोग, जो संतालों के सम्बन्ध में लिखते भी हैं, यह कहते हैं कि संयम की किसी सीमा को संताल नहीं मानते। उनकी ऐसी धारणायें वास्तविकता पर आधारित नहीं हैं। सन्तालों में शिक्षा का अभाव अवश्य है, पर उनमें संस्कार की कमी नहीं है। यह सत्य है कि उनके पास प्रचुर मात्रा में लिखित साहित्य नहीं है, पर यह हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि उनके पास अलिखित और लिखित लोक कथायें एवं लोक-गीत कम नहीं

हैं। उनकी लोक कथाओं को पढ़ने-सुनने से तथा संतालों के निकट में रहकर उन्हें देखने और परखने से ऐसा लगता है कि तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले लोगों से उनका जीवन अधिक संयमित है। युगों से उन्होंने एक परम्परा बना ली है। उसी परम्परा के बीच वे रहते आये थे और आज भी उसी परम्परा के बीच वे रह रहे हैं। हम गतिशील लोग असभ्य कह कर भले ही उनकी उपेक्षा कर दें, पर वास्तव में वे सन्ताल हमसे अधिक संयम से रहते हैं।

सन्तालों के संयमित जीवन को देखकर मुझे ऐसा कहना पड़ता है कि हम आगे न बढ़ कर पीछे की ओर मुड़ें, तो हमारा जीवन आज से अधिक सयमित होगा। जिस राष्ट्र का जीवन संयमित नहीं होगा, उसका न तो विकास ही हो सकता है और न निर्माण ही। नदियों को बाँध कर हम चाहते हैं कि उनकी धारा सीमाओं के अन्दर रहे, पर क्या हमने अपने सामाजिक जीवन को संयमित बनाने के लिए कोई योजना बनायी है? हम बढ़ते जा रहे हैं, पर हमारा संस्कार छूटता जा रहा है, हमारी परम्परायें मिटती जा रही हैं। संताल प्रगति के नाम पर आगे नहीं बढ़े हैं, इसलिए उनका सम्बन्ध संस्कार से नहीं टूटा, उनकी परम्परायें नहीं मिटीं।

सन्ताल पैदा होते ही माँ की गोद में– पालने में खेलते हुए उन लोक-गीतोंको सुनता है, जिसको सुनकर उसे आत्म-बोध होता है, उसमें एक संस्कार जगता है। पालना से उतर कर परिवार में, उसके बाद अपने गांव में, और, अन्त में अपनी जाति में रहकर वह जीवन का अनुभव प्राप्त करता है। उसे बाह्य दुनिया का अनुभव प्राप्त नहीं होता। पर उसे इतना ज्ञान प्राप्त होता है कि– उसे समाज में कैसे रहना है। वह अपनी मान्यताओं एवं

नैतिक मूल्यों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अस्सी फो सदी सन्तालों ने रेल का दर्शन नहीं किया, पर अपने गांव, अपने समाज और अपनी जाति का जितना ज्ञान उसे होना चाहिए, उतना उसे प्राप्त है। गाँव के सामूहिक जीवन से प्रत्येक सताल का सम्बन्ध स्थापित रहता है। उसे इतना ज्ञान है कि सामाजिक बन्धन को तोडने से वह अपनी जाति के सामने सामाजिक अपराधी होगा। वह इतना जानता है कि समाज के नियम, अधिनियम, रीति-रीवाज को न मानने पर उसे दण्डित होना पड़ेगा। समाज के सामने उसे जबाब देना होगा। सन्ताल जनमत का आदर करते हैं। उसके सामने आत्म-समर्पण करते हैं। उससे वे घबड़ाते हैं, डरते भी हैं। सन्ताल दिन भर काम करने के बाद किसी न किसी स्थान पर जमा होते हैं। वहाँ वे अपनी बैठकों में व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसके आचरण एवं सामाजिक व्यवहार पर विचार करते हैं। लोगों की आलोचनाएँ भी करते हैं। वे जनमत की कसौटी पर लोगो के आचरण को कसते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनमत के माध्यम से सन्ताल अपने सामाजिक जीवन को संयमित करते हैं।

सन्ताल अपने सामाजिक जीवन को सयमित करने के लिए केवल इतना ही नहीं करते। अपने युवको एवं युवतियों पर निगरानी रखने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त करते हैं। वह व्यक्ति 'जोग माझी' कहलाता है। वह लोगो पर आँखें रखता है। उसका काम है लोगो को आचरणशील बनाना। वह देखता है कि कोई सताल निर्धारित यौन आचरण को भंग तो नहीं करता। वह उन्हें दण्डित करता है। सामाजिक नियम को भंग कर जब कोई व्यक्ति एक दूसरे के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है, तब माँझी उसे पकड कर उचित दण्ड देने के लिए पंचायत के सामने

पेश करता है। जब कोई संताल कुमारी अवैध ढंग से गर्भवती हो जाती है, तब उसका काम होता है कि वह पता लगाये कि किस व्यक्ति से उसे गर्भ रहा है। पता लगाने में जब माँझी सफल हुआ, तब तो समझा जाता है कि उसने अपने उत्तरदायित्व को पूरा किया है। कभी ऐसा भी होता है कि वह अपने काम में असफल रहता है, ऐसी स्थिति में उसे दण्ड भी देना पड़ता है। उसे अपने पद से हटा दिया जाता है। पहले तो ऐसा होता था कि उसे उसके घर में हाथ-पैर बाँधकर रखा जाता था। पर अब इस नियम में परिवर्त्तन हो गया है। पर आज भी जोग माझी को संताल इतना कड़ा दण्ड देते हैं कि वह विवश होकर संताल कुमारों एवं कुमारियों पर कड़ी नजर रखता है। वह उन्हें संयमित रहने के लिए मजबूर करता है। उसे हम सन्तालों के नैतिक जीवन का प्रहरी मान सकते हैं। इधर कुछ वर्षों से उसके प्रभाव में एवं उसके अधिकार में कमी आगई है, पर आज भी युवक–युवतियों का वह पथ-प्रदर्शक है।

सन्तालों के सामाजिक जीवन को नियंत्रण में रखने का दायित्व पंचायतों पर भी है। उनकी पंचायतें चाहती हैं कि सन्ताल उसी लक्ष्मण-रेखा में रहें, जिसे उनके पूर्वजों ने खींचा है। उस लक्ष्मण-रेखा से बाहर जाने पर वे दण्डित होते हैं। यह सत्य है कि पंचायत के पास लिखित कानून नहीं हैं, पर उनकी परम्परायें उनके साथ हैं। वे ही नियम अधिनियम को निर्धारित करती हैं। सन्तालों को संयमित जीवन में रखने के लिए उनके बीच 'बिठलाहा' की प्रथा है। यह सबसे कठोर दण्ड है। यह दण्ड उसे ही दिया जाता है, जो सबसे अधिक गर्हित काम करता है। सामाजिक नियम एवं अधिनियम को भंग करना सन्तालों के लिए बड़ा अपराध माना जाता है। सन्ताल गोत्रों में विभाजित हैं। उनके यहाँ

सगोत्र विवाह नहीं होता। इस नियम का उलंघन जो करता है, वह कठोर दण्ड का भागी होता है। गैर–संताल से जब कोई सन्ताल–कुमारी का यौन-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तब सन्ताल इसे अपनी जाति का अपमान मानते हैं। ऐसे मामलो में बिठलाहा का दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिठलाहा का दण्ड कई अवसरों पर दिया जाता है। पहला अवसर तब आता है, जब सन्ताल कुमारी अपने स्वजातीय विवाह के नियम का उलघन करती है। इस अवसर पर बिठलाहा किया जाता है और उसके द्वारा समाज से दोनों पक्षों का बहिष्कार किया जाता है। यह क्रिया अस्थायी होती है। कारण, वे समाज में लिये जा सकते हैं। शुद्धि की क्रियाओं को सम्पन्न कर वे पूर्व की भाँति समाज में रहने लगते हैं। दूसरा अवसर बिठलाहा के लिए तब आता है, जब कोई सन्ताल कुमारी किसी गैर-सन्ताल से यौन-सम्बन्ध स्थापित करती है। इस अवसर पर जो दण्ड दिया जाता है, वह अक्षम्य होता है, अकाट्य होता है और जाति से बहिष्करण स्थायी होता है।

सन्ताली समाज से बहिष्कार तब तक नही हो सकता जब तक कि पंचायतें निर्णय नही दे दें। सन्तालो के सामाजिक नियम को भंग करने पर वे अपनी जाति से निकाले जाते हैं। संताल नारी एवं गैर-सताल पुरुष से यौन-संबन्ध परम्परागत व्यवहार से वर्जित है। संतालो को एकता के सूत्र में बाँधने में उनकी नैतिकता की सामाजिक संहिता का एक बहुत महत्वपूर्ण हाथ है। यौन-सम्बन्ध को वे ईश्वरीय-प्रकोप के समान मानते हैं। बिटलाहा द्वारा अपराधी को दण्ड देकर वे अपने बोंगा या देवता को प्रसन्न करते हैं। अकाल पडता है, अति वृष्टि होती है, बीमारी फैलती है- तब संताल समझते हैं- ईश्वर के प्रकोप के कारण ही ऐसा हो रहा है। ईश्वर उनसे रंज

हैं। इसका कारण उनकी दृष्टि में संताल लड़के या लड़कियाँ अपने यौन-सम्बंधी नियमों को भंग कर रही हैं। वे ईश्वर को रंज रखना नहीं चाहते। अतः वे अपने यौन-सम्बन्धी नियमों का कटोरता के साथ पालन करते हैं। उनका यह नियम जब भंग होता है, तब वे पूरे समाज का अपमान समझते हैं। उन्हें आशका होने लगती है कि उनपर दैव की अकृपा होगी। दैव पूरे संताल-समाज को दण्डित करेगा। एक दिकू से सताल कुमारी का यौन-सम्बंध सतालो के यहाँ बहुत बडा अपराध माना जाता है। उनके अपराधों को सार्वजनिक रूप में रखा जाता है। उन्हें सार्वजनिक लज्जा का विषय बनाया जाता है। योग-माझी गाँव की पंचायत को मांझी स्थान में बुलाता है, वहीं पर उनके अभियोगों को रखता है और पंचायत से अन्तिम निर्णय चाहता है। अपराध के अनुरूप दण्ड दिया जाता है। साधारण अपराध पर चेतावनी दी जाती है, अर्थदण्ड लगाया जाता है, भविष्य में सावधान रहने को कहा जाता है, पर जब अप-राध असाधारण होता है, तब कठोर दण्ड देने के लिये बिठलाहा की प्रक्रिया आरम्भ की जाती है। असाधारण अपराध पर एक गाँव का निर्णय काफी नहीं होता है, निर्णय के लिए और गांवों की पंचायतों की राय भी लेनी होती है।

बिठलाहा का साधारण अर्थ है— समाज से बहिष्करण। किसी भी सन्ताल को निकालने के लिए पंचायत की बैठक में उसके अपराधों को रखना पड़ता है। मांझी दो स्थिति में बिठलाहा के प्रश्न को पंचायत में रखता है— एक तो तब, जब उस गाँव के किसी आदमी ने यह सूचना दी हो कि अमुक व्यक्ति ने सामाजिक नियम का उलंघन किया है या स्वयं मांझी जब युवक या युवती को अवैध या गुप्त रूप से रति करते हुए पकड़ लेता

है। पंचायत में जब मांझी किसी युवक या युवती पर अभियोग लगाता है, तब पचायत उस अभियोग पर निर्णय करने के लिए रास्ते निकालती है। पहले तो वे चाहते हैं कि मामला गाँव से बाहर न जाय। उन्हें ऐसा लगता है कि गाँव की बात बाहर जाने से गाँव का भी अपमान होता है, पर अपराध गम्भीर होने पर विवश होकर बिठलाहा करने का वे निश्चय करते हैं। वे अपने पचायत को ' आतो-रेन-दोरबार ' कहते हैं। उसमें जब बिटलाहा का निर्णय हो जाता है, तब वे ' दिसोम होड ' के सामने स्वीकृति के लिए उस मामले को रखते हैं। उस दरबार में पाँच गांव के माझी उपस्थित होते हैं। ' दिसोम होड ' सभा पूरे मामले की बहुत सावधानी से जाँच करती है। वह सभा अगर समझती है कि बिटलाहा की आवश्यकता नहीं है, तब बिटलाहा नहीं हो सकता। इस प्रकार हम देखते है कि इस सभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह ' आतो-रेन-दोरबार ' के निर्णय में हेर-फेर कर दे।

' दिसोम होड़ ' सभा में निर्णय होने पर बिटलाहा करने के लिए उन्हे अपने क्षेत्र के एस० डी० ओ० को इस सम्बन्ध में सूचित करना पड़ता है। वे समय एवं स्थान की, जहाँ वे बिठलाहा करना चाहते हैं, सूचना एस० डी० ओ० को देकर उनसे बिठलाहा करने की अनुमति माँगते हैं। एस० डी० ओ० अनुमति देने के पूर्व उस गांवमें आते है, तथा छान-बीन करते हैं। जब वे छान-बीन कर सन्तुष्ट हो जाते है कि प्रस्तावित बिठलाहा के लिए ' दिसोम होड़ ' की स्वीकृति मिल गई है, वह न्याय संगत है तथा प्रचलन एवं प्रशासन नीति के अनुरूप है, तब वे बिठलाहा करने की अनुमति देते हैं। बगैर एस० डी० ओ० की अनुमति के जब बिठलाहा होता है, तब सरकार को अधिकार है कि उसे वह रोक दे। ' दिसोम होड ' की बगैर

पूर्व अनुमति के यदि लोग बिटलाहा करने को जमा हो जाँय तो सरकार उस पर नियंत्रण लगाती है। बिटलाहा की अनुमति देते हुए सरकार चाहती है कि अपराधी की सम्पत्ति नष्ट नही की जाय। बिटलाहा के क्रम में सन्तालो को अपराधी के घर को गन्दा करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, पर सम्पत्ति को नष्ट करने में उन्हें सामूहिक रूप मे अर्थ दण्ड देना पड़ता है।

एस० डी० ओ० से अनुमति मिल जाने के बाद बिटलाहा का क्रम आरम्भ होता है। विभिन्न हाटो में एक सन्देशवाहक द्वारा बिटलाहा का सन्देश भेजा जाता है। सन्देशवाहक को वे 'धारवाक' कहते हैं। धारवाक डरवा द्वारा सन्तालो को जमा होने का संदेश देता है। डरवा बिटलाहा सूचक झण्डा होता है। वह सखुए के पेड की एक डाल का होता है, जिसमें पत्ते लगे रहते हैं। डाल में जितनी पत्तियाँ होती हैं, उतने ही दिनो के बाद बिटलाहा होता है। निश्चित दिवस के एक दिन पूर्व संताल जत्थो में आते हैं और उनका नेतृत्व माझी करते हैं। बाँसुरी, ढोल, तीर, धनुष से वे सुसज्जित रहते हैं। 'दुगर नृत्य' वे करते हैं। जिस गाँव मे बिटलाहा करना होता है, उस गाँव की गली मे वे जमा हो जाते हैं। अपराधियो को तरह-तरह की अशिष्ट गालियो से पुकारते-फिरते हैं। गाँव के प्रमुख लोटा का जल हाथ में लेकर, उनके सम्मान में मिलता है तब वे गाली देना बन्द कर देते हैं। अपराधी को बुलाया जाता है, पर साधारणतः अपराधी गाँव से भाग जाते हैं। अगर वह प्रमुखो के सामने उपस्थित होकर अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है और अपने को पंचायत के जिम्मे सौंप देता है, तब बिटलाहा नही होता है। उसे अर्थदण्ड लगाकर माफ कर दिया जाता है। जब अपराधी नही मिलता है, तब वे

उसके घर में प्रवेश करते हैं, वहाँ अशिष्ट कार्य करते हैं। इतने से ही उन्हें सन्तोष नही होता; जिस व्यक्ति के विरोध में बिटलाहा किया जाता है, उस व्यक्ति को जाति से निकाल दिया जाता है। उसकी नागरिकता को नष्ट कर दिया जाता है। कोई सन्ताल उससे सम्बन्ध नहीं रखता। ऐसे बहिष्कृत व्यक्ति को यदि कोई अपने घर में स्थान देता है या उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है, तब उस व्यक्ति को भी जाति से निकाल दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति का न किसी से खान पान का सम्बन्ध रहता है और न उनके बच्चो का शादी-विवाह ही स्वजाति में हो सकता है। वे केवल अपराधी को ही दण्ड नही देते, उसके पूरे परिवार को दण्डित करते हैं। साधारणतः ऐसे लोग गाँव छोड़कर बाहर चले जाते हैं। सन्ताल संहिता में ऐसी व्यवस्था भी है कि पुनः समाज में लिए जा सकते हैं; पर ऐसा करने के पूर्व उन्हे कुछ नियमो को पालन करना पडता है।

सगोत्रीय तथा निकट सम्बन्धी में यौन–सम्बन्ध स्थापित होने के कारण बिटलाहा के माध्यम से जब अपराधी जातिसे निकाल दिया जाता है या अपराधी से सम्पर्क रखने वाले व्यक्ति नव समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते हैं, तो वे फिर से समाज में शुद्ध होने पर शामिल किये जा सकते हैं। शामिल करने की जो प्रक्रिया है, उसे ' जन जाति ' प्रथा कहते हैं। पहले बहिष्कृत व्यक्ति को अपनी पुरानी आदत एवं चाल–चलन को छोड़ना पड़ता है। फिर उसे शुद्ध होने के लिए पर्याप्त धन-राशि की आवश्यकता होती है। जब वह पर्याप्त धन-राशि को जमा कर लेता है, तब वह मांझी से अनुरोध करता है कि शुद्ध करके उसे समाज में मिला लिया जाय। मांझी को जब विश्वास हो जाता है कि अपराधी ने अपने चाल-चलन में सुधार कर लिया है और शुद्धि के लिये उसके पास आवश्यक धन-राशि है तब परगने

प्रमुख को सूचना देता है और उनसे आदेश मागता है। परगना प्रमुख निकटवर्ती बारह परगनों को सूचित करता है और अपराधी व्यक्ति को पुनः समाज में लाने की अनुमति लेता है। अपराधी व्यक्ति को शुद्ध करने के लिये एक दिवस निश्चित किया जाता है और उस दिवस को अपराधी व्यक्ति एक बहुत बड़े भोज की तैयारी करता है। जब सारी व्यवस्थायें हो जाती हैं, तब अपराधी गाँव के बाहर गली के छोर पर जाता है। उसके गले मे कपड़ा लिपटा रहता है; हाथ में जल से भरा एक लोटा रहता है; उसकी आकृति से मालूम पड़ता है कि वह दुःखी है और लज्जा का अनुभव कर रहा है। उपस्थित परगनैतो मे जो सबसे अधिक पूज्य रहता है, वह अपने साथियो एव गाँव के प्रमुख से कहता है— "आओ ! हम लोग उसे शान्ति दें ; उसे देखकर दया आती है।" अपराधी झुक कर क्षमा-याचना करता है। वह कहता है— "पिता ! मैंने बहुत बडा अपराध किया है। मुझपर दया करो।" उक्त परगनैत अपराधी के हाथ मे लोटा ले लेता है और सूर्य्य की पूजा आरम्भ करता है। अन्त में अपराधी से कहता है— 'चूंकि तुमने अपना अपराध स्वीकार कर लिया, अतः तुम्हे फिर से जाति में लिया जाता है। लोटा के जल से वह आचमन करता है और लोटा को सभी परगनैतो को स्पर्श करने को देता है। इसके बाद सभी अपराधी के साथ उसके घर जाते हैं, उसके आँगन में प्रवेश करते हैं। अपराधी सभी का पैर धोता है। सभी व्यक्तियो को खाने पर वह बैठाता है। वह अपने हाथो से सभी को खाना परोसता है। प्रत्येक परगनैत को वह पाँच रुपये भेंट चढ़ाता है। अपने गाव के माँझी को भी वह पाँच रुपया भेंट करता है। अन्य गाँवो के माझियो को वह एक एक रुपया भेंट स्वरूप देता है। भोजन के बाद पूज्य परगनैत कहता है — आज से पुनः



संताल परिवार गाँव छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए परदेश जाते हुए

इस अपराधी को समाज में ले लिया गया है। उसके पावों को धो दिया गया। आज से हम लोगों का उसके साथ खान-पान आरम्भ हो गया है। हम लोग अपनी बेटी की शादी इस अपराधी के घर में करेंगे और उसकी बेटी को बहू बनायेंगे। आज से जो व्यक्ति इसे अपराधी मानेगा, वह स्वयं अपराधी होगा और उसे एक सौ रुपया अर्थदण्ड देना पड़ेगा। इसके बाद वे एक गड़हा खोदते हैं और उसमें गाय के गोबर को गाड़ देते हैं। उसपर पत्थर रख देते हैं। वे इसलिए ऐसा करते हैं कि यह समझा जाय कि यौन-संबंधी जो अपराध हुआ था, उसका अन्त हो गया और वह विस्मृति के कब्र में दफना दिया गया। इस प्रकार वह अपराधी फिर से सन्ताल बन जाता है। सन्तालों ने इस प्रकार अपने सामाजिक जीवन पर नियंत्रण रखा है। इन कठोर दण्डों के कारण उनका सामाजिक जीवन बहुत ही संयमित रहा है।

बिठलाहा की घटना धीरे-धीरे कम होती जा रही है। प्रशासन के विस्तार एवं पुलिस की दक्षता के कारण पहले की भाँति बिठलाहा नहीं होता। जब से भारत स्वतन्त्र हुआ है, तब से गोड्डा, देवघर साहबगंज और जामताड़ा में बिठलाहा नहीं हुआ है। दुमका अनुमण्डल में ७ और पाकुड़ अनुमण्डल में एक बिठलाहा हुआ है। गोपीकान्द थाना के अन्तर्गत पिपरा गाँव में २५ फरवरी, १९५३ को एक बिठलाहा हुआ था। उसमें पाँच हजार सन्तालों ने भाग लिया था। बिठलाहा का कारण अवैध यौन-सम्बन्ध था। कुमार और कुमारी दोनों के घर को नष्ट कर दिया गया था। जरमुण्डी थाना के अन्तर्गत कुंजी गाँव में १० जून, १९५७ को बिठलाहा किया गया था। चचेरे भाई बहन में यौन-सम्बन्ध होने के कारण यह बिठलाहा हुआ था। ३००० सन्तालों ने इसमें भाग लिया था।

अपराधी के घर को नष्ट कर दिया गया था। आठ मन धान और १० मन बाजरा लूट लिया गया था। उसकी कुछ मुर्गियाँ भी नष्ट कर दी गई थी। जरमुण्डी थाना के अन्दर बारातार गांव में भी २ री जुलाई, १९५७ को बिठलाहा हुआ था। छोटे भाई की बहू के साथ यौन-सबंध होने के कारण यह बिठलाहा किया गया था। पाँच हजार सन्तालों ने भाग लिया था। शिकारी पाड़ा थाना के अन्दर स्थित कबुड़ीगढ़ गाँव में २३ अप्रैल, १९५८ को बिठलाहा किया गया। सन्ताल लडकी और पहाड़िया युवक में यौन-सम्बन्ध के कारण ऐसा किया गया था। पाँच हजार सन्तालों ने इसमें भाग लिया था। २२ नवम्बर, १९५९ को रामगढ थाना के अन्तर्गत खाँगर शीस गांव में बिठलाहा हुआ था। ८०० सौ सन्तालों ने उसमें भाग लिया था। एक सगोत्रीय कुमार और कुमारी का विवाह उसका कारण था। लडकी को माँ और लडके का बाप चचेरे भाई-बहन थे। १३ वी जून, १९६२ में लीलातारी में एक बिठलाहा सम्पन्न हुआ। एक हजार सन्तालो ने उसमें भाग लिया। सगोत्रीय भाई-बहन का अवैध सम्बन्ध उसका कारण था। लड़का और लडकी दोनो के घर बिठलाहा किया गया था और दोनो के घर कोउजाड़ दिया गया था। रामगढ़ थाना के कुसमाहा गाव में १७ जुलाई, १९६२ को बिठलाहा हुआ था। विवाहिता नारी से एक पुरुष का अवैध यौन-सम्बन्ध इसका कारण बताया गया था। पाच हजार आदमियों ने इसमें भाग लिया था। पाकुड़ अनुमण्डल के अन्तर्गत महेशपुर थाना में अवस्थित खारीपारी गांव में २३ जून, १९५६ को एक बिठलाहा हुआ था। उसका स्वरूप बहुत भयानक था। सन्ताल कुमारी का एक दिकू से अवैध यौन-सम्बन्ध इसका कारण था। कहा जाता है कि बीस हजार सन्तालों ने उसमें भाग

लिया था। लड़की के मां-बाप के घर पर बिठलाहा किया था। उसके घर को उजाड़ दिया गया, उनकी सम्पत्ति को लूट लिया गया। पुलिस और पदाधिकारियों ने भी गांव को घेर लिया। फलस्वरूप गोली चलानी पड़ी थी। १० सन्ताल मारे भी गये थे।

बिटलाहा की घटना अब कम होती जा रही है, फिर भी लोगों के सामने यह प्रश्न उठता है कि यौन-सम्बन्धी अपराधो का निर्णय फौजदारी कानूनो के अनुसार होना चाहिए या नही। कोर्टों के अभिलेखों से पता चलता है कि अब सन्ताल शील-अपहरण के मुकदमो को कचहरियों में लाने लगे हैं और निर्णय फौजदारी कानूनों के द्वारा होने लगा है। गैर सन्ताल पर बिठलाहा करने का सन्ताल-संहिता के अनुसार कोई औचित्य नही है। महेशपुर में जो बिठलाहा हुआ था, उसमें सम्बन्धित अपराधी एक-गैर-संताल था, उसपर बिठलाहा करने के औचित्य पर विचार होना आरम्भ हो गया था। यह सोचा जाने लगा था कि गैर-सन्ताल अगर किसी सन्ताल कुमारी का शील-अपहरण करता है, उससे यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है तब उसको दण्ड देने के लिए जो फौजदारी कानून है, उसीके अनुसार काम होना चाहिए। यह युक्ति संगत भी है और न्याय-संगत भी है। फिर भी बिटलाहा का सन्तालों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनके सामाजिक-जीवन को संयमित रखने में वह बहुत बड़ा सहायक है। प्रशासन में बाधा होने में ही उस पर नियंत्रण रखने की अपेक्षा है।



सन्तालों की पंचायत-व्यवस्था

भारतीय व्यवस्थाओं में ग्राम-पंचायतों का बहुत महत्व रहा है। जब हमारे पास कुछ नहीं था, तब भी हमारे पास हमारी पंचायतें थीं। उनका एक आदर्श था। पंचायतों का हमारे यहां कब जन्म हुआ, यह ठीक-ठीक नहीं कहाजा सकता है। पर हमारे इतिहासकार यह कहकर सन्तोषकर लेते हैं कि भारतवर्ष में ग्राम-व्यवस्था का विकास बहुत पुराने जमाने में हो गया था। अनादि काल से ही हम इस भू-देश में किसी न किसी रूप में ग्राम-व्यवस्था की रूपरेखा पा रहे हैं। हमारी पंचायतें सांस्कृतिक केन्द्र रही हैं। सांस्कृतिक-उत्थान और पतन में उनका बहुत हाथ रहा है। यही कारण है कि ग्राम-व्यवस्थाओं पर विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक-तत्वों का प्रभाव पड़ा है। यह सत्य है कि हमारी व्यवस्था का विशद् इतिहास हमारे पास नहीं है, पर हमारी संस्कृति पर उनकी जो छाप है, वह इतना स्पष्ट है कि हम यह कहने का दावा करते हैं कि पंचायती-व्यवस्था का जन्म हमारे यहाँ ही हुआ है। वेद, ब्राह्मण और उपनिषद ग्रन्थों में हमें पंचायतों का उल्लेख तो मिलता ही है; हमारा लोक-साहित्य भी उससे पूर्ण है। प्रो० राधा कमल मुखर्जी ने प्राचीन राजनैतिक और न्यायिक व्यवस्था पर खोज के जो कार्य किये हैं, उसके लिए उनके प्रति राष्ट्र सदैव आभार प्रकट करता रहेगा। उनके 'भीलेज कम्यूनिटीज् इन इण्डिया' ने इस क्षेत्र में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है, ऐसा भी कहा जा सकता है। उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि पंचायतों का आदि स्वरूप हमें आदिवासियों की व्यवस्था में ही मिल पाता है। सर जार्ज ब्रेनवुड के शब्दों में हम कह सकते हैं कि संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में धार्मिक एवं राज-

नैतिक परिवर्त्तन अधिक हुए हैं, किन्तु भारतीय ग्राम-समाज की नागरिक-शक्ति सुदृढ़ बनी रही। प्राचीन भारतीय ग्राम-व्यवस्था के विषय में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था— "ग्राम समाज के छोटे प्रजातन्त्र राज्य हैं, जिनके अन्तर्गत सभी ऐसी बातें आ जाती हैं, जिनकी हमें आवश्यकता पड़ सकती है। परिवर्तनों में अनेक वंश मिट जाते हैं, क्रांति इस पर विजय पाती है, किन्तु ग्राम-समाज जहाँ-तहाँ रहता है। मेरी धारणा है कि जिन क्रांतियों और परिवर्तनों का सामना भारत को करना पड़ा है, उनमें जनता को अक्षुण्ण बनाये रखने का सबसे अधिक श्रेय ग्राम-सभा को है। ग्राम-सभा के द्वारा भारतीयों को सुख और स्वतन्त्रता के उपभोग का अवसर प्राप्त हो सका है।"

भारत में बाहर से कई शक्तियाँ आयीं। उसके वैभव से वे खेलीं, पर वे यहाँ की होकर रह गयीं। शक और हूण विदेशी थे। पर वे आगे चलकर इस प्रकार हममें एकाकार हो गये कि बाद में उन्हें अपने से अलग करना कठिन हो गया। अरब, पठान और मुगल आये। वे भी यहाँ के होकर रह गये। उन्होंने केन्द्रीय और राजकीय सरकारों में हेर-फेर किया, पर ग्राम-पंचायतों को उन्होंने नष्ट नहीं किया। उसे सुरक्षित रखा। उनके अधिकारों पर प्रहार नहीं किया। जहाँ कहीं भी उन्होंने ग्राम-पंचायतों में कमी देखी, उसे ठीक किया।

पर यह स्थिति बाद में नहीं रह सकी। भारत में अंग्रेज आये। वे व्यापारी बनकर आये थे। उनका ध्यान हमारी ग्राम-पंचायतों की ओर गया। उन्होंने उसे नष्ट कर दिया। पंचायतें तोड़ डाली। पर उन्हें सर्वत्र सफलता मिली, ऐसी बात नहीं थी। उनके प्रभाव से हमारी कुछ पंचायतें अंचित रहीं। यह अच्छा ही रहा। उन्हीं वंचित पंचायतों में

सन्तालो की पंचायतें रही। उनकी सुरक्षा इस लिए हो सकी कि सन्ताल तथाकथित आधुनिक शिक्षा नही पा सके थे। साइमन कमीशन में हमारी पंचायतों के पतन का कारण यह बताया गया था— 'चुनाव का क्षेत्र सीमित था, वे संघर्ष और विवाद के केन्द्र थे। गाँव में योग्य और बुद्धिमान, सदाचारी पुरुषों का अभाव था। अगर वैसे पुरुष मिलते भी थे, तो एक ही जाति और एक ही कुटुम्ब के मिलते थे। इसीके फलस्वरूप सुसंगठित ग्राम-पंचायत नही बन सकी।' हमें तो ऐसा लगता है कि अंग्रेजों ने हमें जो शिक्षा दी, उससे कुबुद्धि अधिक आयी और उसके परिणाम स्वरूप हमारे देहातों का जीवन अत्यन्त कलुषित हो गया। घरो में फूट आयी और ईर्ष्या रानी देहाती लोगो को अपने संकेतों पर नचाने लगी। छोटी-छोटी बातो को लेकर तू-तू मैं-मैं की नौबत आने लगी थी। जहाँ ऐसी शिक्षा का प्रभाव नही पडा, वहां ऐसी बातें नही आयी। अंग्रेजी शिक्षा या यह कहा जाय अंग्रेजी की शिक्षा-पद्धति के आरम्भ के समय हमारे गांव विकासोन्मुख थे। कार्लमार्क्स ने 'पूँजीवाद' में हमारे तत्कालीन भारतीय गांवों के सम्बन्ध में लिखा था—'छोटे और अत्यन्त प्राचीन भारतीय ग्राम समुदाय, जो आज पर्यन्त भी विद्यमान हैं, भूमि पर सम्मिलित साम्य, कृषि और ग्राम उद्योगो के सम्मिलित प्रयोग तथा अपरिवर्तनीय ग्राम-विभाग पर स्थित हैं, जो एक नूतन समुदाय के निर्माण के लिए एक योजना का काम देते हैं। ... ... यदि ग्राम में जन-संख्या बढ़ जाती है, तब नये ग्राम की रचना की जाती है। ग्राम विधान की मशीनरी में एक सुव्यवस्थित श्रम विभाजन प्रकट होता है। इन ग्राम-संस्थाओ में उत्पादन में संगठन की सादगी एवं सरलता है, जो अनवरत रूप से नष्ट हो जाने पर पुनः प्रादुर्भूत हो जाता है। यह सरलता एशियायी समाजो की अपरि-

वर्त्तनशीलता के रहस्य की कुंजी है। समाज की आर्थिक व्यवस्था का ढांचा राजनीतिक उथल-पुथल होने पर ज्यों का त्यों बना रहता है।" अंग्रेजों के प्रभाव-क्षेत्र में आने के कारण, इस प्रकार की सुन्दर ग्राम-व्यवस्था नष्ट हो गयी। पर अंग्रेज, जिन्हें अपने सांचे में नही ढाल सके, जिन क्षेत्रों पर उनके आचरणों का प्रभाव नही पड़ा; उन क्षेत्रों में ग्राम-व्यस्थायें नष्ट नही हुईं। इस प्रकार के क्षेत्र बहुत नही थे। इन क्षेत्रों में संतालों का क्षेत्र आता है। उन्होंने अंग्रेजी शासनकाल में कुछ पाया नही, यह सत्य है। पर यह भी स्वीकार किया जाता है कि उन लोगो ने कुछ खोया नही। अंग्रेजों से उन्होने कुछ पाया नहीं, अतः उन्हें पिछड़ा कहा जाने लगा। आश्चर्य तो यह है कि उन्हें पिछड़ा वे ही कहते हैं, जिन्होने अपना सब कुछ खो दिया है। उनके गाँव, जो एक दिन स्वर्गपुरी के समान थे, जिनके वैभव से इन्द्र की इन्द्रपुरी भी लज्जित होती थी, स्वयं भगवान को मनुष्य का रूप धारण कर जिस वृन्दावन में आना पड़ा था, उसी गाँव को अंग्रेजी व्यवस्था में तथाकथित सभ्य लोगों ने कुम्भीपाक बना दिया। पर सन्तालों ने, जो ऐसे लोगो के द्वारा पिछड़ा कहे जाते हैं, अपनी ग्राम-व्यवस्थाओं को नष्ट नही होने दिया। उनके गाँवों से मर्यादा नही मिटी। उनके आदर्श नष्ट नही हुए।

सन्तालों के पास वेद, ब्राह्मण और उपनिषद के समान महान ग्रन्थ नही है; पर उनके पास लोक कथायें और लोक-गीत बहुत हैं। उनसे पता चलता है कि संतालो की पंचायतें बहुत पुरानी हैं। संताली लोक कथाओं से यह पता चलता है कि त्रेता में भगवान रामचन्द्र के निर्देशानुसार लक्ष्मण ने संतालों की पंचायती व्यवस्था तथा सामाजिक सगठन को दृढ किया था। भगवान राम ने रावण को हराने के लिए संतालो का सहयोग लिया था।

उनके गीतों से पता चलता है रावण को मारकर जब वे लौटे थे, तब लक्ष्मण को उन्होंने संतालों की राजधानी चम्-चम्पा में भेजा था। लोक कथा में इसका उल्लेख इस प्रकार आया है :—

"लक्ष्मण जी के तत्वावधान में सन्तालों के पुरखों की पंचायत की बैठक हुई थी। सभी लोग तुड़ी पोखरी के पुरइन के पत्ते पर बैठे थे। उसी बैठक में सन्तालों ने यह निर्णय लिया कि वे अपनी राज्य-व्यवस्था पंचायत द्वारा करेंगे। पंचायत के सदस्य बड़े-बूढ़े लोग होंगे। इतना ही नहीं, उसी बैठक में यह भी उन्होंने तय किया था कि प्रत्येक गाँव में एक मांझी रहेगा, जिसका चुनाव हुआ करेगा। पंचायतों के संचालन के लिए नियम, उपनियम भी बनायेंगे। कुछ गीतों से यह भी पता चलता है कि उसी बैठक में उनके भिन्न-भिन्न गोत्रों के नामकरण भी हुए थे। उनके सामाजिक संस्कारों से सम्बन्धित नियमों का निर्माण भी उसी बैठक में हुआ था।"

लक्ष्मण जी के समक्ष सभी निर्धारित नियमों को पालने के लिए सन्तालों के पुरखों ने वचन दिया था, शपथ ली थी। कथा में इस प्रकार इसका वर्णन है—

"लक्ष्मण जी ने सन्तालों से कहा कि जो नियम निर्धारित हुए हैं, उनका पालन होना चाहिए। उन्होंने उनसे कहा कि यदि आपलोग पुरइन के पत्ते पर चढ़कर तुड़ी पोखर को पार कर जायेंगे, तब समझा जायेगा कि आपलोग नियमों को पालन करने के लिए दृढ़व्रती हैं। पर उन्होंने एक शर्त रखी थी। तुड़ी पोखर को पार करते हुए, सन्तालों के पाँव के तलुए से जल का स्पर्श नहीं होना चाहिए। लक्ष्मण जी स्वयं पुरइन के पत्ते पर चढ़कर आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे संतालों के पुरखे

भी पुरइन के पत्ते पर चढ़कर चले। तुड़ी पोखर सब पार कर गये। पार करते हुए किसी का भी तलुआ जल से नहीं भींगा। लक्ष्मण जी को विश्वास हो गया कि संताल उनके द्वारा बनाये हुए पंचायत के नियमों का पालन करेंगे। उन्होंने संतालों के पुरखों को उनकी सफलता पर बधाई दी। उनकी दृढ़ता एवं निष्ठा की उन्होंने प्रशंसा की।"

संताल आज भी 'तुड़ी पोखरी बाहाबान्देला' को पवित्र भूमि मानते हैं। लक्ष्मण जी ने सन्तालों की जो परीक्षा ली थी वह सन्तालों के लोक गीत में इस प्रकार उल्लिखित है :—

"तुड़ी चर पुखरी बाह् चर बान्देला ;
पुरइनी स काम दो रिचोवये रोचोव् ।"

अर्थात्—"तुड़ी पोखरी बाहाबान्देला (जिसका अर्थ होता है—कमल के पत्तों से आच्छादित पोखरी) को पार करते समय पुरइन के पत्ते चरचराते थे।"

सन्तालों के पुरखों ने पंचायत के नियम का पालन करने के लिए जो वचन दिये थे, सन्ताल आज भी उनका पालन करते हैं। समय परिवर्तन होने के कारण उनके नियमों में भी कुछ परिवर्तन हुए हैं, पर मूल में परिवर्तन नहीं आया है। लक्ष्मण द्वारा निर्धारित नियमों को दृष्टि में रखकर सन्ताल आज भी अपनी पंचायतों का संचालन करते हैं, उनके पुरखों ने लक्ष्मण जी के समक्ष जो दृढ़ व्रत की शपथ ली थी, वह आज भी उन्हें याद है। अतः वे अपने सामाजिक नियमों का दृढ़ता से पालन करते हैं।

सन्ताल अकेला रहना नहीं चाहता। वह समूह में रहता है। वे जहाँ भी गये हैं, एक समूह में गये हैं, समूह के साथ बसे हैं। समूह का

नेता उनका प्रमुख होता है। उसे वे मांझी कहते हैं। उनके अन्य सहकर्मी भी होते हैं। गांव वाले उन्हें चुनते हैं। सन्तालों की नागरिकता, उनके अधिकार एवं कर्त्तव्य की निगरानी तथा सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों का वे सम्पादन करते हैं। कोई भी सार्वजनिक काम या उत्सव वगैर उनके आदेश के नही हो सकता। व्रत वे मनवाते हैं, शादियाँ वे कराते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सार्वजनिक हित के सभी कार्य पंचायत एवं उसके मुखिया-मांझी के द्वारा सम्पादित होते हैं। साधारणतः सन्ताल अपना प्रमुख अपने बीच से ही चुनते हैं, पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दूसरी जाति का प्रमुख चुना जाता है। ऐसी स्थिति में सन्ताल अपनी जाति से हाँड़ी माँझी का चुनाव करते हैं। प्रशासकीय कार्य मांझी के द्वारा होता है, पर सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों का सम्पादन हाँडी मांझी कराता है। मांझी के कार्य बहुत हैं। गांव और बाहर के सभी कामो का उत्तरदायी वह होता है। उसकी जिम्मेवारियाँ अधिक हैं, अतः उसे भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त हैं। उसे कर-रहित भूमि मिलती है, शिकार में जो जानवर मारे जाते है, उसमें उसे अंशदान प्राप्त है। सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित कोई भी घटना होती है, उस पर विचार करने के लिए गाव के सभी लोगों की पंचायत वह बुलाता है। वह समस्याओं को उसमें रखता और समाधान वह पचायत से करता है। किसी बात की शिकायत जब उसके पास पहुंचती है, तब उस पर वह पंचायत का निर्णय लेता है। गांव का प्रतिनिधित्व ' मोर होड़ ' करता है, जिसका अर्थ है— पाँच मानव की सभा। सन्ताल भी पंच-परमेश्वर में विश्वास करते हैं। गाव की समस्याओ को वे गांवों में ही हल करते हैं। गांवों की बात को बाहर जाने देने में वे गांव का अपमान मानते हैं। गाव की सीमा उसकी लक्ष्मण-

रेखा है। उसे वे पार नहीं करते। निर्णय लेने में कुछ देर करते हैं, पर जो निर्णय लेते हैं, वह न्याय संगत होता है। दूसरे गांव से सम्बन्धित बातों के हल के लिए, सम्बन्धित गांव की पचायतों की सम्मिलित बैठक होती है। वे समस्या को हल करना चाहते हैं, पर जब वे हल नहीं कर पाते हैं तो वे परगनैत के पास अपील करते हैं। परगनैत कई गांवों की पंचायतों का प्रमुख होता है। उसके सहकर्मी होते हैं प्रत्येक पंचायत के प्रमुख और गांवो के ५ प्रभावशाली व्यक्ति। प्रशासकीय उद्देश्य से कई गांव एक समूह में रहते हैं— जिन्हें सन्ताल 'बंगलो' कहते हैं। बंगलो के प्रमुख को वे परगनैत कहते है। परगनैत को सहायता देने के लिए देश– माझी होता है। परगनैत चकलादारों को नियुक्त करता है, जो सन्देशवाहक का काम करते हैं। प्रत्येक परगनैत को परम्परा के अनुसार वार्षिक एक रुपया, आधा सेर घी, पाँच कौडी (Cobs) मिलता है। देश मांझी को इसी के अनुपात में आधा मिलता है। ऐसी परम्परा है कि जब उन्हें ये वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, तब वे गांवों के प्रमुखों को प्रीतिभोज देते हैं। ऐसे तो परगनैत का चुनाव होता है, पर परम्परा से वह वंशगत होता आ रहा है। गांव के प्रत्येक घर के कर्त्ता या जो सबसे बडा होता है, उसे मत देने का अधिकार प्राप्त है। परगनैत का जब चुनाव हो जाता है, तब उसकी नियुक्ति की स्वीकृति अनुमण्डलीय पदाधिकारी एवं उपायुक्त, सन्ताल परगना देते हैं। जब तक परगनैत की नियुक्ति की स्वीकृति नहीं होती, तब तक वह वैध नही माना जाता है। देश मांझी की नियुक्ति को स्वीकृति अनुमण्डल-पदाधिकारी करते हैं।

गर्मी के दिनों में सन्ताल एक बहुत बड़ा उत्सव करते हैं। उसमें सभी सन्ताल भाग लेते हैं। उसके संयोजक को वे ' देहुरी ' कहते हैं।

देहरी सन्तालों का पुरोहित होता। वह सखुआ की टहनी द्वारा उत्सव के समय, तिथि एवं स्थान को घोषित करता है। निर्धारित स्थान पर संताल संध्या समय पहुँचते हैं ; शिकार खेलते हैं ; भोजन बनाते हैं और खा-पीकर वे सभा करते हैं। सभा की अध्यक्षता देहरी करता है। बैठक में सारी बातें रक्खी जाती हैं। पंचायत के प्रमुख पर भी अनुशासनहीनता की कार्रवाई की जाती है। जाति से निकालने या समाज से निकाले गये लोगों को पुनः समाज में लाने का निर्णय इसमें होता है। जिन प्रश्नों पर वे निर्णय नहीं ले सकते हैं, उनको अगले साल की बैठक के लिए स्थगित करते हैं।

संतालों की पंचायती-व्यवस्था में जनता स्वयं अपना भाग्य विधाता है। पंचायत एवं बंगलो को वह संगठित करती है। अधिकारियों को वह नियुक्त करती है। सत्ता उसके हाथों में है। वह स्वयं बहुत से काम नहीं कर सकती है, यह सम्भव भी नहीं है, तब वह उन्हें, इनके सम्पादन के लिए नियुक्त करती है। यह सत्य है कि व्यवहारों के द्वारा अधिकारियों का पद वंशगत होता जा रहा है और भूमि पर उनका अधिकार भी होता जा रहा है। पर चुनाव की पद्धति मरी नहीं है। माघ मास में गाँव के लोग जमा होते हैं; प्रमुख उसमें अपने पद का त्याग करता है। उसके साथ ही साथ गाँव के अन्य अधिकारी भी अपने पद का त्याग करते हैं। उन्हें फिर से पंचायत चुनती है। सभी अधिकार उन्हें सौंपा जाता है।

मांझी के सहायतार्थ दो अन्य अधिकारी होते हैं—एक का नाम परमाणिक है और दूसरे का नाम जोगमांझी है। परमाणिक मांझी द्वारा चुना जाता है। वह उनका प्रतिनिधित्व करता है। मांझी को अगर कोई लड़का या भाई न हो तब ऐसी स्थिति में परमाणिक ही उनका

उत्तराधिकार लेता है। सामाजिक कार्यों में मांझी का सहायक जोगमांझी होता है। जोग मांझी का मुख्य काम है सामाजिक बन्धनों में कमी नहीं आये, सामाजिक सीमा का उलंघन नहीं हो। वह यौन-सम्बन्ध पर निगरानी रखता है। यौन सम्बन्धी नियम के भंग होने पर वह अपराधी को पंचायत के समक्ष प्रस्तुत करता है। सोहराय पर्व पर नाच, गान तथा अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम रखे जाते है। पाँच दिनों तक अनवरत वे मस्त होकर नाचते हैं, गाते हैं और हाण्डी पीते हैं। उस अवसर पर गांव के सभी कुमार एवं कुमारियाँ जोग माँझी के जिम्मे सौंप दी जाती हैं। जोग-माँझी उन पर निगरानी रखता है, वह देखता है कि वे उस अवसर पर यौन-सम्बन्ध के नियम को भंग नही करें। जन्म एवं विवाह का उत्सव उसकी देख-रेख में सम्पन्न होता है। जोग मांझी को सहायता देने के लिए जोग-परमाणिक होता है। मांझी के आदेशों के पालन के लिए गांव में गोड़ायत रहता है, उसे आदेशपाल भी कहा जा सकता है। वह मांझी की सूचना गांववालो को देता है और मांझी को गांव की स्थिति से अवगत कराता रहता है। गाव में बाहर से जब कोई आदमी प्रवेश करता है, तब उसपर वह नजर रखता है। मांझी जो जानकारी चाहता है, उसे वह देता है। सन्तालो के लोक-जीवन में गोडायत का बहुत महत्व-पूर्ण स्थान है। उसे सन्ताल बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। गौड़ा-यत को वे मराङ्ग भी कहते हैं। परम्परा ऐसी है कि जब परमाणिक मांझी के पद पर नियुक्त होता है, तब गोडायत परमाणिक बनता है। गांव के पुरोहित को वे नायक कहते हैं। वे सभी धार्मिक काम करते हैं। उनके अधीन कुदम नायक होते हैं। वे नायक को धार्मिक अनुष्ठानों में मदद करते हैं। जब गांव के लोग आखेट खेलने जाते हैं, तब वे गांव वालों के

सौभाग्य के लिए बोंगा से प्रार्थना करते हैं।

मांझी केवल भू-कर समाहर्त्ता नही है। वह पुलिस अधिकारी भी होता है। अपराधों की सूचनायें उसे अधिकारियों को देनी पडती है। दामिन-ई-कोह् में मांझी को भू-कर की वसूली पर सरकार से ८ प्रतिशत प्राप्त होता था, और जमीन्दारी से वसूली पर १½ प्रतिशत वह प्राप्त करता है। उपायुक्त उसे नियुक्त करते हैं, और उसे वे उसकी आचरण हीनता के कारण अपने पद से हटा भी सकते हैं। गांव के लोग भी उसे हटा सकते हैं। पर वे अपनी स्वेच्छा का प्रयोग असाधारण स्थिति में ही करते हैं। गांव के लोगो की इच्छा पर उनकी नियुक्ति होती है, उन्ही के अनुरोध पर वे हटाये भी जाते हैं। गांव के प्रधान को अब केवल मांझी ही नही कहा जाता। वे मुस्ताजीर भी कहलाते हैं। उन्हें सन्ताल प्रधान कहते हैं। उनका एक दूसरा नाम सरदार भी है। मांझी को सामाजिक एवं राजकीय— दोनों प्रकार के कामों का सम्पादन करना पडता है। मुस्ताजीर उस व्यक्ति को कहते हैं, जिन्होने इजारा से जमीन या जंगल साफ कर जमीन का ठीका लिया हो। उनकी भू-कर वसूल करने की अवधि निर्धारित रहती है। इस प्रकार के मुस्ताजीर सन्तालों से बाहर के भी होते हैं, पर साधारणतः सन्ताल ही होते हैं। 'प्रधान' शब्द का प्रयोग अब हो रहा है।

दामिन-ई-कोह् में परगना का निर्माण किया है। उसके अधिकारी परगनैत कहलाते हैं। उसका अधिकार क्षेत्र का नाम, जैसा ऊपर बताया गया है, बंगलो है। उपायुक्त की ओर से उसकी नियुक्ति होती है और उन्हें सब-इन्सपेक्टर ऑफ पुलिस का अधिकार प्राप्त है। गांव के मांझी और अन्य नागरिकों के आचरण के लिए वह उत्तरदायी है। भू-कर की

वसूली समुचित रूप से हों, यह भी देखना उसका काम है। मांझियों के द्वारा भू कर की वसूली पर उसे ९ प्रतिशत कमीशन मिलता था, बाद में ऐसा अनुमान हुआ कि कमीशन की दर कम है, अतः सरकार ने सन् १६२४–२५ में इसमें वृद्धि कर दी, जो इस प्रकार है:—

५ प्रतिशत पहले २०००) रुपये पर
४ प्रतिशत दूसरे २०००) रुपये पर
३ प्रतिशत तीसरे २०००) रुपये पर
२ प्रतिशत बाद के रुपयों पर।

उन पर बाँध, पथ, सीमा–स्तंभ, बंगला आदि की सुरक्षा का भार रहता है। दामिन-ई-कोह के बाद इस प्रकार का परगनैत साधारणतः नही मिलता है। पाकुड़ अनुमण्डल में अम्बर और सुलतानाबाद में इस प्रकार के परगनैत हैं। आज कल प्रशासन में उनका कोई विशेष महत्व नही है, पर सन्तालों की समस्याओं के समाधान में उनका बहुत बड़ा योगदान रहता है। अपने समाज का वे प्रतिनिधित्व करते हैं। वे पंचायत के के प्रमुख होते हैं, सन्धि-वार्त्ता के प्रभारी होते हैं; छोटी-छोटी बातो को वे जाँच करते हैं। वे सन्तालों के सामाजिक जीवन के केन्द्र हैं। गाँव के प्रत्येक घर के कर्त्ता से वह एक रुपया बारह आना वार्षिक पाते हैं। उनकें सहयोगी देश-मांझी को प्रत्येक घर के कर्त्ता से १४ आना और परगनैत के सन्देश वाहक; जो चकलादार कहलाता है, उसे सात आना प्राप्त होता है।

परगनैतों के समान सरदार होते हैं। दुमका और जामताड़ा के गैर-पुलिस क्षेत्र में उन्हें वे अधिकार प्राप्त हैं, जो एक थानेदार को प्राप्त हैं। गोड्डा और राजमहल में सरदार मिलते हैं; पर वे थानेदारों के मात–

हृत होते हैं। उन्हें गैर-पुलिस क्षेत्र के सरदारों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। ये थानेदार एवं गाँव के प्रमुख के मध्यवर्ती व्यक्ति हैं। देवघर अनुमण्डल में सन् १८१४ के अधिनियम २६ के अनुसार सरदारों को अधिकार प्राप्त है।

पहले गाँव के अधिकारियों को भू-कर रहित जमीन मिलती थी। पद के अनुपात में जमीनें दी जाती थी। माँझी को ४ अंश, परानीक को ३ अंश, जोग माँझी को दो अंश और अन्य अधिकारियों को एक-एक अंश मिलती थी। अब उन्हें भू-कर रहित जमीन नही मिलती है। जमीन जो उन्हें मिलती है उसपर वे कर देते हैं। पर प्रधान आज भी जमीन पर भू-कर नही देते है। माँझी की जमीन उसके पुत्रों को उसके मरने के बाद नही दी जाती। उसके उत्तराधिकारी को ही मिलती है।

पंचायत सन्तालों की एक महत्वपूर्ण सस्था है। पंचायतों की बैठक एक निर्धारित स्थान पर होती है। उस स्थान को माँझी-स्थान कहते हैं। उन बैठकों में वे अपनी समस्याओं को हल करते हैं। कभी-कभी माँझी-स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थान में भी वे बैठकें करते हैं। अनैतिक एवं चरित्र हीनता की बातों का निर्णय वे साधारणतः गाँव के बाहरी छोरपर करते हैं। नारियों के सम्मान के लिए वे ऐसा करते हैं। नारियो की भावनाओं पर वे आघात नही करते। नारियो के कानों में बातें नही आयें, इसलिए वे माँझी-स्थान से बाहर जाकर उन विषयों पर फैसला करते हैं। पंचायतों में जिनका वे निर्णय नहीं ले पाते हैं, तब परगनैत के अधीन पाँच गांवों के मांझी के द्वारा उनका निपटारा कराते हैं। सभी सामाजिक प्रश्नों का हल पंचायतें करती हैं और अपराधी को दण्डित भी करती हैं।

उत्तराधिकार-नियम

सम्पत्ति प्राप्त करना, उसे अपने पूर्वजों से अभिग्रहित करना—यह एक मानवी प्रथा है। युगों से यह क्रम चलता आ रहा है। आगे भी जब तक समाज है, तब तक किसी न किसी रूप में यह चलता रहेगा। सन्तालों में भी यह प्रथा युगों से चली आ रही है। सन्तालों में उत्तराधिकार की प्रथा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक संस्कार की देन है। स्थावर या जंगम सम्पत्ति पर जो पूर्वजों से उन्हें विरासत के रूप में मिलती रही है, अभि-ग्रहण के उनके कुछ अपने नियम हैं। वे नियम बदलते रहे हैं। समय की गति के साथ उनमें परिवर्त्तन आता रहा है। यह जीवित जाति का स्वाभाविक गुण है। सन्तालों की उत्तराधिकार-प्रणाली उनके सामाजिक संस्कार पर आधारित है। उसने एक विधि का रूप धारण कर लिया है। विधि का मुख्य तत्व है— विधि वेत्ताओं का भाष्य। विधि का स्वरूप सरल होता है, पर उसका भाष्य इतना जटिल होता है कि वह स्थिर नहीं हो पाता है। उसका रूप आज कुछ है, पर विधि भाष्यकारों ने उसका रूप बदल कर कुछ ऐसा कर दिया कि पहला रूप पहचाना ही नहीं जाता है। सन्तालों का उत्तराधिकार नियम जो सौ वर्ष पहले था, वह रूप अब नही रहा। उसका उत्तरदायित्व केवल विधि भाष्यकारो का ही नहीं है; सन्तालों के सामाजिक जीवन में परिवर्तन के कारण भी हैं।

सन्तालों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में सम्पत्ति का वैयक्तिक अधिकार का जन्म स्वाभाविक रूप से उनके निर्मित एवं रचनात्मक कार्यों से हुआ है। पहले सन्तालों ने जंगल साफ किया, खेत बनाया और उसके वे अधिकारी बने। सन्तालों पर जब सरकार की ओर से मालगुजारी ली

जाने लगी, तब उन्होंने इसका विरोध किया था। सन्ताल विद्रोह का एक कारण था— मालगुजारी और उसकी वसूली की नीति। सन्ताल विद्रोह के समय सन्तालों का कहना था— 'उन्होंने जंगल साफ किया, खेत बनाया, हल चलाया, बीज दिया, पैदा किया और उसे काटा; बोंगा ने पानी बरसाया, सूर्य्य ने धूप दिया। फसल अच्छी हुई— सरकार ने कुछ नहीं किया— फिर भी उन्हें मालगुजारी! यह क्यों ? सन्तालों के इस प्रश्न से उनके सम्पत्ति के अधिकार का जन्म हुआ। सन्ताल ने यह बाद में स्वीकार किया कि सरकार ने उनके सामने एक परिस्थिति का जन्म कर जंगल काटकर खेत बनाने में बाधा नहीं दी, इस सुविधा के लिए वे आभार प्रकट करते हैं; इस आभार से वे कुछ कर देकर, मुक्ति चाहते रहे हैं। उन्होंने अपने समाज का अंग सरकार को कभी नहीं माना और न ही जमीन को उनका उपहार माना। उनके गीतों से पता चलता है- अपने खून और पसीना से उन्होने जमीन को अर्जित किया है। अतः जमीन उनकी है। वे उसके अधिकारी हैं, उसके मालिक हैं। इस अधिकार भावना पर चोट पड़ने पर उन्होने विद्रोह किया है। वे जब तक जीवित हैं, तब तक जमीन पर दूसरे का अधिकार नहीं हो सकता। उनकी यह धारणा– उन्हें अपने पूर्वजों से प्राप्त है। विधिने उन्हें यह आश्वासन दिया–जमीन का स्वामित्व का अधिकार जब एकबार अर्जित हुआ, वह तबतक उसके पास रहेगा, जब तक वह स्वयं उस अधिकार को मुक्त रूप में दूसरे को दे न दें। संतालों में तो ऐसा विश्वास है कि मरने के बाद भी स्वामित्व उस मरे हुए व्यक्ति में रहता है। मरा हुआ व्यक्ति अपने परिवार के साथ रहता है; सन्तालों का यह विश्वास हास्यास्पद लगता है, पर सन्ताल यह मानते हैं कि उनके पूर्वज अपने वंशजों की भलाई करते हैं, उनकी जमीन की सुरक्षा करते हैं। मरने

के बाद उनके पूर्वजों को शांति स्वर्ग लोक में नहीं मिलती, यही कारण है कि उसकी अस्थि का कुछ अंश उनके वंशज भण्डार घर में रखते हैं। दुर्भाग्य-वश कोई सन्ताल घर से बाहर मरता है, तब उसकी शांति के लिए उसकी अस्थि का कुछ अंश घर लाया जाता है, उसे घर में रक्खा जाता है। जिस सन्ताल के पास अपनी जमीन है, वह अपनी जमीन पर ही जलना चाहता है, उसके वंशज उसे उसकी जमीन पर जलाते हैं। वे मृतक व्यक्ति को अपने हिस्सा का खाना प्रति दिन देते हैं। उनके यहाँ तब तक कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं हो सकता है, जब तक मृतक को आराधना नहीं होती है। मृतक एवं जीवित लोगों का इस प्रकार का सम्बन्ध इस बात को प्रमाणित करता है कि सम्पत्ति का अधिकार वे अपने परिवार में सुरक्षित रखते हैं। परिवार के सम्बन्ध में उनकी धारणा है कि बेटियों का उसमें कोई स्थान नहीं है। बेटा बाप के जीवन और मरण के साथ रहता है। उससे ही परिवार बनता है। अतः उसे ही परिवार की सम्पत्ति पर अधिकार है। सन्ताल जाति कई गोत्रों में बँटी हुई है। सह-गोत्र शादी उनके यहाँ वर्जित है। इस नियम को तोड़ने पर उन्हें दण्डित होना पड़ता है। अपने व्यवहार के अनुसार कन्या अपनी शादी के दिन अपने घर को छोड़कर चली जाती है, और वह अपने पति के परिवार में मिल जाती है। वह अपने पति के पिता और उनके पूर्वजों के सभी धार्मिक अनुष्ठान एव सामाजिक कर्त्तव्यों में हिस्सा लेने लगती है। इसके बदले उसे अपने पति के परिवार के द्वारा अधिकार मिलते हैं। उसके पति का गोत्र ही उसका गोत्र बन जाता है। उसका सम्बन्ध अपने पिता से टूट जाता है। वह अपने श्वसुर की बधू ही नहीं, उसकी बेटी भी बन जाती है और उनके गोत्र की वह सन्तान हो जाती है। गोत्रीय बलिदान के मांस खाने और

पोचाई पीने में बड़े उत्साह से भाग लेती है। इस प्रकार का हिस्सा वह अपने पिता के घर पर नहीं ले पाती है। कारण, वह दूसरे परिवार की हो जाती है, वह उसके गोत्र की अब सदस्या नहीं रह जाती है। परिवार सम्बन्धी सन्तालों की इस धारणा से स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि पिता की सम्पत्ति में बेटियों का कोई अधिकार नहीं है। बेटियों का अधिकार होने से एक परिवार दूसरे परिवार में सम्पति का हस्तान्तर होता है। बेटियों का सम्पत्ति पर उत्तराधिकार न होना एक प्रकार से अनुचित-सा लगता है, पर सन्तालों के परिवार संघटन को दृष्टि में रखने से ऐसा लगता है, सन्ताल अपनी बेटियों के प्रति कोई कठोर भावना नहीं रखते हैं। विवाहिता पुत्री अपने पति के परिवार से सब कुछ प्राप्त कर लेती है। सन्ताल-समाज में बेटियों को पिता की सम्पत्ति में अधिकार न देने के कारण कुछ लोग यह समझते हैं कि सन्ताल अपनी बेटियों की उपेक्षा करते हैं, पर ऐसी बात नही है। सन्ताल अपनी बेटियों की उपेक्षा नहीं करते हैं। शादी के बाद वह उसकी नहीं, पर दूसरे परिवार की सदस्या हो जाती है, इस तरह वे अपनी सम्पत्ति दूसरे परिवार में नहीं जाने देते हैं। विवाहिता बेटी अपने पति के घर में, उसके परिवार में सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त करती है, पर अपने पति के मर जाने के बाद वह स्वतंत्र है। तब वह पुनर्विवाह करके नया घर बसा सकती है या अपने पति के परिवार में रह सकती है। अगर उसको बेटा नहीं है, तब वह कुमारी लड़की की तरह अपने सभी अधिकारों का उपभोग कर सकती है। वह अगर लड़कों की माँ है, तब लड़के की अभिभाविका बन जाती है ; पिता की सम्पति का उत्तराधिकारी, पिता के मरने के बाद बेटा होता है। माँ बेटे की सम्पत्ति की, उसकी नाबालिग अवस्था में, देख-रेख करती है।

सन्तालों में बहु विवाह की प्रथा पहले नहीं थी। पत्नी के रहते हुए वे शादी नहीं करते थे; पर हिन्दुओं के सम्पर्क में आने पर वे पत्नी के रहते हुए भी दूसरी शादी करने लगे हैं। पहली पत्नी की बगैर स्वीकृति के आज भी जब वे शादी करते हैं, तब उस स्त्री की स्थिति परिवार में अच्छी नहीं रहती। उसके पुत्रों को सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होता। ऐसे लड़के अवैध माने जाते हैं। पर इधर कई मुकदमों में देखा गया कि ऐसे लड़कों का भी सम्पत्ति में उतना ही अधिकार माना गया जितना अधिकार सन्तालों की वैध पत्नी से उत्पन्न वैध पुत्रों को मिलता है। वैध पत्नी की जीवित अवस्था में उसकी स्वीकृति के बाद जब उसका पति शादी करता है, तब शादी वैध मानी जाती है और दूसरी शादी से जो पुत्र होते हैं, उन्हें सम्पत्ति में अधिकार मिल जाता है। फिर भी, सन्तालों में हम पाते हैं कि ऐसे लड़कों को भी पिता की सम्पत्ति में पहली पत्नी के लड़कों के बराबर हिस्सा नहीं मिलता है। उसे कम हिस्सा मिलता है। उनके नामकरण में भी दूसरी शादी के लड़कों को समान स्थान नहीं प्राप्त होता। पहली शादी की पवित्रता को सन्ताल मानते हैं। पुत्र न होने पर सन्तालों में गोद लेने की भी प्रथा हम देखते हैं। दत्तक पुत्र को पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हो जाता है, पर गोद लेने की प्रथा पर कुछ नियन्त्रण भी वे रखते हैं। गोद उसी बालक को वे ले सकते हैं, जो उसके गोत्र के हों और जो उसके निकट सम्बन्धी हों। वे अपनी सम्पत्ति को दूसरे गोत्रों में जाने देना नहीं चाहते हैं। सन्तालों में शादी की एक प्रथा है जिसका नाम है—घर जमाई। इस प्रथा के अनुसार सन्ताल अपनी बेटी की शादी ऐसे लड़का से करता है, जो उसके यहाँ आकर रहने लगता है, वह उसका दामाद भर ही नहीं रहता। वह उसका एक प्रकार से पुत्र

हो जाता है और उसकी पुत्री सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हो जाती है। सन्तालों में मुकदमाबाजी की प्रवृत्ति इन दिनों बढ़ रही है। कचहरियों में सम्पत्ति के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर मुकदमे हुग्रा करते हैं।

सन्तालो में उत्तराधिकार के लिए कोई अधिनियम सरकार की ओर से नही बनाये गये है, पर अंग्रेज प्रशासकों के समय प्रकाशित अभिलेखों में सन्तालों के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ विचार व्यक्त किए गये हैं। उन्ही के आधार पर सन्तालों के बीच सम्पत्ति के अधिकार को सुव्यवस्थित किया जाता है। कारण सन्तालो का उत्तराधिकार नियम लिखित या संहिताबद्ध नही किया हुआ है। उनके उत्तराधिकार के नियम उनके व्यवहार, संस्कार एवं परम्परा पर आधारित हैं। वह कही भी लिखित नही हैं। सन्तालो ने स्वय कही भी नही लिखा है। लगभग एक सौ वर्ष से सन्ताल-कचहरियो में उत्तराधिकार का प्रश्न कई बार उठा है, निष्कर्ष निकाले गये हैं; न्याय-निर्णय हुए हैं। न्यायाधीशो ने सन्तालों के सस्कार एवं परम्परा के अनुभव किये हैं। सन्ताल कानून पर कुछ अभिलेख या निबन्ध यत्र-तत्र प्रकाशित हुए हैं। उनके उत्तराधिकार के नियम का हम श्री ए० कैम्पबेली और श्री बोडिंग के निबन्धो में दर्शन करते हैं। ये निबन्ध क्रमशः बिहार और उडीसा रिसर्च सोसाइटी के सितम्बर, १६१५ और सितम्बर, १६१६ के जर्नल में प्रकाशित हुए थे। ये दोनों विद्वान सन्तालों से सम्बन्धित साहित्य तथा उनके जीवन-दर्शन के बहुत बड़े ज्ञाता थे। वे अधिकारी विद्वान माने जाते हैं। श्री कैम्पबेली ने मानभूम में ३० वर्ष रह कर मानभूम के सन्तालों पर काम किया था। श्री बोडिंग ३५ वर्ष तक सन्तालों के बीच सन्ताल परगना में रहे थे। दोनों की राय है कि संतालों में उत्तराधिकार का नियम पुरुषों तक सीमित

है। श्री कैम्पबेली ने लिखा है—न कोई स्त्री स्थावर या अस्थावर सम्पत्ति पर उत्तराधिकार प्राप्त करती और न कोई भी स्त्री के वंशज के आदमी को उत्तराधिकार मिलता है।[१] बोडिंग ने अपने निबन्ध में विशद रूप में प्रकाश डाला है। उनके अनुसार सन्ताल स्त्रियाँ स्वयं सम्पत्ति हैं, वे सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं। कुँआरी होने पर भी वे अपने भावी पति की ही सम्पत्ति समझी जाती हैं। उनकी शादी के जो नियम हमारे सामने आते हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि खरीद के माध्यम से शादी होती है। 'वधू-दाम' की प्रथा आज भी सन्ताल में प्रचलित है।

सन्ताल संस्कार पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ ' हेयरामाको रेक कत्ता ' है, जो सन् १८८७ में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ को प्रो० एल० ओ० स्केरफ्सोरुड ने प्रकाशित किया था। इस पुस्तक की अन्तर्वस्तु एँ गुरु कोलेन की कही हुई है। इस पुस्तक से सन्ताली संस्करण एवं परम्परा का हमें स्पष्ट दर्शन होता है। इस ग्रन्थ का सन् १९१६ में श्री बोडिंग ने संशोधित कर प्रकाशित किया था। वे पति की मृत्यु के बाद विधवा और उसकी पुत्रियों की क्या स्थिति होती है, इसका जो विवरण उक्त पुस्तक के पृष्ठ ११२ में दिया गया है, वह इस प्रकार है— " जब विधवा को बेटियाँ रहती हैं, तब उनकी देखभाल उनके दादा या चाचा करते हैं और पूरी

---

१. Females can not inherit either movable or immovable property nor can any one whose descent is in the female line.

—Dr. Rev. A. Campbell : Bihar and Orissa Research Society, Sept, 1915.

सम्पत्ति को अपने हाथों में रखते हैं। जब बेटियाँ ब्याह करने योग्य हो जाती हैं, तब उनकी शादी कर दी जाती है और शादी के अवसर पर विदाई में उन्हें वे सभी चीजें मिलती हैं जिन्हें बाप से प्राप्त होने की उन्हें अपेक्षा रहती है। उनके दादा या उनके चाचा उनके पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं और विधवा के जीवन-निर्वाह का भार उनके ऊपर रहता है। जब विधवा को कोई बेटा नहीं होता है तब उसके पति की सम्पत्ति पर उसके ससुर या उसके देवर या ज्येष्ठ के अधिकार हो जाते हैं। उसे केवल एक बाछा, कुछ धान, एक बर्तन और एक कपड़ा दिया जाता है, वह अपने पिता के घर वापस चली आती है।"

श्री कैम्पबेली ने अपने निबन्ध में इस बात का समर्थन किया है। वे लिखते हैं— ' अगर कोई पुरुष केवल लड़कियों को छोड़कर मरता है, तब उसके भाई या भाई के अभाव में कोई निकटतम सम्बन्धी उसकी सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता। विधवा या उसकी बेटियों के लिए व्यवस्था करें या नहीं करें, यह उनकी मर्जी पर है। अगर व्यवस्था हुई और व्यवस्था भूमि के रूप में हुई, तब विधवा के मरने के बाद व्यवस्था करने वाले व्यक्तियों को भूमि वापस हो जाती है।"[१] बोडिंग ने भी अपने निबन्ध में इस उत्तराधिकार नियम पर प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा

१. "If a man dies leaving only female issue, his brothers or in default of them, the nearest male relative or relatives claim the property, movable and immovable. Some provision may or may not be made for the widow and her female children. If the provision made for her be

है— " जिसका उल्लेख हुआ है उससे यह स्पष्ट होता है कि विधवा उत्तराधिकारिणी नहीं है और उसे किसी प्रकार का उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होता है। उसकी अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति हो सकती है और वह अपने सम्बन्धियों से उपहार पा सकती है, पर जमीन पर उसका कोई अधिकार नहीं होता है न अपने पुराने घर या अपने पति के घर पर ही अधिकार होता है। अगर उसे लड़का या लड़कियाँ होती हैं तब वह स्वाभाविक रूप से उनके साथ रहती है, उनका काम करती है। अगर उसे न लड़का होता है और न लड़की, और उसके पति के सम्बन्धी उसे रखने से इनकार कर देते हैं, तब वह वापस आ जाती है।"[१] उन्होंने दूसरी

---

in the shape of a piece of land, on her demise it reverts to the original heirs. "

—Rev. Dr. Campbell: The Journal of the Bihar and Orissa Research Soceity. September. 1915 (Page. 3)

१. " From what has been mentioned, it is evident that a widow is not and cannot be an heir to anything. She may own personal property and may get gift from her relations, but land she has no claim to, not in her old home and not in her late husbands. If she has sons or even daughters, the will naturally live with these, doing what she can of work. If she has none, and her late husband's relatives refuse to keep her, she is sent away. "

—Rev. Mr. Bodding: The Journal of the Bihar and Orissa Research Soceity Sept-1916 (page— 17)

जगह यह स्वीकार किया है कि विधवा अपने खोरिश के लिए मांग करती है, वह अधिकार-सा बन गया है। सन्ताल के अन्दर यह सामान्य नियम है कि नारी जमीन की अधिकारिणी नहीं होती। ८० वर्षों से इस पर अधिकारियों ने जाँच की है, सन्तालों की रीति, परम्परा एवं संस्कार को देखा है। वे सब एकमत से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विधवा, जिसको केवल लड़कियाँ हैं, अपने पति की सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हैं।

पाणी मुर्मू नामक एक विधवा ने अपने पति तेबू मरराडी की सम्पत्ति पर उत्तराधिकार की मांग की थी। वह दुमका अनुमण्डल के लहराजुरिया गाँव का रहने वाला था। तेबू मरराडी बंगला संवत् १३२५ में मरा था। उसकी विधवा पाणी मुर्मू और उसकी बेटियाँ रान्डी माराण्डी और विधनी माराण्डी ने अपने पति की सम्पत्ति पर ४ वर्ष तक अधिकार रखा। बाद में तेबू माराण्डी के सम्बन्धी तुका मरराडी, दूला मरराडी, लडू मरराडी और हजारी माराण्डी, जो पाणी मुर्मू के पति के भाई या चाचा थे, पाणी मुर्मू को उसके पति की सम्पत्ति से वंचित कर दिया और स्वयं उसके उत्तराधिकारी हो गये। रेकर्ड ऑफ राइट की धारा १२ (डी) के अंतर्गत पाणी मुर्मू को दुमका के एस० डी० ओ० ने उसके पति के अधिकार से वंचित कर दिया। उसने एस० डी० ओ० के आदेश के विरोध में दुमका के सबजज के यहाँ अपील की। अपनी अपील में उसने अपने को पति की उत्तराधिकारिणी बताया। सबजज ने पाणीमुर्मू को उसके पति की जमीन की उत्तराधिकारिणी बताया। पर पाणी मुर्मू के सम्बन्धियों ने इस निर्णय को गलत माना। सबजज के निर्णय के विरोध में उन्होंने जिला न्यायाधीश के पास अपील किया। जिला न्यायाधीश ने प्राधिकारियों के विचारों को दृष्टि में रखकर निर्णय दिया कि नियम विधवा को पति की सम्पत्ति का

उत्तराधिकारिणी नहीं मानता। हाई कोर्ट ने भी इस निर्णय को पुष्ट किया था।

सन्ताल परगना के भूतपूर्व उपायुक्त मिस्टर बोमपास ने एक नोट तैयार किया था, जो उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक नियम-सा बन गया है। श्री मेकफोरसन ने उसके कुछ अंश का अपने सन्ताल परगना के सेटलमेन्ट रिपोर्ट में उल्लेख किया था। श्री बोडिंग को छोड़कर वे सबसे अधिक सन्ताल के जानकार थे। काफी दिनों तक वे सन्ताल परगना में रहे थे। मिस्टर बोम्पास ने सन् १९०६ में सन्तालो के उत्तराधिकार नियम के संबंध में इस प्रकार लिखा था—

" (१) सन्ताल परिवार में विभाजन— जब परिवार में अनेक पोते

" (१) Sonthal Partition.— When there are many grandsons or the sons do not live happily together,the father and mother will make a partition, a panchayat will be called and the father will divide all the land-cattle and will keep one share for himself; and the son with whom the parents live will retain possession of their share during their lifetime. When the father and mother cannot get about, the sons will have to sup port them, as, when they were little and could not support themselves, the father and mother supported them with great trouble. Daughters get no share. Often at marriage they give them

भौर बेटे होते हैं, भौर वे सुख से मिलकर नहीं रहते हैं, तब बाप भौर भी उनमें विभाजन कर देते हैं। पंचायत बुलाई जाती है भौर पिता अपनी पूरी जमीन–जानवर को उनके बीच बाँट देता है भौर विभाग का एक अंश अपने लिये रख छोडता है। जिस बेटा के साथ वह रहता है, उसी बेटा के अधिकार में पिता का अंश उसके जीवन काल तक रहता है। जब माँ भौर बाप इस स्थिति में आ जाते हैं कि वे अपना भार नही उठा सकते हैं, तब उनके लडके सहायता करते हैं। बेटी को कोई हिस्सा नहीं मिलता है। साधारणतः शादी के समय बेटियों को एक-एक बछडा मिलता है। विभाजन के समय भी कुमारी लडकियों को एक-एक बछडा दिया जाता है। विभाजन के समय कुमार लड़कों को जानवरों का दो हिस्सा मिलता है, एक हिस्सा तो उसका अपना होता है, दूसरा हिस्सा उन्हें शादी में होने वाले खर्च के रूप में मिलता है। बधुओं को शादी के अवसर पर पिता, भाई भौर स्वसुर से जो जानवर प्राप्त होते हैं, उसका विभाजन नही होता है। पर बेटों को शादी के अवसर पर

---

one calf each; and so at a partition if there are unmarried daughters they get one calf each. At a partition unmarried sons get a double share of the live stock, one share for their marriage expenses. Cattle which the daughters-in-law got from their father and brothers and father-in-law at the time of marriage will not be divided, but the cattle which the sons got at marriage will be divided.

जो जानवर प्राप्त होते हैं, उनका विभाजन होता है।

(२) उत्तराधिकार— "अगर कोई औरत मर जाती है, और उसके लड़के अविवाहित हैं तब उसके लड़के विभाजन की मांग नहीं कर सकते हैं। यह मांग तब भी नहीं की जा सकती है, जब उसका पिता दूसरी पत्नी कर लेता है। पर शादी के बाद, अगर चाहें तो विभाजन करा सकते हैं। बाप को एक हिस्सा और प्रत्येक लडकों को एक-एक हिस्सा मिलता है। अगर दूसरी पत्नी को कोई सन्तान नहीं है, और पिता का देहान्त हो जाता, तब पहली पत्नी के लड़के पिता के अंश के हकदार हो जाते हैं, पर उन्हें विमाता की अन्तिम दाह-क्रिया करनी पड़ती है।"

"अगर वह औरत बगैर लड़कों के विधवा हो जाती है; तब उसके पति की पूरी सम्पत्ति पर उसके स्वसुर या उसके देवर या ज्येष्ठ का अधि-

---

"(२) Inheritance— If a woman dies while her sons are unmarried, they cannot demand a partition even if their father takes a second wife, but they can do so if they like after marriage. The father gets one share and the sons one share each. If the second wife has no children, when the father dies, the sons of the first wife can take the share their father got, but if they take it they will have to pay the funeral of their step-mother.

"If a woman is left a widow without sons, her husband's father or brothers will get the

कार हो जाता है। उस औरत को एक बछड़ा, एक बोझा धान, एक बर्तन और एक कपड़ा भर दिया जाता है। वह अपने माँ–बाप के घर वापस चली जाती है। कुछ आदमी विशेष परिस्थितियों में अपने बड़े भाई की विधवा को रख लेते है और उसे घर वापस जाने नही देते हैं। यह नीति बहुत प्रशसनीय है। जो भाई विधवा को अपना लेता है, मृतक भाई की सम्पत्ति से अपना ही हिस्सा भर पाता है, भाई का पूरा हिस्सा नही मिलता।

" अगर विधवा को बेटियाँ हैं; तब उनके दादा या चाचा माँ और बेटियो की देखभाल करते हैं, और उसके पति की सम्पत्ति उनके अधि·

whole property. The woman will get only one calf, one handi of paddy, one bati and one cloth, and will return to her parents' house. Some men under these circumstances will keep their elder brother's widow and not let her return to her parents.This is considered very praiseworthy. The brother who keeps the widow will get his own share of the deceased brother's property, he will not take the whole.

"If a widow has daughters, their paternal grandfather and uncles will take charge of mother and daughters, and the property will remain in their possession. When the daughters grow up, they will marry them, and at their

कार में रहती है। जब लड़कियाँ सयानी हो जाती हैं, तब वे उनकी शादी का प्रबन्ध करते हैं। शादी के अवसर पर उन्हें वे उन सभी उपहारों को देते हैं, जिन उपहारों को उन्हें पिता से मिलने की सम्भावना थी। विधवा की वे तब तक देखभाल करते हैं, जब तक वह जीवित रहती है। सभी लड़कियो की जब शादी हो जाती है, तब विधवा सन्तान रहित विधवा की तरह हो जाती है। या तो वह अपने पिता के घर या वह अपने लड़कियो के साथ जाकर रहने लगती है। "

"जिस विधवा को बेटा होता है, वह पति की पूरी सम्पत्ति को अपने अधिकार में रखती है। दादा और चाचा इतना ही देखते हैं कि विधवा अपने पति की सम्पत्ति को नष्ट तो नही करती है। जब विधवा अपने बेटे की शादी के पूर्व अपना पुनर्विवाह कर लेती है, तब सभी सम्पत्ति दादा और चाचा के अधिकार में चली आती है। और उस लड़के की माँ को उस सम्पत्ति पर अधिकार नही रह जाता है। कुछ अवसरों पर दया करके एक बछड़ा उसे दिया जाता है, जिसे 'भान्दकार' कहा जाता है।"

---

marriage they will give them what presents they would have got from their father, and they will support the mother until her death. When all the daughters are disposed of, the widow will get the perquisites of a childless widow and go to her father's house or will go and live with her daughters.

"The widow with a son will keep all the property in her own possession; the grandfather

"उत्तराधिकार का नियम इस प्रकार है—पिता पुत्र की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। अगर पिता नही है, तब भाइयों का मृतक की सम्पत्ति पर अधिकार होता है। अगर कोई नहीं है या मर गये हैं, तब उनके लडके उस सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। इनके अभाव में मृतक व्यक्ति के चाचा और उसके चाचा के लडकों का उस सम्पत्ति पर अधिकार होता है। जब कोई उत्तराधिकारी नही होता, तब राज्य उसकी सम्पत्ति का अधिकारी होता है।

---

and uncles can only properly look on to see that the wife doesnot waste the property. If a widow remarries before her sons are married, the grandfather and uncles will take possession of all the property and the mother of the children has no right to get anything. Sometimes a calf is given to her out of kindness and is called bhandkar.

"The law of inheritance is this : the father will get the property of his son; if there is no fathor, the uterine brothers of the deceased will get the property; if there are none or they are dead their sons will succeed. In default of these the deceased's uncles and their sons succeed; and if there is no heir the King takes the property.

(३, घरदी जंमाई या घर जमाई—दामाद पाँच वर्ष तक अपने स्वसुर के यहाँ वगैर मजदूरी का काम करता है, उसके बाद वह अपनी पत्नी के साथ घर लौटता है। पति शादी के अवसर पर विवाह का खर्च नहीं देता है। अगर उसकी पत्नी को कोई भाई न हो, और घरदी जमाई अपनी ससुराल में रह जाता है और अपने श्वसुर के लिए तब तक काम करता है, जबतक वह जीवित है, तब ऐसी स्थिति में घरदी जमाई अपने श्वसुर की सभी अस्थावर सम्पत्ति का अधिकारी होता है और स्थावर सम्पत्ति के आधा का वह हकदार होता है। बाकी आधा अंश मृतक के सम्बन्धियों को मिलता है।

एक से अधिक घरदी जमाई हो जाते है, तब सम्पत्ति उन सब में बाँट दी जाती है।

"(3) Ghardi jawai or ghar jawai.—The son-in-law works for five years for his father-in-law without wages, after which he can leave the house with his wife. The husband pays nothing in the way of marriage expenses. If the wife has no brothers and the ghardi jawai stays on in the house and works for his father-in-law till he dies, then the ghardi jawai inherits all the immovable property and half of the movable property, the other half of which goes to the relatives of the deceased.

"If there be more than one ghardi jawai

समय के साथ सन्ताल प्रगति चाहते हैं। उनमें शिक्षा आ रही है। उनका सम्पर्क बढ़ रहा है। ईसाई सन्तालों में यह भावना जगी है कि स्त्री को पुरुषों से हीन क्यों समझा जाय। ईसाई समाज में नारी का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। सन्तालों के उत्तराधिकार के नियम में परिवर्तन आ रहा है। इन परिवर्तनों के दो ही कारण हैं—सन्तालों में ईसाई मत का प्रचार या उनके बीच शिक्षा का प्रसार। दोनों की संख्या अनुपात में बहुत कम है। ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रभावित संतालों की एक सभा ने सन् १९१६ में एक प्रस्ताव पारित किया था जिसके द्वारा नारियों को अधिकार देने की बात कही गई थी; सन्तालों के परम्परागत एवं संस्कारगत नियम में परिवर्तन का प्रश्न उठाया गया था। उसमें यह माग की गई थी कि विधवा को उसके जीवन-काल में अपने पति की सम्पत्ति से खोरिश पाने का हक है। जब वह पुनर्विवाह कर लेगी, तब वह अपने पति की सम्पत्ति के सभी अधिकार से वंचित हो जायेगी। पर जब तक वह विधवा के रूप में रहेगी, तब तक पति की सम्पत्ति का उपभोग करने का तथा उसकी देखरेख करने का उसे अधिकार है। उसकी मृत्यु या उसके पुनर्विवाह के बाद उसके पति की सम्पत्ति उसके देवर या उसके ज्येष्ठ को पुनः वापस लौट आयेगी। 'हेयरामोक रेक कथा' के पृष्ठ

---

they divide the property."

(Final Report of the Survey and Settlement Operations in the district of Sonthal Parganas, 1898-1907, by H. McPherson, I. C. S., Director of Land Records, Bengal (Late Settlement Officer, Sonthal Parganas.)

२३८-२३६ पर यह प्रस्ताव उल्लिखित है। वह सभा भी कोर्डिम द्वारा बुलाई गई थी। पर सभा में सन्ताल-समाज ने प्रतिनिधित्व नहीं किया था। उस प्रस्ताव का प्रभाव थोड़ा हुआ। मध्यस्थों के द्वारा विधवाओं को कुछ अधिकार दिलाये गये। पर उसका विस्तार क्षेत्र बहुत कम रहा है।

श्री जे० एफ० गेनजर ने सन्ताल परगना सेटेलमेण्ट रिपोर्ट (१६२२-३५) में सन्तालों के उत्तराधिकार के नियम पर विचार किया है और उस पर प्रकाश डाला है। आजकल श्री जे० एफ० गेनजर का प्रतिवेदन ही उत्तराधिकार-नियम का आधार है, जो इस प्रकार है—

पारा-४६-सन्ताल आदिवासी कानून के अनुसार केवल पुरुष ही भूमि पर उत्तराधिकार पा सकते हैं। बेटे बाप से संयुक्त रूप में उत्तराधिकार पाते हैं। एक जोत में कई भाई हिस्सेदार हो और एक भाई निःसन्तान मर गया हो, तब जीवित सभी भाई या मरे हुए भाईयों के बेटे निःसन्तान मरे हुए भाई या चाचा की सम्पत्ति के भागीदार हो जाते हैं।

46. Santal Tribal Law of Inheritance—According to Santal tribal law only males can inherit land. Sons jointly succeed their father. If brothers are co-sharers in a holding and one brother dies without issue, the surviving brothers and the sons of predeceased brothers inherit his share per stirpes. The Hindu or Muhammadan laws of succession do not apply to Santals. Santal tribal law is quite definite

हिन्दू और मुसलमानो का उत्तराधिकार नियम सन्तालों पर लागू नहीं होता। सन्तालो का नियम इतना स्पष्ट है कि वह नारियो को उत्तराधिकार प्रदान नही करता। पर इस नियम में क्रमशः परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया है। सन्ताल-संस्कार के अनुसार यह नियम है कि अगर किसी पुरुष को लड़का नही है, तब वह एक दामाद को अपने घर में घर-जमाई बनाकर रख सकता है और बेटा के जो सब अधिकार हैं, उसे दे सकता है। घर-जमाई रखना एक सामान्य प्रक्रिया है, जो स्वसुर के इस अभिप्राय का द्योतक है कि दामाद अपने परिवार से सम्बन्ध तोडकर सभी अर्थों मे स्वसुर का बेटा बन जाता है। घर जमाई बेटा के सदृश अपने स्वसुर की सभी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। यह महत्वपूर्ण बात है कि घर-जमाई रखने की प्रक्रिया सार्वजनिक कार्य है। शादी के समय ही यह होता है, समाज के समक्ष घर-जमाई बनाया जाता है। सन्ताल कानून के अनुसार स्वसुर अपने दामाद को, जिसकी शादी सामान्य ढंग से हुई हो, बाद में घर जमाई नही बना सकता। किसी भी परिस्थिति में कोई विधवा घर जमाई नही बना सकती है। घर जमाई में और घरदी जमाई में बहुत अन्तर है। घर जमाई और घरदी जमाई दोनो में विवाह प्रथा

---

in not allowing female to inherit, but this law is gradually undergoing a change and the situation created by this change is discussed in a separate paragraph below. According to tribal custom it is permissible for a man with daughters and no sons to take a son-in-law into his house a Ghar-Jamai and to give him

के अनुसार कन्या पक्ष के लोग अपनी कन्या के लिए लडका खोज कर लाते हैं। दोनो में किसी प्रकार का दहेज लडके को नही मिलता

---

there by all the rights of a son. The adoption of a Ghar-Jamai is a formal proceeding leaving no room for doubt as to the father-in-law's intention and resulting in the Ghar-Jamai cutting off all connection with his own family as far as his rights to property are concerned and becoming to all intents and purposes the son of his father-in-law. When such adoption has been formally made, the Ghar-Jamai can succeed as a son and oust other male relatives. It is of importance to note that a Ghar-Jamai can be adopted only by a deliberate public act in the presence of the village community at the time of the marriage, and that according to tribal law a father-in-law cannot at a later stage convert as ordinary son-in-law into a Ghar-Jamai. A widow cannot in any circumstances create a Ghar-Jamai. There is a distinction between a Ghar-Jamai and a Ghardi-Jamai. In both cases the bridal party goes from the bride's house to fetch the prospective

पर घर-जमाई स्थाई रूप से ससुराल में बस जाता है, और घरदी जमाई एक अवधि के लिए अपनी पत्नी के घर में रह कर अपने स्वसुर को मदद करता है। अवधि पाँच वर्ष तक की रहती है। 'कन्या-दाम' के बदले में वह अपने स्वसुर के यहाँ काम करता है, घरदी जमाई अपने स्वसुर की सम्पत्ति से कुछ नही पाता है ; उसकी पत्नी को उपज होने के समय उपहार मिलते हैं ; जिसके सहारे अवधि के बीत जाने पर नया घर बसाते हैं। अवधि की समाप्ति पर घरदी जमाई स्वतन्त्र है, वह अपने घर अपनी पत्नी के साथ लौट आता है।

---

husband and no dowry (Pon) is given, but whereas the Ghar-Jamai is adopted permanently as a son, a Ghar-Jamai merely lives and labours in his wife's home for a previously stipulated period which may extend up to five years. He there by works off the debt due on account of the non-payment of Pon. A Ghardi-Jamai is not entitled to get anything from his wife's family, but the woman herself is usually given a small present (Arpa) annually at the harvest season, and this is utilized for setting up her new home. At the expiry of the stipulated period, the Ghardi-Jamai is free and may return to his own home with his wife.

जब घर जमाई को अपने स्वसुर की सभी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है, तब अभिलेखों में उसका नाम अंकित हो जाता है, कभी-कभी पक्षकारों के आग्रह पर पति के साथ पत्नी का नाम भी उल्लिखित रहता है। सन्तालो में चाहे वे ईसाई सन्ताल हों या गैर-ईसाई सन्ताल हो; जन-मत की शक्ति के कारण नारियों के उत्तराधिकार-नियम में परिवर्त्तन हो रहा है, और जो नियम पहले स्वीकृत हुए हैं, वे सदा के लिए मान्य नही हो सकते। जो परिवर्त्तन हो रहे है, उनसे यह संकेत मिलता है कि वे सभी नारियो की स्थिति को सुधारने के लिए हैं, और उन्हें परिवार

When a Ghar-Jamai has succeeded to his father-in-law's estate the holding has usually been recorded in his sole name. In some cases, at the request of the parties, the wife has been jointly recorded with her husband.

The rules against female succession among Santals whether Christians or non-Christians are changing owing to the force of public opinion, and the rules which have been previously accepted, cannot be treated as hard and fast and binding for all time. The change which is occurring is in the direction of ameliorating the condition of women and giving them a more assured footing in the family. During the course of the revision settlement

में एक सुरक्षित स्थान दिलाने के लिए हैं। सेटलमेन्ट के संशोधन की प्रक्रिया में देखा गया कि कुछ मृतक सन्तालो की लडकियों का नाम उनके उत्तराधिकारियों के रूप में लिखाया गया है, यह काम उनके परिवार वालों के विरोध से नही उनकी स्वीकृति से हुए हैं। कुछ मुकदमों में भी देखा गया है कि मध्यस्थो ने नारियों के उत्तराधिकार के पक्ष में निर्णय, विशेष कर उन मुकदमो में, दिया गया है जिसमें लडकी शारीरिक रोगों से पीडित है। इस प्रकार के मुकदमो में सस्कार, जो किसी क्षेत्र में चालू है, उस पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए। किसी अनिच्छुक सन्ताल पर संस्कार सम्बधी प्रगतिशील विचार रखना अविवेकशील कार्य होगा। संस्कार में परिवर्त्तन पूरे रूप में प्रतिष्ठित हो जाय, और सामान्य रूप से स्वीकृत हो जाय ; तभी उस क्षेत्र का वह संस्कारीय नियम समझा जाय। वैध रूप से जहाँ तक सम्भव था, लडकियों के अधिकारो को अंकित किया गया, पर जहाँ पुरुष सम्बन्धियो द्वारा विरोध किया गया, जहाँ जहाँ यह सन्देह हुआ कि वे लडकियों को निकाल देंगे, वहाँ खतियान के अभ्युक्ति स्तम्भ में यह अंकित किया है कि जब तक लडकी जीवित है; या जब तक वह अविवाहिता

---

operations, the daughters of a deceased Santal have some times been recorded as his heirs not only without opposition from the agnates but at their request. In other case it appears from title suit decisions, that arbitrators in Santal cases have found in favour of daughters. This is particularly so in the case of girls who suffer from any physical defects.

है, तबतक वह खोरपोशदर रहेगी। विधवाओं के सम्बन्ध में भी इस प्रकार का अंकन अभ्युक्ति स्तम्भ में किया गया है कि जब तक वह जीवित है, तबतक के

In dealing with cases of this nature the custom adopted in a particular locality must be carefully considered. It would be unwise to force upon an unwilling litigant a decision in advance of custom. If a change in custom has been well established and generally accepted it will, of course, be treated as the customary law of the locality in mitigation of the harshness of tne ancient tribal law.

As a rule we have tried as far as we could legally do so, to record daughters in all cases where not to do so would have involved real hardship , e. g. where the male relations not only want to claim the land but refuse to maintain the girl. where close male relations, who obviously have a clear right under the law, have been suspected to be likely to desert the girl, we have recorded them,, but have also endeavoured to record the girl in the remarks column of the khatian as khorposhdar until death or marriage.

लिए कुछ प्लाट, जो उसके जीवित रहने के लिए पर्याप्त हो, खोरपोशदार के रूप में रहेगा।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि जब सन्ताल औरतें किसी की पत्नी के रूप में अभिलिखित हुई हैं, वहाँ उन्हें विधवा का अधिकार प्राप्त है। जैसे हिन्दू विधवाओ को प्राप्त है। जहाँ सन्ताल लडकियाँ किसी की पुत्री के रूप में अभिलिखित हैं, हिन्दू-ला के अनुसार जिस प्रकार किसी हिन्दू की लडकी को स्त्री-धन का उत्तराधिकार प्राप्त है, वैसा ही

As regards widows, the entries have had perforce to be even less uniform. There have been not a few cases in which no objection has been raised to the recording of the widow in her own right, and in such cases she has been described as wife of so and so. As in the case of Hindu widows, this entry is intended to indicate that she has inherited the property from her late husband, and that when she dies it will revert to those male relations who would ordinarily have inherited it at once under Santal Law. In other cases the widow has like the daughter been recorded only in the remarks column as a Khorposhdar for certain plots sufficient to maintain her, until her death.

अधिकार उन्हें भी प्राप्त है। अगर वह निःसन्तान मरती है, सन्तालों की भावना है कि उसकी भूमि निकटतम पुरुष सम्बन्धी को वापस मिलनी चाहिए।

श्री जे० के० गेनजर ने अपनी सेटेलमेंण्ट रिपोर्ट में उपरोक्त विचार व्यक्त किये थे। यह रिपोर्ट सन् १९३६ में प्रकाशित हुई थी, पर आज भी सन्तालों में यह प्रवृत्ति काम कर रही है कि नारियों को उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त नही है। जब तक पिता जीवित रहता है, तब तक सम्पत्ति एक जगह रहती है और उसके मरने के बाद सभी लडकों में सम्पत्ति बराबर-बराबर बाँट दी जाती है। बडे लडके को एक बैल और एक रुपया अधिक मिलता है। नारियो का सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता है, अतः उत्तराधिकार का प्रश्न ही उटाना सन्ताल अप्रासंगिक मानते हैं। जब कोई सन्ताल निःसन्तान मरता है, तब उसकी सम्पत्ति उसके निकटतम सम्बन्धियो को मिलती है। अगर मृतक सन्ताल का पिता जीवित रहता है, तब वह सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है;

To sun up it may be said that where a Santal woman has been recorded as wife of so and so, sho holds a widow's right as if she were a Hindu widow. Where a Santal woman has been recorded as daughter of so and so, she may be taken to have full rights of inheritance somewhat in the manner of a woman inheriting Stridhan property under the Hindu law. The question of succesion in

वह सम्पत्ति उसे वापस मिलती है। अगर वह भी जीवित नहीं है, तब मृतक सन्ताल की सम्पत्ति भाइयो के बीच बराबर-बराबर बाँट दी जाती है। निःसन्तान विधवाओ की स्थिति बड़ी दयनीय है। कोई भी उसकी देखभाल नहीं करता। अगर देवर रख लेता है तो थोड़ी राहत उसे मिलती है। विधवायें, जो शादी नही करती हैं, अपने पुत्रों के साथ, विशेषकर अपने छोटे लड़के के साथ रहती हैं।



सन्ताल न्याय-कचहरी

सन्तालों की न्याय-व्यवस्था कुछ भिन्न है। उनका लोक-जीवन भी भिन्न है। इन्ही विभिन्नताओ को दृष्टि में रखकर उनकी न्याय-व्यवस्था होती रही है। सन्ताल परगना में व्यवहार न्याय के लिए कुछ अपने

---

such cases is still somewhat in doubt as the system is so new, but there seems little doubt that if she dies issuless, Santal sentiment would perfer that the property should revert to her nearest male relatives.

(Final Report on the Revision Survey and Settlement Operations in the district of Santal Parganas 1922–35, by J. F. Gantzer, M. B. E., Settlement Officer.)

अधिनियम हैं, उन्ही अधिनियमों के अनुसार व्यवहार न्याय के लिए कोर्टों के संचालन के हेतु सन्ताल परगना ऐक्ट, १८५५ (१८५५ के अधिनियम २७) की धारा १ की उपधारा (२) और सन्ताल परगना न्यायिक अधिनियम १८९३ (१८९३ के अधिनियम ५) की धारा २७ के अन्तर्गत कुछ नियम बनाये गये थे। वे नियम सन्ताल परगना मैनुअल के पृष्ठ ९७ से १०९ [१] मे दिए हुए थे। वे नियम बहुत पहले के थे। जब वे नियम बने थे, तब से सन्तालों की स्थिति में बहुत परिवर्त्तन हुए हैं, उनकी आवश्यकताओं ने नये रूप धारण किए हैं। अतः तब के बने हुए नियमों में परिवर्त्तन की आवश्यकता जान पड़ी। बिहार के राज्यपाल ने उनमें काफी संशोधन [२] कर दिया है। संशोधित अधिनियम १ ली जनवरी, १९४६ से चालू हुए हैं, वह अब तक चल रहे हैं।

सन्ताल कोर्ट की विशेषता रही है कि दोनों पक्षों को स्वयं उपस्थित होकर अपनी बातों को रखना पडता है। विशेष स्थिति में कोर्ट की अनुमति से वे अपने एजेन्टो के द्वारा भी उपस्थित हो सकते हैं। एजेन्टों का शुल्क किसी भी स्थिति में कोर्ट मुकदमे के खर्च में शामिल नही करता है। वाद-पत्र (Plaints) अनुमण्डलीय पदाधिकारी या उनके द्वारा अधिकृत-व्यक्ति के समक्ष उपस्थित किया जाता है। वाद-पत्र लिखित या मौखिक दोनों प्रकार से दाखिल किया जाता है। अधिकांश सन्ताल अनपढ़ होते हैं, वे मौखिक ही वाद-पत्र दाखिल करते हैं। मौखिक वादो को कोर्ट में अधिकारी द्वारा लिखा जाता है और जो कोर्ट

१. Santal Parganas Manual (SecondEdition, Second repreint— Page 97 to 109 (b).

२. Correction Slip. No33, December, 1945.

फी उस पर लगना चाहिए, उसे वादी से वसूल किया जाता है। लिखित वाद–पत्र निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा लिखा रहना चाहिए [१] —

(क) वादी द्वारा या उसके किसी परिवार के सदस्य द्वारा।

(ख) निबन्धित पिटीशन-राइटर द्वारा।

(ग) वकील या मुख्तार द्वारा।

इन तीनों में से किसी एक का लिखा हुआ होना चाहिए, पर उसपर वादी का हस्ताक्षर और सत्यापन होना चाहिए और उस पर पर्याप्त मुद्रांक शुल्क का होना अनिवार्य है।

वाद–पत्र में निम्नलिखित बातो का उल्लेख होना चाहिए [२] —

(क) वादी का नाम, उसके पिता का नाम, निवास स्थान, पेशा, और

(ख) दावा के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण, जिसमें जमीन का मूल्य अनुमानित हो,

अगर मुकदमा मालगुजारी के लिए है, तब जमा बन्दी में होल्डिंग का जो न० दिया हो, उसका उल्लेख होना चाहिए; अगर उसकी बन्दोबस्ती न हुई हो, तब जमीन की चौहद्दी का वर्णन होना चाहिए।

वाद–पत्र की उपस्थिति के बाद कोर्ट उस पर विचार करता है। कोर्ट अगर समझता है कि इस मुकदमें में कुछ तथ्य नही है, तो उसे खारिज कर देता है, [३] अगर उसमें तथ्य रहता है, तब उसको आगे बढ़ाने के लिए 'समन' निकाला जाता है। कोई किसी वाद-पत्र को बगैर सुनवाई

१. Santal Civil Law, Section 2, clause (4).

२. Santal Civil Law, Section 3, clause (1)and its sub clause (a) & (b)

३. Santal Civil Law, Section 3, clause (3)

के तथ्यहीन कह कर जब खारिज करता है, तब कोर्ट के आदेश के विरोध में अपील की जा सकती है। [१] वाद पत्रों पर सुनवाई तभी होती है, जब उस पर पर्याप्त मुद्रांक-शुल्क दिया रहता है ; पर जब कोर्ट को यह विश्वास हो जाता है कि वादी के पास मुद्राक-शुल्क देने के लिये पैसा नही है, और न देने की क्षमता ही है, तब बगैर मुद्रांक शुल्क के वाद-पत्रों पर विचार कर सकता है। बाद में अगर कोर्ट को यह पता चल जाय कि वादी ने धोखा देकर कोर्ट से मुद्राक-शुल्क माफ कराया है , तब वह मुकदमा को खारिज कर सकता है और मुद्रांक-शुल्क , जो नही दिया गया है , उसको वसूल कर सकता है। वाद-पत्रो के साथ उन अभिलेखों एव दस्तावेजो को प्रस्तुत करना पडता है , जिनके आधार पर वाद-पत्र को तैयार किया गया है। जब वाद-पत्र को स्वीकृत कर लिया जाता है , तब दिनांक और स्थान को सुनवाई के लिए निर्धारित किया जाता है। प्रतिवादी को वादी के दावे का जवाब देने के लिए उपस्थित होने को कहा जाता है। उसके लिए ' समन ' निकाला जाता है। समन के साथ वादी के दावे को भी भेजा जाता है। प्रतिवादी को कहा जाता है कि दावे के खण्डन के लिए उसके पास जो साक्षी हो, उसे भी वह प्रस्तुत करे ।

निर्धारित दिन को वादी और प्रतिवादी दोनो कोर्ट के समक्ष उपस्थित होते हैं। प्रतिवादी लिखित प्रतिवेदन देता है। सुनवाई आरम्भ होती है। आर्चर साहब का कहना है कि जब सुनवाई आरम्भ हो, तब यह उचित है कि दोनों पार्टियो को कहा जाय कि वे अपनी-अपनी बातें कहें। उनके द्वारा प्रस्तुत वाद-पत्र और लिखित प्रतिवेदन का सत्यापन उनके कहे हुए तथ्यो के आधार पर कर लिया जाय। अधिकाश सन्ताल अनपढ़

१. Santal Civil Law, Section 3 clause (4)

है। साधारणतः देखा जाता है कि उनके आवेदन पत्र में गलत बातें या अपूर्ण तथ्य रहते हैं। वाद पत्र या आवेदन पत्र कोर्ट के लिए एक संकेत का आधार हो सकता है, वह किसी प्रकार से मुकदमे के प्रश्नों का आधार नही हो सकता है। सन्ताल के मौखिक कथन से उसके द्वारा लिखित वाद-पत्र या आवेदन पत्र में उल्लिखित तथ्य में अन्तर पड़ जाय तो सन्ताल के कथन को ही सत्य मानना चाहिए, वही उसके दावा का आधार होना चाहिए। आगे चलकर मार्चर साहब ने लिखा है—'इतना ही नही, वाद पत्र या आवेदन पत्र शुद्ध रूप से लिखा भी रहता है, तब भी कुछ में दावा शुद्ध रूप में अंकित नहीं रहता है। अतः उनकी राय है

When a hearing commences, it is best to get each party to state its own case and if a plaint or written statement has been filed to check first that it correctly represents a case. Since most Santals are illiterate, it not infrequently happenes that their petitions contain either incorrect or incomptete data. A plaint or petition should therefore be treated only as a guide to the suit and by no means as an extanstive recital of all its issues. If a case as orally explained by a Santal differs from the case noted in his plaint or petition, the latter should always be discarded and the Santal's oral case should be treated as his claim.

कि लिखित प्रतिवेदन को प्रारम्भिक स्वरूप माना जाय, और सारी बातें प्रकट हो जाने पर ही दावे पर विचार होना चाहिए। साधारणतः जो दावे रहते हैं, उन्ही का उल्लेख उसमें रहता है, पर कभी-कभी दावे को कम करके या अधिक करके उसमें दिखाया रहता है। अगर कोई सन्तान १५) रुपया पाने का दावेदार है और उसने १०) रुपया का ही दावा किया हो तो उस सन्तान के दावे को शुद्ध कर १५) रुपया का दावा कर देना चाहिए। पूरे दावा की डिग्री देनी चाहिए। यह बहुत आवश्यक है। कारण, कोर्ट के न्याय की चर्चा उक्त क्षेत्र में होती है। वास्तविक धन राशि की डिग्री नही होने से कई प्रकार की भ्रान्ति पैदा होती है, आशाकायें उत्पन्न होती हैं। आर्चर साहब ने यह स्वीकार किया है कि विशेषकर 'घर जवाँई' सम्बन्धी मुकदमो में एक पक्षकार वादी या प्रतिवादी बना दिया जाता है, जब कि उसका उस मुकदमे से कोई सम्बन्ध नही रहता है। जब मुकदमे की रूपरेखा स्पष्ट हो जाय, तो आर्चर साहब की राय है कि कोई स्वयं सत्यापन करे कि वादी या प्रतिवादी के रूप में जिन व्यक्तियों का नाम लिया जा रहा है उनका इस मुकदमें से सम्बन्ध है या नहीं। जिनका सबन्ध नही हो उनको मुकदमें से बरी कर देना चाहिए और जिनका नाम वादी या प्रतिवादी के रूप में आना चाहिए था, अगर उनका नाम नही आया हो, तो उनका नाम जोड़ा जाय।

" Moreover even when a plaint or petition correctly states a case, it sometimes fails to represent the correct reliefs. It is better therefore to treat the written version only as a tentative beginning and when all the facts

सुनवाई के दिन वादी और प्रतिवादी की परीक्षा होती है; उनके द्वारा प्रस्तुत अभिलेखों एवं दस्तावेजो पर विचार होता है , कोर्ट किसी निश्चित

have been heard for the court itself to decide the proper relief. In many cases, this will be the same as what is claimed but sometimes it is less and occasionally it is more. If a santal is entitled to fifteen rupees but has claimed ten, he should be asked whether he has deliberately given up the extra five, and if not the court itself should amend the claim and decree him all his dues. This is very necessary because the court's decision will be quoted in the surrounding area and will cause confusion if the sum decreed is not exactly correct.

.... and particularly those involving Ghar jawees, a party is made a plaintiff or defendant. When strictly speaking he has nothing to do with the suit. When the outlines of a case are clear therefore, the court itself should verify whether all the plaintiffs and defendants are relevant, should exclude any that are unnecessary and should add any that are relevant but have been accidently omitted.

निर्णय पर पहुंचता है, तब वह उस समय आदेश पारित कर देता है। अगर कोर्ट किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचता है, तब मुकदमें की सुनवाई को स्थगित कर और अन्य साक्ष्य लाने का कोर्ट प्रतिवादी को निर्देश देता है। वादी को साक्ष्य लाने के लिए कोर्ट मुकदमे को स्थगित नही करता है; केवल प्रतिवादी को ही एकबार अवसर दिया जाता है। किसी पक्ष की सुविधा के लिए जब मुकदमा को स्थगित करना पडता है, तब उसे खर्च वहन करना पडता है। पक्षकारो एवं साक्ष्यकारो को किसी प्रकार के कथन करने के पूर्व शपथ-ग्रहण करना पडता है। उनके द्वारा कही गई बातें संक्षिप्त रूप मे कोर्ट द्वारा अभिलिखित होती हैं। जैसे ही मुकदमा दाखिल होता है, पक्षकार कोर्ट को आवेदन करता है कि अमुक-अमुक व्यक्तियों के नाम साक्ष्य देने या दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए 'समन' निकाला जाय। वादी मुकदमा के दाखिल होने के दिन ऐसा आवेदन पत्र दे सकता है और प्रतिवादी जिस दिन पहले-पहल मुकदमा के क्रम में कोर्ट में उपस्थित होता है, उस दिन वह कोर्ट से ऐसा करने का अनुरोध कर सकता है। 'समन' प्राप्ति के बाद कोई साक्ष्यकार कोर्ट में उपस्थित नही होता है या निर्धारित दिन को दस्तावेज प्रस्तुत नही करता है या कोर्ट में आकर, बगैर कोर्ट को सूचना दिए वह कोर्ट से चला जाता है तब वह दण्डनीय अपराध करता है। कोर्ट उसकी गिरफ्तारी का आध्यादेश निकालता है और उस पर ५०) रुपया तक अर्थदण्ड लगा सकता है। 'समन' निकालने के पूर्व कोर्ट किसी भी पक्षकार को साक्ष्यकारों के यात्रा-भत्ता के ऊपर जो अनुमानित खर्च होने की सम्भावना हो, उसे अग्रिम रूप में जमा कराता है। सुनवाई के दिन दोनो पक्षकारों में कोई जब उपस्थित नहीं रहता है, तब मुकदमे को खारिज कर दिया जाता है। जब केवल वादी उपस्थित रहता

है, तब एक तरफा डिग्री उसे प्राप्त होती है और ादी उपस्थित नही रहे और प्रतिवादी उपस्थित हो तो मुकदमा खारिज हो जाता है। मुकदमा वादी की अनुपस्थिति के कारण खारिज होता है, तब वादी फिर से मुकदमा दाखिल कर सकता है। उसे यह भी अधिकार है कि खारिज होने के ३० दिन के अन्दर उस कोर्ट को आवेदन देकर उससे आग्रह कर सकता है कि जो मुकदमा को खारिज किया गया है, अपने उस आदेश को वह रद्द करे। प्रतिवादी की अनुपस्थिति के कारण एक तरफा डिग्री वादी को मिल जाती है, तब प्रतिवादी ३० दिन के अन्दर कोर्ट को एक आवेदन देकर उससे आग्रह कर सकता है कि वह अपने पूर्वादेश को रद्द करे। पर्याप्त कारण दिखलाये जाने पर कोर्ट अपने पूर्वादेश को उठा लेता है और फिर से सुनवाई की प्रक्रिया आरम्भ होती है।

वादी और प्रतिवादी की राय से मुकदमा को किसी मध्यस्थ समिति को सौंपा जा सकता है। उस मध्यस्थ समिति में तीन सदस्य होते हैं, एक वादी का आदमी, दूसरा प्रतिवादी का आदमी और तीसरा कोर्ट का आदमी। पक्षकारो का वही आदमी लिया जाता है, जो कोर्ट को मान्य होता है। कोर्ट के द्वारा मनोनीत व्यक्ति मध्यस्थ समिति की बैठक की अध्यक्षता करता है। वह सभी प्रकार के अभिलेखो का प्रभारी अधिकारी होता है। मध्यस्थ व्यक्तियो को अपना निर्णय कोर्ट को एक निर्धारित समय के अन्दर देना पड़ता है। निर्णय देने के पूर्व भी कोर्ट को यह विश्वास हो जाय कि मध्यस्थ व्यक्तियो से कोर्ट को कोई विशेष लाभ नही है, तब उनके निर्णय देने के पूर्व भी मध्यस्थ समिति को वह तोड दे सकता है। मध्यस्थ समिति के सामने किसी भी व्यक्ति को उपस्थित होने एवं दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कोई 'समन' निकाल सकता है। मध्यस्थ अपने निर्णय को लिखित

रूप में देते हैं। कोर्ट के सामने निर्णय को स्पष्ट करने के लिए उन्हें उपस्थित होना पड़ता है। स्पष्टीकरण के रूप में वे जो वक्तव्य देते हैं, वह भी अभिलेख का अंश होता है। जब मध्यस्थ का निर्णय सर्वसम्मति से हुआ होता है, तब कोर्ट उसे सम्पुष्ट करता है और अगर वह सर्व सम्मति से नहीं है, और कोर्ट भी उस निर्णय से सहमत नहीं है तब कोर्ट अपने से ऊपर के कोर्ट के समक्ष उस मुकदमा को रखता है, जो दोनो पक्ष–कारो को सुनकर निर्णय देता है। कोर्ट के द्वारा मध्यस्थ का निर्णय जब सम्पुष्ट हो जाता है, तब वह कोर्ट की डिग्री हो जाता है। मध्यस्थों पर जो खर्च होता है, वह पक्षकारो से वसूल किया जाता है। मध्यस्थ व्यक्ति अगर अपने कामो की उपेक्षा करते हैं या कपट से या बेईमानी से किसी बात को छिपाते हैं, तब वे दण्ड के भागी हो जाते हैं और उन पर ५०) रुपया तक अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

स्थानीय पंचायतों द्वारा जब निर्णय होता है और जिस मामला के सम्बन्ध में निर्णय होता है, वह मामला किसी कोर्ट में सुनवाई के लिए प्रस्तुत नही होता है, तब उस निर्णय को डिग्री का स्वरूप देने के लिए पंचायत के प्रमुख परगनैत या वह पक्षकार जिसके पक्ष में निर्णय हो अनुमण्डलीय पदाधिकारी से पंचायत के निर्णय की सम्पुष्टि के लिए अनुरोध कर सकता है। परगनैत से अनुमण्डलीय पदाधिकारी सघर्ष के सम्बन्ध में एक विवरण मागते है और पचायत का जो निर्णय हुआ है उसको प्रस्तुत करने को कहते हैं। वे दोनो पक्षकारों को सुनते हैं। उसके बाद पंचायत के निर्णय पर अपना आदेश देते हैं। पचायत के निर्णय को, जब वे सम्पुष्ट कर देते हैं, तब वह निर्णय कोर्ट की डिग्री के समान हो जाता है। पंचायत के द्वारा निर्णय की सम्पुष्टि के लिए अवधि निर्धारित है। निर्णय के

एक वर्ष के अन्दर ही सम्पुष्टि के लिए आवेदन पत्र दिया जा सकता है।[१]

सन्तालों के आपसी मुकदमों में वकील और मुख्तार नहीं रखे जाते हैं। विशेष स्थिति में रखे भी जाते हैं, तब कोर्ट की अनुमति उन्हें लेनी होती है। सन्तालो के कागजो को टीक-ठीक से लिखने के लिए निबन्धित आवेदन-लेखक रहते हैं। वे अधिक पैसा न लें उसके लिए उनका शुल्क निर्धारित रहता है। उनका शुल्क इस प्रकार निर्धारित है:—[२]

(१) (Title suit) का वाद-पत्र लिखने के लिए:—

	रु०	पैसा
(क) ५०) रुपया से कम का —	१.	००
(ख) ५०) रुपया से लेकर १००) रुपया तक का-	२.	००
(ग) १००) रुपया से अधिक का —	३.	००

(२) (रेन्ट सूट) या धनराशि की मुकदमो के लिए वाद पत्र लिखने का-

	रु०	पैसा
(क) २०) रुपया से कम का —	००.	५०
(ख) २०) रुपया से ५०) रुपया तक का —	००.	७५
(ग) ५०) रुपया से १००) रुपया तक का —	१.	००
(घ) १००) रुपया से अधिक का —	१.	००

प्रत्येक १००) रुपया या उसके अंश पर ५० पैसा अतिरिक्त जोडा जायेगा।

(३) ऐसा वाद-पत्र तैयार किया जाय जिसका मूल्य कूता नही

१. Santal Civil Law, Section 65, clause (2)|

२. Santal Civil Law- The Second Schedule under rule 65.

जा सके या अनुमानित नही हो सके — १. ००

(४) अपील या रीभीजन के लिए आवेदन पत्र— २. ००

(५) आदेश के Execution के लिए आवेदन पत्र २. ००

(६) Execution के क्रम में बाद में लिखे गये आवेदन पत्र ०.१२

(७) खोज या प्रतिलिपि के लिए आवेदन पत्र — ००. १२

(८) चालान लिखने के लिए — ००. ०६

(९) विविध ढंग के आवेदन पत्र के लिए — ००. २५

(१०) विविध अपील के लिए ज्ञाप तैयार करने के लिए -१. ००

(११) जमा की गई धनराशि की वापसी के लिए— ००. १२

(१२) किसी अन्य प्रकार के आवेदन के लिए, जिनका उल्लेख यहाँ नही हुआ है; — ००. १२

अचल और चल सम्पत्ति के सम्बन्ध में साधारणतः अधिकार का प्रश्न उठाया जाता है। उसी के क्रम में कभी-कभी बाप का प्रश्न उठ खड़ा होता है। बच्चा के जन्म को ही अवैध होने का दावा किया जाता है, प्रमाणित करने की चेष्टा की जाती है कि वह अमुक व्यक्ति का पुत्र ही नही है। आर्चर साहब की मान्यता रही है कि इस प्रकार के मुकदमों के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम से उतना काम नही चलता है, जितना सन्तालों की अपनी धारणाओं को आधार बनाकर काम लिया जा सकता है। प्रायः सभी बच्चों के पिता के सम्बन्ध में गाँव वालों को जानकारी रहती है। वह कैसे जानता है— यह प्रश्न ही व्यर्थ का है। इस प्रश्न का उत्तर तो वही दे सकता है, जिसने बच्चे के माँ-बाप को यौन-सम्बन्ध करते हुए देखा हो। पर ऐसा साधारणतः होता नही है। युवक एवं युवतियों का मेल मिलाप; उनके सम्पर्क, उनकी बात-चीत से गाँव के लोग परिचित रहते

है। युवती का कहना है कि अमुक व्यक्ति उसके लड़के का पिता है, और गाँव के लोगो से ऐसा पता लगता है, तब कोर्ट के सामने उसे पिता मानने में अधिक कठिनाई नही होती है। सन्ताल-संस्कार के अन्तर्गत किसी सन्ताल का पिता न होना बड़ी गम्भीर बात हो जाती है। देखा जाता है कि माताएँ निर्वाह के लिए और अपने बच्चो के पालन के लिए निर्वाह का दावा बच्चे के पिता पर करती है। कोर्ट भी निर्वाह के लिए 'खोरिश' देकर न्याय-निर्णय कर देता है। दावा से बाहर जाना कोर्ट का कार्य नही है। पर अच्छा होता कि बच्चा के पिता के सम्बन्ध में पूरी जाँच होती। जाँच से जब यह पता चल जाय कि अमुक व्यक्ति उस बच्चे का पिता है, तब बच्चे को पिता के प्रभार मे सौंप देना चाहिए। बच्चे के पिता को विवश करना चाहिए कि वह उसकी माँ से शादी कर ले। समस्याओं का सबसे बड़ा समाधान यही हो सकता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि बाप के मरने के बाद भाई अपने सौतेले भाई को सम्पत्ति नही देना चाहते हैं। वे प्रश्न उठाते हैं कि वह उसके पिता का अवैध पुत्र है। ऐसी स्थिति में उसके पिता की शादी के सम्बन्ध में जाँच होनी चाहिए। ऐसी सम्भावनाएँ सन्तालों के विवाह-संस्कार में जो लचीलापन है, उसके कारण उत्पन्न होती है। बच्चे के नामकरण और उसके मूल नाम पर विचार होता है। जब बच्चे के नामकरण उनके

"In such cases, it is often quite impossible to do justice by applying strictly the Indian Evidence Act and it becomes essential therefore, to decide such suits in terms of Santal assumptions.

संस्कार के अनुसार हुआ हो, तो बच्चे के पिता के प्रश्न पर अवैधता का आरोप नही हो सकता और यह माना जाता है कि उसका जन्म उसके माता-पिता की वैध शादी के बाद हुआ है।

विभाजन एव उत्तराधिकार के प्रश्न लेकर भी कोर्ट में मुकदमे आते रहते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत से निर्णय हुए हैं। उत्तराधिकार का सिद्धान्त भी एक प्रकार से स्थिर हो गया है। 'उत्तराधिकार के नियम' अध्याय में इस पर प्रकाश डाला गया है। सन्तालो में गोद लेने की प्रथा प्रचलित है। गोद लेने के प्रश्न को भी कभी-कभी विवाद का विषय बनाया जाता है। कोर्ट में ऐसा प्रश्न उठता है—तब यह देखा जाता है कि कोई यह जानना चाहता है कि गोद लेने की स्वीकृति गाँव की जन-सभा में हुई है या नही। गोद लेने के बाद बच्चा का नाम बदल जाता है और जिस परिवार में उसको लाया जाता है, उस परिवार के अनुसार उसका नामकरण पुनः होता है। सन्ताल कोर्ट में औरतो के अधिकार को लेकर मुकदमे होते हैं। संताल-संस्कार के अन्तर्गत नारियो को कुछ अधिकार प्राप्त हैं और जब उन अधिकारों पर चोट पहुँचायी जाती है, तब वे कोर्ट से राहत चाहती हैं, अपने अधिकारों की सुरक्षा चाहती हैं। कोर्ट को वे अपने अधिकारो का प्रहरी मानती हैं। घर-जमाई के प्रश्न साधारणतः कोर्ट में पहुँचते रहते हैं। शादी और तलाक के मुकदमें भी सन्ताल कोर्ट में कम नही आते। तलाक में बहुधा धनराशि का दावा होता है। "कन्या-दाम" का दावा होता है। भाई के लिए बैल का दावा होता है। वैवाहिक खर्च के लिए दावा होता है। गाँव के अधिकारी वर्ग धनराशि को निर्धारित करते हैं। तलाक के लिए मुकदमे नही के बराबर होते हैं; पर तलाक के कारण दावे अनेक प्रकार के होते हैं।

सन्ताल का दैनिक जीवन

सन्ताल कृषक–वर्ग के लोग हैं। कृषकों का जन-जीवन साधारणतः प्रकृति की तलहटी पर आधारित है। प्रकृति उनकी प्रेरक-शक्ति है। सन्ताल उससे जीवन पाते हैं। प्रकृति की गोद में पलने के कारण उनपर प्रकृति का प्रभाव अधिक रहता है। यही कारण है सन्तालो को प्रकृति-पुत्र कहा जाता है। अनुकूल प्रकृति के बीच उनमे उमग रहती है, कार्य करने में उन्हे आनन्द मिलता है। जलवायु की विशेषताओ को दृष्टि में रखकर सन्ताल ने अपने मौसम का विभाजन किया है। वर्ष में तीन मौसम वे मानते हैं। जाडा का मौसम नवम्बर से मार्च तक का रहता है। चावल का उत्पादन इसी मौसम में वे करते हैं। जाडा में आग तापते है और अपने को गर्म रखते हैं। जाडे के बाद बसन्त का मौसम आता है। यह मौसम बहार का मौसम होता है। प्रकृति के साथ सन्ताल खेलते हैं, नाचते है। उनका अधिकाश समय आमोद-प्रमोद में जाता है। वे शिकार खेलते है, मछली मारते हैं। आकाश में बादल को देखते ही उनका मन-मयूर नाच उठता है। सन्ताल खेतो की ओर दौड पडते हैं। काफी श्रम कर धान को वे बोते हैं।

सन्तालो के पास घडियाँ नही रहती है, पर उन्हें समय का बोध रहता है। सूर्य्य की चाल से दिन के समय का वे अनुमान लगाते हैं; आकाश में सूर्य्य को देखकर उन्हे समय का ज्ञान होता है। वही उनकी धूप–घडी है। मुर्गे जब आवाज देते हैं तब उनकी सुबह होती है। स्कूल में बच्चे एक रेखा बना देते हैं, जब स्कूल–भवन की छाया उस रेखा पर पडती है, तब सन्ताल बच्चे समझते हैं कि स्कूल

से घर जाने का समय हो गया है। बस–गाडी पर सवार होकर जाने वाले सन्ताल समय के लिए अपने दरवाजे पर एक रेखा अंकित कर देते हैं। घर की छाया जब उस रेखा को स्पर्श करती है तब सन्ताल को ज्ञान होता है कि बस पकडने का समय हो गया है। रात में चाँद और तारा की गति से सन्तालो को समय का बोध होता है। सन्तालो की लोक-कथाओ के आधार पर कहा जाता है कि सूर्य्य उनका बाप है और चाँद उनकी माँ है। उनके बेटा और बेटी —तारे हैं। सूर्य्य ने तारो को मार डाला है ; इस कारण दिन मे तारो को नही देखा जाता है। सन्तालो में एक और भी धारणा प्रचलित है। उसके अनुसार चाँद और सूर्य्य दोनो पुरुष हैं। दोनो में सम्बन्ध भी है। एक दूसरे की बहन से उनकी शादी हुई है।

(क) कृषि:— पहले सन्ताल शिकारी थे , अब वे कृषक हो गये हैं। पर उनका शिकार खेलना बन्द नही हुआ है। आज भी उन्हे शिकार खेलने में आनन्द मिलता है। आज भी वे वार्षिक शिकार करते हैं। उसे ' देहरी–शिकार ' कहते हैं। ' सिञ–बोंगा ' की अर्चना सन्ताल इसलिए करते हैं कि शिकार खेलते समय कोई प्राकृतिक बाधा उत्पन्न न हो। इन प्रथाओ मे स्पष्ट होता है कि सन्ताल पहले शिकारी थे , तब कृषक हुए हैं। श्री बोडिंग ने अपने एक निबन्ध मे लिखा है कि सन्तालो ने किस प्रकार खेती करना आरम्भ किया है। उन्होंने अपने निबन्ध में कहा है कि—'यह सम्भव हो सकता है कि धरती से कुछ पैदा करने के लिए उनका प्रथम प्रयास कुछ ऐसा ही है जिसे आज ' कोराओ ' कहा जाता है , जो खेती की एक प्रणाली है। कहा जाता है कि सन्तालो ने इसी प्रणाली को प्रयोग में पहले लाया था , पर जहाँ तक जानकारी है, आज वह व्यवहार में नही

है। सन्ताल भू-भाग में आज भी पहाडिया पहाडो पर इसी प्रणाली को व्यवहार में लाते हैं। ऊँचे पहाड पर जंगल को वे काट देते हैं। गरमी के दिनों में काटे हुए जंगल की लकडी सूख जाती है, तब वे उसे जला देते हैं। इस प्रकार धरती बन जाती है और जब वर्षा होती है, तब बीज को बगैर जोते वे छीट देते हैं। ... ... यह कहा जाता है कि सन्ताल भी पहले ऐसे ही खेती करते थे। पहले उन्होंने पहाडी क्षेत्रो में जंगल साफ किया ; बाजरा के बीज धरती पर छीट दिया ; पानी बरसने के बाद वे जम गये। कुछ खेतों में बीज डालने के बाद वृक्ष की एक डाली से चौरस कर देते हैं ; वे उससे इतना दबाते हैं कि बीज जमीन के अन्दर धस जाते हैं और उनके नष्ट होने की कोई आशंका नही रहती है। ''

सन्ताल धरती की अर्चना प्रातःकाल से सध्या तक करते है। वे अपने श्रम से खेत की सिंचाई करते हैं। चावल उनका प्रमुख खाद्य-पदार्थ है। सन्ताल नारियाँ अपने पुरुषो के साथ खेतो में काम करती हैं। अपने घर के पास ही सन्तालों के खेत होते हैं। वे जमीन खोद कर पानी निकालते हैं, उससे सीचते हैं। सन्ताल दो प्रकार की धन खेती करते हैं। प्रथम प्रकार की खेती— अपने घर के पास करते हैं, दूसरे प्रकार की खेती पहाड़ी क्षेत्रो में करते हैं। पहले वे जंगल साफ करते है। धरती को चारो ओर से टीलाओं के द्वारा घेर देते हैं। वे सदैव ऐसा नही करते। जब धरती ढलाऊ होती है तब वे नीचली ओर टीला बनाते हैं। सन्तालो का प्रयास रहता है कि जहाँ तक सम्भव हो जमीन को समतल किया जाय। करहा यन्त्र से वे जमीन को दबा कर समतल बनाते हैं। धान के बीज रोपने के पूर्व वे खेत को कई बार हल के द्वारा जोतते हैं। मई और जून में, जब खेत की जोताई हो जाती है, वे धान के बीज को खेत में

बिखेरते हैं। हेंगा के द्वारा जमीन को इस प्रकार दबाया जाता है कि बीज जमीन के अन्दर चले जाते हैं। बीज से अंकुरित पौधा, जब कुछ बढ़ता है तब सन्ताल उन्हें उखाड़ते हैं और उन्हें वे पुनः दो या तीन के क्रम में तैयार खेत में रोपते हैं। एक-एक फूट की दूरी पर पंक्तियों में वे पौधों को रोपते हैं। पौधों के रोपन-कार्य साधारणतः सन्ताल नारियाँ करती हैं। धान का पौधा रोपने का कार्य वे तीन प्रकार से करते हैं। पहले प्रकार के पौधा-रोपन से धान सितम्बर में तैयार हो जाता है। दूसरे प्रकार का पौधा-रोपन वे पहाड़ी क्षेत्रों में करते हैं, जिसमें फसल अक्टूबर में तैयार हो जाता है; तीसरे प्रकार के रोपन–कार्य से फसल नवम्बर या दिसम्बर में तैयार होती है। सन्ताल एक प्रकार की और धन-खेती करते हैं— यह प्रणाली बहुत सरल है। धान के बीज को वे खेतों में केवल बिखेर देते हैं। वह आपसे आप तैयार होकर अगस्त में काटने योग्य हो जाता है। पौधा जब तैयार हो जाता है, तब उसे सन्ताल काटकर खलिहान में ले जाते हैं। खलिहान को वे बहुत पवित्र मानते हैं। उसे मिट्टी और गोबर से लीपते हैं, शुद्ध करते हैं। तब खलिहान में अन्न रखते हैं। खलिहान में एक बड़ा-सा पत्थर रखते हैं, उसी पर धान के पौधे को पीटते हैं और धान को पौधा से अलग करते हैं। बैलों के द्वारा धान के पौधों की पीटाई होती है, दाना को भूसा से अलग किया जाता है। फिर भी दाना के साथ कुछ मिट्टी तथा भूसा का कण रह जाता है, उसे सूप द्वारा फटक कर धान को साफ किया जाता है। इसके बाद सन्ताल धान से चावल बनाते हैं। मिट्टी के बर्त्तन में पानी में भिंगो कर घण्टों धान को फूलने के लिए सन्ताल छोड़ दिया जाता है। इसके बाद भिंगे हुए धान को आग पर चढ़ाते हैं। इसके बाद वे धान

को सुखाते हैं। जब धान सूख जाता है तब उसे वे ढेंकी मे डाल कर छाँटते हैं। चावल साफ करने के लिए एक से अधिक बार छाँटते हैं। छाँटने के बाद सूप द्वारा अन्न को भूसी से अलग करते हैं।

खेती करने में सन्ताल कई प्रकार के कृषि-यन्त्रों को प्रयोग मे लाते हैं। सन्तालो का हल अन्य बिहारी कृषको से थोड़ा भिन्न होता है। सन्ताल का हल तीन भागो मे विभाजित रहता है। हल का मुख्य भाग एक लकडी का बना होता है। वह साधारणतः बीच में १३०° के कोण पर मुडा रहता है, जहाँ बीम जोडा जाता है। बीम पाँच फीट के लगभग होता है। लकडी का ही बना हुआ जुआ रहता है, जिसमें दो लकडी की बनी हुई खूंटी रहती है, जो १७ से १८ ईंच की होती है। बैलो को उचित स्थान पर रखने में इन खूटियो को काम वे सन्ताल लाते हैं। हल के बाद खेती के औजार कारहा को खेत को चौरस बनाने के लिए सन्तालप्र योग में लाते हैं। महुआ या साल की लकडी का वे कारहा बनाते हैं। आवश्यकता के अनुसार वे छोटा या बडा बनाते हैं। कारहा के समान एक दूसरा यन्त्र है—जिसे राकसा कहा जाता है। कारहा से वह कुछ पतला होता है। धान की खेती में इसे विशेष रूप से प्रयोग में लाया जाता है। जिस खेत की जमीन गीली होती है, वहाँ इसका प्रयोग अधिक होता है। कारहा गाँव में बहुतो के पास रहता है, पर राकसा गाँव में कुछ ही व्यक्ति के पास रहता है, पर जिन्हे आवश्यकता होती है उन्हें वे देते हैं। खुर्पा, जिसे सन्ताल कुदी कहते हैं, वह कुछ ऐसा ही होता है, जैसा अन्य जगहो में हम पाते हैं। सन्ताल इसका प्रयोग जमीन खोदने में लाते हैं और इसके द्वारा वे धान के खेतो में टीला बनाते हैं। खेतो के ढेलों को तोडने के लिए लकडी की बनी हुई मुंगरी का प्रयोग सन्ताल करते

हैं। मुगरी तीन फ़ीट लम्बी और एक इंच चौडी होती है। चावल कूटने के लिए वे ओखल और मूसल का भी प्रयोग करते हैं। उनका ओखल और मूसल वैसा ही होता है, जैसे बिहार के अन्य लोग प्रयोग में लाते हैं। चावल कूटने का काम सन्ताल औरतें करती हैं। ढेंकी को भी चावल कूटने के काम में वे लाती हैं। ढेंकी का रूप और उसके चलाने की क्रिया अन्य लोगों के सदृश्य ही हैं। घास काढने के लिए सन्ताल कृषक हँसुआ का प्रयोग करते हैं। उसकी केवल धार लोहे की रहती है, पर बाकी अंग लकडी का रहता है। उसकी लम्बाई लगभग १३ इंच की होती है; जिसमें ८ इंच में धार रहता है और ५ इंच लकडी की वह बनी रहती है। धान, चारा आदि काटने के लिए सन्ताल एक और यंत्र को प्रयोग में लाते हैं जिसे दरांती कहा जाता है। वह पूरे लोहे की ही बनी रहती है। उसकी धार का कोना नुकीला होता है। उसकी धार मुट्ठी की ओर पतली होती है, पर उसका नीचला अंश कुछ चौडा होता है।

सन्तालों की चेष्टा रहती है कि धरती से वे अधिक उत्पादन कर सकें। अतः वे अधिक परिश्रम करते हैं। धरती से सघर्ष करते-करते उनका इतना समय कट जाता है कि वे दूसरी बातों पर ध्यान नही देते। सामाजिक दायित्व को पूरा करने के लिए वे किसी प्रकार से समय निकाल लेते हैं। साधारणतः उनकी कृषि-प्रणाली भारत के अन्य किसानों से बहुत भिन्न नहीं है। जोतने, बोने और काटने की क्रियायें वे ही हैं, जो अन्य किसान करते हैं। पर अन्य कृषकों से खेती पर वे अधिक श्रम करते है। सन्ताल धरती पर अधिक श्रम करते हैं, अतः अधिक अन्न का उत्पादन

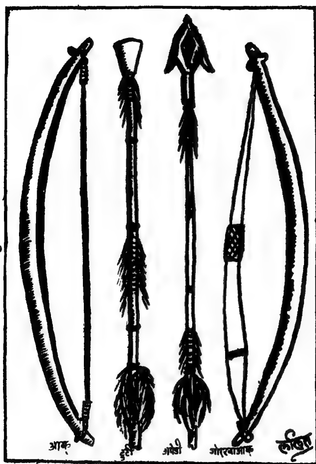
करते हैं। श्री बोडिंग महोदय ने माना है[1] कि कुछ सन्ताल कृषक जान गये हैं, फिर भी वे अभी बहुत पीछे हैं। उन्हें अभी तक अच्छे बीज की पहचान नही है। खाद से क्या लाभ है, उसकी जानकारी सन्तालों को नहीं है। फसल को अदल-बदल कर बोने से उत्पादन अधिक होता है, इसका ज्ञान उन्हें नही है। पशु-धन का पालन वे समुचित रूप से नही कर पाते हैं। बोडिंग साहब का यह मत उनके सम्बन्ध में २५ वर्ष पूर्व का है। आज सन्ताल कृषको को इन सारी बातो की जानकारी प्राप्त है।

(ख) शिकार :—

सन्ताल के जीवन में शिकार का बहुत महत्व है। कृषि पर वे अब अधिक महत्व देने लगे हैं, पर शिकार करने की जो उनकी रुचि है, वह जन्मजात है। उस रुचि में कभी कमी अवश्य हो गयी है, पर उसका महत्व सन्तालो के जीवन में आज भी बना हुआ है, उसमें कमी नही हो पायी है। शिकार करना गाँव के सयाने पुरुषों का काम माना जाता है। शिकार करने में सन्ताल नारियाँ भाग नही लेती हैं। पर वे घर में बैठकर अपने लोगों के लिए मगलकामना करती हैं। वे जादू-टोना करती हैं, ताकि उनके पुरुष, जो शिकार पर गये हुए हैं, किसी प्रकार के विपद में न पड जायँ। जब तक विवाहिता सन्ताल नारी का पति शिकार पर रहता है, तब तक वह न तो बालो में फूल लगाती है न सिंदूर लगाती है। वह किसी प्रकार का शृ गार नही करती है। पहले तो वे स्नान तक भी नही करती थी, पर अब इस परम्परा में परिवर्त्तन आ रहा है।

---

१. P. O. Bodding—"How the Santals Live" Memoire of the Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1940. vol X No. 3. Page-434.



संतालों के अस्त्र-शस्त्र

नारियाँ ही केवल शुभ कामना नही करती हैं , एक पुरोहित भी होता है , जिन्हें पूजा करनी पडती है। वह ' देहरी ' कहलाता है। वह जंगल के देवताग्रो का ग्रावाहन करता है , शिकार करने वाले पुरुषो के जान की रक्षा के लिए उनसे वरदान माँगता है , शिकार सफल हो— इसके लिए बोगा को ग्रर्चना करता है। परगना के लिए शिकार-पुरोहित की नियुक्ति होती होती है। जिस दिन शिकार खेलना निश्चित होता है , उस दिन सुबह ही शिकार-पुरोहित भूरे रंग की मुर्गी का बलिदान निर्धारित जंगल के प्रवेश-द्वार पर करता है ग्रौर बोगा को पुकारता है उनसे ग्रनुरोध करता है कि शिकार खेलने वाले ग्रादमियो की वह रक्षा करे। उस ग्रवसर पर लोग पुरोहित को ग्रागाह करते हैं कि किसी प्रकार की विपदा ग्राने पर उसका दायित्व उस पुरोहित पर होगा। कहा जाता है कि पहले शिकार के ग्रवसर पर किसी प्रकार की दुर्घटना होने पर पुरोहित को वे दण्डित करते थे। ग्राज भी ऐसा होने पर वे उन्हें भला-बुरा कहते हैं। जब शिकार सफल होता है, तब शिकार के ग्रंश का भागी पुरोहित भी होता है।

जिस दिन शिकार होता है, उस दिन पूरे गाँव में पूरे दिन उत्साह रहता है। केवल उसी गाँव में नही बल्कि पूरे जवार के लोगो में उमग रहती है। वे पूरे जंगल को घेर लेते हैं। यह सत्य है , पहले का उत्साह ग्रब शिकार के प्रति लोगो का नही रह गया ; फिर भी जो लोग शिकार पर जाते हैं , उनमें वही उमंग रहती है। पहले की तरह ग्रब सन्ताल परगना में जंगल नही हैं। जगल कटते जा रहे हैं। इसलिए जगली जानवरो का ग्रभाव होता जा रहा है। जब शिकार का ही ग्रभाव होता जा रहा है , तब शिकार करने का पहले जैसा उत्साह लोगों में कहाँ

से आवे। बचपन से ही सन्तालों को तीर-धनुष चलाने की शिक्षा मिलती है। सयाने होते ही तीर चलाने में वे विशेषज्ञ हो जाते हैं। शिकार खेलने के लिए जाते समय प्रत्येक सन्ताल घर से खाना लेकर जंगल जाता है। उनके साथ उनका कुत्ता भी जाता है। धूप से बचने के लिए सन्ताल शिकार करते समय अपने सिर को कपड़े से ढके हुए रहते हैं। उन लोगों के साथ कुछ नवयुवक रहते हैं जो ढोल बजाते रहते हैं। ढोल इसलिए बजाया जाता है कि जंगल से जानवर बाहर आयें और वे जानवरों को मारें। शिकार के बाद भी ढोल बजाते हैं। जब शिकार में जानवर मारते हैं तब खुशी में वे नाच उठते हैं।

शिकार खेलने के लिए जगल में वे स्थान चुनते हैं। एक लम्बी कतार में शिकार खेलने वाले सन्ताल एक के सामने दूसरे पूरे क्षेत्र को घेर कर खड़े हो जाते हैं। बड़े वृक्षों के पीछे हथियारों से सजकर कुछ निशाना लगाने लिए खड़े रहते हैं। कुछ जोर-जोर से ढोल बजाते हैं। जिसके सामने जानवर पड़ जाता है वह उसे मारता है। कभी कभी ऐसा होता है कि जानवर तेजी से भागने लगता है, तब चारों ओर से उस पर तीर की बौछारर होने लगती है। शिकारी का कुत्ता भी जानवर का पीछा करता है। कभी-कभी सन्ताल मंच बनाकर उस पर डेरा डाले रहते हैं। जब जंगली जानवर पानी पीने बाहर निकलते हैं, तब मंच से ही उस पर वे वार करते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि वे जँगल में जाल बिछाते हैं; जब जानवर उस जाल के अन्दर चला आता है, तब उसे वे समेट लेते हैं और जानव जाल में बँध जाता है। वह भाग नहीं सकता है। उस स्थिति में वे उसे मारते हैं। शिकार की प्रक्रिया में जो भी जानवर उनकी दृष्टि में आ जाता है, उसे वे मारते हैं। शिकार के मांस के विभाजन के लिए

सन्तालों में एक नियमित आचार संहिता है। बदलती हुई परिस्थिति में उस आचार संहिता में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है, फिर भी कुछ नियम हैं, जिनका पालन वे आज भी करते हैं। जिस व्यक्ति ने उस जानवर पर पहला वार किया था, वह उस जानवर का अधिकारी हो जाता है। पर जानवर के मांस को उसे औरो में बाँटना पडता है। गाँव के मुखिया को मास का अंश दिया जाता है। जानवर पहले के तीर से घायल हो और दूसरे के तीर से मरा हो, तब मारने वाले को पाँच पसली की हड्डी, एक जांघ और जिगर का अश प्राप्त होता है। शिकार-पुरोहित देहरी को जानवर की गर्दन मिलती है और जो अंश विभाजन करने से बच जाता है, वह गाँव के लोगो का हो जाता है। जब गाँववालो के बीच मास का बँटवारा होने लगता है, तब ढोल बजानेवालों को दुगुना अश मिलता है। शिकार पर उनके साथ जो कुत्ता जाता है, उसका भी मास में हिस्सा होता है। उसे भी वे मास का कुछ अंश देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मास-विभाजन में सन्ताल समाजवादी तरीको को प्रयोग में लाते हैं। उनके बीच जो भाई चारा पलता है, उसका भी परिचय हमें इससे मिलता है। प्रत्येक गाँव के लोग बाचना पर्व के बाद जनवरी महीने में शिकार करने जगल जाते हैं। वार्षिक शिकार करने की परम्परा सन्तालो में है। वह विशेषतः गर्मी के दिनो में सम्पन्न होता है। जगल के निकट रहने वाले सन्ताल वार्षिक शिकार को एक पर्व के समान मनाते हैं। शिकार करने के पूर्व निश्चय होता है, उसकी व्यवस्था करने का दायित्व परगनैत के ऊपर रहता है। शिकार करने के लिए जो दिन निर्धारित है, उसके लिए भी सन्ताल कुछ नियमो का पालन करते हैं। ये नियम संस्कारों पर आधारित हैं। एक शिकार-समारोह बैसाख के ७

वें दिन होता है। दूसरा शिकार-समारोह वैशाखी पूर्णिमा के दिन होता है। तीसरा शिकार-समारोह भविष्य के लिए छोड दिया जाता है जो किसी शादी के अवसर पर या श्राद्ध के अवसर पर सम्पन्न होता है। जिस दिन शिकार-समारोह करने को होता है, उस दिन की सूचना सभी गाँवो को वे देते हैं।

सन्तालों के शिकार करने के कुछ अपने यत्र हैं। तीर उनका महान अस्त्र है। सन्ताल-तीर का दो अग होता है, एक मुठा और दूसरा डडा। वह लोहे का बना होता है। उसका आकार गु डाकार होता है। आधार पर वह चौडा होता है, और अस्त्र की अपेक्षा वह तेज नोकदार होता है। प्रयोग में लाने के पहले वे तीर के नोक को विष में भिगो देते हैं। वे इसलिए ऐसा करते हैं कि जानवर के लगते ही जानवर मर जाय। सन्ताल तीर चलाने में अगूठे का प्रयोग नही करते। वे मध्य अंगुली को काम में लाते हैं। सन्ताल वाण का भी शिकार में प्रयोग करते हैं। वह भी तीर के ही समान होता है। उसके भी दो अग होते हैं—एक शीर्ष और दूसरा डंडा। शीर्ष लकडी का होता है जो ऊपर मे चौडा होता है, पर नीचे वह पतला रहता है। जानवरो को उसे फेंक कर मारा जाता है। सन्ताल दो तरह का धनुष भी प्रयोग में लाते हैं। एक से वे तीर चलाते हैं और दूसरे से वाण फेंकते हैं।

सन्ताल मछली मारने में भी उत्साह दिखाते हैं। वे जाल डाल कर मछली मारते हैं। 'हुखडी जाल' डाल कर मछली मारना— अपनी एक कला है। बाँस के तीन खम्भे पर जाल को वे डालते हैं। बाँस के फ्रेम में जाल को डाल कर भी वे मछली मारते हैं। मछली मारने में वे तीर-धनुष को भी प्रयोग में लाते हैं। धन-खेती में जहाँ पानी लग जाता है,

वहाँ भी सन्ताल औरतें मछली मारती हैं। शिकार की भाँति मछली मारना भी सन्तालों के लिए सामूहिक समारोह है। गाँव के निकटवर्ती गाँव के लोग उनमें भाग लेते हैं। जिस पचायत के अधीन जल-स्थल पडता है, वहा का मुखिया मछली मारने के दिन को घोषित करता है। निर्धारित दिन को ही सभी लोग मछली मारने आते हैं। मछली मारने के पूर्व बोंगा को मुर्गी भेंट की जाती है। इस प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान के बाद ही मछली मारी जाती है।

भोजनः—

सन्तालो के भोजन पर पहले विशेष निमन्त्रण नही था। सभी भोज्य पदार्थ वे खाते थे। बाबा भागीरथ माँझी के खाराबार आन्दोलन तथा साफा होड आन्दोलन के चलते उनके खाने पर कुछ नियन्त्रण हो गया है। नियन्त्रण कोई बाहरी नही है, वह आत्मिक नियन्त्रण है। जगल के कट जाने से शिकार का अवसर सन्तालों को कम मिलता है और आर्थिक स्थिति उनकी ऐसी नही है कि वे खरीद कर मांस खायें; इसलिए अभावों के कारण भी सन्तालो के मास खाने की प्रवृत्ति में कमी आ गई है। धार्मिक सुधार आन्दोलन एवं धार्मिक कठिनाईयो के कारण अधिकांश सन्ताल इन दिनों अपनी मासाहारी प्रवृत्ति को छोडते जा रहे हैं। चावल उनका मुख्य खाद्य है। चावल वे वैसे ही पकाते हैं, जैसे अन्य लोग पकाते हैं। चावल को भूँज कर भी वे खाते हैं, जिसे सन्ताल 'खजारी' कहते हैं। नमक तेल मिलाकर उसे वे खाते हैं। चावल का वे पीठा भी बनाकर खाते हैं।

श्री पी० ओ० बोडिंग ने विस्तृत रूप से अपने निबन्ध 'सन्ताल कैसे रहते है' में उनके द्वारा पीठा बनाने के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। उस

निबन्ध में तीन प्रकार के पीठा का उल्लेख हम पाते हैं। एक प्रकार के पीठा को ' जील पीठा ' कहा जाता है। यह मास का पीठा होता है। सूखे हुए धान की भूसी निकालते है, उसे साफ करते हैं, पानी में उसे कुछ देर भींगोते हैं फिर उसे वे सुखाते हैं, फिर उसे जांते में पीस कर आटा बनाते हैं और आटा को गोला करते है, उसमें मास भरते हैं। नमक और अन्य मशाला देकर उसे चटकदार बनाते हैं। आग पर उसे पका कर खाते ही हैं। मास वे विशेषतः मुर्गी का मास उसमें डालते हैं। पी०ओ० बोडिंग ने सूअर के मांस का भी पीठा उन्हें खाते पाया था। सूअर को मारने की उनकी अपनी प्रक्रियायें हैं। सूअर को पकडने के लिए अपने कुत्तो को वे छोड़ देते हैं; सूअर कुत्तों के भय से इधर-उधर दौड़ता है, भागता-फिरता है। सन्ताल ऐसी स्थिति में तीर चलाकर उसे मारते हैं। जब सूअर जमीन पर गिर पडता है, तब वे पत्थर की चट्टान से उसके माथा पर जोर से मारते हैं। जब वह मर जाता है, तब उसे वे आग पर चढा देते हैं। जब उसके शरीर के बाल जल जाते हैं तब उसे कई भागो में काट-काट कर अलग कर देते हैं; इसके बाद उसे वे पकाते हैं। सन्ताल ' खपरा पीठा ' भी बनाते हैं। वह आटा का ही बनता है। पानी में आटा को साना जाता है, उसमें थोडा नमक मिलाया जाता है। तावा पर थोडा तेल लगाया जाता है। यह कार्य वे इसलिए करते हैं कि तावा पर आटा सट नही जाय। यह पीठा कुछ लम्बा होता है, इसलिए सन्ताल उसे ' खपरा पीठा ' कहते हैं। एक अन्य प्रकार का पीठा वे बनाते हैं, जिसे वे ' ओट पीठा ' कहते हैं। वह ' जील पीठा ' के समान बनता है।

जील पीठा में मास डालते हैं लेकिन ओट पीठा में साग डालते हैं। उसमें मशाले प्रायः वही डालते हैं जो जील पीठा में डाला जाता है। जिस

परिवार में मास नहीं चलता है , या जो परिवार आर्थिक अभावों के कारण जील पीठा नहीं बना पाता है वह प्रायः ओट पीठा ही बना कर खाता है ।

सन्ताल अपने खेतों में विभिन्न प्रकार के दाल उत्पन्न करते है । वे दाल को पानी में डाल कर , उसमें हल्दी , मशाला और नमक मिलाकर पकाते हैं । दाल पक जाने पर वे भात के साथ खाते हैं । पीठा के साथ भी दाल खाते हैं । अरहर , मूंग और मसूर की दाल विशेष रूप से वे पकाते है । तरकारी भी वे बनाते हैं । जगल से साग लाते हैं या सब्जी का स्वय उत्पादन करते हैं । जगल से पहले उन्हें खाने योग्य बहुत-सी चीज मिल जाती थी । लौकी, झोगा, बैंगन, सतालू, सेम, मूली और प्याज को सब्जी के रूप में खाते हैं । दूध सन्ताल कम पीते हैं । दही बनाकर या उससे घी निकाल कर वे खाते हैं । दही को वे बड़े चाव से भात के साथ खाते हैं । तेल और मशाले का भी प्रयोग सन्ताल करते हैं । सरसो तेल और महुआ तेल का प्रचलन उसके यहाँ बहुत अधिक है । तेल वे वैसे ही तैयार करते हैं , जैसे हमारे यहाँ के तेली तैयार करते हैं । सन्ताल भी इन दिनो तील से ही तेल तैयार करा लेते हैं । तेल को वे शरीर में भी लगाते हैं । दवा में भी उसका वे प्रयोग करते हैं । सन्ताल हँडी पान करते हैं । शराब भी पीने लगे हैं । शराब पीना अंग्रेजी सभ्यता है । सन्ताली संस्कृति में इसका वर्णन दवा के रूप में हुआ है । दूसरे लोगो की संस्कृति को ग्रहण करने से अपनी संस्कृति बिगड जाती है:—

"; देश मांझी प्रगना को मेना
कुठी शारोनी पाडरा गादी
दो आलेयाक् गी ।
कुडी कोडा को मेना
छाता पाता दो आलेयाक् गी । "

भावार्थ— ' देश मांझी और प्रगना कहते हैं कि गोड्डा और सरौनी में जो शराब की दुकान है , वह हम लोगो को है । उस दुकान की शराब पर हम लोगो का अधिकार है । युवक और युवतियाँ कहती हैं कि छाता और पात्ता मेला हम लोगों का ही है । '[1] सन्ताल तम्बाकू भी पीने लगे हैं । हुक्का और चिलम का भी प्रयोग उनमें था , अब बीडी भी पीने लगे हैं । खैनी भी वे चूना लगा कर खाते हैं ।

वस्त्र— विधान

सन्तालो का वस्त्र–विधान बहुत ही साधारण है । जैसे वे स्वभाव से निष्कपट हैं वैसे ही अपने पहनावे से वे सरल और भोले-भाले लगते हैं । साधारणतः कम कपडा का प्रयोग करते हैं । उनकी धोती कमर से घुटने तक ही रहती है । कुछ सन्ताल तो ऐसे मिलते हैं कि लगोटा पहन कर ही रह जाते हैं । जो कपडा धारण करते हैं वह भी चार फीट लम्बा और १० इ च चौडा होता है । अधिकाश सन्ताल माथे पर कपडा नही रखते हैं । पर ऐसा करना समाज के किसी नियम से वर्जित नही है । शादी के अवसर पर या किसी समारोह के समय वे माथे पर कपडा रखते हैं । वह साधारणतः हल्दी में या पीला रंग में रगा हुआ होता है । दुर्गा-पूजा या काली-पूजा के अवसर पर जब सन्ताल दुर्गा-पूजा में भाग लेने दुमका आते हैं, तब उनमें बहुतो को मैंने देखा है कि पीले रंग के कपड़े माथे पर वे रखे रहते हैं । सन्ताल जो पैसे वाले हो गये हैं, वे तो अन्य लोगो की तरह कपडों को व्यवहार में लाने लगे हैं । मैंने सन्ताल औरतो को 'नाइलन' की साडी पहने देखा है । पर ऐसी औरतो

---

१. श्री आदित्य मित्र सन्तालो : सन्तालो के बीच अंग्रेजो का प्रवेश : प्रकाश: आदिवासी अंक, जनवरी ,१९४७ पृष्ठ— १३१ ।



मसाल युवती

की संख्या बहुत कम है। कुछ सन्ताल गाँवों में मुझे जाने का अवसर मिला है। साधारणतः चार या पाँच वर्ष तक के बच्चे नंगे रहते हैं। पैसे का प्रभाव इसका कारण बताया जाता है। पर कुछ ऐसे परिवार के बच्चों को भी मैंने नगा देखा है, जो चाहें तो अपने बच्चों को कपड़ा पहना सकते हैं। जाडे में कुछ सन्ताल भर बदन कपडा पहने देखे जाते हैं, पर गर्मी में भर बदन कपडा पहनने के आदी नही हैं। घर का वस्त्र-विधान सन्तालो का अलग है। पर हटियों में उनका भिन्न वस्त्र-विधान होता है। हटिया में वे अच्छे वस्त्र पहन कर आते हैं। सन्ताल नारियाँ दो भिन्न कपडो को प्रयोग में लाती हैं। एक को वे पहनती हैं और दूसरे को वे ओढती हैं। जो कपडा वे पहनती हैं, वह तीन गज लम्बा और अढ़ाई गज चौडा होता है। जिस कपडा को वे ओढती हैं, वह आचल का काम करता है। नये कपडे को वे रग लगा कर शुद्ध करती हैं। कपड़े के चारो कोने पर वे हल्दी का रग लगाती हैं। रंगीन कपड़े भी वे पहनती हैं। पहले तो सन्ताल अपने कपडों को स्वयं तैयार करते थे। प्रायः पहले गाँवो मे चर्खे चलते थे। आज भी सन्तालो के घरो में चर्खे का प्रचलन कुछ है। गान्धी-युग में चर्खे के प्रचलन पर पुनः जोर दिया गया था। सन्तालो के यहाँ अब केवल कपड़े की समस्या नही है, कई विषम समस्यायें उनके पास हैं। वे चर्खा से उन समस्याओ का समाधान नहीं कर पाते हैं। अतः चर्खे को छोड़कर वे अपने श्रम को दूसरे कामों में लगा रहे हैं और आवश्यक कपड़े की पूर्ति वे बाजार से करते हैं। फिर भी कई परिवारो को मैंने चर्खा रखते हुए देखा है। जब उन्हें समय मिल जाता है तब वे चर्खा चला कर कपड़े तैयार करते हैं। अपने हाथों से काटे सूत के कपडो को पहनने में बडा सन्तोष मिलता है।

सन्ताल कपास पैदा करते हैं। वे उतना ही पैदा करते हैं, जितने का वे प्रयोग कर सकें। जो किसान कपास पैदा नही कर पाता है, वह रूई बाजार से खरीद करता है। सन्ताल परगना की मिट्टी कपास-उत्पादन के लिए बहुत अच्छी नही हैं। इसलिए अधिकांश किसान बाजार से रूई लाकर सूता बनाते हैं; सूता से कपड़ा बनाते हैं। रूई ओटने का उनका यन्त्र बहुत सादा होता है। वह यन्त्र सीधा चौखटा होता है। उसमें लकड़ी के दो बेलन लगे रहते हैं। सन्ताल बेलन में रूई रख देते हैं; उसके बाद बेलन को वे घुमाने लगते हैं। रूई बीज से अलग हो जाता है। रूई को वे पसार देते हैं। चर्खा पर सूत को काटते हैं। सूत को पुनः वे कपडा के रूप में बदलने के लिए करघा पर जिसे राछ भी कहा जाता है, चढाते हैं। राछ दो बाँस का बना रहता है और उसमें कई लकडी की छडी लगी रहती है। छडियो में छोटे-छोटे छेद होते हैं। उसमें सूते फँसाये रहते हैं और इस पर कपडा वे बनाते हैं।

सन्ताल गहना भी पहनते हैं। ऐसे तो फूल ही उनका सबसे बडा शृंगार है। सन्ताल नारियाँ आभूषणों को धारण करती हैं। सन्ताल पुरुषों को आभूषण धारण करते हुए मैंने नही देखा है। हँसुली सन्ताल औरतो का मनपसन्द आभूषण है। साधारणतः वह चाँदी की बनी रहती है। छोटी-छोटी बच्चियाँ भी हँसुली पहने रहती हैं। वह मोती की भी बनी रहती हैं। बच्चियों को मोती की ही हँसुली वे पहनाती है। कानों में वे चाँदी की बनी हुई बाली भी पहनती हैं। वह एक इंच व्यास की होती है। वे बाँहों में पीतल की बनी हुई पहुँची भी पहनती हैं। नाक में वे चाँदी की बनी नथ पहनती हैं। पहुँची के आगे वे बाजूबन्द पहनती हैं। सन्ताल-युवक गले में ताँबे या चाँदी की ताबीज पहनते हैं।

औरतें बालों मे फूल लगाती हैं। फूलों को वे अधिक चाव से पहनती हैं। उससे अपने को सजाती हैं। एक सन्ताल ने मुझे बताया था कि सन्ताल कुमारियो को गहने नही उपलब्ध होने पर वे फूलों से ही संतोष करती हैं। एक कवि ने सन्ताल-कुमारियो को प्रकृति की बेटी माना है। प्रकृति अपनी बेटी को अपने साधनो से सजाती है; उसे अलंकृत करती है।

सन्तालो के पास कपड़े कम रहते हैं, उनके पास आभूषण का अभाव रहता है। पर इन अभावो में भी उन्हें संतोष रहता है। सार्वजनिक जीवन में देखकर उन्हे कोई नही कह सकता है कि कपड़ों और आभूषणों के अभाव से वे पीड़ित हैं। सार्वजनिक जीवन में जब हम उन्हें देखते हैं तब ऐसा लगता है कि उनके पास प्रर्याप्त कपड़े हैं, आवश्यकता के अनुरूप उनके पास आभूषण हैं। पर ऐसी बात नही है। उनके वस्त्र-विधान को देखकर, जब पंडित जवाहर लाल जी दुमका आये थे, उन्हें भी विस्मय हुआ था। वस्त्र–विधान द्वारा सन्तालो ने अपने सार्वजनिक-जीवन को ऐसा बनाया है, जिससे लोगों को विस्मय होता है, आश्चर्य होता है। इन सबसे उनके रहन-सहन के सम्बन्ध में हमें जानकारी प्राप्त होती है।

गाँव और घर:—

सन्ताल साधारणतः गाँवो में रहते हैं। उनका गाँव बहुत बड़ा नही होता है। जब गांवों की आबादी में वृद्धि होने लगती है तब सन्ताल उस गांव को छोड़कर दूसरा गांव बसा लेते हैं। घनी आबादी में वे रहना पसन्द नही करते हैं। उन्हें ऐसी प्रवृत्ति विरासत में मिली है। उनके आदि-पूर्वजों में भी ऐसी ही प्रवृत्ति हमें देखने को मिली है। सन्तालों की दृष्टि में पच्चीस या तीस घरों का गांव अच्छा गांव है। सन्तालों ने कुछ ऐसे भी गांव बसा लिये हैं, जिनकी जन-संख्या अधिक नहीं होते हुए भी

वहां घरों की संख्या पचास और सौ तक पहुँच गई है। पर ऐसे गांव सन्ताल परगना जिले में बहुत ही कम हैं। सन्तालो ने सन्ताल परगने में छोटे-छोटे अनेक गांव बसा लिए हैं। इसके फलस्वरूप इस जिले में बिहार राज्य के सभी जिलो से अधिक गाव हैं। सन्ताल परगना में लगभग बारह हजार गाव हैं।

सन्ताल वहीं गाव बसाते हैं, जहां खेती के लिए पर्याप्त भूमि होती हैं। निकट में झरना, पोखर या नदी-नाले हो। सन्तालो को अपने श्रम पर विश्वास है। अत: जगलो के पास वे गांव बसाते हैं। जंगल काट कर वे खेत बनाते हैं। पहाडी-भूमि की छाती फाड कर वे झरने बनाते हैं, पानी का स्रोत निकालते हैं। सन्ताल अन्ध विश्वासी भी होते हैं। इस कारण वे गांव के लिए भूमि निश्चित करने लिए शकुन अपशकुन पर भी विचार करते हैं। गांव की नीव वे शुभ शकुन मे देते हैं। उस अवसर पर पूजा आदि भी करते हैं। सन्ताल परगना मे सन्तालो के गाव प्राय: एक ही प्रकार के हैं। ऐसा मालूम होता है कि सन्तालों के पास गाव निर्माण की एक निर्धारत योजना है। सन्ताल परगना में सर्वत्र उसी निर्धारित योजनानुसार गांव बसाये गये हैं। सन्ताल गावो में घर दो पंक्तियों में बने होते है। दोनो पंक्तियों के बीच एक चौडी गली होती है। गली को सन्ताल कुल्ही कहते हैं। घर दूर-दूर पर रहते है, इस-लिए गली बहुत लम्बी होती है। कुल्ही का जो भाग ऊपर रहता है, उसे ऊपरी कुल्ही कहते हैं और नीचले भाग को 'हेठ कुल्ही' कहा जाता है। सन्तालों के गाँव सुरक्षा की दृष्टि से बहुत दृढ़ नही होते हैं। गांव में एक ही रास्ता होता है, जिसकी चौड़ाई २० से ३० फीट होती है। उसकी लम्बाई गांव की लम्बाई होती है। गांव-पथ के दोनो किनारे पर

होते हैं।

प्रत्येक सन्ताल गाव में कुल्ही के बीच मे ' माझीथान ' बनाया जाता है। उस स्थान पर उनकी पचायतें बैठा करती हैं। गाव के प्रमुख वहीं पर उस गाव के सन्तालों से कर-वसूल करते हैं। माझी थान मिट्टी का एक चबूतरा होता है। उस चबूतरा के चारो कोने पर एक-एक खम्भा रहता है। एक खम्भा बीच में भी होता है। वह अन्य खम्भो से कुछ ऊँचा होता है। उस पर छप्पर भी होता है। छप्पर साधारणतः सोडी घास का होता है। खम्भे साधारणत: सादा होते हैं। वहां पर कुछ पत्थर रखा रहता है। वे पत्थर मृत माझियो या बोंगा के सूचक होते हैं। कही-कही पर लकडी के टुकड़े भी रहते हैं। उन पर सन्ताल कुछ चिह्न अंकित कर देते हैं। वे भी उनके पूर्वजो की आत्माओ के प्रतीक माने जाते हैं। ' माझी हाराम ' वही पर पिलचु हाड़ाम और पिलचु बुड़ही की पूजा करते हैं। माझी थान के लिए कोई निर्धारित आकार नही है। विभिन्न गावो में मैंने विभिन्न आकार का माझी थान देखा है। किसी गांव में मांझी थान दस फीट लम्बा है आठ फीठ चौड़ा है और अढाई फीट ऊँचा है, और उसी गाव के पास के गांव में देखा गया कि मांझी थान पाच फीट लम्बा चार फीट चौड़ा और एक फीट ऊँचा रहता है। माझी थान की धरती मिट्टी और गोबर से शुद्ध की जाती है। बोंगा को शान्त करने के लिए वहाँ वे सिन्दुर लगाकर पूजा करते हैं और हांडी चढाते हैं। बकरी, मुर्गा, सूअर तथा कबूतर वे चढ़ाते हैं, पर वहाँ पर सन्ताल किसी प्रकार की बलि नही चढ़ाते हैं।

प्रत्येक गांव के बाहर जाहेर थान होता है। वहां सखुए के पेड़ होते हैं। पेड़ों की संख्या निर्धारित नही है। कुछ गांवों में जाहेर थान में

२० या २५ सखुए के पेड है और कुछ में चार या पाच पेड़ ही पाये गये हैं। जाहेर थान में सन्तालों का विश्वास है कि बोंगा एवं उनके पूर्वजों की मृतात्माएँ रहती हैं। उनकी धारणाओं के अनुसार वहां के सखुआ के पेडो में भूत-प्रेत वास करते हैं। वहां पेडो के नीचे कुछ पत्थर रखे रहते हैं, जो जाहेरा मराग बुरू आदि देवताओ के प्रतीक होते हैं। सन्ताल स्त्रियां सिंदुर लगाकर पूजा करती हैं। सन्तालों को विश्वास है कि उनके जाहेराएरा, मोड़े तुरुई, मरांग बुरू, गोसांई एरा और परगाना बोंगा वहा रहते हैं। एक पेड़ के नीचे जो पत्थर रहता है, उसे वे जाहेरा एरा मानते हैं, दूसरे पेड़ के नीचे जो पत्थर रहता है – उसे वे मोड़े तुरुई मानते हैं और पेड़ के नीचे जो तीसरा पत्थर होता है, उसे वे मरांग बुरू मानते हैं। चौथे पेड़ के नीचे के पत्थर को वे परगाना बोंगा मानकर पूजते हैं। पांचवा पेड़ जो महुआ का होता है, उसके नीचे का पत्थर गोसांई एरा माना जाता है। महुआ–वृक्ष को वे नारी–कुञ्ज कहते हैं। इन पांचों देवताओ के अतिरिक्त अन्य सखुआ के पेडो के नीचे पत्थर रहता है वे उनके विभिन्न बोंगा के प्रतीक होते हैं। उन्हें वे पूजते हैं। सन्तालों के गांव बहुत साफ–सुथरे रहते हैं। सूअर गाव की सफाई के लिए सन्तालो का बहुत बड़ा साधन है। सूअर मैला साफ करते हैं। गांव बस जाने पर सन्ताल गावो में वृक्ष लगाते हैं, आम के पेड़ और महुआ के पेड़ वे बहुत लगाते हैं। पानी की व्यवस्था वे पोखर खोद कर करते हैं या आस-पास की नदियां उन्हें जल देती हैं। जब नदियाँ सूख जाती हैं, तब वे बालू हटाकर पानी निकालते हैं। जब वहां पानी नहीं निकलता है, तब वे गड्ढा खोदते हैं, झरना बनाते हैं। बिहार सरकार ने सन्ताली गाँवों में इधर बहुत कुओं का निर्माण किया है। कुआं-निर्माण

की योजना बहुत बड़ी है। सरकार चाहती है कि सन्ताल गन्दे झरनों का जल पीना बन्द कर दें। इसीलिए कुआं-निर्माण पर सरकार जोर दे रही है।

सन्ताल-गाँव में एक खलिहान होता है। सन्ताल लोग उसे 'हाराई' कहते हैं। गाँव के बाहर ही उनका खलिहान होता है। वे एक स्थान को चुनते हैं। साधारणतः वह स्थान कुछ ऊँचा होता है। वे इस ऊँची जमीन को बराबर बनाते हैं। इसके बाद उसे गोबर और मिट्टी से अच्छी तरह लीप-पोत कर चिकना करते हैं। फसल जब कटती है, तब उसे वहाँ जमा करते हैं। वही पर दौनी करते हैं। दौनी को वे 'मएडा' कहते हैं। दौनी के बाद वे वहां पर ओसानी करते हैं। खलिहान में वे अनाज की सुरक्षा की व्यवस्था करते हैं। एक आदमी वहाँ रहता है। उसके रहने के लिए एक झोपड़ी होती है।

घर बनाने के पहले वे जमीन को देखते हैं। शकुन-अपशकुन पर विचार करते हैं। वहां एक कौआ टांग देते हैं। वह पांच दिनों तक टंगा रहता है। अगर पाच दिनो में वह मर जाता है, तब वे उस स्थान को अपशकुन मानकर छोड देते हैं, पांच दिनो के बाद वह जब बचा रह जाता है, तब माना जाता है कि वहा घर बनाना शुभ है। घर की नीव डालने के पूर्व उस धरती पर मरांग बुरू के नाम पर मुर्गा की बलि दी जाती है। घर-प्रवेश के समय घर के मालिक आस-पास की नदी में स्नान कर आता है, उसके हाथो में जल भरा एक लोटा रहता है। पूर्व में वह तीन सखुआ के पत्ते को रखता है और उन पर हांड़ी चढ़ाता है। मरांग बुरू और पिलचु हाड़ाम के नाम पर हाँड़ी पत्ते पर डालते हैं। उनसे अनुरोध करते हैं कि तुम्हारा नाम लेकर मैंने घर बनाया है। तुम्हें देखना है कि भविष्य में

कुशलता रहे। घर के आस-पास की जमीन में आम के वृक्ष लगाते हैं। घर के समारोहो में विधवा एवं तलाक दी गई औरतें नही भाग लेती हैं।

सन्तालो के घर प्राय: एक ही प्रकार के होते हैं, उनमें विभिन्नताएँ नहीं मिलतीं। आंगन बीच में रहता है, उसके दोनों ओर कोठरियाँ होती हैं और दो ओर मिट्टी की दिवालें होती हैं। औसत सन्ताल घर १५ से १८ फीट लम्बा और १० से १२ फीट चौड़ा रहता है। दामिन-कोह क्षेत्र में दो प्रकार के सन्ताल घर मिलते हैं— एक का नाम 'बंगला-ओरका' है और दूसरे का नाम 'काटम ओरका' है। पहले प्रकार का घर चौखूटा होता है. जिसकी लम्बाई १४ से १५ फीट है, और उसकी चौड़ाई ६ से १० फीट है। इस प्रकार केघर के दोनो ओर छप्पर रहता है। दूसरे प्रकार का घर छाता के समान होता है। इसके चारों ओर छप्पर रहता है। प्रत्येक सन्ताल घर में घर के मालिक के लिए अलग कमरा रहता है। वही भण्डार घर भी होता है। उसे वे 'भीटार' कहते हैं। सन्तालो को विश्वास है कि उसमें उनके पूर्वजो की मृतात्माएँ रहती हैं। वे उनके लिए भोजन उस घर में रखते हैं। घर की विवाहित लडकियो के लिए उसमें प्रवेश करना निषिद्ध है। पशुओं के लिए अलग स्थान रहता है। मुर्गियो को वे अपने घर मे रखते हैं।

नृत्य और संगीत—

सन्तालो के दैनिक जीवन में नृत्य और संगीत का महत्वपूर्ण हाथ है गीत उनके होठो पर सदैव रहता है। नृत्य को वे अपने प्राण से भी अधिक प्यार करते हैं। २६ जनवरी, १९६४ को बिहार ने दिल्ली के गणतन्त्र दिवस के सांस्कृतिक झांकी में सन्ताल नृत्य के द्वारा अपना प्रतिनिधित्व किया है। उक्त टोली का चुनाव करने के लिए मेरे आदरणीय





संताली लोकनृत्य की झाँकियाँ

मित्र श्री नवल किशोर गौड दुमका आये थे। उनकी इच्छा थी कि मैं भी नृत्य-टोलियो को देखने मे उनका साथ दू। दो रोज तक देहातों में जाकर सन्तालो के बीच रहकर हम लोगो ने सन्तालों की कई नृत्य-टोलियो को देखा। सन्तालो का कोई ऐसा गाँव हम लोगों को नहीं मिला जहाँ सन्तालो की नृत्य-टोलियाँ नही हो। सबसे बडी बात तो मैंने यह देखी कि ६ वर्ष की अबोध बालिका से लेकर ६० वर्ष की मृत्यु की देहरी पर खड़ी वृद्धा में भी नृत्य के लिए प्रेम-भावना है। वे उत्साह से नाचती हैं। नृत्य और संगीत के द्वारा वे अपने को चिंता से मुक्त पाते हैं। समाज के बीच रहकर भी वे आनन्द-मग्न रहते है। प्रत्येक सन्ताल गाँव में नाच के लिए एक निर्धारित स्थान है। वह खुला मैदान है, पर सन्ताल उस पर निगरानी रखते हैं। जब कोई समारोह करते है तब उसे वे मिट्टी और गोबर से लीप-पोत देते हैं। नृत्य-स्थल की सफाई का काम विशेषत: कुमारी लड़कियाँ ही करती है।

सन्तालो के उत्सव एवं समारोहो से नृत्यो का विशेष रूप से सम्बन्ध है। उनके यहाँ कोई भी उत्सव या समारोह तब तक नही हो सकता जबतक उस अवसर पर नृत्य का आयोजन नही हो। सन्तालों के बीच नृत्य आशा, उमग एव उत्साह के प्रतीक हैं। वे नाचकर एवं गाकर अपने जन-जीवन के प्रति अपनी आस्था और विश्वास प्रदर्शित करते हैं। पर्व से उनका नृत्य विशेष रूप से सम्बन्धित है। विशेष पर्व पर विशेष नृत्य ही वे करते हैं। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि विशेष पर्व जिस माह में होता है, उस पूरे माह में वही विशेष नृत्य होता है। कुछ ऐसे भी नृत्य होते हैं, जिसे कभी भी किया जा सकता है। उनके कुछ नृत्य केवल महिलाओं के लिए ही हैं और उनके कुछ ऐसे भी नृत्य हैं, जिनमें केवल युवक ही भाग

लेते हैं। पर अधिकाश नृत्य ऐसे होते हैं, जिनमें पुरुष और नारी दोनो का योगदान रहता है। सन्ताल नृत्यो से जिनका सम्बन्ध नही है-जिनको पूरी जानकारी नही है, वे तो समझते है कि उनके सभी नृत्य एक ही प्रकार के हैं। उन्हें जो थोडी बहुत विभिन्नता दिखाई पडती है, वह केवल ताल और वाद्य यंत्रो के चलते। कुछ युवक या युवतियाँ एक साथ नाचती हैं। एक दूसरे के कमर में हाथ डालकर एक पंक्ति में वे खडी होती हैं। किनारे से या आगे पैर बढाती हैं फिर वे उसी प्रकार लौटती हैं। उनके पैर ढोलक की ताल पर उठते है। वे या तो वृत्त बनाकर पैर उठाती हैं या नृत्य-स्थल के एक ओर से दूसरी ओर गाना गाते बढती हैं और फिर उसी क्रम में वापस आती हैं। बीच-बीच में वे गाती भी हैं। सन्तालो को जब भी आनन्द का अवसर प्राप्त होता है तब वे अपने आनन्द को, अपनी मस्ती को, अपनी उमंग को नृत्यो के प्रदर्शन द्वारा व्यक्त करते हैं। जब किसी घर में बच्चा पैदा होता है, तब उसका घर नाच और गीत मे झूम उठता है। जब बच्चा समाज में प्रवेश करता है, उस अवसर पर भी वे नृत्य प्रदर्शित करते हैं। शादी-विवाह के अवसरो पर भी नृत्य होता है। एक सन्ताल ने हमें बताया था कि नृत्य सन्ताल की पुरातन संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। जन्म से लेकर शादी तक उनके जितने भी उत्सव हैं, उन अवसरो पर सन्ताल एक ही प्रकार के नृत्य प्रस्तुत करते हैं, उस नृत्य को सन्ताल 'दोन' कहते हैं। इन अवसरों पर केवल महिलायें ही नृत्य नही करती हैं। पुरुष वर्ग भी योगदान देता है। वाद्य यंत्रों का संचालन पुरुष ही करते हैं। बापला (शादी) के अवसर पर जो नृत्य प्रस्तुत किया जाता है, वह शादी से सम्बन्धित नृत्य होता है। पुरुष वर्ग शिकार खेलने के दिन रात में 'दोनगर' नृत्य करते है। यह एक प्रकार का जंगली

नृत्य होता है। उस अवसर पर नृत्य में कूद-फान वे करते हैं। बाहा पर्व पर वे अपूर्व उत्साह से नाचते हैं। जो सबसे बड़ा होता है, वह पंक्ति की एक छोर पर रहता है, जो छोटा होता है वह पक्ति की अन्तिम छोर पर रहता है। वे सभी एक साथ झुकते हैं और फिर गर्दन उठाते हैं। वे दो या तीन पग आगे धरते हैं और पुनः उसी क्रम में वापस चले आते हैं। वे गाना गाते रहते हैं और बाजा बजाते रहते हैं। नाचने के समय युवतियाँ अपने माथे के जूड़े मे फूल लगाये रहती हैं और युवक अपनी पगडी मे मोर के पंख लगाये रहते हैं। शादी या पर्व के अवसर पर नृत्य दिन को भी होता है। गर्मी के दिनो मे सन्ताल प्रतिदिन रात में नृत्य करते हैं। देखने में सन्तालो का नृत्य तो एक ही प्रकार का लगता है, पर वस्तु-स्थिति इससे भिन्न है। उनके नाच कई प्रकार के हैं। बोडिंग ने अपने सन्ताली शब्द कोष में सन्तालों के नृत्य की सूची दी है, उसमे ३१ प्रकार के नृत्यो का उल्लेख है। [१]

---

१. The following are names of dances practised by grown-up people.

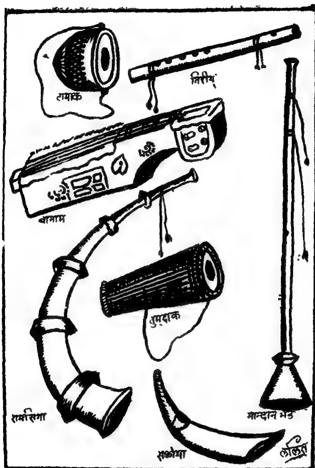
Baha enec' ; Buru beret' enec'; Bhinsar enec'.
Don enec' ; Dunger enec' ; Dharua (or dhaura) enec' ; Dhundar bhet enec' ; Dhurumjak' enec; Dahar enec; Danta enec' ; Dom enec'.
Gadoe enec ; Gidini enec' ; Golwari enec (or-Gulwari enec' ; Gunjar enec').

Jale enec' ; Jatra bonga enec' ; Jatur enec' ;

सन्ताल संगीत बहुत व्यापक है। कुछ लोगो की धारणाये हैं कि नृत्य के साथ ही उनका सगीत प्रदर्शित होता है। पर ऐसी बात नही है। सगीत का अपना भी क्षेत्र है जो नृत्य से अलग है। सन्ताल जितना नृत्य-प्रेमी है, उससे अधिक ही सगीत-प्रेमी हैं। संगीत के द्वारा ही वे अपनी भावनाओ को व्यक्त करते हैं। छोटे-छोटे सन्ताल बच्चे जगल में या तो जानवर चराने या लकडी काटने जाते हैं, तब वे मधुर स्वर में बाँसुरी बजाते हैं। बाद में वे सफल बाँसुरी-वादक हो जाते हैं। बाँसुरी में छ: छेद रहते है। बाँसुरी को वे श्रद्धा से बजाते हैं। भगवान कृष्ण की बाँसुरी के रूप मे उसे वे ग्रहण करते हैं। सन्तालो का वाद्य-यत्र बहुत ही कम है। ढोल उनका मुख्य वाद्य-यत्र है। वह आकार और स्वर दोनो में विशाल होता है। साधारणत. वह दो प्रकार का होता है। नृत्य के समय उसे बजाया जाता है। एक का नाम टुमदक और दूसरे का नाम तामक् है। टुमदक् मिट्टी का बना हुआ होता है और वह गुण्डाकार होता है। उस पर चमडा लगा रहता है। तामक् लाहे का बना रहता है। उसपर भी चमडा लगा रहता है। इनका प्रदर्शन एव प्रस्तुतीकरण शादी के समय होता है। उस समय यह नृत्य विशेष रूप में किया जाता है। सरपा वाद्य-यत्र को छोटकर सन्ताल नारियाँ अन्य वाद्य-यंत्र को नही बजाती हैं।

Jhika enec'. Kundur jhagra enec'; Kunkal cak enec'; Kutun jota enec'. Lagre enec'; Laurıa enec'; Loboe enec'. Mander enec'; Marak enec'; Matwar enec'. Pak don enec'; Rinja enec'. Sohrae enec'. Taini enec'

Bodding's Dictionary, Vol II. Page.331.



संतालों के वाद्य-यंत्र

सन्तालो के नृत्य , वाद्य-यन्त्र एवं संगीत में सुधार लाने का प्रयास कभी-कभी होता है। मेरी दृष्टि में सन्तालो के संगीत एव नृत्य में भारतीय तत्वो को प्रचलित करने की आवश्यकता नही है। आवश्यकता तो यह है कि सन्ताली नृत्य एव गीतो को उनके परम्परागत रूप मे ही लोकप्रिय बनाया जाय एव विकसित किया जाय। सन्तालो के नृत्य और संगीत की शुद्धता एव विशिष्टता की रक्षा होनी चाहिए। ऐसा करने पर ही हम सन्तालो के जीवन की भावात्मक आवश्यकता की स्वाभाविक सपुष्टि कर सकते हैं।



समाज-दर्शन



● सन्ताल कुछ विशेष पक्षियों और पशुओं के मांस नहीं खाते। कारण उनके गोत्र का नाम उन पशु–पक्षियो के नाम पर आधारित हैं।

● सन्तालो के बीच भाई-भाई में प्रगाढ स्नेह रहता है। खेल में, कूद में, खेत में, खलिहान में, गोचर भूमि में साथ-साथ वे रहते हैं। उनका सम्पर्क ऐसा होता है कि उन्हें अलग नही किया जा सकता है।

● सन्ताल युवतियाँ गोदना को शुभ मानती हैं। गोदना पर उन्हे नाज है। गोदना को वे इस लोक का श्रृंगार और परलोक का एक सहारा मानती हैं। परलोक में गोदना देख कर कीडे उन्हें नही काटते हैं।

सन्ताल-समाज : एक अध्ययन

सन्तालों का जीवन लिखित नही है। जो लिखित है भी ; वह सन्त-कथाओं पर आधारित है। उनके समाज संगठन के सम्बन्ध में जो लिखित साहित्य उपलब्ध है उनमें कम भिन्नता नही है। मानववादी विद्वानों ने सन्तालों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की। उनके जानकारी प्राप्त करने के साधन हैं—जानकार सन्ताल। उनके पूर्व पुरुषों द्वारा कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नही है। वे जो जानते हैं, वही लोगों को बतलाते हैं। वे ही सारी बातें मानववादी विद्वानो द्वारा लिखित होकर हम सब के सामने आती हैं। सभी सन्तालों की जानकारी एक समान नही है। अत: विद्वानों द्वारा जो साहित्य उनके सम्बन्ध में आता है, उसमे भिन्नता पायी जाती है। ऐसी स्थिति में विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक भी है।

प्रत्येक जाति के इतिहास में मानव के जन्म की कहानी अंकित है। सन्तालो के इतिहास में उनकी कहानी अंकित है, जिसका वर्णन १२५ से १३८ पृष्ठो में आगे आया है। श्री जे० जी० फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'फाकलोर इन ओल्ड टेस्टामेण्ट' में कहा है कि सन्ताल कहानी में मानव के जन्म, उसके विकास की जो कहानी है, वह मानवी सृष्टि और विकास की कहानी है। उनके अनुसार मानव दो मूर्तियों की देन है, जो मिट्टी द्वारा मानव के रूप में निर्मित हुई थीं। बाद में वे अनायास पक्षी के रूप में बदल गयी। उन्होंने बाद में अण्डे दिये, उनसे ही हाड-मांस का पहला पुरुष और पहली औरत पैदा हुई। पुरुष का

नाम पीलचु बुढ़ही और औरत का नाम पिलचु बाडही रखा गया। उन्हें बारह लडके और बारह लडकियाँ हुईं। बाद में उनलोगों ने उन्हें १२ गोत्रों में बाँट दिये, जो जो इस प्रकार हैं—हाँस्दाक्, मूर्मू, किसकू हैम्बरम्, सोरेन, टुडू, बासके, मार्सी, बेसरा, पौंडिया, चोंडे और बेदिया। पहले उनका विभाजन सात ही गोत्र में हुआ था, बाद में पाँच गोत्र की और सृष्टि हुई। संताल के मूल गोत्र—हासदाक्, मुर्मू, किसकू, हैम्बरम्, सोरेन, टुडू और बासके ही हैं। मार्सी, बेसरा, पौंडिया, चौंडे और बेदिया बाद के गोत्र हैं। सन्तालो ने अपने गोत्रो का विभाजन जो किया है, वह बहुत ही श्रम सिद्ध है। एडवर्ड ग्रान्ट ने अपनी पुस्तक 'सन्थाल और सन्थालिया' में सन्तालों के गोत्रीय विभाजन पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार सन्तालो का गोत्र इस प्रकार उल्लिखित है—

गोत्र

१. हासदाक्	७. बेसरा
२. मुर्मू	८. किदोर
३. सोरेन	९. बासके
४. टुडू	१०. मारमोरिंग
५. मार्सी	११. बीसेरा
६. किसकू	१२. हेम्बरम्

एडवर्ड ग्रान्ट ने बीसेरा, किदोर और मारमोरिंग को किस आधार पर सन्ताली गोत्र माना है, समझ में नहीं आता। उपलब्ध साहित्य इन गोत्रों के सम्बन्ध में मौन है। सन्ताल परगना में इन गोत्रों के आदमी नहीं मिलते। श्री डाल्टन एवं सर हरबर्ट रेसली ने भी सन्तालों के गोत्रों पर प्रकाश डाले हैं। श्री डाल्टन ने 'इन्थोलोजी औफ बंगाल' में सन्तालों का

गोत्रीय विभाजन इस प्रकार किया है:—

१. सारन	७. टुडू
२. मुर्मू	८. बसकी
३. मार्ली	९. हेम्वरो
४. किसकू	१०. करवार
५. वेसरा	११. चोड़ी
६ हासदाक्	

डाल्टन ने करवार को मूल गोत्र बताया है, पर करवार मूलगोत्र नही है। वह तो हासदाक् का उप-गोत्र है। सर हरबर्ट रेसली ने बारह गोत्रों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:—

१. हाँसदाक्	७. वासके
२ मुर्मू	८ वेसरा
३. किसकू	९. पुड़िया
४. हेम्बरम्	१०. चौंड
५. मरेन	११ मारन्डी
६. टूडू	१२. वेदी

साधारणतः सामाजिक तौर पर सभी एक समान हैं, गोत्रो के चलते कोई छोटा-बडा नहीं होता है। एक गाँव में एक ही गोत्र के लोग रहते हैं, ऐसी बात नही है। मुझे कुछ गाँव ऐसे मिले हैं, जहाँ एक-गाँव में चार-चार पाँच पाँच गोत्र के सन्ताल रहते हैं। पहले शायद ऐसा ही था कि एकगोत्र के लोग एक ही गाँव में रहें। पर ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं है। सन्तालो को १२ गोत्रों में भले ही विभाजित किया गया हो, पर सन्ताल परगना में बेसरा, मुर्मू, किस्कू, टुडू, हासदाक्, सोरेन,

मारन्डी , हेमरम्ब और बासकी ही प्रधान रूप से मिलते हैं। मेरे प्रादेशपाल धन्या मरन्डी ने मुझे बताया था कि चौंडा , वेसरा और वेदी को सन्ताल लोग हीन समझते हैं। जाँच करने पर यह बात कुछ सीमा तक सत्य मालूम पडी। श्री पी० सी० विश्वास ने भी 'सन्तालस् ग्रौफ दी सन्ताल परगना' में यह स्वीकार किया है। उन्होने लिखा है कि १२ गोत्रो में सन्ताल चौडे और वेसरा को हीन मानते थे। 'बिहार के प्रादिवासी' में मेरे मित्र समीर जी का लेख 'सन्ताल' शीर्षक से छपा है। उसमें उन्होने बताया है कि उनके गांव में एक समय बेदिया गोत्र के सन्ताल रहते थे, पर वे अब कहीं नही मिलते। सम्भवतः उनका लोप हो गया है। समीर जी को अपने गाँव वालो से पता चला है कि वे उस समय हीन समझे जाते थे। मुझे तो ऐसा लगता है कि इन तीनो गोत्र वालो ने अपने नाम बदल कर दूसरे गोत्र वालो के नाम को रख लिया है। अपने गोत्र का नाम बतलाने से उन्हें अपनी हीनता का अनुभव होता था, इसलिए वे दूसरे गोत्रो के नाम बतलाने लगे और इस प्रकार इन तीनो गोत्रो का लोप हो गया या लोप हो रहा है। आज अधिकाशत. सन्ताल अपने गोत्र के अर्थ नही जानते। वे उसे बताने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। बताया जाता है कि सन्ताल कुछ विशेष पक्षियो और पशुओ के मास नही खाते। कारण , उनके गोत्र का नाम उन पशु-पक्षियो के नाम पर आधारित हैं। कुछ गोत्रो का अर्थ इस प्रकार बताया जाता है:—

हासदाक्	—	जगली हंस
मुर्मू	—	नील गाय
हेम्बरम	—	सुपाड़ी का पेड
मारण्डी	—	साबी घास

सोरेन	—	सुरइया (पक्षी)
बेसरा	—	बाज
चौंड़े	—	गिरगिट
पौंड़िया	—	कबूतर

अन्य गोत्रो का भी अर्थ पशु-पक्षियों के नामो पर आधारित है—ऐसा बताया जाता है , पर इसकी पूरी जानकारी इच्छा रखते हुए मैं भी नही पा सका। पी० ओ० बोडिंग ने अपनी सन्ताली भाषा की पुस्तक 'होडको रेन मारे हापडामकोवाक् कथा' में कहा है कि संतालो की लोक कथाओं के अनुसार हांसदाक् , मुर्मू , किस्कू , हेम्बरम , मारण्डी, सोरन और टुडू—यही सात लडके पीलकू-हराम और पीलकू बुडी के हैं , बाद में और पाँच जोड़ दिये गये हैं। इन पाँचो को समाज में वह स्थान नही प्राप्त है , जो उन सात गोत्रो के लोगों को प्राप्त है। बासके पहले मूल गोत्र में ही आता था , पर सन्ताल जब चम्पागढ में रहते थे , तब कुछ आचरणहीनता के कारण वे अलग कर दिये गये। वे बासके कहलाने लगे। कुछ सन्ताल अपने दुश्च-रित्र आचरण के लिए समाज से निष्कासित किये गये थे। ऐसे समाज से निकाले गये सन्ताल बेसरा कहलाने लगे। बोडिंग के अनुसार सन्ताल एक बार शिकार खेलने गये थे। उनके साथ कई आदमी थे। उनमें दो आदमी ने कबूतर और गिरगिट के सिवाय कुछ नही मारा। जिस व्यक्ति ने कबूतर मारा , उसके वंशज पौडिया कहलाये और जिन्होने गिरगिट मारा उनके वंश चौंड़े कहलाये। बेदिया गोत्र के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस गोत्र की उत्पत्ति तब हुई जब चम्पा में माण्डो सिंह का राज्य था। उस समय सन्ताल हिन्दुओ के सम्पर्क मे आने लगे थे। यह भी कहा जाता है कि बेदिया गोत्र के आदि पुरूष वर्णसंकर थे। उनके पिता

राजपूत थे और उनकी माँ किस्कू जाति की थी। सन्तालो में दिकू से यौन-सम्बन्ध निषिद्ध है। ऐसे संसर्ग से जिस गोत्र की उत्पत्ति हुई वह सन्तालो की सामाजिक दृष्टि में हीन समझे गये।

गोत्रों के उपगोत्र अनेक हैं। सन्ताल गोत्र को पारिस कहते हैं और उपगोत्र को वे खूँट कहते हैं। सन्ताल उपगोत्र पिता से प्राप्त करते हैं। उपगोत्र का विभाजन इस प्रकार हुआ है:—

वासके—नीज, सदा, खील, सुरी, खेखार, लोट, मुरुडू।

बसेरा—बूद्रा, काहू, कारागुजा, नीज, सिवाना, सोना, सूंग, सादा, नीकी, खील, लोट, काहू।

हाँसदाक्—गुआ, डाहर, कुमार, लाहेर, दानहेल, नीज, रूह, लूटर, नीक, खील, सादा, माझी खील।

किसकू—अबर, ग्रह, कच्छुआ, लाट, नाग नीज, सादा, रोह-लूटर, सोमल, नकी, खील, मोना, बूरू बारेट।

मारण्डी—बुरूवेट, कोकार, माँझी, खोल, नेकी खील, नीज, रोथ, सदा, रोकलूटर, खेवार, सीदीप, खाण्डा, खाण्डा जोगीय, रूपा।

मुर्मू—वीटोल, कोरा, कोपीयर, हण्डी, नीज, सदा, सामाके, सारी, सिकीया, टिकीया, नीकी खील, माँझी खील, लेहर।

सोरन्—सदा नीज, जूगी, चारकीर, माँझी खील, नीक खोल, सीदूल साक, खण्डा, पोयटा, टीका, माल सोरन, रोक-लूटर।

टूडू—अगरिया, झीगो, दालटोला, लाट, माँझी खील, नीकखील,

नीज सदा, रूह लूटर, मूंग।

पौडिया—मूरडू, काहूँर, सीवूय, नीकी खील, नीज सदा, मांझी, खील।

चौड़े—नीकी खोल, काहू, नीज, लाट, मांझी खील, सादा, गुआ।

बेदिया—इस गोत्र के व्यक्ति नहीं मिलते, अतः उपगोत्र का प्रश्न ही नही उठता। पर यह बताया जाता है कि पहले इस गोत्र के भी अनेक उपगोत्र थे, पर सभी लुप्त हो गये हैं।

सन्तालो में स्वगोत्र में विवाह-सम्बन्ध वर्जित है। एक गोत्र के व्यक्ति दूसरे गोत्र में शादी नही कर सकते। पर मारराडी और किस्कू तथा टूडू और बेसरा में साधारणत. विवाह नही होता है। माररडी और किस्कू में एक बार संघर्ष हुआ था, उसके फलस्वरूप दोनों में यौन-सम्बन्ध निषिद्ध हो गया। टूडू और बेसरा के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसारित है। टूडू गोत्र वाले सन्ताल नाच और गाना में मग्न रहते थे। वे एक रात में बारह नृत्य करते थे। एक दिन उन्होने एक योजना बनायी। एक नदी के तट पर नाचने की व्यवस्था की गई। नदी के दूसरे छोर पर बैसरा की १२ लडकियाँ धान रोप रही थी। टूडू गोत्र के लडको ने निश्चय किया कि बेसरा की लडकियो को रात भर नचाया जाय। नदी के उस पार वे गये। रात भर वे उनके साथ नाचे भी। पर वापसी यात्रा में वे नदी में डूबने लगे। बेसरा की लडकियो ने मछली फँसाने वाली जाली फैलाकर दो टूडू युवको के प्राणो की रक्षा की। टूडू कुमार जिस लडकी की जाल फँसे थे, वह उम्र में सबसे छोटी लडकी थी। उसने टूडू कुमार से शादी करने का निश्चय किया। पर उस लड़की से अन्य बडी लडकियाँ थीं,

उन लोगों के रहते छोटी की शादी कैसे हो। इस प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद हुआ। उनके वाद-विवादों से टूडू कुमारों को बहुत दुःख हुआ। इस कारण उन लोगों ने निश्चय किया कि बेसरा की लडकियों से अब वे शादी नही करेंगे। तबसे बेसरा और टूडू में शादी निषिद्ध है।

सन्तालों के गोत्रीय विभाजन पर हिन्दुओ के संस्कार का भी प्रभाव पडा है। कुछ विद्वानों का कहना है कि हिन्दुओं के संस्कारों के अनुसार मुर्मू पुरोहित का काम करते हैं। अतः वे ब्राह्मण हैं ; सोरेन सैनिक है, अतः वे क्षत्रिय हैं ; मारण्डी व्यापारी हैं, किस्कू राजा हैं। हिन्दुओं के वर्णाश्रम के आधार पर सन्तालो का गोत्रीय विभाजन हुआ जान पडता है। पर यह धारणा और विश्वास नया जान पडता है। इस प्रकार की धारणा का कोई पुराना आधार नही है।



नातादारी की रूप-रेखा

सन्ताल परिवार का आधार एक सम्पूर्ण बन्धुत्व पर आधारित है। पर उसका विकास दो दिशाओ में उन्मुख रहता है। पिता का पक्ष और माता का पक्ष वे दो धारायें हैं, जिन पर सन्ताल परिवार आधारित है। माता के पक्ष की उपेक्षा होती है, फिर भी सन्ताल के परिवार को हम द्विपार्श्व सीमित श्रेणी में मानते हैं। वंश-परम्परा एक रक्त-सम्बन्ध से ज्ञात होता है। सन्तालो का वाह्य जात उद्भव है। वे केवल वाह्य जातीयता से सम्बन्धित नही है, उनका सम्बन्ध प्रकृतिवाद और प्रतीकवाद से भी है। सन्ताल गोत्र एवं उपगोत्र में विभाजित हैं। उनके गोत्रों एवं उपगोत्रों का

नामकरण पेड़-पौधे, जानवर आदि पर आधारित है। सन्ताल मुण्डा की भाँति वाह्य जात एवं प्रकृतिवाद और प्रतीकवादी हैं। श्री एम० राय ने प्रकृतिवादी श्रेणी के सम्बन्ध में विचार किया है। उनके अनुसार प्रकृतिवादी जाति के विकास की विशेषता होती है— मिश्रण, पृथक्करण एवं सामान्यकरण। कई परिवार जब एक सम्पर्क में आते हैं और एक नाम रखते हैं तब जाति का मिश्रण होता है और जब जाति बहुत बडी हो जाती है तब वह कई वर्गों में बँट जाती है। यह जाति का पृथक्करण कहलाता है। मूल जाति का नाम किसी जानवर के नाम पर पड़ता है, तब उस जानवर के अंगों के नाम पर पृथक्करण के बाद जाति बनती है, उसका नामकरण होता है। ऐसा भी होता है कि उस वृक्ष या उस जानवर से किसी आदमी की रक्षा होती है या उसे कष्ट पहुँचता है। इसके फलस्वरूप उस जानवर या वृक्ष के प्रति बन्धुत्व एवं श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है। यह भावना पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रहती है। इस प्रकार सामान्यकरण के द्वारा प्रतीकवादी का स्पष्टीकरण होता है।"[१] सन्ताल गाँवों में एक ही पारिस या खूँटी के लोग बसते हैं या एक या दो पारिस के लोग निवास करते हैं। सन्ताल समाज से १२ गोत्रों मे विभाजित हैं, उन्हें प्रकृतिवादी एवं प्रतीकवादी जाति कहा जाता है पर सन्तालों में कम ही आदमी ऐसे मिलते हैं जो प्रकृतिवाद एवं प्रतीकवाद के उद्भव पर प्रकाश डाल सकते हैं। इस प्रकार की जाति की विशेषता होती है—अपने गोत्र में वे शादी नहीं करते हैं। सन्ताल अपने गोत्र मे शादी नहीं करते हैं। अपने गोत्र मे यौन सम्बन्ध वर्जित है, वह दण्डनीय है। परिवार और जाति से ऐसा

---

१ Majumdar and Madan (1957)— An Introduction to Social Anthropology— Page— 125.

होने पर निकाल दिया जाता है। सन्ताल पैतृक जन होते हैं। कुमारी लड़कियों की शादी होते ही वह अपने पति के घर चली जाती है। सन्ताल नारियाँ जबतक कुमारी हैं, तबतक पिता की हैं, जब उनकी शादी हो जाती है, तब वह अपने पति की हो जाती हैं-उनके परिवार की हो जाती हैं। सन्तालों में नातादारी बहुत ही रोचक है। सन्ताल नातादारी के बन्धन में बँधकर रहते हैं। एक व्यक्ति का परिवार के साथ क्या सम्बन्ध है-- उसे वह व्यक्त करता है। सभ्यता एवं प्रगति के नाम पर नातेदारी की डोरी ढीली नहीं हुई है।

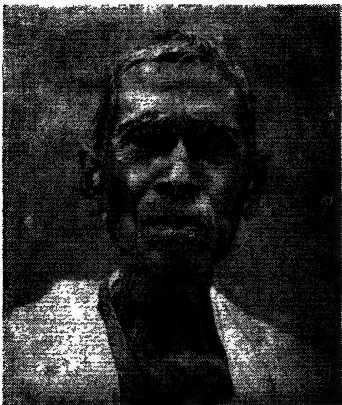
बाप और बेटा में साधारणतः स्थिति उच्चता और अधीनता की रहती है। परिवार के संचालन का भार पिता पर रहता है; पुत्र उसके संकेत पर समाज में रहता है। पिता पुत्र को सदैव निर्देश देता है और उसका अनुपालन करना पुत्र का धर्म होता है। पिता की आज्ञा उनके लिए ईश्वर का सन्देश मानी जाती है। पिता भी अपने उत्तरादायित्व को अपने पुत्रों को सौंप देता है। वे पिता के प्रतिनिधि के रूप में काम करते हैं। उनकी भूल चूक का उत्तरादायित्व पिता के माथे पर रहता है। पिता बड़े लड़के को बहुत मानता है। इसका कारण यह होता है कि वही उसका उत्तराधिकारी होता है। बड़ा लड़का भी पिता के कार्यों में हाथ बँटाकर उन्हें बुढ़ापे में राहत देता है। बाप कुछ करने लायक नहीं रहता है, तब लड़के ही सब काम करते हैं। साधारणतः सन्ताल ६० वर्ष की आयु तक अपने परिवार का नेतृत्व करता है। परिवार के सभी काम उसके ही संकेतों पर होता है। घर का वह मालिक होता है। माता के प्रति भी लड़का का वैसा ही ममत्व रहता है। माँ अपने लड़के को पिता से अधिक स्वतन्त्रता देती है। सास-पतोह के झगड़े में भी सन्ताल अपनी पत्नी का

पक्ष वैसा नही लेता है , जैसा वह माँ का लेता है। यह एक आदर्श है। इस आदर्श का उल्लघन भी होता है। बेटी के जीवन-निर्माण में माँ का बहुत हाथ रहता है। पिता की देखरेख मे लडके पलते हैं , माँ की देख-रेख में लडकिया पलती हैं। माँ अपनी बेटी को सन्ताली संस्कार मे डालती हैं और पिता का उत्तरदायित्व रहता है—बेटी के लिए वर खोजना।

दादा और दादी से पोता और पोतियो का सम्बन्ध रहता है। नाना नानी से भी नाती नतिनियो का अभिन्न सम्बन्ध रहता है। दादा अपनी पोती से हास-परिहास करता है ; वह अपने को ऐसा प्रदर्शित करता है , जैसे वह जवान हो। वह अपनी पोती से शादी तक करने की बात करता है। पोता अपने दादा के कपडों को गन्दा करके हँसता है। दादा-पोता दोनो को एक दूसरे को चिढाने मे आनन्द मिलता है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि दादा के पोचाई मे पोता या पोती पानी मिला देते हैं , दादा को पीने के समय जब इसका आभास मिलता है , तब वे दादी को ताना देते हैं। दोनो मे जब बहस होने लगती है तब बच्चे हँसते हैं। श्री बोडिंग ने पोता-पोती एवं दादा-दादी के हास-विलास पर विस्तृत रूप से विचार किया है। दादा और पोती का सम्बन्ध सम्मान एवं श्रद्धा का सम्बन्ध है। मुझे यह समझ में नही आता है कि यह हास-परिहास उनमें कैसे चला आता है। प्रा० रॉड क्लिफ ने दादा-पोती के हास-परिहास के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण दिया है। उनका कहना है—हास-परिहास सामाजिक सम्बन्ध को तोडने और जोडने की एक प्रक्रिया है। श्री एस० सी० राय ने ओरॉव मे प्रचलित दादा-पोती मे हास-परिहास का उल्लेख किया है।

पिता के समान ही सन्थाल अपने चाचा को सम्मानित करते हैं। उन्हे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। कभी कभी तो ऐसा देखा जाता है कि सन्ताल

अपने चाचा को अपने पिता से अधिक मान देते है। बडे चाचा के प्रति वे अपने पिता से अधिक श्रद्धा व्यक्त करते हैं। पिता से जो छोटे चाचा होते हैं, उन्हे भी वे सम्मान देते हैं। चाचा और भतीजे की उम्र मे जब कम अन्तर होता है तब सम्मान देने का प्रश्न नही उठता है; वे सहकर्मी की भाति परिवार के काम मे जुटे रहते हैं। घर में जब शादी होती है तब चाची की भी पूजा होती है, उनकी भी पूछ होती है। वह खाना बनाती है, दूल्हा के बदन पर तेल लगाती है। मामा और मामी से वैसा सम्बन्ध सन्तालो का नही रहता जैसा चाचा और चाची से होता है। एक कारण तो यह होता है कि मामा-मामी दूसरे गोत्र के होते हैं और वे दूसरे गाँव में रहते हैं। शादी के अवसर पर मामा भी आता है। वह भी भाग लेता है। पर उसे कोई विशेष काम नही करना पडता है। मौसी के प्रति संतालो का उतना ममत्व नही फूटता है, जितना बूआ के प्रति। भाई-भाई के बीच प्रगाढ स्नेह रहता है। खेल मे, कूद मे, खेत मे, खलिहान मे और गोचर भूमि मे—साथ-साथ वे रहते हैं। उनमे सम्पर्क इतना होता है कि उन्हे अलग नही किया जा सकता है। वे बढते हैं, उनकी शादी होती है, वे दूसरे घर मे रहने लगते हैं, फिर भी उनका अपनापन नही टूटता है। उसमे परिवर्तन नही आता है। पिता के देहात के बाद बड़ा भाई ही पिता का स्थान ले लेता है। बडी बहन को भी सन्ताल बडी श्रद्धा और स्नेह से देखते है। कारण यह है कि बडी बहन अपनी गोद में उन्हें बचपन मे खेलाती है, उनका पालन-पोषण करती है। भाई अपनी बड़ी बहन के चरणो को स्पर्श कर आशीष चाहता है। छोटी बहन को भी भाई बडे स्नेह और प्यार से देखते हैं। बहनो में भी बहुत मेल रहता है। बडी बहन छोटी बहन को बहुत प्यार करती हैं। वह उसे



सताल वृद्ध

सजाती है। विवाह और नृत्य के अवसर पर उसका वह रूप सँवारती है। छोटी बहन बडी बहन से बहुत-सी बातें जानती है उससे कोई बात छिपाती नही है। उसकी राय पर चलती है। छोटी बहन को बडी बहन आत्म-पालक मानती हैं। शादी के समय छोटी बहन घराटो जोगमाँझी के यहाँ वर-वधू के स्वागत के लिए खडी रहती है।

पति और पत्नी दोनो को बराबरी का स्थान समाज मे प्राप्त है। समाज दोनो को समानता की दृष्टि से देखता है। सन्ताल-सस्कार के अनुसार दोनो के कर्त्तव्य और धर्म अलग अलग निर्धारित रहते है, उन्हे सम्पन्न करने में दोनो को समानता प्राप्त है। अपने पति के समक्ष तीसरे व्यक्ति से बोलने को सन्ताल स्त्री को स्वतन्त्रता मिली हुई है। दामाद अपने ससुर को पिता के समान पूजता है। सास और दामाद का भी सम्बन्ध बेटा और माँ का रहता है। वे सभी एक साथ पोचाई पीते हैं। पतोहू भी अपने ससुर को अपने पिता के समान मानती है। वह उनमे बाते ऐसी करती है जैसे वह उनकी बेटी हो। अपने बच्चे को वह उनके सामने या उनसे बातें करती हुई दूध पिलाती है। ससुर भी अपनी अपनी पतोहू को अपनी बेटी के सदृश मानता है। छोटे साला के साथ वे हास-परिहास करते हैं, पर साले की वधू से वे हास-परिहास नही करते हैं। उसे वे अपनी छोटी बहन मानते हैं। बड़े साले की पत्नी से भी वे हास-परिहास नही करते है, उसे वे अपनी बड़ी बहन मानते है। पर साली से हास-परिहास चलता है। कभी-कभी हास-परिहास बढते-बढते यौन सम्बन्ध तक चला जाता है। बहुएँ अपने पति के बड़े भाई से बहुत दूर रहती हैं। उनका नाम लेना और उन्हे स्पर्श करना पाप समझा जाता है। शादी के अवसर पर ज्येष्ठ भाई वधू को स्पर्श करता है, बाद में वह उसके लिए अस्पर्श बन जाती है।

उसके बिछावन पर भी वह नही बैठना है। देवर से उसका भिन्न सम्बन्ध रहता है। देवर-भाभी में हास-परिहास खूब चलता है। सन्ताल पत्नियाँ अपने ज्येष्ठ को पूज्य और अपनी छोटी ननद को अपनी छोटी बहन मानती हैं। उसे वे अपना सहेली समझती हैं। उन्हे वह सुख-दु:ख मे अपना भागीदार मानती है।

सन्ताल समाज में नारियों का बहुत बडा स्थान है। उनका स्थान पुरुषो से नीचे अवश्य है, पर समाज में उनकी उपेक्षा नही हो सकती है। उनको समाज से अधिकार प्राप्त है और उन्हे समाज के प्रति उत्तरादायित्व भी ग्रहण करना पड़ता है। सन्ताल सस्कार एवं परम्पराये इस बात की साक्षी हैं। सन्तालो के सामाजिक जीवन मे इधर बहुत उलट फेर हुए हैं, सन्ताल नारियो की स्थिति मे भी परिवर्तन आये हैं। सन्ताल नारियो की स्थिति की जाँच काफी हुई है। श्री आर्चर ने भी इस सम्बन्ध मे जाँच की है। नारी पुरूष की सम्पत्ति मानी गई है। समाज मे नारी का यही स्थान निर्धारित है। सन्ताल कानून एवं परम्परा की दृष्टि में वह पुरुष से बँधी हुई है। जब वह बच्ची रहती है, तब पिता के सहारे जीवित रहती है, जब शादी होती है तब वह अपने पति के सहारे चलती है, जब वह विधवा हो जाती है तब उसकी देखरेख उसके लडके करते हैं। एक सन्ताल कहावत के अनुसार पत्नी अपने पति की सम्पत्ति है। साधारणत: जबतक वह कुमारी है, तबतक वह पिता के अधीन है। पिता उसके आच-रण के लिए उत्तरादायी होता है। लोकगीतो में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। एक कुमारी लडकी पिता के स्नेह में पल रही है। उसे एक नवयुवक से प्रेम हो जाता है। नवयुवक हर समय उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। कुमारी लडकी को पिता से भय है। वह डरती है, कही वह पकड़ा न

जाय। इसलिए पक्षी को प्रतीक बनाकर वह कहती है:—

"नाले धाहकोर हेसाक् दारे;
दोन आते चियो, नालोम रागा।
मिन मिनाञ भोर पियो नान्, पियोम पियोया,
कुँआरी मोम पियो ह्ाले — डाले।।

"हे पक्षी आगन में पीपल वृक्ष है, तुम उस पर फुदक-फुदक कर मत मत बोलो। जब तक मैं कुमारी हूँ, तब तक पी-पी मत बोलना, क्योंकि बोली सुनने से मेरा कुँवारा मन विह्वल होने लगता है।"

युवती कुमारी है। वह अपने पिता के स्नेह में—उनकी देखरेख में पल रही है। उसे भय है कि उसका प्रियतम अधिक आतुरता दिखलाकर उसके पिता की दृष्टि में अप्रिय न बन जाय और साथ ही साथ वह स्वयं भी विचलित होकर समाज का बन्धन न तोड़ दे—पिता की प्रतिष्ठा को धक्का न लगा दे। उसे इस बात का ज्ञान है कि वह कुमारी है। वह संयम के साथ रहना चाहती है। वह बाप की लम्बी नाक को कटवाना नहीं चाहती है। अगर उसके सतीत्व का बन्धन ढीला पड़ता है तब उसके पिता की प्रतिष्ठा मिटती है। मगर वह किसी प्रेमी के साथ पकड़ाती है तब उसकी शादी के मूल्य में कमी पड़ जाती है। जोगमाँझी लड़की के पिता से उसके आचरण के सम्बन्ध में शिकायत करता है। जोगमाँझी लड़कियों के आचरण का प्रहरी होता है। उसकी शिकायतों की उपेक्षा नहीं की जाती है। अगर दोनों में शादी सम्भव हो सकती है तब जोगमाँझी उन दोनों की शादी की व्यवस्था करता है। ऐसी अवस्था अगर संभव नहीं हो सकती है तब जोगमाँझी लड़की के पिता को आदेश देता है कि वह अपनी लड़की पर नियन्त्रण रखे तथा कथित प्रेमी से उसे मिलने न दे।

पिता ओगमांभो की बातो को मानकर अपनी लडकी पर नियन्त्रण रखता है तब तो ठीक है, अन्यथा वह पंचायत के सामने बातें रखता है और लडकी के बाप को समाज मे—जाति से निकाला जाता है। सिद्धान्त के रूप में सन्ताल मानते है कि बेटी लिए उसका पिता जिम्मेवार है।

सन्ताल लडकियो के सम्बन्ध मे लोगो की धारणा गलत है कि वे सस्ता प्रेम करती हैं। इनमे प्रेम कम वासना अधिक होती है। प्रणय एक कला है। सन्ताली संस्कार मे पली हुई प्रत्येक लडकी को शिक्षा मिली रहती है। वह सामाजिक परम्परा के विषयो को देखते हुए ऐसे लडके से प्रणय करती है, जिससे उसकी शादी सम्भव हो सकती है। प्रणय के पूर्व वह परिचय चाहती है। एक लोकगीत मे एक कुमारी लड़की कहती है—

"ओका बिखन चेंडे कानाय
माञ्‌ नोरजोम दारेय आञामकाना
ओकोय होपोन कानाय ओलोक कोंडा।
माञ्‌ बोयहा कुडीयन आञामकाना।"

भाव इस प्रकार है—"मित्र! यह किस जगल का पक्षी है, जो सघन पत्तोवाले मखुआ वृक्ष को खोजता है। यह कौन पढ़ा लडका है जो सम्पन्न-परिवार की लडकी खोज रहा है।"

लडकी लडके के खानदान को जानकर ही प्रेम करती है। छोटानागपुर में धामकुड़िया प्रणाली चलती है। वहाँ कुमारी लडकियो एव कुँवारे लडको को एक दूसरे के प्रति सम्पर्क स्थापित करने का अवसर दिया जाता है। सन्तालपरगना में वैसी प्रणाली चालू नही है। सन्ताल कुमारी लडकियो को लडको से मिलने का सुअवसर जानवर चराने, जंगल में



संताल वृद्धा

लकड़ी चुनने या हटिया से लौटते समय मिलता है। इसी मिलन-घड़ी में एक दूसरे पर वे आकर्षित होते हैं।

शादी के बाद वह पति के घर जाती है। वहाँ वह घर की रानी होती है, वह घर की कल्याणी बनकर रहती है। कुछ लेखकों ने माना है कि वह जब पति के घर में जाती है, तब बच्चे पैदा करने वाली मशीन बन जाती है। वह अपने पति के लिए लड़के पैदा करती है और जब पति खेतों में–जंगलों में काम करने जाता है तब वह बालकों को पालती है, पति के घर की रक्षा करती है। इतना होते हुए भी उसका अपना व्यक्तित्व है; वह खेतों में भी काम करती है; वह धान काटती है, बीज-रोपन करती है। महाजनों से लेन-देन साधारणतः वही करती है। बहुत से सन्ताल महाजनो को जानते भी नही हैं, पर उनकी पत्नियाँ महाजनो से लेन-देन कर खेती-व्यवसाय में काम करती हैं। सन्ताल पति अपनी पत्नी की चाल-चलन का उत्तरदायी होता। पत्नी की आचरणहीनता का दण्ड उसे भोगना पड़ता है। विवाहित औरत कोई यौन-सम्बन्धी भूल करती है, तब उसके पति को पंचायत के सामने जाना पड़ता है और उसे दण्डित होना पड़ता है। पचायतें उस पर जो दण्ड लगाती हैं, उसे वह देता है।

सन्ताल समाज में श्रम–विभाजन पर जोर दिया गया है। नारी कोमल होती है, पुरुष शक्तिशाली होता है, वह मजबूत होता है। अपनी शक्ति एव क्षमता के अनुसार दोनो आपस में श्रम का विभाजन करते हैं। यह विभाजन सुविधा के आधार पर आधारित है। श्रम-विभाजन भी संस्कारों को दृष्टि में रखकर किया जाता है। खेत जोतना, घर बनाना, धनुष-तीर चलाना, कुदाल चलाना आदि काम महिलाओं को नही दिया जाता है। पुरुष स्वयं ऐसे कार्य करते हैं। नारियां इसके लिए क्षमता नहीं

रखती हैं। धान काटना, बीज-रोपन करना आदि काम सन्ताल औरतें करती हैं। समानता देते हुए भी सन्तालो ने अपनी औरतो को उत्सवो के अवसर पर जानवरों को बलि देने से वर्जित कर दिया है। बहुतेरे उत्सव में उन्हें भाग भी लेने नही दिया जाता है। कुछ औरतों को घर के अन्दर 'भीतार' में नही जाने दिया जाता है। 'भितार' में सन्तालों के कुलदेवता, जिसे वे बोंगा कहते हैं, स्थापित रहते हैं। यह इसलिए किया जाता है कि नारी की योन से बोंगा अपवित्र हो जायेंगे। पुरुषों ने इसे अपने लिए सुरक्षित रखा है। जलावन को जमा करना, पानी लाना, खाना बनाना आदि सभी काम नारियों को करना पड़ता है।

सन्तालों ने अपनी नारियो को स्वतंत्रता दी है। वे पुरुषो की भाँति ही कहीं भी आ-जा सकती हैं। वह अकेली भी चलती है। उसे भय नहीं रहता है। वह सार्वजनिक उत्सव में सभी के बीच नाच सकती है। वह बाजार जा सकती है। वह स्वय सौदा करती है। वह पोचाई अपने पति के सामने पीती है। घर के अन्दर उसकी बात रहती है। शादी ब्याह उसकी मर्जी के विरोध में नही हो सकता है। सन्ताली व्यवस्था में नारी ही डायन हो सकती है, पुरुष ओझा हो सकता है।

कुमारी सन्ताल लड़कियाँ माँ से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करती हैं। वे माँ से सीखती हैं कि घर कैसे चलाया जाता है, घर के प्रति या परिवार के प्रति वधू का क्या कर्त्तव्य होता है। वह चावल छाँटती है, घर बुहारती है, आँगन को गोबर से लीपती है। नदी, झरना या कुँआ से पानी लाती है, बर्तन साफ करती है, पत्ते का दोना बनाती है। खाना बनाना माँ से सीखती है, कपड़ा धोती है। खेती का भी काम करती हैं, धान रोपती है, बीज रोपने में भी हाथ बँटाती है; कटनी के समय माँ

कें साथ धनकट्टी भी करती है। वह जानवरो के खाने के लिए घास लाती है। संध्या समय वह सामूहिक नृत्य में भाग लेती है। वह अपनी माँ को उसके धार्मिक अनुष्ठानो में मदद करती है। जबतक वह कुमारी है तबतक उसके पिता के जो बोंगा हैं वही बोंगा उसके भी हैं। अविवाहित कुमारियाँ कुछ धन की अधिकारिणी भी होती हैं। कुमारी लड़कियो की सम्पत्ति परिवार की होती है। पर कुछ प्रकार की मजदूरी है, जिस पर उनका अधिकार है। खेत काटने के समय प्रत्येक मजदूर या मजदूरिन को धान का बोझा मिलता है। उस पर कुमारी लड़कियो का अधिकार होता है। इसे संताली में इराया कहा जाता हैं। प्रत्येक सम्पन्न संताल परिवार में इराया लड़कियों को दिया जाता हैं। मामा जो उसे उपहार देते हैं, वह लड़की का होता है, उसी प्रकार परम्पराओ के अनुसार सन्ताल कुमारियों को विभिन्न अवसरों पर उपहार मिलता है, वह कुमारी लड़कियों का होता है। अपनी बडी बहन की शादी पर वह उपहार पाती है। दूल्हा जब घर में प्रवेश करता है, तब उसे एक आना पैसा मिलता है। दूल्हा जहाँ बैठता है उस स्थान को वह गोबर पानी से लीपती है। इस काम के लिए दूल्हा के पिता से चार आना और अपनी माँ से वह एक आना पाती है। वह दूल्हा के पिता से गाय या कोई जानवर माँगती है। अगर वह बडी बहन है, तो छोटी बहन की शादी पर दूल्हा के पिता से दो रुपया पाती है। अपनी मां या बाप के मरने पर उसे जो धन प्राप्त होता है वह उसका अपना होता है। अगर उसकी माँ मर गई है और उसको कोई भाई नहीं है, तब अपने पिता की चल सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती है और शादी होने तक उसे अपने अधिकार में रखती है। अगर वह बालिग रहती है, तब उसे वह बेच देती है और नाबालिग रहने पर उसे

अभिभावक लोग अपने अधिकार मे रखते हैं और शादी के समय उसे दे देते हैं। उसकी शादी के पूर्व घर में विभाजन हो जाता है, तब उसे जानवर आदि दिया जाता है। उसे सन्ताल 'दानगूयाहिसा' कहते हैं। कुमारी लडकियो को अपने शरीर पर भी अधिकार होता है। अगर कोई उसका शील-अपहरण करने की चेष्टा करता है तब अपराधी पाँच रूपया—या अधिक जो सन्ताल कानून के अनुसार दण्ड लगता है उसे देता है। यह धनराशि भी कुमारी लडकियो की होती है।

विवाह होने के बाद उसकी स्थिति में परिवर्त्तन हो जाता है। उसे पत्नी का अधिकार प्राप्त होता है। अगर घर जँवाई की पद्धति से उसकी शादी होती है, तब वह एक तरफ पत्नी का अधिकार पाती है और दूसरी ओर वह बेटी के अधिकार से भी वंचित नही होती है। बर्तन, गहना, मुद्रा और जानवर आदि जो वह कुमारी लडकी के रूप में अर्जित करती है, उसे वह पति के घर ले जाती है। शादी के बाद वह अपने पिता के घर आती है और पिता को खेती मे सहायता देती है, तब उसे मजदूरी प्राप्त होती है। 'इराया' के रूप मे उसे जो मुर्गी, सूअर, बकरी, जानवर या मुद्रायें मिलती हैं, उसे वे पिता के पास रख छोडती हैं। वह अपने पति के घर तब उसे ले जाती है, जब वह पूर्णतः वहाँ बस जाती है। महिला का सन्ताल पूर्ण रूप से बसना तब समझते हैं जब उसे पहली सन्तान होती है। प्रत्येक सन्ताल लडकी पत्नी बनना चाहती है। पत्नी बन जाने के बाद वह पति की हो जाती है। कोई उसके शील का अपहरण करता है, तब उसके पति की मानहानि करता है। अपराधी अपने कुकर्मों के लिए दण्डित होता है, और उसके पति को वह अर्थदण्ड देता है। एक सन्ताल कथा से ज्ञात होता है कि पहले

पति को अपराधी के प्राण लेने का भी अधिकार प्राप्त था। पर ऐसी बात अच्छी नही है। जहाँ पति को उसकी पत्नी के सतीत्व अपहरण पर अपहरण कर्त्ता से अर्थ-दराड पाने अधिकार है, पत्नी को भी शील-अपहरण कर्त्ता से जो जबर्दस्ती उसका शील अपहरण करता है, अर्थदराड पाने का हक है। शादी के उपरान्त महिला को नए देवता मिलते है। कु'वारेपन में वह पिता की सेवा करती है, विवाहित होने पर वह पति की सेवा करती है। सास के अधीन उसे रहना पड़ता है। सास के सकेतो पर उसे काम करना पड़ता है। बाप के मर जाने पर या उनसे अगल हो जाने के बाद पति ही घर का मालिक हो जाता है, वह घर का मालकिन हो जाती है। पति और पत्नी का अधिकार और कर्त्तव्य–एक दूसरे पर आश्रित है। पति पत्नी के भार को हल्का करता है, पत्नी पति के भार को हल्का करती है। सन्ताल जब दूसरी पत्नी लाना चाहता है, तब पहली पत्नी से वह अनुमति लेता है। यह सत्य है, पहली पत्नी घर में दूसरी पत्नी लाने में अपने पति को रोक नही सकती, पर उसका इस सम्बन्ध में निर्णय बहुत महत्व का होता है। पहली पत्नी की स्वीकृति रहती है और अगर लड़की कुमारी है, तब विवाह पूर्व के समान ही होता है। पहली पत्नी की मर्जी के खिलाफ अगर दूसरी पत्नी घर में लायी जाती है, तब उसे थोड़ी सहायता मिलती है, थोडी उसकी क्षतिपूर्ति होती है। बताया जाता है कि पहले यह परम्परा थी कि पहली पत्नी हाथ में झाड़ू और आग लिये अपनी सौत की प्रतीक्षा करती थी। उसकी सौत घर में प्रवेश पाने के लिए 'हिराम वाइहा' देती थी। 'हिराम वाइहा' के रूप में आनेवाली दूसरी पत्नी पहली पत्नी को एक गाय या पाँच रूपया देती है। 'हिराम वाइहा' के अलावे भी वह तलाक के लिए धनराशि चाहती है। पर पहली पत्नी

दूसरी पत्नी के लिए अपनी स्वीकृति दे देती है, तब उसको न तो 'हिराम वाइहा' मिलता है और न तो तलाक का मूल्य ही उसे प्राप्त होता है। पर जब उसकी पहली पत्नी किसी को प्यार करने लगती है, तब पति को उसके प्रेमी से अर्थदण्ड पाने का अधिकार है। वह अपनी पत्नी से भी वधू मूल्य वापस माँग सकता है। पहली पत्नी अपने पति को, दूसरी पत्नी के जाने के बाद छोडकर कही चली जाती है, तब भी वधू-मूल्य वापस पाने का उसे अधिकार प्राप्त है।

जब छोटकी पत्नी बडकी पत्नी की सहमति से घर में प्रवेश पाती है, तब उसे एक गाय, कुछ गहना और कुछ जमीन उपहार के रूप में मिलते हैं। यह उपहार छोटकी को सम्बन्ध बनाये रखने में बहुत बडा सहायक होता है। घर में छोटकी आती है, पत्नी के सभी अधिकार उसे प्राप्त हो जाते हैं। सन्ताल परिवार में विधवाओं की स्थिति बहुत अच्छी नही कही जाती है। बोडिंग ने विधवाओं की बडी हीन स्थिति का उल्लेख किया है। पहले जो भी रहा हो, बोडिंग द्वारा उल्लिखित हीन स्थिति आज विधवाओं की नही है। उनकी स्थिति में आज बहुत परिवर्त्तन आया है। बगैर सन्तान वाली विधवा जब शादी कर लेती है तब उसका उसके मृत पति के घर से सम्बन्ध टूट जाता है। पर उसने अपने साथ कुमारी अवस्था में जो धन अर्जित किया था या अपने श्रम से कोई धन उसने अर्जित किया था, उसे वह ले जा सकती है। पुनर्विवाह होने से उसका गोत्र बदल जाता है। विधवा को अगर लडके हैं और उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है, तब वह अपने मृत पति की जमीन की तब तक देखभाल करती है जब उसके अबोध लड़के वयस्क नही हो जाते हैं। विधवा अवस्था में, जो पुनर्विवाह नही करती हैं, मृत पति का प्रतिनिधित्व

करती है। जब तक उसके लडके नाबालिग रहते हैं, तब तक वह बाप के समान उनकी देखभाल करती है। विधवा कई धार्मिक अनुष्ठानो से वर्जित है। पति के बोंगा की पूजा वह नही कर सकती। घर के 'भीतार' में वह नही जा सकती है।

सन्ताल-परिवार का आधार एक पत्नीक है। फिर भी बहुपत्नीक का उदाहरण कम नही मिलता है। बच्चो के लिए वे एक से अधिक शादी करने लगे हैं। बच्चे के लिए पहली पत्नी ही पति पर जोर देकर दूसरी शादी कराती है। बुढापे का सहारा सन्ताल सन्तान को मानते हैं। वंश-परम्परा के लिए सन्तालो मे बहुपत्नीक की प्रथा चालू हुई है। पहली पत्नी में कोई खराब बीमारी हो जाने के बाद भी पति दूसरी शादी कर लेता है। एक विशेष परिस्थिति में भी दूसरी पत्नी आती है। कोई लडकी, किसी विवाहित पुरुष से अनायास ही प्यार करने लगती है' पर घर में पत्नी के रहते हुए सन्ताली परम्परा के अनुसार वह उसे घर में ला नही सकता है। फल यह होता है कि लडकी स्वयं उसके घर में जबर्दस्ती प्रवेश करती है। उसे भगाने की चेष्टा की जाती है, मिरचा की गर्मी देकर भगाया जाता है, पर वह भागती नही है। वह घर में रह जाती है। पत्नी रहते हुए भी दूसरी पत्नी के रूप में उसे रखना पडता है। सन्ताल में नीर बोलक शादी की प्रथा चालू है। इसी प्रकार की शादी को नीर-बोलक शादी कहते है। सन्तालो मे देखा जाता है कि वे पत्नी रहते हुए भी बडे भाई की विधवा से शादी कर लेते हैं। भाई की जिन्दगी में भी बडी भाभी से उनका हास-परिहास चलता है। कभी-कभी हास-परिहास की सीमा यौन-सम्बन्ध तक बढ जाती है। विधवा भाभी से जब सन्ताल शादी करता है, तब उसे वधू मूल्य नहीं देना पडता है। बड़े भाई से जो बच्चे रहते हैं, वे सब उसे

वें ग्राथा के साथ रहने लगते हैं। सन्ताल दूसरी पत्नी तब रखता है, जब उसकी पहली पत्नी उसको छोडकर सदैव के लिए अपने घर भाग जाती है या आचरण-हीनता का परिचय देती। सन्तालो की यह परम्परा में धारणा है कि कुंआरी लडकी से शादी करने पर उसे स्वर्ग मिलेगा। इसी धारणा से जब उसकी शादी किसी विधवा या तलाक दी हुई महिला से होती है, तब वह पत्नी के रहते हुए भी कुंआरी लडकी से दूसरी शादी करता है।

सन्ताल परगना जिला गजेटियर (१९३८) में बहुपत्नीत्व पर विस्तृत रूप में उल्लेख किया गया है। भ्रातीय बहुपत्नीक सन्तालो की एक स्वीकृत परम्परा है। पर सन्ताल इसे नही मानते। इसका वे विरोध करते हैं। उनका कहना है कि सन्तालो में ऐसी प्रथा पहले नही थी। पर हम लोगो ने देखा है कि भाभी और देवर का यौन-सम्बन्ध सन्ताल समाज में प्रचलित है। उसी प्रकार सन्ताल समाज में छोटी साली और बहनोई में हास-परिहास की अधिक स्वतंत्रता होने के कारण उनमें यौन-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। पत्नी द्वारा इस प्रकार के सम्बन्ध का विरोध नहीं होता है। साधारणतः सन्ताल पत्नी नही चाहती है कि उसके पति से किसी अन्य स्त्री का यौन-सम्बन्ध हो। पर अपनी छोटी बहन के प्रति वह थोडी उदार होती है। वह इसलिए उदार होती है कि उसकी बहन किसी अन्य पुरुष से यौन-सम्बन्ध न करा ले। पर इस प्रकार का यौन-सम्बन्ध सामान्य रूप से प्रचलित है, ऐसी बात नही है। सभी बडे भाई नहीं चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ उनके छोटे भाइयो से यौन-सम्बन्ध स्थापित करें। छोटे भाई भी अपनी बडी भाभी को श्रद्धा से देखते हैं, बहुत तो ऐसे हैं जो माता के सदृश उसे पूजते हैं। साली भी अपने बहनोई को बड़े

भाई के रूप में देखती है। भ्रात्रीय यौन-सम्बन्ध की स्थापना से परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। फिर भी वह इनकार नहीं किया जा सकता है कि सन्तालों के सामाजिक जीवन में भ्रात्रीय बहुपत्नीक प्रथा चालू है। पर सन्तालों के संस्कार में यह स्वीकृत प्रथा नहीं है, सन्ताल समाज में अनियमित यौन-सम्बन्ध भी हेय दृष्टि से देखा जाता है। लक्ष्मण-रेखा के अन्तर्गत यौन-सम्बन्ध की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। भाभी-देवर या साली-बहनोई के गुप्त आचार को देखकर भी अनदेखा कर दिया जाता है। उस पर तूल नहीं दिया जाता है।

बड़े भाई को अपने छोटे भाई की पत्नी से वह सम्बन्ध नहीं होता। उसे वह ईश्वरीय वस्तु मानते हैं। बोंगा के समान उसे वे पूजते हैं। विवाह के बाद एक दूसरे को वह स्पर्श नहीं करते। एक घर में या एक प्रांगण में वे एक साथ तक नहीं रहते, जब तक उनके साथ कोई दूसरा नहीं हो। वह खेत से काम कर आती है, और घर में केवल ज्येष्ठ को पाती है, तब वह घर में प्रवेश नहीं करती है। वह तब तक घर के बाहर रहती है जब तक कोई आदमी घर में नहीं आता है। वह अपने ज्येष्ठ के सामने न कपड़ा बदलती है और न बालों को साफ करती है। वह उसकी बराबरी में नहीं बैठती है।"[१] इसी प्रकार बड़ा भाई, पिता का प्रति-

१. Notes on fraternal Polyandary among the Santhals by Mr. C. H. Craven and Revd. L. O. Skrefsred, J. A. S. B.– Part III, 1903 Page 8890 and mentioned in the old District Gazetteer of Santhal Pargana, 1938, Page 166.

निधित्व करता है, पिता के मरने के बाद वह परिवार का कर्त्ता होता है। वह घर का मालिक होता है। इस कारण उसको पत्नी को छोटे भाई श्रद्धा से देखते हैं। कुछ सन्ताल तो ऐसे हैं कि अपनी बड़ी भाभी को माँ से भी अधिक मानते हैं। यह उनकी सन्ताल परम्परा नहीं है, यह उनका अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। ऐसी धारणा अपने बड़े भाई के प्रति अच्छे शीलवान सन्तालो की होती है। विशेषकर ऐसी धारणा तब होती है, जब दोनों भाइयो की उम्र में काफी अन्तर होता है। पिता के देहान्त होने के बाद छोटे भाई के लिए वधू खोजना तथा वधू मूल्य चुकाना बड़े भाई का ही काम है। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे भाई की पत्नी के लिए बड़ा भाई ससुर का स्थान पा जाता है।"[१]

सन्ताल परिवार में परिवार के सदस्यो के लिए कुछ अपने शब्द व्यवहार में लाये जाते है। इन शब्दो को हम इन वर्गों में इस प्रकार रखते हैं:—

(क) पैतृक और मातृक सम्बन्धी—

पिता—बाबा, आपान	बड़ी चाची—माराङ गोगो
माता—गोगो, आयो	दादी—गोड़ोम आयो
भाई—बोयहा	नाना—गोड़ोम बाबा
भाभी—हिलीं	मौसी—काकीं
बहनोई—तेआङ	चाची—माराङ गो
बड़ा चाचा—माराङ बाबा, गोगोत।	छोटी मौसी—होपन नाना
छोटा चाचा—काका	फूफा—कुमाङ

१. District Gazetteer of Santhal Parganas. (198)-Page-167-68

दादा—गोड़ोम बाबा | मामा—मामा
नाना—गोड़ोम मम्मे | फुआ—नाना
मौसा—काका | मामी—मामी

(२) अपने से छोटे सदस्यों के लिए शब्द:—

भाई—बोयहा | भतीजा—भाचाद कोड़ा
छोटे भाई की पत्नी—बोकोत कहूँ | भंजा—भागना
छोटी बहन—मिसेरा | भंजी—भागना कुड़ी
छोटा बहनोई—होपोन तेवाङ | पोता—गोडोम कोड़ा
बेटा—होपोन, बाबू | नाती—गोडोम कुडी
पतोहू—किमिन | भतीजी—भाचाद कुड़ी
बेटी—बिटि, होपोनएरा | बतनी—गोड़ोम कुड़ी (मामा)
दादाम—जावाँय | पोती—गोडोम कुड़ी

(३) पति के घर के सदस्यों के लिए शब्द:—

पति—जावाँय | फूफा ससुर—हातोम होनहार
ससुर—होनहार बाबा | ज्येष्ठ भाई—माराङ दादा
सास—हानहान गोगो | बड़ी ननद—भामनार
बड़ा ससुर—माराङ होनहार बाबा। गोतनी—आतया
बड़ी सास—माराङ हानहार गोगो। देवर—एखेल
छोटा ससुर—हुडिन होनहार बाबा। ननद के पति—एखेल कुड़ी जवाय
छोटी सास—हुडिन हानहार गोगो। दामाद—जावाँय
बुआ सास—हातोम हानहार

(४) पत्नी के घर के सम्बन्धी शब्द:—

पत्नी—एरा | पत्नी की ज्येष्ठ बहन के पति—झाडबे

ससुर—होनहार बाबा। पत्नी के भाई की पत्नी-एखेल कोड़ा बहू
सास—हानहान गोगो। पत्नी की छोटी बहन—एखेल कुडी
पत्नी का ज्येष्ठ भाई—बाहोनहार। छोटे साले की पत्नी—एखेल कोड़ा बहू
पत्नी की ज्येष्ठ बहन-आमनेर। साली के पति—साडगे
पत्नी के ज्येष्ठ भाई की पत्नी—दाय।



सन्तालों का जन्म-संस्कार

मानव की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि उसका घर बसे, उसका वंश चले और उसके परिवार का विस्तार हो। यही कारण है कि जब सन्तालो के परिवार में बच्चे का जन्म होता है तब आनन्द से उसका घर भर जाता है। चारो ओर खुशहालियाँ नजर आती हैं। वे मानते हैं कि बच्चा ईश्वर का सबसे बड़ा उपहार है। उसे परिवार की वृद्धि का सूचक माना जाता है। हिन्दू परिवारो की भाँति सन्ताल भी बेटी से बेटा का जन्म अधिक आनन्ददायक मानते हैं। वे चाहते हैं, ईश्वर से मनाते हैं कि उनकी पहली सन्तान लड़का हो। लड़का को वे वंश का दीपक मानते हैं। उनके यहाँ बाप की भूमि के उत्तराधिकारी लड़के ही होते हैं। उन्हें ही बाप का मृत्यु-संस्कार सम्पन्न करना पड़ता है। उन्हें ही पुरखों का श्राद्ध करने का अधिकार है। बेटियों के जन्म पर भी

सन्ताल खुशियाँ मनाते हैं। उन्हें उससे वधू-मूल्य मिलने की आशा रहती है। यह सत्य है—उसके लालन-पालन पर जो खर्च होता है, वह वधू-मूल्य के रूप में मिलने वाली राशि से बहुत अधिक होता है। फिर भी 'वधू-मूल्य' का महत्व उनके आर्थिक जीवन मे बहुत कम है। संतान पाने की इच्छा सन्ताल औरतों को अन्य औरतो की भाँति ही रहती है। समाज में बाँझ औरतो को सम्मान प्राप्त नही होता है। वे सन्तान प्राप्ति के लिए देवी-देवताओं की मनौती करती हैं। वे हिन्दू मन्दिरों में जाती हैं। पति भी बाँझ औरतो को त्याग देता है। वह दूसरी औरत से शादी करता है। जब सन्ताल नारी गर्भवती होती है तब उसे और उसके पति को कुछ नियम का पालन करना पडता है। पति अपनी पत्नी की गर्भावस्था में कभी जानवर को नही मारता, वह किसी शव के साथ मंजिल तक नही जाता है। गर्भवती सन्ताल-नारी संध्या के बाद घर से बाहर नही निकलती, वह नदी-नाला को पार नही करती, अपने सम्बन्धी के मरने पर रोती भी नही है। वह ग्रहण के दिन घर से बाहर नही आती—चाँद और सूर्य्य को वह नही देखती। सन्तालों को भूत-प्रेत और डायन में बहुत अधिक विश्वास रहता है। उन्हे इतना विश्वास रहता है कि इनका प्रभाव गर्भवती नारियो पर बहुत अधिक रहता है।

सन्तालो की धारणा है कि दस मास के बाद ही गर्भवती को बच्चा होता है। अतः दस मास तक गर्भवती नारी को सुरक्षित स्थिति में रखा जाता है। अगर आसमान में गर्जन होता है, बिजली चमकती है, तब गर्भवती अपनी बच्चा-दानी को दबाकर बैठ जाती है। अगर वह हाथी देखती है तो उसे आशंका रहती है कि उसके बच्चे का कान हाथी के समान होगा। अगर वह बन्दर को देखती है, तब उसे भय रहता है

कि उसका मुख बन्दर के मुख के समान होगा। अगर वह सांप देखती है तब बच्चे में कटकटाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अतः हाथी, बन्दर, सांप आदि जानवर को गर्भवती नही देखती है। उसके खानपान पर नियन्त्रण रहता है। गर्भवती महिला को ऐसा खाना नही दिया जाता, जिसका प्रभाव भावी शिशु पर पड़े। वह अपने पति से अलग नही रहती, पर गर्भाधान के पाँच माह के बाद से यौन-सम्बन्ध वर्जित है। सन्तालो में यह विश्वास फैला हुआ है कि गर्भावस्था में जब उसकी पत्नी रहती है, तब उस अवधि में वह किसी अन्य महिला से यौन सम्बन्ध स्थापित नही कर सकता। गर्भवती जब पीतवर्ण की हो जाती है और उसके गर्दन के चारों ओर दुबलापन दिखायी पड़ता है, तब यह समझा जाता है कि उसे पुत्र पैदा होगा।

प्रसव कराने के लिए सन्ताल दाइयो का उपयोग करते हैं। जब प्रसव-वेदना प्रारम्भ होती है, तब गर्भवती को एक कोठरी में वे रखते हैं। दाई की बुलाहट होती है। साधारणतः प्रत्येक सन्ताल गाँव में कुछ वृद्ध नारियाँ इस काम को करती हैं। उन्हें कोई विशेष शिक्षा प्राप्त नही होती, पर उन्हे अनुभव रहता है। दादी की अवस्था की वे होती हैं। कम उम्र की दाई होने पर नारियाँ लज्जा का अनुभव करती हैं। यही कारण है, वे अपने से बहुत अधिक उम्र वाली औरतो से प्रसव कराना उचित समझती हैं। प्रसूति गृह में दाई और गर्भवती तथा एक-दो सम्बन्धी के अतिरिक्त अन्य को नही रहने दिया जाता है। गर्भवती स्त्री दाई को बहुत ही सम्मान से देखती है। उसका वह आदर करती है। प्रसव के बाद बच्चे का नार काटा जाता है। जब तक नार नहीं काटा जाता है, तब तक बच्चे को माँ की गोद में नहीं दिया जाता है। काटे

हुए नारं को आंगन के एक कोने में गाड़ दिया जाता है।

प्रसव कराने में कभी-कभी कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। वे दैवी प्रकोप मानते हैं। वे ओझा को बुलाते हैं। अनुष्ठान कराते हैं। पत्ता और तेल के सहारे अदृष्ट से वे इस सम्बन्ध में बातें करते हैं। ग्रहों को शान्त किया जाता है। प्रसव वेदना के समय आग की आवश्यकता नही होती, पर आग उत्पन्न करने के लिए सभी साधन जमा कर वे रखते हैं। कारण प्रसव होते ही आग की आवश्यकता होती है। बच्चे के होते ही पति को तुरन्त खबर दी जाती है। वह एक बाँस की लाठी लेकर घर के छप्पर को पीटने लगता है। यह काम इसलिए किया जाता है कि घर में कहीं भूत या प्रेत हो तो घर से वह बाहर चला जाय, अन्यथा बच्चे पर उसकी दृष्टि पड़ने की सम्भावना बनी रहेगी। पति को उस प्रसव गृह में जाना पड़ता है। उस समय तक प्रसव गृह को साफ एवं स्वच्छ कर दिया जाता है। बच्चा और जच्चा दोनों को वह स्वच्छ देखता है। वह घर में जाकर एक गढा खोदता है और उसमें प्रसव के बाद जो रक्त पानी गिरता रहता है, उसे गाड़ देता है।

प्रसव के बाद घर एवं पूरा गांव अछूत हो जाता है। घर में तब तक कोई उत्सव नही होता जब तक बच्चे का 'जन्म छठियार' नही होता है। शिकार खेलना एवं धार्मिक कार्यक्रम सभी स्थगित रहता है। जबतक 'जन्म छठियार' उत्सव उस घर में सम्पन्न नही होता, जिस घर में बच्चा पैदा हुआ है, तब तक उसके घर का खाना कोई नही खाता, वह अछूत समझा जाता है, वह अपवित्र माना जाता है। सन्तालों को विश्वास है कि 'जन्मछठियार' करने से उनके

छूत का निराकरण हो जाता है। वे अपने बेटा के जन्म के पांचवें दिन और बेटी के जन्म के तीसरे दिन 'जन्म छठियार' करते हैं। जिस घर में बच्चा पैदा होता है, उस घर में गाँव के सभी पुरुष आते हैं। जब सभी लोग जमा हो जाते हैं, तब गाँव का नाई गाँवां के अधिकारियों का बाल बनाता है। वह पहले नायक का, इसके बाद कुदम नायक का फिर मांझी का, परमाणिक का, जोगमाझी का और अन्य ग्रामीण अधिकारियों का क्रमशः बाल बनाता है। इसके बाद गाव के उपस्थित सभी पुरुषो का वह बाल बनाता है। सब के अन्त में बच्चे के पिता का बाल बनाता है। इस क्रिया के उपरान्त दाई बच्चे को बाल मुण्डन के लिए नाई के सामने लाती है। नाई बच्चे के माथे से पाँच बाल काटता है। यह क्रिया बच्चे का मुण्डन कहलाता है। दाई जब बच्चे को बाहर लाती है, तब उसके हाथो मे दो ढक्कन होते है। एक में जल रहता है और दूसरा खाली रहता है। बच्चे के बाल को वह खाली ढक्कन में रख देती है और जिस अस्त्र से उसने नार काटा था, उसे वह धागा से बाँध देती है। बाल मुण्डन क्रिया के बाद सभी पुरुष स्नान करने जाते है, उनका नेतृत्व बच्चे का पिता करता है। जब पुरुष स्नान कर आते हैं, तब दाई गाँव की औरतों को स्नान कराने के लिए ले जाती है। वह अपने साथ तेल, अस्त्र, जिसमे उसने नार काटा है तथा बाल जो उस अवसर पर काटे गये थे, उसे लेकर जाती है। दाई बालों को पानी में प्रवाहित करती है। स्नान करने के बाद दाई के माथे पर बच्चे की माँ तेल मलती है। दाई भी सभी महिलाओ पर चावल के चूर्ण को पानी में घोलकर बारी-बारी से छिड़कती है। यह क्रम उसका पुरुषो पर भी चलता है। नायक माँझी तथा अन्य ग्रामीण अधिकारियो पर भी उसका यह क्रम चलता है।

साधारणतः वह चावल के चूर्ण के पानी को ग्रामीण अधिकारियों पर ही पहले छिड़कती है, बाद में महिलाओं पर। पर इसमें व्यतिक्रम भी देखा जाता है। इस प्रकार छूत का निराकरण होता है। खान-पान चलता है।

जन्म छठियार का महत्वपूर्ण अंग—बच्चे का नामकरण है। नामकरण के बाद ही बच्चे को अपने समाज में स्थान मिलता है। गाँव में वह पुकारा जाता है, गाँव में उसे जाना जाता है। बच्चे को दो नाम दिया जाता है। पहला नामकरण बहला कहलाता है। यह गाँव का नाम होता है, वह पुकार का नाम होता है। साधारणतः लड़के या लड़कियाँ उसी नाम से जानी जाती हैं। उसका दूसरा नाम जो पड़ता है, वह मूल नाम कहलाता है। 'जन्म छठियार' के समय उस नाम की घोषणा होती है। पहला नाम माता-पिता की मर्जी पर आश्रित रहता है, पर मूल नाम की घोषणा निर्धारित नियमों के आधार पर होता है। बच्चों के नामकरण में वे अपने पूर्वजों की स्मृति की सुरक्षा करते हैं। बच्चे के दादा नाती के रूप में जन्म नहीं लेते, पर दादा की स्मृति में बच्चे का नामकरण किया जाता है। इस प्रकार सन्ताल अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं, परिवार के प्रति अपनी निष्ठा एवं भक्ति दिखलाते हैं। नामकरण का उनका विधान सन्ताल संस्कार का प्रतीक है। इस विधान के द्वारा वे अपने पूर्वजों से उनके मरने के बाद भी सम्बन्ध बनाये रखते हैं। उक्त विधान के अनुसार बच्चे के दादा और दादा के भाई एवं नाना तथा नाना के भाई को महत्व दिया जाता है। साधारणतः सन्ताल दादा पक्ष पर अधिक जोर देते हैं। सन्ताल शादी को बापला कहते हैं। बापला से जनमे हुए बच्चे का मूल नाम दादा के नाम पर

पडता है। पहले बच्चे का नाम दादा के नाम पर, दूसरे बच्चे का नाम नाना के नाम पर, तीसरे बच्चे का नाम दादा के भाई के नाम पर और चौथे बच्चे का नाम नाना के भाई के नाम पर पडता है। बच्ची की स्थिति में, पहली बच्ची का नाम दादी के नाम पर, दूसरी बच्ची का नाम नानी के नाम पर, तीसरी बच्ची का नाम चचेरी दादी के नाम पर और चौथी बच्ची का नाम चचेरी नानी के नाम पर रखा जाता है। दादा के जब भाई नही रहते हैं, तब तीसरे लडके का नाम परिवार के किसी भी व्यक्ति के नाम पर रखा जा सकता है। बच्चे को जब मामा नही होते हैं, तब उसका नाम भी माँ के परिवार के किसी व्यक्ति के नाम पर रक्खा जा सकता है। नामकरण के द्वारा वे माँ-बाप के परिवार में एक सन्तुलन स्थापित करते हैं। साधारणतः पिता का पक्ष सबल होता है, पर मातृ-पक्ष का कम महत्त्व नही है। चार से अधिक सन्तान पैदा होने पर उसका नामकरण पितृ पक्ष या मातृ-पक्ष के किसी भी व्यक्ति के नाम पर हो सकता है। सात पुत्रो के परिवार में श्री आर्चर को इस क्रम में नाम मिला था—(१) दादा (२) नाना (३) दादा का चचेरा छोटा भाई (४) नाना का छोटा भाई (५) पाँचवें, छठे और सातवे पुत्रो का नाम दादा के अन्य छोटे भाइयो के नाम पर मिले थे। फतेहपुर के चुनाक मारराडी नामक एक व्यक्ति से आर्चर साहब की भेंट हुई थी:, उसे छः लडकियाँ थी और उसका नाम उसने इस क्रम में रखा था—(१) दादी का नाम, (२) नानी का नाम (३) चचेरी दादी का नाम (४) मौसी (५) फूआ (६) छोटी मौसी का नाम।

नामकरण का जो विधान सन्तालो ने परम्परा से बनाया है, उसे वे नही तोड़ते, पर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं, तब उन्हें

अपनी परम्परा में व्यतिक्रम करना पडता है। जब जोडे बच्चे पैदा होते हैं, तब अपने विधान में उन्हे संशोधन करना पडता है। वे जोडा नाम भी देते हैं—पुत्रो के नाम—शिव-शंकर, चाँद और भैरव, सिद्दू और कान्हू, असी और बला। जन्मी हुई जोड़ी पुत्रियों का नाम वे इस प्रकार रखते हैं-दंगी और फुनारी, अगीया और कुलीया। जोड़े सन्तान का जन्म वे शुभ मानते हैं और राजा दशरथ के जोड़े पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न के समान वे अपने को भाग्यशाली मानते हैं। पिता अगर घरदी जवांई है, तब उसके पुत्र का नाम नाना के नाम पर पड़ता है और पुत्री होने पर उसका नाम नानी के नाम पर पड़ता है। ओझा के वरदान से जब सन्तान की उत्पत्ति होती है, तब बेटा होने पर ओझा के नाम पर और बेटी होने पर ओझा की पत्नी के नाम पर नामकरण होता है। ओझा को उसकी सेवाओ के लिए यह श्रद्धा एवं विश्वास प्रगट किया जाता है। ओझा चाहे तो उसका दूसरा नाम पड़ सकता है। पर नामकरण ओझा को ही करना पडता है।

सन्ताल परगना में ऐसा भी देखा गया है कि जब कोई व्यक्ति जंगली जानवरो के द्वारा मारा गया है, तब ऐसे व्यक्तियों के नाम पर बालक का नाम नही रखा जाता है। सन्तालों की धारणा है कि बाघ और शेर में 'बधावत बोंगा' रहता है। जब बाघ और शेर सन्ताल को मार कर खा जाता है तब सन्ताल समझते हैं कि बोंगा ने उसे खाया है। जब बोंगा ने उसे खाया है, तब उसे आशंका रहती है कि उस मरे हुए व्यक्ति के नाम पर बालक का नाम रखे जाने पर बोंगा उसे खा जायेगा। श्री आर्चर के अनुसार फतहपुर और नोनीहाट में यह धारणा विशेष रूप में प्रचलित है। इस क्षेत्र के सन्तालों को विश्वास है कि जानवरों द्वारा खाये

मृत व्यक्ति के अवशेष को जला देने और अन्य क्षेत्र में गाड देने पर ऐसी आशंका नहीं रहती है और बच्चे का उस मृत-व्यक्ति के नाम पर नाम दिया जा सकता है। कोढ़ी व्यक्ति के नाम पर भी बच्चे का नाम नही दिया जाता है। आर्चर साहब ने तेलोयाडीह के बिजमी टुडू का उल्लेख किया है। उसके ससुर को कोढ़ था, इस कारण उसके नाम पर उसके दूसरे लडके का नाम नहीं रक्खा गया। उसका नाम मामा के नाम पर रक्खा गया; जो निर्धारित नियम के प्रतिकूल था। माँ-बाप की गरीबी के कारण जब शादी सम्बन्धी के द्वारा सम्पन्न होती है, तब भी नामकरण के नियम में परिवर्तन होता है। भाई, बहन या चाचा जब किसी कुमार या कुमारी की शादी कराते हैं तब उनसे जो बच्चा या बच्ची पैदा होती है, उसका नामकरण उनके नाम पर ही होता है। जो सम्बन्धी उनकी शादी पर खर्च करता है, उन्हीं के नाम पर पहला बच्चा का नामकरण वे करते हैं। प्रथम बच्ची होने पर उस व्यक्ति की पत्नी के नाम पर नामकरण होता है। बाद में वे अपने निर्धारित विधान के द्वारा नामकरण का पालन करते हैं।

जब सन्ताल एक पत्नी रखता है, तब पुनः नामकरण के क्रम में परिवर्तन करता है। उसकी पहली पत्नी बडकी कहलाती है और छोटकी बाद की पत्नी कहलाती है। जब बड़की को दो लडका होने के बाद छोटकी को दो लड़का होता है। तब बड़की के लड़के का नामकरण दादा के नाम पर होता है और छोटकी के प्रथम लडके का नामकरण दादा के भाई के नाम पर होता है। छोटकी को जब बड़की से पहले लड़का होता है, तब छोटकी के प्रथम लड़के का नामकरण दादा के नाम पर होता है और बड़की के लड़के का नामकरण दादा के भाई के नाम पर होता है। बड़की के प्रथम पुत्र का नाम दादा के नाम पर होने के बाद अगर वह [illegible]

मर जाता है , तब छोटकी के लड़के का नाम वे उसी दादा के नाम पर धरते हैं। बडकी के बच्चा रहते हुए भी छोटकी के प्रथम बच्चे का नाम कभी-कभी एक ही होता है। पर ऐसा कम देखा जाता। नामकरण के नियम में पुनः परिवर्तन तब देखा जाता है जब विधवा , जिसको बच्चे होते हैं , शादी कर लेती है। दूसरे पति से उसके जो बच्चे होते हैं , उनका नामकरण निर्धारित नियम के अनुसार होता है और पहले पति से उसके जो बच्चे रहते हैं उनका नामकरण फिर से होता है। नये पति के भाई या बहन के नाम पर उनका नामकरण होता है। पोष्यपुत्र या पालिता पुत्री के नामकरण के लिए निर्धारित नियम में व्यति-क्रम देखा जाता है। गोद लेने के पूर्व उन्हें कुँआरा और अविवाहित होने पर जिनको पुत्र या पुत्री नही हुई , ऐसे लोगो के बालक और बालिकाओं का नामकरण गोद लेने वाले के नाम के अनुसार होता है। अवैध सन्तान की उत्पत्ति पर यह आवश्यक हो जाता है कि उसके बाप के नाम का पता लगाया जाय; पता लगने पर उसकी शादी कर दी जाती है और नामकरण निर्धारित नियम के अनुसार होता है। कभी ऐसी भी स्थिति आती हैं , जब यह निर्णय नही किया जा सकता है कि उसका बाप कौन है , तब कोई भी व्यक्ति उसे अपने गोत्र में मिला लेता है। जब व्यक्ति अपने गोत्र में बालक को मिला लेता है , तब उसके या उसके सम्बन्धी के नाम पर उसका नाम-करण होता है। जब कोई अपने गोत्र में उसे नहीं मिला सकता है , तब जोगमाँझी को गोत्र देने के लिए विवश किया जाता है। जोगमाँझी अपना गोत्र उसे देता है और उसी के बाप के नाम पर उस बालक का नामकरण किया जाता है। यदि लड़की होती है, तब उसे जोगमाँझी की माँ का नाम दिया जाता है।

नामकरण के बाद गाँव के सभी उपस्थित ग्रामीणों को 'नीम-दाक् मंडी' याने नीम के पत्ते के साथ पकायी गई खिचडी खाने को दी जाती है। गाँव के लोग पूछते हैं— यह क्या है, उत्तर मिलता है— नवजात बच्चे की भेंट है। इतनी प्रक्रिया के बाद ' जनम छठियार ' सम्पन्न होता है। जनम छठियार के बाद गाँव के लोग बच्चे के विकास में कोई खास दिलचस्पी नहीं लेते हैं। यह माँ–बाप का या उसके परिवार का प्रश्न रहता है। बच्चा आप ही आप ' राज-पाटा , गाड-गाड , 'चुगरी-मुंगरी , ' ' खोई-लोप ' ' हाराड खारटांड , ' मेलवा–टुट टुप ' ' कारछगडने ' ' गुड पोसाक् ' ' हे देल ग़ुडू ' आदि खेल–खेलता हुआ विकसित होता जाता है।

जब बच्चा सयाना हो जाता है, तब उसका चाचो छठियार होना है। इस छठियार का सामाजिक महत्व है। इसका कोई समय निश्चित नही है। पर इतना निश्चित है कि बगैर इस छठियार के हुए उसकी शादी नही हो सकती। इसलिए यह कहा जा सकता है कि शादी के पूर्व चाचो छठियार सम्पन्न कर लिया जाता है। ' जनम छठियार ' से बच्चे के छूत का निराकरण होता है और चाचो छठियार के माध्यम से वह अपनी जाति में शामिल किया जाता है। चाचो छठियार के पूर्व बच्चे की मृत्यु होने पर दाह-संस्कार नही होता है और उसका भाराडान (श्राद्ध) नही होता है। पहले इस संस्कार का रूप कुछ दूसरा था। खर्च अधिक होता था। अब इस संस्कार में सन्तालो ने संशोधन कर दिया है। खर्च कम पड़े, इसलिए कई बच्चों का एक ही साथ चाचो छठियार होता है। यही कारण है कि चाचो छठियार करने में देरी हो जाती है। शादी के पूर्व यह संस्कार होता है, इसलिए जब बड़ा लड़का शादी के योग्य हो जाता है, तब उसका यह संस्कार करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है।

उसी अवसर पर परिवार के और सभी बच्चों का चाचो छठियार हो जाता है। चाचो छठियार के अवसर पर गाँव के सभी व्यक्तियो को आने के लिए निमन्त्रण भेजा जाता है। सभी उस समारोह में भाग लेते हैं। बच्चे के जन्म के समय जो दाई रहती है, वह विशेष रूप में उस समारोह में उपस्थित रहती है। उसे सभी उपस्थित लोगों को तेल-हल्दी लगाना पड़ता है। अगर वह नही होती है तब घर के सबसे वृद्ध औरत यह काम करती है। वह पानी सभी पर छिड़कती है। उस समय जोगामाँझी सन्तालो की उत्पत्ति, विकास एवं प्रगति के सम्बन्ध में गीत गाता है। उत्कर्ष भरी कहानियो को वह सुनाता है। वह अपने आदि पुरुष से बच्चे तक का, जिसका चाचो छठियार होता है - क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करता है। इसके बाद हंडिया ढालना वह आरम्भ करता है। बच्चे का पिता हँडिया लाता है। वह माँझी की ओर पारानिक को हँडिया पीने को कहता है। हँडिया पीने वाले बच्चे के पिता से यह जानकारी प्राप्त करते हैं कि हँडिया किस लिए वह पिला रहा है। वह पिता लोगो को बताता है कि वह अमुक बच्चे या अमुक लड़की के चाचो छठियार की हँडिया है। हँडिया लोगों को पत्ते के दोना से पिलाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामने चार-चार दोना रखा जाता है। विनती के क्रम में जो गीत गाया जाता है; वह बहुत महत्वपूर्ण होता है। उस गीत में विश्व-निर्माण से लेकर आज तक की कहानी व्यक्त होती है। लिखित साहित्य के प्रभाव में उन गीतों का बहुत महत्व है। छठियार सम्बन्धी अन्य गीत भी गाये जाते हैं, नाच भी होता है। विनती के बाद जिसका चाचो छठियार होता है, उसे जोगामाँझी कहता है— हम लोगो ने तुमको जाति में ले लिया। उसे जोग माँझी आशीष देता—"वह फूले-फले; शराब पीये;

मस्त रहे ; छठियार और शव-दाह में हम सब के साथ रहे। इतना ही नहीं ; वह गाँव वालों से पुकार कर कहता है—ग्रामीणों, तुम लोग इस बात का साक्षी रहना कि अमुक बच्चे का चाचो छठियार हुआ है और वह जाति में मिला लिया गया है। इस प्रकार चाचो छठियार सम्पन्न होता है।

सन्ताल परलोक के दण्ड से भयभीत रहते हैं। उन्हें यह विश्वास है कि परलोक में बड़े-बड़े कीड़े होते हैं। कीड़ लोगों को वहाँ बहुत तंग करते हैं। उन्हें दण्डित करने के लिए कीड़ा को लोगों की गोद में रख दिया जाता है और कीड़ उन्हें काटते है। पर इन कीड़ों से बचने का भी उनके पास उपाय है। इसी से बचने के लिए 'सिक्का और खोदा' संस्कार सन्तालों में पाया जाता है। सन्तालों को विश्वास है कि 'सिक्का और खोदा' संस्कार द्वारा उन्हें परलोक में कीड़ों से मुक्ति मिलेगी। परलोक में वे सताये नही जायेंगे। सन्ताल युवक अपने आप सिक्का लेते हैं। सिक्का से चमड़े को गोलाकार जला दिया जाता है। साधारणतः पाँच ऐसा गोलाकार चिन्ह बनाया जाता है। कभी-कभी एक ही गोलाकार चिन्ह देखा गया है और किसी-किसी के बदन पर सात-सात गोलाकार चिन्ह रहते हैं। सिक्का और खोदा संस्कार के लिए कोई उत्सव नहीं होता है। वे अपने जला लेते हैं। बगैर गोलाकार चिन्ह के समाज में वे हीन लगते हैं, उन्हें शर्म होती है अपनी कायरता पर। सन्ताल युवतियाँ शादी के पूर्व खोदना कराती हैं। खोदा गोदना को वे कहती हैं। अपने गोदना पर सन्ताल कुमारियों को बहुत नाज है। वे उसे शुभ मानती है, उसे वे अपना आभूषण मानती हैं। उन्हें विश्वास है कि मर जाने के पूर्व उनके सभी आभूषण इस लोक में रह जाते हैं, वे बाद उनका साथ नहीं देते, पर उन्हें विश्वास है कि मरने के बाद गोदना स्वरूप उनका आभूषण उनके



संताल युवती

साथ परलोक भी जायेगा। गोदना को वे इस लोक का शृंगार और परलोक का एक सहारा मानती है। गोदना देखकर परलोक के कीड़े उसे काटते नही, उसे तंग नही करते।

लड़कियो को जब रजोदर्शन होता है, तब यह समझा जाता है कि उसका शैशव समाप्त हो गया और लड़की की रेखायें जब भीगने लगती हैं, तब लगता है कि लड़का सयान हो गया। सन्ताल लड़कियों में साधारणतः १२-१३ वर्ष की उम्र में रजोदर्शन होता है और सन्ताल कुमारों की रेखाये १४-१५ वर्ष की उम्र में भीगने लगती हैं।



विवाह-संस्कार

मानव में यौन-सम्बन्ध एक स्वाभाविक क्रिया है। यौन सम्बन्ध न हो तो जीवन का चक्र बन्द हो जाय—संसार का विकास टूट जाय। अतः यौन सम्बन्ध मानव की आवश्यक मांग है और है वह पवित्र बन्धन। यौन-सम्बन्ध का दूसरा नाम विवाह है। विवाह को सन्ताल लोग बापला कहते हैं। सन्ताल परगना गजेटियर के लेखक ओ॰ मोली ने बापला शब्द का अर्थ दो परिवार का सम्पर्क माना है।[१] सन्तालों में विवाह के अपने कुछ नियम हैं। उस नियम का वे बड़ी कठोरता से पालन करते

१. O. Malley, Bengal District Gazetteer, San-thal Pargana, Calcutta 1910. Vol. XXII Page—134

है।[१] उन नियमों का उल्लघन कर कोई भी सन्ताल समाज में नहीं रह सकता। समगोत्रीय विवाह उनके यहाँ नहीं होता, वे किसी अन्य गोत्र या खूँटी में विवाह करते हैं। अगर किसी व्यक्ति को अपने बडे भाई की साली से सम्बन्ध हो जाय, तब उससे उसकी शादी हो जा सकती है, पर यह सम्बन्ध छोटे भाई की साली से वर्जित है। इस प्रकार का निषेध सन्तालों को परम्परा से मिला है। सन्ताल उन्हें धार्मिक दृष्टि-कोण से देखने लगे हैं। उन नियमो के पालन में आना-कानी वे नही करते।

प्राचीन आपसी सघर्षों के कारण कुछ गोत्रो में विवाह नही होता है। हासदाक् के लडके-लडकियो की शादी मुर्मू के लडके या लडकियो से नही होती। उसी प्रकार मुर्मू के लडके या लडकियो की शादी टुडूदाक् की लडकियो या उसके लडको से नही होती है। टुडू और बेसरा गोत्र में साधारणत: नही होता है। इस सम्बन्ध में कई कहानियाँ बतायी जाती हैं। एक कहानी है कि एक बार एक बेसरा गोत्र को लडकी टुडू गोत्र के लडके को प्यार करने लगी, पर टुडू लडके ने उससे विवाह करने से इन्कार कर दिया। इस पर लडके और लडकी के परिवार वालों में एक समझौता हुआ। उस समझौता के अनुसार यह तय हुआ कि दोनो के जानवरों में लडाई हो। भैंसा और मुर्गा में लडाई होने का निश्चय हुआ। यह भी निश्चय हुआ कि भैंसा अगर मुर्गा को मार डालेगा, तब तो यह समझा जायेगा कि भगवान चाहता है कि दोनो की शादी हो जाय, अगर भैंसा उसे नही मारेगा, तब यह समझा जायेगा कि ईश्वर को यह शादी मजूर नहीं। भैंसा और मुर्गा में लडाई हुई। मुर्गा को जीत हुई, भैंसा हारा।

१. W. J. Culshaw : Tribal Heritage—Page—134

लोगों ने यह निर्णय किया कि भगवान को यह सम्बन्ध पसन्द नहीं है। तब से दोनों गोत्रों में शादी-विवाह नहीं होता है। पर यह नियन्त्रण सख्ती के साथ लागू नहीं किया जाता है।

विवाह को सन्ताल दो परिवारों का मिलन मानते हैं। अतः विवाह करने के पूर्व परिवार के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करते हैं। लड़का या लड़की के बाप-माँ शादी के पूर्व, जिस परिवार में वे सम्बन्ध बनाने जा रहे हैं, उस परिवार का समुचित मूल्यांकन वे प्राप्त करते हैं। कन्या की दूरी भी कम महत्व नहीं रखती है। साधारणतः एक सन्ताल अपने गाँव की लड़की से शादी नहीं करना चाहता है। सन्ताल के यहाँ एक कहावत है जिसका आशय है कि मुर्गा और दुल्हन हमेशा अपने घर भाग जाती है। अतः वे गाँव की बेटी को अपनी वधू नहीं बनाते। उन्हें भय रहता है की बेटी जब वधू हो जायेगी, तब वह अपने सास-ससुर के घर की उपेक्षा कर, अपने माँ-बाप के घर पर ही रहेगी। पर सन्ताल बहुत दूर भी विवाह करना नहीं चाहते। अपने गाँव से थोड़ी दूरी पर वे साधारणतः विवाह करते हैं। वे जिस घर में सम्बन्ध करना चाहते हैं, उस घर की आर्थिक स्थिति का पता लगाते हैं। जिससे वे सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूरी छान-बीन करते हैं। दुलहिन वे ऐसी चाहते हैं, जो शरीर से परिश्रमी हो, स्वभाव से उदार हो और व्यवहार में मधुर हो। उनके यहाँ मनपसन्दगी विवाह की पहली शर्त है।

विवाह तब होता है, जब दूल्हा-दुलहिन बालिग हो। एक दूसरे के जानने और समझने का उन्हें ज्ञान हो। बाल-विवाह सन्ताल समाज में वर्जित है। पर विवाह में आयु का कोई नियंत्रण नहीं है। दुलहिन

साधारणतः दूल्हा से छोटी होती है, पर उससे बडी भी हो सकती है—ऐसा कोई बन्धन नही है। लड़कियो की शादी १६ वर्ष की आयु के पूर्व नही हो सकती है और लड़को की २० वर्ष की आयु के पूर्व शादी वर्जित है। सन्ताल विद्रोह के पूर्व सन्ताल २१ वर्ष की आयु के पूर्व शादी नही करते थे।[१] पर अब ऐसी बात नही है। बाल-विवाह उनके यहाँ साधारणतः नही होता है। फिर भी एक-आध बाल विवाह की बातें सुनी जाती हैं, यह हिन्दुओ के प्रभाव के कारण हुआ है। शादी के पूर्व यौन-सम्बन्ध को वे बुरा मानते हैं, पर ऐसा हो जाने पर उसे सहन भी कर लेते हैं। अगर शादी के पूर्व कुमारी गर्भवती हो जाती है, तब उसे अपने सम्बन्ध को प्रकट करना पडता है। उस युवक को उससे शादी करनी पडती है। अगर वह बहाना करता है या जिम्मेवारी लेने से इन्कार करता है, तब जोगमाँझी उसे दण्डित करता है। उसके पिता को अर्थदण्ड लगाया जाता है।[२]

१. O. Malley, Bengal District Gazetteer: Santal Pargana, Calcutta, 1910. Vol XXII-Page-133

२. Sexual intercourse before marriage is tolerated but if a girl becomes pregnant the youngman is bound to marry her. Should he attempt to evade this obligation he would be liable to severe punishment by the Jogmanjhi and in addition to this his father would be required to pay a heavey fine.

P. C. Biswas: Santhal of the Santhal Pargnas, Page—74.

सन्तालो में दो प्रकार की शादी प्रचलित है। एक का नाम रायवार वापला है, दूसरे प्रकार की शादी वंसी है, जिसे दूल्हा या दुलहिन अपनी पसन्द से करते हैं। सन्ताल शिवरात्रि के पूर्व विवाह नही करते हैं, विशेषतः उनका विवाह वैशाख में होता है। विवाह सम्बन्धी प्रक्रिया दूल्हे के घर से आरम्भ होती है। विवाह कर्त्ता 'रायवारिच' आरम्भ करता है। रायवारिच घर से दुल्हीन को देखने जाता है तथा गाँव की सीमा में आग, कुल्हाडी, माथा पर घडा लिए लडकी, साँप सियार उसे दिखायी पडता है, तब वह उसे अशुभ मानता है और वह घर लौट जाता है। पर जब पानी से भरा हुआ बर्तन, गाय, नयी मिट्टी का बर्त्तन, बोरा लदा हुआ बैल और सिह का पदचिन्ह उसे दिखायी देता है, तब वह शुभ समझा जाता है। वह जोगमाँझी से मिलता है। अपने आने का कारण उसे बताता है। लडकी के पिता को संवाद भेजा जाता है। रायवारिच माँझी के साथ लड़की के पिता के पास उसके घर जाता है। वह उनसे कहता है—भाँत पकाने वाले बर्तन में क्या जयह है? हमारे कुछ मित्र हैं, वे अपनी दवा को पकाने में असमर्थ हैं, अतः उन्होंने एक नया बर्तन खोजने का काम मुझे दिया है। वह इस तरह लडके वालो की ओर से प्रस्ताव रखता है। जब प्रस्ताव की स्वीकृति मिलने की सम्भावना होती है, तब लडकेवालों के यहाँ से कुछ व्यक्तियों को लेकर रायवारिच पुनः लडकी के घर आता है। उसे होरोक चीन्हा कहते हैं, जिसका अर्थ होता है– शादी करने का वचन देना। लडकी के दरवाजे पर अतिथियो का स्वागत होता है। लडकी को जो होनेवाली दुलहिन है, कोई विवाहित औरत बाहर लाती है। लड़की सभी का अभिनन्दन करती है। वह अपने होने वाले ससुर के पैरों के नीचे एक लोटा में जल भरकर रखती है, जिसमें

उसके होनेवाले ससुर अपनी शक्ति के अनुसार मुद्रा डालता है और लड़की को जेवर-कपडा भेंट करता है। लडकी के पिता कन्या दाम चाहता है, जिसे सन्ताल पौन कहते हैं। कन्या दाम सदैव एक समान नही रहा है। उसका मूल्य घटता-बढता रहा है। पहले उसका दाम सात रूपया था; अब साधारणतः उसका दाम बारह रूपया हो गया है। कन्या दाम का विभाजन इस प्रकार होता है:—

पिता का अंश—३.०० रूपया

माँ का अंश – ५.०० रूपया

नानी का अंश—२.०० रुपया

दादी का अंश—२.०० रूपता

कन्या के भाई को भी दाम दिया जाता है। पहले कन्या के भाई को बैल मिला करता था। पर बैल का दाम अधिक हो जाने के कारण अब बैल देने की प्रथा नही के बराबर है। कुछ रुपया ही कन्या के भाई को मिलता है। साधारणतः २) रुपया उसे मिलता है। कन्या के गाँव के प्रमुख को भी लड़की के ससुर से एक रुपया मिलता है। आठ आना अपने अंश में से प्रमुख बारियाटोका को देता है। पहले प्रमुख को चावल दिया जाता था, पोचाई दिया जाता था। कन्या दाम ठीक हो जाने के बाद कन्या के घर वाले लड़के के घर आते हैं। वहाँ वे खाते-पीते हैं। शादी एक प्रकार से तय हो जाती है। कन्या के घर से वापस आते हुए वर-पक्ष के लोग एक गीत गाते हैं:—

प्र० ए हो रायबारिच तिमिन सागिलरेम सागुन केदा !

उ० आडी सागिन हो कुक पारोय, चान्दो बोंगाये लिखन केदा।

प्र० ए हो रायवारिच् बाहू कुड़ी दो तिमिन माराङ !

उ० बाय माराङ , बाय हुडिञा , ओनोक् मुदी रे भूलका ,
राचा जोजोक् जोसेच् सेरेच्-सेरेच्

प्रश्न—अरे रायवारिच् ! भव्य एवं शुभ के खोज में कहाँ तक गये थे ?
उत्तर—बहुत दूर , पहाड़ी से भी आगे ; जहाँ कान्दो बोंगा रहते हैं ।
प्रश्न—अरे रायवारिच ! कन्या कितनी बड़ी है ?
उत्तर —न वह लम्बी न नाटी है ;

वह हाथो में

दूल्हा माँ से कन्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहता है । माँ उससे कहती है—

(२३) सातेपाते बाबू जेलकेदेञ ,
डेपकाते बाबू रुकेदाञ
कुड़काल भाजान , बाञाव काते बाबूञ आगूगया ।

इस गीत में , माँ अपने पुत्र को समझाते हुए कहती हैं कि जिस तरह से कुम्हार के बर्तन को ठोक पीटकर , अच्छी तरह देखभाल करके खरीदते हैं , ठीक उसी तरह से ही मैं तुम्हारे लिये बधू को सब गुणों की जाँच (परख) कर चुनकर ला दूँगी ।

कन्या और उसकी सहेलियाँ भी दूल्हा के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहती हैं । वह भी राय वारिच से प्रश्न करती और उत्तर चाहती है—

(१) प्रश्नः—एहो, राईवारिच् जावाय ओड़ाक् तिमन सागिञ
उत्तरः—बाय सागिञा बाय सोरा , हाने बेकोक् कान कायरा बाकुञ
(२) प्रश्नः —एहो राईवारिच् कोड़ा दो तिमन माराङ

उत्तर:—वाय मराङा बाय हुडिञा, कासी बुटुरे गाये गुपी तिरयोव मोरोङा रियोचू रोयो ,

(१) प्रश्न:—हे बारतुवा , हम लोगो का दामाद का घर कितना दूर है

उत्तर:—दूर भी नही है निकट भी नही है , वो मालूम हो रहा है , केना बगीचा के पास ।

(२) प्रश्न:—वरमुहा , हम लोगो का दामाद कितना बड़ा है ।

उत्तर —बड़ा भी नही है छोटा भी नही है, हाँ वासुली बजाने लायक है ।

परम्परानुसार कई बार आना जाना पड़ता है । शादी को तय करने के लिए कई उत्सव उन्हे सम्पन्न करना पड़ता है । खर्च कम हो - यह भी ध्यान रहना है । एक परिवार दूसरे परिवार को जब जानता है, तब बार-बार आने जाने का प्रश्न ही नही उठता है । पहली बार के आगमन पर शादी तय हो जाती है । दूल्हा के घर के लोग जब कन्या के घर आते हैं , तब उनका अभिनन्दन होता है । उन्हे चौकी पर बैठाया जाता है । उनका पैर धुलाया जाता है , उन पर तेल मला जाता है । उन्हे पीने के लिए पोचाई दिया जाता है । शादी की अन्य बातें तय होती हैं । दूल्हा और दुलहिन को देखने की प्रथा है । शादी के पूर्व उन्हे एक-दूसरे से भेंट करायी जाती है । उन लोगो का मिलन-स्थल हाट या बाजार है । हाट की कुछ दूरी पर दूल्हा अपने सम्बन्धियो के साथ खडा रहता है , दूसरी पंक्ति में कन्या अपने सम्बन्धियो के साथ खडी रहती है । दोनो एक दूसरे के आमने-सामने खड़े रहते हैं । दोनों के बीच चार फीट की दूरी रहती है । कुछ देर के बाद कन्या की ओर से कोई औरत दूल्हा की पंक्ति की ओर बढ़ती है और दूल्हा के गालो पर कड़ुआ तेल मलती है , भूँजा हुआ चावल खाने को देती है । वह औरत दूल्हा के पक्ष के लोग।

को प्रणाम करती हैं। इसी प्रकार दूल्हा के पक्ष की कोई औरत दुलहिन पक्ष की ओर आती है, दुलहिन के बालों पर तेल लगाती है और खाने को कुछ देती है और कन्या के सम्बन्धियो को प्रणाम करती है।

विवाह का समय निश्चित करने में कई बातो को सन्ताल ध्यान में रखते हैं। वे उस मास में विवाह नही करते, जिस मास में दूल्हा या दुलहिन का जन्म हुआ है। उस महीने मे भी सन्ताल शादी नही करते, जिस महीने में वर्षा की सम्भावना होती है। वे साधारणतः विवाह फाग्रुन या बैशाख में करते हैं। लडके का बाप 'रायवारिच' के द्वारा एक धागा भेजता है और उसमे गाठ देकर भेजता है। लडकी का पिता उन गाठो को देखकर समझ जाता है कि लडके वाले किस दिन को शादी चाहते हैं। एक गांठ से एक दिन मालूम होता है। लडकी वालो को वह दिन अगर पसन्द है, तब वे भी एक धागा उतने को गाठ देकर वापस कर देते हैं और जब दिन को कम या अधिक करना होता है तब वे उसी के अनुसार कम या अधिक कर देते हैं।

विवाह को सन्ताल सामूहिक उत्सव मानते हैं।[१] लडका तथा लडकी दोनो के गांव के लोगो में काफी उत्साह देखा जाता है। गाँव के अधिकारी गण भी उत्साह के साथ उसमें भाग लेते हैं। कन्या के गाँव का जोगमाँझी अपने को सभी समारोहो का मालिक मानता है। विवाह वेदी के निर्माण से लेकर विवाह तक के सभी समारोहो मे वह रहता है। दूल्हा के गाँव का प्रमुख पहले तो उतना उत्साह नही दिखाता है, पर जब शादी होने की बात ठीक हो जाती है तब वह भी उसमे भाग लेने लगता है। गाँव का पुरोहित भी शादी में भाग लेता। शादी के अवसर पर देवी-देवता, भूत-प्रेत,

१. W. J. Culshaw: Tribal Heritage—Page-139.

पितर को याद किया जाता है उन्हें प्रसन्न रखने की व्यवस्था पुरोहित को ही करना होता है। उनसे दूल्हा-दुलहिन के लिए आशीष पुरोहित ही माँगता है। सन्तालों का विवाह सामाजिक महत्व रखता है। पुरुष और नारी के सामाजिक यौन-सम्बन्ध का एक सूत्र है। सन्तालो में यह प्रथा है कि दूल्हा और दुलहिन के कपड़े को बाँधना ; अँगूठी का आदान-प्रदान करना , दोनों का साथ-साथ खाना। यह उनके सम्बन्ध का प्रतीक है। गृहस्थी , यौन , कृषि आदि के कार्यों में पारस्परिक सहयोग देना एक प्रकार से उनकी प्रथाओं से व्यक्त होता है। विवाह-यात्रा पर चलने के पूर्व दूल्हा के पिता गाँव के पुरोहित को एक मुर्गी बलि चढ़ाने को देता है। वह देवी-देवताओं और पितरो से प्रार्थना करता है —"विवाह के उपलक्ष में हम तुमको मुर्गी समर्पित करते हैं , इसे तुम स्वीकार करो , इसे खाकर और बढ़ो। अब हम लोग बारात अमुक गाँव में ले जाने को हैं। जंगल की राह से जाना है ; हमारी रक्षा करो ; किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न हो , बिजली न गिरे ; उन पर किसी प्रकार का जादू-टोना न हो। वहाँ हम लोगो को खाना और पीना भी है। हम लोगो को वहाँ पेट दर्द न हो ; सर दर्द न हो। हम लोगों की रक्षा करो , सम्बन्धियो में झगड़ा न हो , वाद-विवाद न हो , तनाव न हो , कोई विघ्न-बाधा न हो।"

विवाह के निर्धारित दिन से एक या दो दिन पूर्व सन्तालों के यहाँ माराडव-उत्सव होता है। लड़का और लड़की—दोनों के घर में यह उत्सव सम्पन्न होता है। आँगन में एक अस्थायी छप्पर का निर्माण होता है। वह आयताकार होता है और उसके मध्य में एक मजबूत खम्भा रहता है जिसे माराडव-खूँटी कहते है। गाँव के नवयुवक उसे बहुत उत्साह से बनाते हैं और बनाने वाले नवयुवको को माराडवा-कोरा कहते

हैं। छप्पर छाने के समय या उसे उतारते समय उन्हें पीने को पोचाई और खाने के लिए भात मिलता है। छप्पर के मध्य में महुआ की एक डाली गाड़ी जाती है। कुमारी लडकियाँ पाँच हल्दी, पाँच धान और पाँच पैसा लिये रहती हैं और एक छेद में, जिसे कुमारी लडकियाँ ही खोदती हैं, वे उन्हें गाड़ देती हैं। डाक्टर पी० सी० विश्वास ने इसे ऐन्द्रजालिक महत्व दिया है। चावल और हल्दी से यह भावना व्यक्त होती है कि वर-वधू का दाम्पत्य जीवन बहुत सुखद होगा और उनके जीवन में विघ्न-बाधा उपस्थित नही होगी।[१] माराडव छप्पर के नीचे जोगमाँझी पाँच कुमारी लडकियो द्वारा निम्नलिखित व्यक्तियो के पैरो में तेल लगाकर उनका अभिनन्दन करता है। वे इस प्रकार के क्रम में रहते हैं—नायके और उसकी पत्नी, कुदुम नायके और उसकी पत्नी, गाँव का प्रमुख और उसकी पत्नी, प्रमाणिक और उसकी पत्नी, जोगमाँझी और उसकी पत्नी। दूल्हा या दुलहिन के माँ-बाप तथा गाँव के लोग भी उस अवसर पर उपस्थित रहते हैं। उन्हे भी वे कड़ुआ तेल और हल्दी वे लगाती हैं।

कन्या के घर एक प्रकार का समारोह होता है, जिसे वे जल-विवाह कहते हैं। कन्या घर से बाहर आँगन में लाई जाती है। बड़ी भाभी उसे लाती हैं। संग में दो कुमारी लडकिया रहती है। भाभी पीतल के बर्तन में पानी भरकर रखती है, जिसे दाँये और बायें छिडकती चलती है। और लडकियो के हाथो में दोना रहता है, जिसमें हल्दी, दुर्वादल घास और चावल रहता है। एक में बारने के लिए दीया रहता है। आंगन में औरतें गाती हैं:—

आछु रे विहुरे सेगेले तिलि दो, वेहार ले आम ले कायली गाय नोड़ाक दो
सुच्दाक् रे होसोरेन सोनेर गोड़ सीकड़ी दो, डाडी दाक् रे होआरेन रुपर गोड़

पैंनी दो , तोकोय चाये हालाङ्केद् सोनेरगोड सीकडी दो , तोकोय चोय तुमालकेद् रूपेर गाड़े पैंनी दो । काल्गे हालाङ्केद् सोनेर गोड् सीकडी दो कामन ने तुमालकेद् रूपेर गोड पैंनी दो—

अर्थ—चारो ओर मुर्गिया है । चारो ओर काली गाय का गोहाल है । सोना की सीकडी कुवाँ में गिर गया तथा चादी का पाजेव कुँवा में गिर गया । सोना की सीकडी किसने उटाया तथा चादी का पाजेब किसने चुना । काल ने ही[१] सोना की सीकडी उठाया तथा काल ने ही चाँदी का पाजेब चुना ।

कन्या को तीन बार मारडव-मराडप में घुमाया जाता है । उसके बाद कन्या को उसमें बैंटाया जाता है । कुमारी लडकियाँ दूर्वादल घास को कन्या के भाल पर लगाती हैं । जब समारोह खत्म हो जाता है , तब कन्या घर भेज दी जाती है और अन्य औरतें नाचती है और गीन गाती हैं । उस समय का उनका गीत है—

तोकोयाक् राचारे दाक भुम्बुकएन , दाक् भुम्बुकएन हाले दाक् बुहेलेन ।
हेंम्ब्रम कोवाक राचारे दाक् भुम्बुकएन, दाक् भुम्बुकएन हाले दाक् बुहेलेन ।

अर्थ—किसके बागान में पानी का झरना निकला तथा पानी का झरना बह चला । हेम्ब्रम लोगो के बागन में पानी का झरना फूटा तथा पानी का

---

१. " This has some magical significance. The rice and turmoric roots show any sign of sprouting item , the married life will be happy and never has any difficulty in married life.

Dr. P. C. Biswas-Santhal of the Santhal Parganas—Page—79.

झरना बह चला ।

विवाह के निर्धारित दिन को लड़का अपने परिवार के सदस्यो , सम्बन्धियो तथा अपने ग्रामवासियो के साथ उस गाँव के लिए प्रस्थान करता है , जहाँ उसकी शादी होने को है । गाँव मे बारात-दल का गाँव की सीमा पर जोगमाँझी स्वागत करता है । वे गाव के बाहर ठहराये जाते हैं । कन्या के पिता और अन्य सम्बन्धी उनका स्वागत करते हैं । जब तक विवाह की प्रक्रिया चलती है तबतक लोग आनन्दमग्न रहते हैं । नाच और गाना होता रहता है । कन्या को एक नयी साडी पहनायी जाती है और दूल्हा के निकट खडी की जाती है । दूल्हा का छोटा भाई दूल्हा के बायी तरफ रहता है । काफी सख्या में महिलायें जल लिए वहा उपस्थित रहती हैं । वे बारात दल का अभिनन्दन करती हैं । उनमें सबसे बडी आयु की जो औरत होती है वह कन्या को गुड खिलाती है और पानी पीने को देती है । लोटा का जो जल बच जाता है , वह उस औरत के चरणो पर डाल देती है । दूल्हा और दूल्हा के भाई को इसी प्रकार गुड खिलाया जाता है । जब तक इस प्रकार की प्रक्रिया होती रहती है , तब तक नाच और गाना भी चलता रहता है । इस प्रक्रिया के बाद लड़की की माँ , उसकी चाची और उसकी बूआ-भीड़ में से लड़का और लड़की को जोगमाझी के पास ले जाती है । उनके स्वागत के लिए कन्या की छोटी बहन वहां पहले से उपस्थित रहती है । वहाँ से वापस आने के बाद कन्या को एक डोला में बैठाया जाता है । उसे ऊपर उठाया जाता है । दूल्हा अपने बड़े साले के कन्धे पर बैठकर दुलहिन को पांच बार सेन्दूर लगाता है । इस प्रकार नियमित शादी की प्रक्रियायें सम्पन्न होती हैं।

इस प्रकार की नियमित शादी के अतिरिक्त सन्तालो में और कई प्रकार

की शादियाँ भी प्रचलित है , जिनकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है—

(क) संगा बापला:— विधवा या तलाक द्वारा त्यागी हुई औरत की शादी जब विधुरो से होती है , तब उस शादी को संगा बापला कहते हैं। दूल्हा और दुलहिन स्वय विवाह तय करते हैं। पहले पुरुष ही शादी का प्रस्ताव करता है। कन्या-दाम साधारण-सा लगता है। दूल्हा कन्या-दाम में एक नयी साडी देता है। सेन्दूर-दान नियमित शादी की तरह नही होता है। फूल मे सेन्दूर लगा कर दूल्हा-दुलहिन के जूडे में लगा देता है। खान-पान होता है। इस प्रकार विवाह सम्पन्न होता है।

(ख) कुडम बापला.— शादी के पूर्व कोई सन्ताल लडकी गर्भवती हो जाती है , तब उसे यह बताना पडता है कि उसे किस पुरुष से गर्भ रहा है। उससे उसे शादी करनी पडती है। जोगमाझी का इस प्रकार की शादी में बहुत बडा हाथ रहता है। पुरुष को जोगमाझी के सामने जाकर अपने अपराध को स्वीकार करना पडता है। लडकी भी जोगमाझी की पत्नी के समक्ष सभी बातों को रख देती है। जोगमाझी गाव के प्रमुख और लड़का-लड़की के मा-बाप को इस सम्बन्ध में जानकारी देता है। शादी का दिन वह निर्धारित करता है। निर्धारित दिन को दूल्हा दुलहिन को सेन्दूर दान अपने घर मे देता है। सेन्दूर-दान के समय लड़का पश्चिम की ओर मुँह किये रहता है और लड़की पूर्व की ओर।

(ग) किरिंग जाँवाई:— शादी के पूर्व कोई सन्ताल लड़की किसी ऐसे पुरुष से गर्भवती हो जाती है , जो उसी के गोत्र का है , तब गांव के प्रमुख पचायत की बैठक को बुलाता है। पंचायत के सामने बातें आती हैं। पचायत सह-गोत्र में शादी की अनुमति नही देती है। युवक के पिता को पूरा खर्च कर लड़की की शादी दूसरे गोत्र में करनी पड़ती है। गांव का

मुखिया उस लड़की की शादी ठीक करता है। जिस युवक से उस युवती की शादी होती है, उसे अपराधी युवक का पिता एक गाय और कुछ रुपया देता है। युवती को एक थाली में बैठाकर उसकी शादी होती है। युवक उस युवती को सेन्दूर-दान करता है।

(घ) घरदी जांवाईः— बाप की एकलौती बेटी की शादी घरदी जांवाई विवाह-प्रणाली से होती है। कभी ऐसा भी होता है कि बाप को लड़का रहता है, पर वह बच्चा रहता है, तो ऐसी स्थिति में खेत के काम-काज के लिए तथा उसकी गृहस्थी की देख-भाल के लिए ऐसी शादी की व्यवस्था होती है। लड़की में कोई दोष होता है, वह असुन्दर होती है, तब उसका बाप खर्च कर, पैसे के लोभ दिखलाकर इस विवाह-पद्धति के अनुसार ब्याह करता है। शादी का पूरा खर्च लड़की का बाप देता है। लड़के को कन्या दाम नहीं देना पड़ता, पर उसे अपने ससुर के पास पांच वर्ष रहना पड़ता है। पांच वर्ष के बाद युवक चाहे तो मुक्ति मिल सकती है। पर पांच वर्ष तक उसे अपनी पत्नी के साथ अपने ससुर के घर रहना पड़ता है। खेती में उसे मदद देना पड़ता है। घरदी जावाई को ससुर अपनी जमीन में से कुछ अंश देता है।

शादी की अपनी कुछ प्रक्रियायें हैं। शादी के निर्धारित दिन को दूल्हा अपने गांव के कुछ प्रमुख लोगों के साथ दुलहिन के पिता के घर आता है। जोगमाझी और गांव के प्रमुख को कन्या का पिता बुलाता है। इन सभी लोगों की उपस्थिति में दूल्हा दुलहिन को सेन्दूर दान देता है। कन्या का पिता एक भोज देता है। दूल्हा दुलहिन के साथ अपने ससुर के घर में बस जाता है।

(ड) आपाङगिर बापला:—यह प्रेम-विवाह पद्धति है।[1] प्यार करके जो शादी होती है, उसे सन्ताल आपाङगिर बापला कहते हैं। सन्ताल युवक-युवतियों को घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता रहती है। बाजार में, हाट में, खेत में, खलिहान में सन्ताल युवक-युवतियां मिलते रहते है। उनमें प्रणय हो जाता है। युवक अपने प्यार का प्रतीक एक फूल देता है। अगर वह फूल को स्वीकार कर लेती है तब तो यह समझा जाता है कि युवती ने युवक के प्यार को स्वीकार कर लिया है। झूमर नाच होता है। लडका लडकी का हाथ पकड़ कर उससे बातें करता है। युवती को यह आश्वासन देना है कि वह उसका पालन करेगा और युवती उसे आश्वासन देती है कि वह हर तरह से प्रेम करेगी। पंचायत के सामने दोनो को अपनी प्रेम-कहानी कहनी पड़ती है। उन्हें वचन देना पडता है कि वे शादी कर जीवन बितायेंगे। पहले पंचायत में उनके आचरण की बडी निन्दा की जाती है। लड़की का पिता युवक से यह प्रश्न करता है कि उसकी लडकी के साथ उसने प्रेम क्यो किया। इस प्रकार लडका का पिता लडकी से पूछता है—उसके लड़के के साथ उसने प्रेम क्यो किया? पंचायत उन लोगो को शादी के सूत्र में बाधने का आदेश देती है। दोनो के गाव के प्रमुखो के सामने उनकी शादी होती है। सभी के सामने उसे सेन्दूर-दान करना पडता है। युवक को गाव भर को भोज देना पडता है।

---

१. UMA. Choudhary—Marriage customs of the Santals—Bulletin of the Department of Anthropology Vol. 1 No. 1, January, 1952, Page—104–105

(च) टुड़की दिपिल बापला:—गरीब लोग इस प्रकार का विवाह करते हैं। नियमित शादी पर खर्च होता है। लड़की के पिता को खर्च करने की शक्ति नही होती है तब वह इस प्रकार की शादी करता है। लड़की दूल्हा के घर लायी जाती है। उसके माथे पर एक टोकरी होती है। उसकी सहेलियां होती हैं और साथ में उसके कुछ सम्बन्धी होते हैं। दूल्हा सभी लोगो के सामने सेन्दूर-दान करता है। भोज दिया जाता है। युवक-युवती दम्पत्ति के रूप में इसके बाद रहते हैं।

(छ) गोलइटी बापला.— इस विवाह पद्धति में बेटी देकर पतोहू ली जाती है। कन्या के भाई से दुल्हा की बहन की शादी होती है। इस विवाह मे कन्या-दाम नही दिया जाता है।

(ज) इतुत् बापला—यह एक दुस्साहस पूर्ण विवाह प्रथा है।[१] विवाह के लिए बलात्कार किया जाता है। इस पद्धति में एकाकी प्यार प्रदर्शित होता है। युवक जिसे प्यार करता है, उस युवती के माथे पर बलात्कार पूर्ण ढंग से सेन्दूर लगा देता है। उसे अपनी पत्नी घोषित करता है। युवती के पिता युवक के गाँव मे जाता है। वहाँ के प्रमुख से मिलता है और युवक के पिता से तीन बकरा चाहता है, वह उससे कन्या-दाम चाहता है। युवती को वधू मूल्य मिलता है। युवक को दण्ड स्वरूप तीन बकरा युवती के पिता का देना पडता है; तब यह विवाह विधिवत् माना जाता है।

(झ) निरबोलोक् बापला:—युवती अगर किसी को प्यार करती है; पर युवक को वह प्राप्त नही कर पाता है तब वह उसे पाने के लिए पोचाई पीकर उसके घर में प्रवेश करती है। वहाँ उसकी पत्नी बनकर रहना

---

१. P. C. Biswas— Santals of the Santhal Pargana:— Page— 87.

चाहती है। युवक के घर के लोग उसे बलपूर्वक निकाल नहीं सकते। लाल मिरचा जलाकर एक विषाक्त वातावरण तैयार करते हैं। युवती विवश होकर भाग जाती हैं। पर कुछ ऐसी होती है जो इन कष्टों को सहकर भी उस घर से नहीं निकलती है। परिवार के लोग युवती को वधू के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।

सन्थालों में तलाक की प्रथा अधिक है। पति और पत्नी को समान अधिकार प्राप्त हैं। पति अपनी पत्नी का त्याग उसी परिस्थिति में करता है जब उसकी पत्नी डाइन प्रमाणित होती है। जब वह आचरणहीन होती है या जब पति की आज्ञाओं का अनुपालन नहीं करती हो या जब सदैव अपने पिता के घर वह रहती हो। पत्नी भी अपने पति को तलाक दे सकती है। तलाक को सन्थाल 'साकाम् ओडेच' कहते हैं। इसका अर्थ होता है— पत्ता फाड़ना। विवाह एक सामाजिक समझौता है। वे दो व्यक्तियों का मिलन ही नहीं मानते दो गावों का मिलन भी मानते हैं। अत: वर और वधू दोनों गाँवों के प्रतिनिधियों की अनुमति से ही तलाक दिया जा सकता है। कन्या के पिता को कन्या-दाम, जो उसे विवाह के अवसर पर प्राप्त हुआ था, लौटाना पड़ता है। पति तलाक की घोषणा करता है। वह सखुआ के पत्ते को फाड़ देता है। पत्ता फाड़ना सम्बन्ध विच्छेद का प्रतीक है। तलाक की अनुमति जिस परिषद् द्वारा उसे मिलती है, उस परिषद् के सदस्यों को वह खाना खिलाता है। कभी-कभी कन्या के पिता वधू मूल्य वापस नहीं करना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी बेटी पर लगाये गये अभियोग के सम्बन्ध में प्रमाण चाहता है। ऐसी स्थिति में देर होती है। महीनों लग जाता है। जब तक कन्या मूल्य वापस नहीं होता है तब तक तलाक नहीं हो सकता है। विषम कारण न

होने पर पति जब अपनी पत्नी को तलाक देता है , तब उसे वधू-मूल्य प्राप्त नही होता है। उसे दण्डस्वरूप अपनी पत्नी को तलाक देते समय पाँच रुपया दण्ड और एक कपड़ा देना पड़ता है। पत्नी पहले तो अपने पति को तलाक नही देती है , वह उनके साथ रहने से इन्कार करती है। बाद में वह तलाक दे देती है। जब पत्नी अपने पति का त्याग करती है , तब उसे शादी के अवसर पर जो कन्या मूल्य मिला था , उसे वह अपने पति को वापस करती है। तलाक का नियम बहुत सरल है। पचायत के समक्ष तलाक की विधि पूरी होती है। जो व्यक्ति तलाक देता है , वह अपने गर्दन में कपड़ा लपेटे हुए रहता है और अपने हाथ मे सखुआ का तीन पत्ता लिये हुए रहता है। वह अपने देवता-सीग बंगा का नाम लेकर सखुआ के तीनो पत्तो को फाड़ डालता है। उसके बाद एक लोटा जल गिरा देता है।

तलाक के प्रश्न को लेकर सन्ताल-कचहरी में भी सन्ताल उपस्थित होते हैं। ऐसे प्रश्नो में धन की माँग रहती है। धन-निर्धारण दोनो दलो के लोगो की राय से होता है। किसी चीज की दर मांझी की राय से निर्धारित होती है। तलाक की बात सन्ताल-कचहरी में शायद ही आती है , पर तलाक के कारणो में धन का प्रश्न जब शामिल रहता है , तब वे सन्ताल-कचहरी में आते है। यह प्रश्न तब उठता है , जब बगैर तलाक के पति-पत्नी अलग-अलग रहते हैं या रहने की क्रिया में होते हैं। श्री आर्चर ने "सिविल ला इन सन्ताल सोसाइटी" में लिखा है[१]—यह आवश्यक है कि मुकदमें के निर्णय के समय विवाह पर पुनः विचार हो। मुझे कुछ

१. W. G. Archer's report on Civil Law in Santal Soceity (अप्रकाशित)

ऐसे अवसर मिले हैं, जिन में माता-पिता के चलते या गलतफहमी के कारण पति-पत्नी के सम्बन्ध-विच्छेद का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। दोनों दलों में बातें कर ग्रामीण लोग समस्या को हल कर देते हैं। तलाक धन या कन्या धन का प्रश्न नही रहता। वे पुनः एक साथ रहते हैं। ······तलाक का जब निर्णय हो जाय, तब तलाक की शर्तें सन्ताली कानून के आधार पर होना चाहिए। ग्रामीणों के आदेश की उपेक्षा कोर्ट करता है, तब सन्ताल-कोर्ट अपना निर्णय देता है। जब पत्नी डायन हो जाती है, तब उसका पति तलाक दे देता है। डायनपन तलाक का बहुत बडा कारण है। केवल पति ही नहीं, उसके बच्चे भी उससे अलग रहना चाहते हैं। वे भी पृथक्करण की माग करते हैं। औरत जब यह स्वीकार करती है कि वह डायन हो गई है या गांव के लोग यह मानने लगे कि अमुक औरत डायन है, तब उस औरत को तलाक देना पडता है।"

तलाक की प्रथा प्रचलित है, पर जांच करने से ऐसा ज्ञात होता है कि तलाक की सख्या अधिक नही है। सन्ताल के कई लोक-गीत प्रचलित हैं, जिनमें तलाक द्वारा त्याग की हुई युवतियो की दर्द कहानियां व्यक्त हैं। सन्ताल अपने गृहस्थ जीवन के प्रति उदार हैं, उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक है। जब युवती अपने पति पर आरोप लगाती है कि उसका पति उसकी यौन-मांग को पूरा करने की क्षमता नही रखता है तब समाज उसे तलाक के द्वारा सहायता पहुँचाता है। सन्ताल कभी भी इस प्रकार के सम्बन्ध को चालू नहीं रहने देते हैं, जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि दोनों में यौन-सम्बन्ध का सन्तुलन नही है। सन्ताल अपने आचरण, अपने अहार-विहार, अपने रीति-रीवाज के प्रति भी सजग रहते हैं। उसमें उल्लंघन होने पर भी तलाक का प्रश्न उठ खड़ा होता है। श्री आर्चर ने बताया

है कि कुलायीपुरा के बरका सोरेन ने अपनी पत्नी को इसलिए तलाक दे कि वह कच्चा चावल खाती थी। सन्ताल कच्चा चावल केवल अपने बोगा को खाने को देता है। गाव मे बीमारी फैली ; सन्तालो को आशंका हुई की बरका सौरेन की पत्नी के आचरण से बोगा को कोप हुआ है, जिसके फलस्वरूप गाव को दण्डित होना पड रहा है। अतः बारका सोरेन ने तलाक दे दिया।



सन्तालों का मृतक-संस्कार

मृत्यु जीवन का एक चक्र है। जो जनमता है, वह मरता है— यह एक क्रिया है। यह एक सत्य है। इस पर कही किसी को मतभेद नही। सभी प्राणी को एक न-एक दिन मृत्यु का सामना करना पडता है। उससे कोई बच नही सकता, कोई भाग नही सकता। प्रत्येक समाज में, प्रत्येक जाति में मृतक-संस्कार होते हैं। उनके संस्कारों में भिन्नता होती है। सन्तालो का भी अपना मृतक संस्कार है। सन्ताल जब मरता है, तब उसका मृतक-संस्कार किया जाता है। सन्ताल मृतक-सस्कार को चार क्रम में क्रमशः सम्पन्न करते हैं। पहले क्रम को वे अग्नि-संस्कार कहते हैं। उसे दाव संस्कार भी कहा जाता है। इसके बाद तेल नहान, अस्थि-प्रवाह एवं भाण्डान की क्रियायें आरम्भ होती हैं। इन क्रमो में मृत्यु एक सामाजिक क्रिया के रूप में ग्रहण की जाती है।

सन्ताल जब मरने लगता है, तब घर-आंगन का दरवाजा खोल दिया

जाता है। यह इसलिए वे करते हैं कि उसकी शक्ति शांति पूर्वक घर से बाहर चली जाय। उन्हें भय रहता है कि यम जो मरने वाले व्यक्ति की शक्ति को लेने आया है, बन्द दरवाजा पाकर जीवित व्यक्ति को भी तंग करेगा। इसलिए वे दरवाजा खुला रखते हैं। जब उसकी मृत्यु हो जाती है, तब उसकी मृत्यु का सवाद गाँव के लोगो को ढोल बजाकर वे देते हैं। उसे तीन बार बजाते हैं— बाजा का स्वर होता है— कीरीम-डेब-डेबा। इन स्वरो से लोगों को मृतक व्यक्ति के घर आने को कहा जाता है। मृतक-व्यक्ति के अन्तिम दर्शन के लिए गाँव के सभी लोग उसके घर चले आते हैं। नारियाँ विशेष रूप से उसके शव के दर्शन में भाग लेती हैं। शव जब तक घर में रहता है तब तक उसे कोई अकेला नही छोड़ता है। कम से कम उसे पाँच आदमी घेरे रहते हैं। जब तक शव घर में रहता है, तब तक घर ही नही गाँव भी अशुद्ध समझा जाता है। इसलिए शव को वे बहुत शीघ्रता से हटाना चाहते हैं। पुरुष तो मृतात्मा की अन्त्येष्टि के लिए कर्त्तव्य-परायण हो जाते हैं, पर गाँव भर की महिलायें रोती रहती हैं। छोटे-छोटे बच्चो के शव को जंगल में ले जाकर गाड देते हैं। जहाँ जंगल नही है, वहाँ वे बाहर बाग–बगीचे में दफना देते हैं। चेचक की बीमारी से जो व्यक्ति मरते हैं, उन्हें वे जलाते नही हैं, उन्हें वे जमीन में गाड़ते हैं। कोढ रोग से पीडित व्यक्ति जब मरता है, तब उसे भी जमीन में दफनाते हैं उसे जलाते नही हैं। गाँव के माँझी एवं पारानिक संवाद पाने के बाद मृतक व्यक्ति के घर आते हैं। जो लोग उसके घर आते हैं, वे सभी शव को जलाने के लिए अपने साथ कुछ लकडी भी लेते आते हैं। सभी लोगो के आने के बाद शव को एक खाट (Cot) पर रखा जाता है। औरतें आती हैं, शव के सम्पूर्ण बदन

में वे तेल मलती हैं, उसके हाथ और पैर धोती हैं, उसके मुँह पर पानी छिटकती हैं। विवाहिता महिला का शव होने पर उसके भाल पर सेन्दूर का टीका लगाया जाता है। दाह-संस्कार के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन्हें जमा किया जाता है। वस्तुओं में धनुष, वाण धान का लावा; पुराना पखा; एक मुर्गी का बच्चा, थोडी-सी-हल्दी, छप्पर के थोडे से पुआल, बिनौला तथा मिट्टी का बर्तन का होना आवश्यक समझा जाता है। मृतक की निजी वस्तुएँ जैसे, थाली, कटोरी, धनुष-वाण लाठी, वशी, कपडे-लत्ते भी कफन में ढँक कर दाह-संस्कार के लिए सन्ताल ले जाते हैं। मृतक अगर औरत होती है तब उसकी चूडियाँ, कान की बाली, अन्य कुछ आभूषण कफन के नीचे ढँक दिया जाता है। इन वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ कपडा और एक लोटा और कपडे में कुछ पैसा बाँध दिया जाता है। परिवार कोष से भी मृतक को उपहार स्वरूप जो वस्तुयें मिलती हैं, उन्हे भी कफन के नीचे रख दिया जाता है। मृतक के प्रति परिवार उपहार देकर अपनी श्रद्धा प्रकट करता है, अपना सम्मान व्यक्त करता है। आवश्यक वस्तुएँ और उपहार मजिल पर रख दिये जाते हैं, तब उसे उठाते हैं। दो आदमी उन्हें और साथ देते हैं। मार्ग में शव को एक आदमी पखा झलता जाता है। गाँव के छोर पर पहुँचने पर मुर्दे को स्त्रियो के द्वारा तेल-हल्दी लगा दिया जाता है। इसके बाद शव पर लावा और बिनौलो को छीटा जाता है। शव को वे नदी के किनारे पर ले जाते हैं; अगर मृतक का अपना कोई जलाशय होता है या कोई बाँध होता है तब वही पर उसके शव को लाया जाता है, अन्यथा शव को सन्ताल अन्तिम क्रिया के लिए किसी नदी-नाला के पास ले जाते हैं। ऐसा भी देखा गया कि एक ही जगह पर सन्ताल और गैर-सन्ताल जलाये जाते

है। सन्ताल चिता को सारा कहते हैं। सारा उत्तर-दक्षिण बनायी जाती है। सारा के निर्माण में बड़ी सावधानी बरती जाती है। सारा लग-भग चार फीट ऊँचा बनती है। उसके चारों कोने पर मजबूत लकड़ी गाड़ी जाती है। उसके बीच में अन्य प्रकार की लकड़ी दी जाती है। किसी विशेष प्रकार की लकड़ी की उन्हें आवश्यकता नहीं होती। जहाँ जंगल है और सन्तालों को लकड़ी प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है, वहां वे जंगल से ही लकड़ी लेते हैं। जहाँ जंगल नहीं है, वहाँ सन्ताल अपने पेड़ काटकर या गांव या बाजार से लकड़ी खरीद कर शव जलाने के लिए लाते हैं।

सारा जब तैयार हो जाता है, तब मृतक के बदन से सभी कपड़े हटा दिये जाते हैं। जानम छठियार के समय उसकी कमर में जो धागा बांधा जाता है, वह धागा भी खोल दिया जाता है। शव की नग्नता को छिपाने के लिए उस पर पत्ती और लकड़ी डाल दी जाती है। जब शव को इस स्थिति में वे लाते हैं, तब वे मुर्गी का बलिदान करते हैं। सन्तालों का यह धारणा है कि मुर्गी का बलिदान कर वे मृतक को शांति प्रदान करते हैं। परलोक में मृतक को शान्ति मिल सके, इसलिए उसके साथ एक दूसरा जीव भी भेजते हैं। यमराज को एक दूसरा जीव भेंट करते हैं, ताकि उनके मृतक सम्बन्धी पर वे दया दृष्टि रखें।

इसके बाद शव को जलाने की क्रिया आरम्भ होती है। मृतक का उत्तराधिकारी उसको 'आगमुक' करता है। आगमुक का तात्पर्य है— मुँह में आग देना। जलती हुई रस्सी से थोड़ी आग ली जाती है और जब आग लग जाती है तब मृतक का उत्तराधिकारी दाहिने हाथ में आग की लुकटी लेता है और बायें हाथ में मृतक के कपड़े लेता है। वह लुकटी

से कपड़े में आग लगाता है और जैसे कपड़े से आग निकलती है, वह मृतक के मुँह से प्राण को स्पर्श कराता है। इसके बाद वह चिता में आग लगाता है। इसके बाद मृतक के जितने सम्बन्धी वहां उपस्थित रहते हैं, सभी एक-एक लकड़ी चिता पर डालते हैं। सभी उसमें आग लगाते हैं वे हाथ से अनुरोध करते हैं, वे कहते हैं— हे! मृतक देव, अब देर मत करें। पवन के समान वे जायें। मसाल की तरह जलें; हमने लकड़ी दी है और आग दिया है। तुम जलो और चले जाओ। आगमुक सामाजिक जीवन में बहुत महत्व रखता है। आगमुक वही करता है, जो उत्तराधिकारी होता है, निकट का सम्बन्धी होता है। मृतक व्यक्ति अगर पुरुष है, तब आगमुक निम्नलिखित क्रम[१] से दिया जाता है:—

(१) पुत्र
(२) पोता
(३) घर जँवाई दामाद-पुत्री के पुत्र, याने नाती
(४) बाप
(५) दादा
(६) भाई
(७) भाई का पुत्र
(८) चाचा
(९) भतीजा
(१०) घर जँवाई-बहन के पुत्र याने भांजा
(११) घर जँवाई दामाद
(१२) घर जँवाई बहनोई।

१. Mr. W. G. Archer's report on Civil law in Santal Soceity. (Unpublished)

(१३) बेटी, जिसकी शादी घर जँवाई से हुई है।

(१४) नौकर

(१५) गाँव का कोई भी व्यक्ति।

अगर मृतक आत्मा औरत है, तब उसको आगमुक इस क्रम से दिया जाता है:—

कुमारी	विवाहिता
(१) बाप	(१) पति
(२) दादा	(२) पुत्र
(३) भाई	(३) पोता
(४) भतीजा	(४) घर जवाई बेटो-दामाद के पुत्र, नाती
(५) चाचा	(५) ससुर
(६) चचेरा भाई	(६) ददीया ससुर
(७) चचेरा भतीजा	(७) चचीया ससुर
(८) ऐसी बहन का पुत्र, जिसकी घर जवाई शादी हुई हो।	(८) देवर
(९) बहन का घर जवांई पति	(९) पति के भाई के पुत्र
(१०) अभिभावक	(१०) ससुर के भाई के पुत्र
(११) ग्रामीण	(११) घर जवांई ननद के पुत्र
	(१२) घर जवांई दामाद
	(१३) घर जवांई ननद का पति
	(१४) पुत्री, जिसको शादी घर जवांई रूप से हुई हो।

(१५) नौकर

(१६) ग्रामीण

तलाक दी गई महिला का आगमुक उपर्युक्त कुमारी लड़कियों के क्रम से ही होता है। उसको अगर लड़का होता है तो उसे आग देने की अनुमति दी जाती है। विधवाओं को आग-दाह विवाहित महिला के क्रम से दिया जाता है। ऊपर दिये गये क्रम में अपवाद भी होता है। ऊपर क्रम के आदमी बाहर हों या बीमार हो या किसी कारणवश आग देने में असमर्थ हो तब उसके नीचे का आदमी आग देता है। साधारणतः उत्तराधिकारी ही आग देता है पर आग देने मात्र से ही वह उसका उत्तराधिकारी नहीं होता है। उत्तराधिकारी को प्रमाणित करने के लिए और भी तत्वों की आवश्यकता होती है।

जब चिता जलती रहती है, तब गाँव के लोग कुछ दूरी पर बैठकर दाढ़ी मुड़वाते हैं। आग देनेवाले व्यक्ति का सर मूड़ दिया जाता है। शरीर जल जाने के बाद आग आप ही आप शान्त हो जाती है। और जो अंगारे रह जाते हैं, उनपर पानी डाल कर शान्त कर दिया जाता है। उपस्थित सभी लोग अंगारो से हड्डियाँ खोजते हैं। उसे वे जनवाहा कहते हैं। जनवाहा का अर्थ होता है-'हड्डी-फूल'। आग देनेवाला व्यक्ति हड्डी की तीन टुकड़ी जमा करता है, एक टुकड़ी खोपड़ी की होती है, दूसरी

१. Mr. W. G. Archer's report of Civil Law in Santal Soceity (Unpublished).

२. Mr. W. J. Culshaw: Tribal Heritage—Page—152.

हड्डी की टुकड़ी बाजू की होती है और तीसरी हड्डी की टुकड़ी पट्टा की होती है। हड्डियों की टुकड़ियों पर हल्दी और चावल का अच्छत मिला कर लेप किया जाता है। उसे साफ किया जाता है। उसे एक बर्तन में रखा जाता है। बर्तन का मुँह ढक्कन देकर बन्द किया जाता है। ढक्कन में एक छेद किया रहता है। वह छेद इसलिए होता है कि मृत-आत्मा साँस ले सके। अवशेष को वे बहुत सुरक्षित रूप में रखते हैं। एक आदमी पानी लाता है, दूसरा उस पर पानी छीटता है। एक आदमी पंखा से अवशेष को फैलाता है; पखा चलाते समय राख से आग निकल जाय तो सन्ताल उसे विपदा के संकेत समझते हैं। उसे वे बुझाते हैं। मृत आत्मा के परिवार के लोगों को दण्ड देना पड़ता है। वे अवशेष को एक स्थान पर पुनः जमा करते हैं। जहाँ मृत-व्यक्ति जलाया जाता है, उस स्थान को जलाये जाने के बाद वे साफ करते हैं, गोबर-पानी से उसे लीपते हैं। अरवा चावल उस साफ किये स्थान पर वे छीटते हैं। उसे वे चावल बोना कहते हैं। विवाह के समय भी चौका चावल से ही पूरते हैं। अवशेष को वे दक्षिण से उत्तर की ओर लाँघते हैं। कुछ अवशेष को वे पंखा से ढँक देते है, प्रत्येक आदमी पंखा उठाकर अवशेष का दर्शन करता है और फिर उसे पंखा से ढँक देता है, सभी लोग मृत-घाट छोड़ देते हैं। वे अपने साथ उस बर्तन को लेते आते हैं, जिसमें मृत-आत्मा की हड्डियाँ रखी हुई रहती है। उसे वे एक वृक्ष के नीचे गाड़ देते हैं।

शव-यात्रा के सदस्यगण स्नान करते हैं। स्नान करने के बाद आगदेवा पाँच-पत्ता हाथ में रखता है, वह मिट्टी लेता है, दतुअन लेता है और हड्डियों के फूल को एक कपड़े में बाँधकर हाथ में रखे हुए पानी में प्रवेश

करता है, हड्डियों को पानी में शुद्ध करता है। वह बाहर आकर पानी छींटकर मरांग बुरू से कहता है–हे देव, यह आदमी गिरा, मर गया और चला गया। उसे राख में मत मिलाओ। अपनी सुरक्षा में उसे रखें। आप स्नान करें और अपने बालों को शुद्ध कर लें। इस प्रकार की प्रार्थना वह अपने पितरों से भी करता है। अन्त में वह मृत-आत्मा से प्रार्थना करता है–हे मृत-आत्मा! आज हम लोग तुम्हारे नाम पर स्नान कर रहे हैं, अपने बालों को शुद्ध कर रहे हैं। तुम राखों में मत रहो। तुमने अपना घर छोड़ा अपने बच्चों को छोड़ा, और अपने जानवरों को छोड़ा। जब सब चीज की तैयारी हम कर लेंगे, तब तुम्हें, हम तुम्हारे घर बुलायेंगे।" तीन से आठ वर्ष के बच्चा की जब हड्डियाँ रहती हैं, तब तो उस दिन उसका जल-प्रवाह कर दिया जाता है। अन्तिम श्राद्ध उसी समय कर दिया जाता है। इसके बाद चिता पर रखी गई चीजें बेच दी जाती हैं या बेचने के लिए गाँव के किसी आदमी को दे दी जाती हैं। उन चीजों की बिक्री से जो धनराशि प्राप्त होती है, वह गाँव की सम्पत्ति होती है। सामूहिक भोज पर वह खर्च होती है। जिस हजाम की सेवायें ली जाती है, उसे सामूहिक धनराशि में से दो आना पैसा दिया जाता है। शव-यात्रा के सदस्यगण गांव की गली की छोर पर आग जलाते है, वे दीया-बाती जलाते है, धुँआ लेते हैं और अपने सम्पूर्ण देह में धुँआ लगाते है। फिर वे अपने घर जाते हैं। वे उनसे कहते हैं, अधिक शोक मनाना उचित नहीं है। जो चला गया, वह भाग्यशाली था। हम सब को भी इसी भांति एक-न-एक दिन जाना है। फिर उसके लिए शोक क्यों? वे आगे चलकर उनसे कहते हैं–जाने वाला तो चला गया, पर तुम रो-धोकर, शोक मनाकर, मन छोटाकर अपने को कमजोर मत करो। तुमको जीवित

रहना है। खाम्रो-पीम्रो म्रौर म्रपना काम करो। म्रपने दिल पर पत्थर रखो। तुम यहां शोक मनाम्रोगे म्रौर यहां तुम्हारे म्रांसुम्रों से उन्हें कष्ट पहुँचता हो। उन्हें रो-धोकर कष्ट मत पहुँचाम्रो। शोक-संवेदना प्रकट करने वालों को घोंवाई पिलाया जाता है। पीने में वे ही शामिल होते हैं जो मृत-म्रात्मा के गोत्र के होते हैं। दूसरे गोत्र के लोग इस म्रवसर पर पीने की क्रिया में शामिल नहीं किये जाते हैं।[१]

शोक-संवेदना व्यक्त करनेवाले लोग जब चले हैं, तब मागदेवा मृतक के घर से एक नया बर्तन लाता है म्रौर हड्डियों को उसमें रखता है। वह उस बर्तन के ढक्कन में एक छेद करता है। उस पर घास रखता है। छेद से मृतक म्रात्मा बाहर म्रा सकती है म्रौर पुनः म्रन्दर उसमें जा सकती है। बर्तन पर हल्दी का लेप लगा दिया जाता है। गाव से बाहर एक वृक्ष के नीचे गाड़कर रख दिया जाता है। बर्तन का मुँह जमीन से ऊपर रहता है म्रौर उसकी सुरक्षा के लिए उसे पत्थर से ढँक दिया जाता है। पाच दिन तक मृतक-म्रात्मा का म्रवशेष गाव के बाहर इस प्रकार रखा रहता है।

सन्ताल म्रगर कोढ़ी हो या वह चेचक या थाइसीस, दम्मा या हैजा से मरा हुम्रा होता है, तब उसे जलाया नहीं जाता। उसे सन्ताल जमीन में गाड़ देते हैं। फिर भी म्रागमुक की प्रथा सम्पन्न होती है। उसके उत्तराधिकारी मृतक म्रात्मा के मुँह से म्राग स्पर्श कराता है। बच्चा जब

१. On this occasion who belongs to the same class as the dead person and his family may partake of the beer.

Mr. W.J. Culshaw, Tribal Heritage, Page-152.

बोलने के पूर्व मर जाता है तब वह अपने मरने का कारण नही बता सकता है, उसे सन्ताल गाड देते है। लकडी का जहाँ अभाव रहता है, वहाँ सन्ताल मृतक-आत्मा को जमीन में गाड देते है। गर्भवती स्त्री जब मर जाती है, तब उसके पेट से बच्चादानी को वे निकाल लेते है और बच्चेदानी को जमीन में गाड देते हैं, पर उसके शरीर को जला देते हैं।[२] जहां वे मुर्दों को गाड़ते हैं वहां वे तीन फीट गढ्ढा खोदते हैं, गढ्ढा उत्तर से दक्षिण की ओर रहता है। कब्र में एक कपड़ा बिछा दिया जाता है और उस पर शव को लिटा दिया जाता है। उसका उत्तराधिकारी आगमुक करता है। फूल पत्तियो तथा डालियो से ढँक दिया जाता है। आगमुक देनेवाला व्यक्ति मिट्टी देता है, गाव के लोग बाद में मिट्टी देते हैं। मिट्टी से गढ्ढा भर दिया जाता है। गोबर से लीपकर उसे पवित्र कर दिया जाता है, जानवरो से शव की रक्षा हो इसलिए उसके चारों ओर काटे लगा देते हैं।

पाच दिन के बाद तेल नहान होता है। गांव के लोग मृतक आदमी के घर पहुँचते हैं। यदि मृतक आदमी गरीब परिवार का होता है, तब वे पांच दिन नही ठहरते, जलाने के दिन सन्ध्या समय तेल नहान को खत्म कर देते हैं। कुछ लोगो के यहां यह तीन दिन के बाद होता है।

---

२. If a woman dies in pregnancy the foetus is removed from the belly and burried, but her own body is cremated.

From Mr. W. G. Archer's report on Civil Law in Santal Society (Unpublished.)

यह तेल-नहान की क्रिया सन्तालो की अपनी सुविधा पर होती है।[1] पर अधिकांश रूप में तेल नहान मरने के पांचवें दिन होता है। गाँव के लोग जब जमा होते हैं, तब मृतक के परिवार का कर्त्ता दरवाजे की चौकठ पर चोट देकर एक मुर्गी को मारता है। उसके एक पंख को और एक टांग को एक छड़ी में बांध दिया जाता है। मांस वे पकाते हैं। उसका कुछ अंश सड़क के चौराहा पर गांव से बाहर रख देते हैं। उसके कुछ अंश एक डलिया में बन्द कर देते हैं। उसे घर के बरान्डा में टांग देते हैं। जो खाना बच जाता है, उसे करमा के पत्ता पर रखकर आगदेवा बांये हाथ से खाता है। लोग जब मृतक के घर वापस आते हैं, तब बाहर रखे हुए जल में तीन बार अपने पैर के अंगूठे को डुबाते हैं। तेल नहान के दिन आदमी बाल कटाते हैं। बाद में स्नान करने जाते है। मिट्टी, खल्ली; तेल, तीन दतुमन और तीन-चार सखुआ का पत्ता लिये रहते हैं। एक ओर औरतें जाती हैं, दूसरी ओर मर्द जाते हैं। मिट्टी और खल्ली को वे तीन जगह बाटते हैं, तीन दतुमन को उसी प्रकार बांटते हैं। मिट्टी को बायें हाथ में लेकर देवी-देवता, पितर, पिलचुहाड़ाम और पिलचु बुढ़ी के नाम मन्त्र पढते हैं। उनका मन्त्र मृत-आत्मा के नाम इस प्रकार रहता है—

"ते तोबप्रम गोच् आकान गुर आकानिच्, तेहव दो तेल नहान मुतुम ते उमकान, नाडकान कानाले, त्ताम हो उमकोक् नाडका कोकमे।"

'हे मृत-आत्मा! आज तेल नहान के नाम अपने को नहाकर हम अपने को शुद्ध कर रहे हैं, तुम भी इसी तरह शुद्ध होवो"। अपने पितरों

१. Mr. W. J. Culshaw: Tribal Heritage. Page—153

को भी वे कहते हैं–'तेल नहान कर वे अपने को शुद्ध करें। पवित्र करें। पिलचुहाडाम और पिलचु बुढी से वे कहते हैं—वे भी तेल नहान कर अपने को शुद्ध करें और अपने पास मृतक-आत्मा को स्थान दें, उसे वे मार्ग-दर्शन दें। अन्त में मरांग बुरू के नाम पर भी मन्त्र वे पढते हैं—जो मरांग बुरू हम लोग तेल नहान के नाम से अपने को पवित्र कर रहे हैं, तुम भी अपने को पवित्र करो। इस मृत-आत्मा को शान्ति दो; मार्ग दो। नहाकर वे मृतक के घर वापस आ जाते हैं। नारियां भी नहाकर मृतक के घर वापस आ जाती हैं। मृतक आत्मा का पत्नी भोगी साड़ी में घर वापस आती है। वह उस स्थान पर जाती है, जहा उसका पति का देहान्त हुआ था। उस स्थान पर वह भीगे कपड़े को निचोड़ती है। मृत-आत्मा को बुलाते हैं। तीन आदमी 'रूम' करते हैं, याने झुपते हैं। तीन आत्माओं में–एक तो मृत-आत्मा होती है, दूसरा पौरोधोल (देवता) और तीसरा मरांग बुरू होता है। मरांग बुरू से गांव के लोग प्रार्थना करते हैं–हे गोसाई! आप क्यो झुप रहे हैं—हमलोग अन्धे हैं, आप मार्ग दें। हममें इतनी शक्ति दें कि हम आपको पहचान लें और आपकी सेवा करें। इसी प्रकार वे पौरोधोल से तथा मृतआत्मा से प्रश्न करते हैं। मरांग बुरू और पौरोधोल अपना परिचय देते हैं। मृत-आत्मा मौन रहती है। उस तीसरे आदमी के, जो मौन रहता है, माथे पर पानी फेंकता है, उसका मुँह धोता है, पीठ पर थप थप कर उसमें चेतना लाता है, जब उसमें चेतना जग जाती है, तब उससे वे पूछते हैं –हे गोसाई! तुम कौन हो, तुम्हारा परिचय मैं जानना चाहता हूँ। वे देवताओं से पूछते हैं-हे गोसांई! मेरे घर में मृत्यु क्यों हुई। देवता कहते हैं—जो पैदा होता है, वह मरता है, मरने से आदमी रोग-मुक्त हो जाता है। मृत-आत्मा से वे

जानकारी प्राप्त करते हैं—हे ! मृत आदमी आप कृपा कर बतायें। आपकी मृत्यु कैसे हुई। मृत आदमी बताता है—उसका दिन पूरा हो गया था, उसका काम भी पूरा हो गया था, अतः उसने संसार से विदा ले लिया। मृत-आत्मा को वे पानी देते हैं, वह भी पानी पीता है, पहले वह अपने परिवार के आदमियों के हाथ से पानी पीता है, तब गाँव के लोगों के हाथों से उसे पोचाई भी दिया जाता है। वह एक या दो कटोरा पीकर अपने को शान्त करता है। मरांग बुरू और पौरोघोल को एक दोना में पानी और दूसरे दोना में पीने को पोचाई दिया जाता है। मृत-आत्मा से वे पुनः प्रश्न करते हैं—हे मृत आत्मा हमलोग तुम्हारे अवशेष को नाम-गाडा (दामोदर नदी) ले जाना चाहते हैं। हमलोगों को आशीष दो कि मार्ग में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित न हो। मृत-आत्मा उन्हें आशीष देती है—तुम लोग हवा के समान जाओगे और हवा के ही समान लौट आओगे। तीनों को वे शान्त करते हैं और वे पुनः मनुष्य के रूप में आ जाते हैं।

इसके बाद एक पथला चूड़ा, तीन रोटी और एक पथला चावल को वे एक गठरी में बाँधते हैं और एक थैली में रखते हैं; थैली मृत-आदमी के कपड़े की बनायी जाती है। पुरुष लोग थैली लिए गाँव की गली की अन्तिम छोर पर जाते हैं, औरतें भी कटोरी में पानी और हल्दी लिये जाती हैं। तीन आदमी को अवशेष लाने को भेजा जाता है, वे आग लिये जाते हैं। उस क्रिया को वे 'बुढी कुम्बा' कहते हैं। आते समय तीन लकड़ी की टुकड़ी लेते आते हैं। तीनों को एक में बाँधते हैं। अवशेष पर हल्दी और पानी डालते हैं। मृत-आत्मा का उत्तराधिकारी उस अव-शेष को मृतक के पुराने कपड़े की थैली में रखता है। वह तीन बार परि-

क्रमा करता है, फिर उसे लकड़ी से मारकर फोड़ देता है। सब लोग घर लौट आते हैं। तीन आदमी अवशेष को लेकर बाहर चला जाता है। वे भी लौट आते हैं। लौटने पर भोज की तैयारी होती है। एक दोना में भात, तरकारी और पानी मृत आत्मा के लिए निकाल दिया जाता है।

जब इस प्रकार का कार्यक्रम चलता रहता है, तब जदुपति[1] का काम आरम्भ होता है। वह मृत्यु-दिवस को या उसके बाद मृतक के घर आता है। वह अधिकारी एवं भिखमंगा दोनों रूपों में आता है। वह कुछ चित्र अपने साथ लाता है; उन चित्रों में सृष्टि का निर्माण, बाहा पर्व, यम लोक, कृष्ण और काली जी का दर्शन मृतक के परिवार को वह कराता है। वह एक रेखाचित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें मृतक को चित्र में दिखाया रहता है। जदुपति मृतक आदमी की धनराशि को दृष्टि में रखकर उस चित्र में मृतक के साथ मुर्गी-मुर्गा, गाय, थाली, लोटा आदि दिखलाता है। जदुपति को मृत आदमी के परिवार के लोग इस प्रदर्शन के लिए दाम भी देते हैं।

तेल नहान के बाद अस्थि विसर्जन का समय निर्धारित किया जाता है। वे दामोदर में अस्थि का विसर्जन करते हैं। दामोदर नदी में जाने का कोई निश्चित समय नहीं है। जो सन्ताल दामोदर नदी के निकट रहते हैं, वे उसी दिन अस्थि प्रवाहित कर देते हैं। जो दूर रहते हैं, वे अपनी सुविधा के अनुसार प्रवाहित करते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी देखने को मिला है कि अस्थि-विसर्जन एक-एक दो-दो वर्ष के बाद भी हुए हैं। साधारणतः अगहन मास में विसर्जन किया जाता है। जाने के पहले खाने-पीने का उन्हें प्रबन्ध करना पड़ता है। वे अपने साथ तीन हाथ का कपड़ा, पाँच फूटी कौड़ी, एक बाला, थोड़ा-सा सेन्दूर,

एक सेर चूड़ा, तीन रोटी, एक सेर चावल आदि सामान लिये जाते हैं। कई अस्थि-विसर्जन एक ही साथ करते हैं। जाने के दिन गाँव के लोग मृतक के घर पधारते हैं, वे पोचाई पीते हैं। मरागबुरू, पौरोघोल और मृतक को बुलाते हैं, उन्हें सूचित करते हैं कि अस्थि-विसर्जन के लिए दामोदर नदी जा रहे हैं। मेरे सर में दर्द नहीं हो, पेट में दर्द नहीं हो, मार्ग में किसी विघ्न-बाधा का सामना न करना पड़े। मृतक कहता है-"तुम लोगों की सुरक्षा की जायेगी; हवा के समान जाओ और आओ।"

नामगाडा में निम्नलिखित घाट मुख्य हैं, जहाँ अस्थि विसर्जन होता है—गाय घाट, तिरियो घाट, तेल कुपी बारती घाट, हातकुन्डा बन्दा घाट, हाडा मागा और दामालिया घाट। कुछ लोग गुपानाय में अस्थि-विसर्जन करते हैं। घाट पर अस्थि को ले जाने के लिए आगदेवा हड्डियों को निकालते है, औरतें उस पर हल्दी लगाती हैं, दूध से धोती हैं। मुर्गी के कान काट कर उसके खून में चावल को वे भिगाते हैं, भोजन के लिए एक दिन नियत किया जाता है। उस अवसर पर जिस जानवर का बलिदान करने का वे निश्चय करते हैं, उसके अंग को काटकर खून निकालते हैं और उसे भी चावल में मिलाते हैं।[१] खून से रंगा हुआ चावल पत्ते के एक दोने मे वे रखते हैं, दूसरे दोने मे एक पैसा और कुछ सेन्दूर रखते हैं। आगदेवा नयी धोती पहनता है और हड्डियो को अपने हाथो में रखता है। वे लोग इस प्रकार दामोदर नदी के लिए प्रस्थान करते है। साधारणतः आग देवा अकेले नही जाता है, वह अपने साथ कुछ लोगो को लेकर जाता है। दामोदर नदी दूर होने के कारण गाँव के निकटतम नदी, नाला या तालाब में भी वे अस्थि-विसर्जन कर देते हैं। मृतक को अपना तालाब होता है तब उसकी अस्थि उसी तालाब में विसर्जित की

जाती है। नजदीक में नदी नही होने पर वे गड्ढा खोदकर पानी निकालते हैं या उसमें पानी भर देते हैं और अस्थि को उसीमें प्रवाहित कर देते हैं। आगदेवा के साथ वे भी जाते हैं जिन्होने चिता का निर्माण किया था। उनके हाथ में एक बर्तन होता है, दूसरे मे झाड़ू। गाँव की पश्चिम छोर पर आगदेवा जमीन पर बैठ जाता है और चिता निर्माणकर्त्ता मुर्गी का बलिदान करता है। वह रोता है, कलपता है। बर्तन को फोड देता है–झाड़ू को फेंक देता है।

आगदेवा या उसके साथ में गये हुए आदमी दामोदर नदी में जाकर घाट खरीदते हैं। घाट की खरीद बहुत कम पैसे पर होनी है। पहले तो कौडी पर घाट खरीदा जाता था, अब एक से चार पैसा तक दिया जाता है। घाट पर मृतक का कुर्त्ता या धोती भी रख दिया जाता है। सेन्दूर से तीन खडी लकीर घाट पर खीच कर वे स्नान के लिए वे दामोदर में उतरते हैं। नदी में समाकर बालू में एक गड्ढा वे करते हैं, अस्थि को स्नान कराते हैं, फिर उसे चावल के साथ सूर्य्य को ओर निहारते हुए प्रवाहित कर देते हैं। नहाकर वे घाट पर आते हैं, पहने हुए कपड़े को आगदेवा उतार देता है–वह घाटवाले का होता है। आगदेवा मिट्टी लेता है, तीन पत्ता पर रखता है, तीन दतुअन भी उसपर रखता है और मन्त्र पढ़ता है–'जोहार तोवे आम सोच् आकान बिन्दाङ आकानिच्, नोक्‌ओथ इञ दोञ गगां गायायेद् मेया इञ होंञ उमेन नाङका येना आम हो उम नाङका कोक् में'—'हे मृत आत्मा! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, अब मैं तुम्हारा विसर्जन करता हूँ। मैं भी पवित्र हुआ, तुम भी पवित्र होवो!' इस प्रकार का मन्त्र वे अपने पितरो के नाम भी पढ़ते हैं। पिलचु हाड़ाम एवं पिलचु बुढ़ी के लिए भी यह मन्त्र पढ़ा जाता है; इसके बाद

पौरोघोल एवं मरांग बुरू के लिए भी मन्त्र पढा जाता है। इसके बाद वे घाट पर तीन पत्ता पर चूडा रखते हैं और उस पर एक-एक रोटी भी रखते हैं। फिर मन्त्र पढते हैं, मृतक, देवता-पित्तर का प्रसाद समझकर उस अर्पित चीज को खा लेते हैं। जो चीज घर से ले जाते हैं, उसे वे वापस नहीं लाते हैं, वे डोमो को वहीं बाँट देते हैं। वहाँ से प्रस्थान करते समय तीन बार हरिबोल या राम-नाम का उच्चारण करते हैं। घर लौट कर सभी आदमी मृतक के घर पहले जाते हैं, वहाँ भोज खाते हैं, उस भोज में जोगमाँझी और परमानिक आदि भी शामिल रहते हैं। वे पोचाई पीते हैं। लोगों से कुशल क्षेम बताते हैं। अस्थि-विसर्जन से मृतक को अस्थायी जेल से मुक्ति मिल जाती है। अब वह पारिवारिक बोंगा बन जाता है। फिर भी मृतक को शान्ति नहीं मिलती है। वह यमराज के राज्य में तबतक प्रवेश नहीं करता है, जबतक उसे अन्तिम बिदाई नहीं होती है।

अन्तिम बिदाई को सन्ताल भण्डान मानते हैं। भण्डान मृतक की अन्तिम क्रिया है। उसमें मृतक के लिए प्रायश्चित किया जाता है। भण्डान के पूर्व पोचाई तथा अन्य खाने के सामान का सग्रह किया जाता है। भण्डान के लिए गाँव के लोग और मृतक के सम्बन्धी मृतक के घर में जमा होते है, वे हजामत बनाते हैं, स्नान करते हैं, फिर मृतक के घर में उपस्थित होते हैं। उन्हें खाने के लिए भात और पीने के लिए पोचाई दी जाती है। आगदेवा मृतक, पौरोघोल एवं मरांग बुरू का आह्वान करता है। मृतक जब अपना परिचय देता है तब लोग कहते हैं-लो! यह तुम्हारा हिस्सा है। वह भोजन करता है। पानी माँगता है, गाँव के लोग और उसके सम्बन्धी सभी उसे पानी पीने को देते हैं। पानी पीने के बाद पुनः अपनी मृत्यु का वह कारण बताता है। उसके परिवार के लोग प्रार्थना

करते हैं—'हमलोग को शान्ति पूर्वक रहने दो, हमलोगों को कष्ट मत दो; कोई चीज लेकर मत जाओ।'

जोगमाँझी आँगन में हरा सखुआ की एक डाल गाड़ता है। आगदेवा मुर्गी की बलि देता है। उसके सम्बन्धी मुर्गी, सूअर या बकरा की बलि देते हैं। बलि देते हुए मन्त्र पढ़ते हैं—ने तो बे फालना (मृतक का नाम लेकर) बाटाक् बाखरावाक् एमाम चालाम कनाले, कुशीते कुशलते, आताड़ तोलोयाम, नियागे चेरेच् के माराङ्ग केया बापू ठाकुर तिञ दो।" अर्थात् हे मृत आत्मा। तुम्हारा हिस्सा है, ले लो और खुशमन से इसे ग्रहण करो। इसके बाद सब सम्बन्धी अपनी-अपनी बलि चढ़ाते हैं और बलि चढ़ाने के समय ऊपर दिये गये मन्त्र दोहराते हैं। इसी प्रकार पोचाई को भी उसी मन्त्र के साथ मृत्त-आत्मा के नाम से ढालते हैं। बलि किया हुआ जानवर, जिस ओर गिरता है उसकी निगरानी की जाती है। उस पशु के सर से गोड़ तक का अग गाँव के लोगों का होता है, गर्दन हजाम का होता है। बाकी का तीन भाग किया जाता है। पहले भाग को चावल के साथ पकाया जाता है, गाँव और घर के सभी लोग खाते हैं। दूसरे अंश को गाँव के लोगों के बीच बे बाँटते हैं। गाँव के लोग अपने अंश को घर ले जाते है। तीसरा अंश मृतक के परिवार को मिलता है। भाण्डान जो करता है उसे हड्डी मिलती है।

बलि चढ़ाये हुए अन्य जानवरों का विभाजन वे करते हैं। श्री आर्चर ने उनकी विभाजन की क्रियाओं को इस क्रम में रखा है:—

मुर्गी, बकरी, सुअर को दो भाग में काटा जाता है। बलि अर्पित किये हुए जानवर का एक पक्ष और उसका माथा बलि अर्पण करनेवाले व्यक्ति को प्राप्त होता है और उसके दूसरे पक्ष को तीन भाग में काटा

जाता है। एक भाग गाँव के लोगों का होता, दूसरा भाग भण्डान करने वाले व्यक्ति को मिलता है और तीसरा भाग जिसका जानवर होता है, उसे मिलता है। तीसरे भाग को पकाया जाता है और वहीं खाया जाता है। मृतक आदमी के समधी भी उसमें भाग लेते हैं। वे अपने साथ बलि के लिए दो जानवर, दस सेर चावल और दो बर्तन में भरा हुआ पोचाई लाते हैं। वह विधवा या विधुर के लिए एक नयी साड़ी या एक नयी धोती लाते हैं। एक जानवर की बलि और लोगों की तरह भण्डान के दिन होता है और दूसरे जानवर की बलि जिस दिन वे अपने घर वापस जाते हैं, उस दिन होती है। दूसरे जानवर के पैर और माथा को छोड़कर बाकी अंश समधी अपने घर ले जाते हैं। लौटते समय मृतक के घर से उन्हें पाँच सेर चावल और एक भार पोचाई से भरा हुआ बर्तन मिलता है। मुर्गी की जब बलि होती है, तब उसके मांस को तीन भागों में बाँट दिया जाता है, एक भाग भण्डान करनेवाले को मिलता है, दूसरा भाग पकता है और वहीं लोग उसे खा जाते हैं, और तीसरा भाग गाँव वालों का होता है। खाना पक जाने के बाद सबसे पहिले आगदेवा मृतक को खाना देता है। वह खाना देते हुए कहता है—हे मृत आत्मा ! आज हमलोग तुमको खाने के लिए भात दे रहे हैं। इसे लो और खुशी से खाओ। अपने बच्चों की ओर देखो, उनकी सुरक्षा करो; अपने रास्ते खुशी से जाओ। दुख या चिन्ता से घर को मुक्त करो। पोचाई भी इस प्रकार उसे दिया जाता है। इसके बाद गाँव के लोग खाते हैं। गाँव के लोग गली में खाते हैं, इसे सन्ताल में कुल्ही सुरा कहते हैं—जिसका अर्थ होता है—गली का भोज।

श्राद्ध होने के बाद मृतक अपने पूर्वजों में जा मिलता है। वह यमराज की प्रजा हो जाता है। ऐसे तो यमराजा के आदेशानुसार उन्हें रहना

पड़ता है, पर उन्हें स्वतन्त्रता भी मिलती है, कुछ अवधि के लिए घर आने के लिए। भामों के बीच रहते हुए भी वे अपने घर, गाँव, परिवार को नहीं भूलते हैं। घर की जानकारी वे रखते हैं, भारण्डान होते ही घर पवित्र हो जाता है, घर की महिलायें सेन्दूर लगाती हैं, शादी-विवाह होता है। जबतक भारण्डान नहीं होता है, तबतक कोई शुभ काम नहीं हो सकता है। विशेष परिस्थिति में वे छोटे रूप में भारण्डान करते हैं। आगदेवा के नदी मे अस्थि-विसर्जन मे आने के बाद मुर्गी की बलि होती है, भात पकता है। मृतक एवं पितरों को उसे समर्पित किया जाता है। मृतक मे खाने को कहा जाता है। इस प्रकार भारण्डान की क्रिया समाप्त होती है, शादी-विवाह होने लगता है–बोंगा की पूजा होने लगती है और आगदेवा को शुद्ध घोषित किया जाता है। लोगो को भात खिलाया जाता है, पोचाई पिलाया जाता है। कुछ अर्से के बाद पूरे रूप मे भारण्डान होता है। सन्ताल को भय रहता है कि पूरे रूप से भारण्डान न करने मे मृतक आदमी को शान्ति नहीं मिलती है, वह बेचैन रहते हैं।

मृतक-संस्कार पर कितना खर्च पड़ता है, यह कोई निर्धारित नहीं है। यह मृतक की स्थिति पर निर्भर करता है। मृतक-संस्कार पर खर्च सन्ताल कानून के अन्तर्गत होता है। इस संस्कार को पूरा करने का उत्तरादायित्व परिवार के कर्त्ता का होता है। संयुक्त परिवार का वरिष्ठ कर्त्ता इस काम को पूरा करता है। नारी के दाह-संस्कार का उत्तरदायित्व कुमारी अवस्था में उसके पिता का होता है, विवाहिता की स्थिति में उसके पति का है। मायके में कोई विवाहिता लड़की मर जाती है, तब भी उसके दाह-संस्कार का उत्तरदायित्व उसके पति के ऊपर है। उसकी अनुप-

स्थिति में दाह-संस्कार कर दिया जाता है, फिर भी 'हड्डियों के फूल' का अधिकारी उसका पति ही होता है। वह अपने ससुराल आता है और हड्डियों के फूल अपने गाँव ले जाता है। दाह-संस्कार पर जितना खर्च होता है, उसका देनदार उसका पति होता है। कर्त्ता के देहान्त होने पर उसके उत्तराधिकारी को दाह संस्कार करना पड़ता है। पिता का आगदेवा तो बड़ा लड़का होता है, पर दाहसंस्कार का उत्तरदायित्व सभी लड़कों पर रहता है। मरने के बाद भी सन्तालो का अपने परिवार में स्थान रहता है। वह घर का शुभचिंतक समझा जाता है। इसके लिए उसकी अर्चना होती है, सम्मान प्रकट किया जाता है। मृतक की उपेक्षा करने पर घर में रोग, शोक तथा महामारी का प्रकोप होता है। यही कारण है सन्ताल अपने पुरखो को खाते समय, पर्व मनाते समय और जन्म या विवाह के अवसर पर याद करते है। सोहराय या बाहा के अवसर उनके नाम से बलि चढ़ायी जाती है।[१]

---

१ If this conventional homage is given, the dead do not intervene in human affairs. Yet in every phase of life their influence is seen. They are "unacknowledged legislators" "the guardians of the faith" "the army of Law". Their views and acts are constantly cited. They are honoured source of tribal traditions. It is with the ancestors, that the village sits to settle weddings discuss affairs and adjudicate disputes. It is the dead who with the living are the makers and maintainers of tribal law—Mr. W. G. Archer—Report on Civil Law in Santhal Pargana.

अध्यात्म-दर्शन



● विज्ञान ने मानव के विश्वास में थोडा हलचल पैदा किया है। कुछ लोग उसके चलते अपने विश्वासो में आशका प्रगट करने लगे हैं। पर सन्तालो पर विज्ञान का प्रभाव नही पडा है। अतः उनका विश्वास नही हिला है, नही डोला है।

● सन्ताल अपनी धार्मिक भावनाओ के माध्यम से अपने सामाजिक सगठन को मजबूत करते हैं। उनमें सामाजिक जिम्मेवारियाँ आती हैं, उनकी सामाजिक चेतना जगती है। वह अपने से ही नही, अपने मृतक आत्माओ से भी सम्बन्ध रखते हैं। सन्ताल अपनी धार्मिक पूजा एवं अनुष्ठान के द्वारा मानव-जीवन की कहानी को रखते आये हैं। सन्तालों की धार्मिक भावनाओ से हमें उनके सामाजिक जीवन की एक झाँकी मिलती है।

● वरियार इलविन ने कहा है—जब आदिवासी ईसाई होते हैं, तब वे ऐसा अनुभव करते हैं कि जिस सामाजिक एव नैतिक वातावरण में वे पले हैं, उससे वे दूर हो जाते हैं, स्वतन्त्र एवं प्राकृतिक आमोद-प्रमोदो से, जिन्हें वे बहुत प्यार करते थे, उनका सम्बन्ध टूट जाता है।

धार्मिक-संस्कार : एक समीक्षा

मानव एक क्रियाशील व्यक्ति है। उसकी हर क्रियायें उद्देश्य रखती हैं। यही कारण है कि मानव की क्रियायें सदैव लक्ष्य की ओर उन्मुख रहती हैं। मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है—आनन्द-प्राप्त करना। विघ्न-बाधाओं से अपने को सुरक्षित करना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। जीवन-चक्र चल रहा है--मानव उसी चक्र में पडा है। सर्वत्र जीवन में उसे सुख-दुःख का अनुभव होता है। मानव यह जानना चाहता है कि उसे सुख किस कारणवश प्राप्त होता है, दुःख का भी वह विश्लेषण करता है। मानव युगो से यह प्रयास कर रहा है—जीवन उसका है, वह उसे अपने ढंग से बनायेगा। पर अबतक उसे सफलता नही मिली है। वह प्रकृति पर अपना नियत्रण चाहता है; चाहता है प्रकृति सदैव उसके लाभ में हो। सुख और दुःख के कारण और परिणाम पर उसने विचारा है। यह विचारने का क्रम उसका बहुत युगो से चल रहा है। उसने बहुत साधन जमा किया है। अब उसे यह ज्ञान होने लगा कि अपने जीवन की समस्याओं का हल वह निकाल सकता है, पर उस हल का स्वरूप कब कैसा रहेगा- यह वह नही कह सकता। अनिश्चितता की स्थिति में वह रहता है। जहाँ ऐसी स्थिति रहती है, वहाँ शान्ति नही रहती है। चिन्ता बनी रहती है। अब क्या होगा—यही चिन्ता रहती है। चिन्ता से मुक्ति के लिए—जादू का सहारा मानव ने आरम्भ में लिया था। आज भी, सभ्य हो जाने के बाद में भी जादू से पूर्णतः ममता उसकी नहीं टूटी है। सन्तालों में मात्रा की दृष्टि से जादू पर विश्वास अन्य तथाकथित सभ्य लोगो से

अधिक है। प्रत्येक मानव समाज मे एक विश्वास बना हुआ है। विश्वास के स्वरूप भेद भले ही हो ; पर विश्वास के बगैर आधार बनाये मानव जीवित नही रह सकता। पर विश्वास स्थिर नही है, समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन होता रहा है। जादू और टोना में विश्वास रखने वाले-सन्तालो के जीवन में भी एक स्थिति आयी। ऐसी स्थिति प्रत्येक मानव समाज में आयी है। मानव को यह ज्ञान हुआ कि जो कारण उसने समझा था, वह कारण नही था ; और जो उसने कल्पना के सहारे काम किया था, वह भी व्यर्थ हुआ। उसने सोचना आरम्भ किया कि बगैर उसके या उसके आदमियो के सहयोग के यह संसार चल रहा है, तब एक अदृष्ट शक्ति है ; जो उससे अधिक शक्तिशाली है। वह सारी घटनाओं का सूत्रधार है।[१] मानव की इस धारणा ने इस विश्वास को जन्म दिया कि संसार में एक अदृश्य शक्ति है जो प्राकृतिक शक्ति से महान है, वह मानव का भाग्यविधात्रिय है। उसी के सकेत पर मानव चलता है। सन्तालो में भी अन्य मानव की भाँति यह भावना आयी। अदृश्य शक्ति के प्रति सन्तालो में जो विश्वास और धारणा है, उसका भी क्रमिक विकास अन्य मानव-जाति की तरह हुआ है। यह हो सकता है कि उनके विश्वास की गति औरो के समान नही हो, पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अपने विश्वासो के प्रति वे अन्य से कम दृढव्रती नही हैं। विज्ञान ने मानव के विश्वास में थोड़ा हलचल पैदा किया है, कुछ लोगो में अपने विश्वास पर आशंका भी होने लगी है। पर सन्तालो पर विज्ञान का प्रभाव नही पड़ा है। अतः उनका विश्वास नही हिला है-नही डोला है।

---

१ Fraser, J. G. (1952) – The Golden Bough. Page 57-58.

साधारणतः सन्ताली ने अदृश्य शक्ति को दो वर्गों में रखा है—एक वर्ग में वे रखी गई हैं, जिनसे हानि की सम्भावना है और दूसरी श्रेणी में वे रखी गई हैं—जिनसे मानव का कल्याण होता है। बुरा और भला में विभाजक रेखा है—यह सब जानता है।[१] अचेतनशील प्राणियो को भले इस विभाजक रेखा का ज्ञान नही हो। पर चेतनशील व्यक्ति के लिए बुराई एक समस्या बनी हुई है। सत्य तो यह है, यह समस्या सबसे परे है। बुरा क्या है, इस प्रश्न से हम भागना चाहते हैं। पर हम लोग भाग नही पाते हैं। यह चिर-सत्य है कि भला और बुरा में संघर्ष होता रहा है। सन्ताल मानते हैं कि बुरी और भली दोनो शक्तियाँ समान हैं। भली शक्तियो की आराधना करते हैं, पर बुरी शक्तियों की वे उपेक्षा नही करते। भली शक्तियो की अर्चना वे श्रद्धा से करते हैं और बुरी शक्तियों की आराधना वे भय से करते हैं। बुरी शक्तियों की उपेक्षा कर वह किसी भी कार्य का सम्पादन नही कर सकते। सन्तालों को विश्वास है कि बुरी शक्तियों की आराधना कर उसे शान्त कर कोई अच्छा कार्य किया जा सकता है। हिन्दू संस्कारो में भी यह बात पायी जाती है। कोई भी शुभ काम करने के पूर्व हम दुष्टग्रहो को शान्त करते हैं; उनसे आग्रह करते हैं—वह तबतक शान्त रहें, जबतक वह शुभ काम में लगे हुए हैं। सन्तालों में यह मानवी प्रवृत्ति पायी जाती है कि जितना वे भली शक्तियों के प्रति श्रद्धा नही व्यक्त करते, उससे अधिक बुरी शक्तियों की अर्चना करते हैं। उससे वे भय कम्पित रहते हैं। सन्ताल अपने को बुरी शक्तियों एवं डायन, भूत-प्रेतों से घिरे पाते हैं। इससे वे राहत चाहते हैं। इसी चाह से उनके

१ Rev. John Hoffmann (1938) Encyclopaedia Mundarika.

हृदय में ईश्वरीय शक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। वे अदृश्य की पूजा करते हैं।

सन्तालों ने अपने गाँव का संघटन केवल सामाजिक व्यवस्था के लिए ही नहीं किया है। उनका ग्रामीण संघटन उनकी धार्मिक भावनाओं को भी प्रभावित करता है।[1] सन्तालो एवं अदृश्य शक्तियो में सन्तुलन स्थापित करने में ग्रामीण अधिकारियो का हाथ रहता है। सन्ताल समाज में धार्मिक-अनुष्ठान उनके द्वारा ही सम्पन्न होता है, गाँव के पुरोहित को वे नेकी कहते हैं। वह अदृश्य शक्तियों से सन्तालों को सम्बन्धित रखता है। वह गाँव के कल्याण के लिए उत्तरदायी होता है। सन्तालो को विश्वास है, अगर वह अपना काम ठीक से नहीं निभा सकता है, तब सारा गाँव रोगी हो जायेगा, सर्वत्र विपदा फैल जायेगी। गाँव के पुरोहित को अपनी जिम्मेवारी का ज्ञान रहता है। गाँव के पुरोहित को ग्रामीण लोग नियुक्त नहीं करते; उन्हें वे ईश्वरीय शक्तियाँ नियुक्त करती हैं, जिनकी वे आराधना करते हैं। पुरोहित के मरने के बाद उसके उत्तराधिकारी को अदृश्य शक्तियाँ अपने प्रभार में ले लेती हैं। सन्ताल इसे रूम कहते हैं। रूम के द्वारा अदृश्य शक्तियाँ अपनी इच्छाओं को व्यक्त करती हैं। यह सत्य है कि पुरोहित के उत्तराधिकारी को अदृश्य शक्ति मनोनीत करती है, पर सामान्यत. मृत पुरोहित के बड़े लड़के को यह काम वे सौंपती हैं। कभी ऐसा भी होता है कि मृत-व्यक्ति के भाई को यह पद दिया जाता है। ट्राइबल हिरिटेज में श्री डब्लू० जे० कूलशा ने इस उत्तराधिकार के सम्बन्ध में दो कारण बताया है—पहली बात तो यह है कि मृत-पुरोहित के पुत्र को एक सुविधा प्राप्त होती है कि उसने अपने पिता के कार्यों को देखा है और

१ Shri W. J. Culshaw Tribal Heritage—Page 7

उसका लालन-पालन एक धार्मिक-वातावरण में हुआ है, इसलिए पुरोहित की जिम्मेवारियों को वह समझता है। दूसरा कारण है नेमी को नियुक्ति के समय जमीन मिलती है, जमीन का हस्तान्तरण सन्ताल में नहीं होता है। इस कारण पुरोहित का कार्य एक परिवार के हाथ में रहता है।[१]

सभी नृतत्ववेत्ता मानते हैं कि सन्तालों को ईश्वरीय शक्ति में विश्वास है। पर उनके ईश्वरीय शक्ति के नामकरण को लेकर नृतत्व विज्ञान के विद्वानों में मतान्तर है। उनमें एक मत नहीं है। डाल्टन के अनुसार उनकी ईश्वरी शक्ति का नाम सिंग बोंगा है।[२] रिसले ने उनके देवता को ठाकुर कहा है।[3] इसरेफ सोर्ड के मतो का उसने अपना आधार बनाया है। श्री ई० जी० मैन[४] ने सन्तालो के देवता का नाम कान्दू या चान्दू बोंगा कहा है। बमपास[५] ने उनकी ईश्वरी शक्ति को ठाकुर कहकर याद किया है। श्री बोडिंग[६] ने सन्ताल परगना के मोहन पहाड़ी क्षेत्र में काफी अर्से तक काम किया था, उन्होंने चन्दू को ईश्वरी शक्ति के रूप में माना था। वही उनका निर्माण करता है, वही उनका विनाश करता है। श्री पी० सी० विश्वास ने माना है कि सन्ताल ईश्वर को चन्दू कहते हैं, सूर्य

१. Mr. W. J. Culshaw. Tribal Heritage; Page-7

२ Shri P. C. Biswas : Primitive Religion, Social organisation, Law & Government amongst the Santhal—Page 18

३ Risley : People of India, Appendix VII Page 446

४ E. G. Man : Santhal & Sonthalia, chapter VI

५ Bompass: Folklore of the Santhal Parganas Page 402

६ Shri P.O. Bodding : Traditions and institution of Santhal, Page 48

को सिन कान्हू और चाँद को निदा कान्हू ।[१]

सन्ताल मन्दिर नहीं बनाते हैं, मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं। वे पहाड़, तालाब, नदी और गुफा को श्रद्धा से देखते हैं। उन्हें यह आशंका रहती है कि शक्तियों का निवासस्थान सब जगह है। बोंगा से वे श्रद्धा से अधिक आशंकित रहते हैं। बोंगा की उदारतामें विश्वास रखते हुए भी उन्हें सदैव यह भय रहता है कि वे उन्हें दण्डित कर सकते हैं, उन्हें वे तंग कर सकते हैं। बोंगा भूखा रहते हैं, असन्तुष्ट रहते हैं, और क्रोधी होते हैं। सन्ताल को ईश्वरी शक्ति से लेकर साधारण शक्तियों तक में विश्वास है। सन्तालों को विश्वास है कि वे भी जीवन के क्रम में बोंगा हो जा सकते हैं। मरने के बाद सन्ताल अपने पूर्वजों की श्रेणी में आ जाता है और अपने मृत पूर्वजों की भाँति वह भी बोंगा हो जाता है, उसकी भी पूजा होती है। वे उनकी अर्चना करते हैं, बलिदान चढ़ाते हैं, भोजन कराते हैं।

मरांग बुरू उनका ईश्वर है। उनमें सारी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। 'मरांग बुरू' का अर्थ होता है–'बड़ा पहाड़'। मरांग बुरू को वे लीटा भी कहते हैं। लीटा का उल्लेख सन्तालों की कहानियों में विशेष रूप से है। अच्छे और बुरे–दोनों अवसर पर मरांग बुरू की पूजा वे करते हैं। सन्तालों की कहानियों से पता चलता है कि पहले सभी बोंगा ईश्वर के सन्देश वाहक थे।[२] सन्ताल भी समझते थे कि बोंगा जो भी करता है, वह मरांग बुरू

---

१. Shree P. C. Biswas– Primitive Religions, Social Organisation, Law and Government amongst the Santals.

२. Mr. W. J. Culshaw–Tribal Heritage. page-80

के आदेशानुसार। पर ऐसी बात बाद में नहीं रही। बोंगा ने कहा— सब काम वे करते हैं, उन्हें शक्ति चाहिए। उन्होंने ईश्वर से संघर्ष किया, फल यह हुआ कि वे बोंगा ईश्वर से अलग हुए, धरती पर आये—पहाड़, जंगल, गुफा, नदी और तालाब में रहने लगे। मारंग बुरू सन्ताल के भाग्य के साथ रहते हैं। उनके सुख और दुख दोनों में हम उनको सहयोगी के रूप में पाते हैं। धरती पर आदि पुरुष और आदि नारी से जो उनका सम्बन्ध हुआ, वह सम्बन्ध आज तक बना हुआ है। उन्होंने अज्ञान की स्थिति में देखा था। तबतक उनका जीवन के सत्य एवं सुख से परिचय नहीं हुआ था। मरांग बुरू ने अपने को उनका दादा बतलाया और सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हें पोचाई बनाना सिखलाया और पीने का आदेश दिया। कुछ दिनों के बाद लौटने में जोड़ी को बदला हुआ पाया। उन्होंने जीवन का अध्ययन किया; यौन-सुख का उन्हें अनुभव प्राप्त हुआ; अपनी नग्नता पर उन्हें लज्जा का अनुभव हुआ। मराग बुरू ने उन्हें यह आदेश दिया कि वे जब कोई काम करना चाहें तब उसे याद करें, उन्हें पोचाई भेंट करें, उनकी अभिलाषा की पूर्ति होगी।[१] मराग बुरू की आराधना में जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसमें भौतिक सुखों की मांग रहती है। वे जो उन्हें चढ़ाते हैं, उसके बदले में मांग करते हैं।[२] वे नये वर-वधू के लिए लम्बी उम्र और सुख-शान्ति की मांग करते हैं।

---

१. Mr. W. J. Culshaw–Tribal Heritage. page-81

२. Mr. E. O. James– Comparative Religions, 1938-page 278-"In a primitive agricultural community request for ethical and moral virtues could hardly by expected, since, as Cicero remarks man call Jupiter greatest and best because he makes us not just or temperate or wise but sound and healthy and rich and wealthy.'

मारंग बुरू को सन्ताल उच्च स्थान देते हैं, अन्य शक्तियों का स्थान निर्धारण नहीं किया जा सकता है। किसी अवसर पर अमुक शक्ति की पहले आराधना वे करते हैं, दूसरे अवसर पर दूसरी शक्ति की पूजा पहले वे करते हैं। सन्ताल विश्वास के अनुसार उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है[1] :—

(१) कान्दू—यह उनका प्रमुख देवता है। यह जीवन दे सकता है, प्राण ले सकता है। वृक्ष, पौधा, जानवर सब उसकी देन हैं।

(२) मृत-पूर्वजों की शक्तियाँ—सन्ताल इनकी भी पूजा करते हैं।

(३) गृह-शक्तियाँ—ये दो प्रकार की होती हैं—एक को वे ओरक बोंगा कहते हैं और दूसरे को अबेज बोंगा। अरोक बोंगा का भी उन्होंने श्रेणी-भेद किया है, जैसे; बासपहार, देशवाली, सीएल, गोरिया, बारपहार, सर नवाडी, धुनतातुरल। इसी प्रकार अबेज बोंगा को वे १४ श्रेणी में रखते हैं—दारासोरीया धरा-सन्दा, केतकोमकुद्रा, चम्पादिनागढ, गरसेनिका, लीयाचन्डी, धनागढ, कुद्राकन्डी, बरहारा, दूरासरी, बुद्रजा, गासीन इरा, अचली, देशवाली, पाहारदाना सन्ताल अपने इन गृह-शक्तियों का नाम गुप्त रखते हैं।

(४) रंगो रूजी—यह शिकारी-शक्ति है। शिकार करने के पूर्व इस बोंगा की आराधना वे करते हैं।

(५) गाँव के देवी-देवता—गाँव की देवी होती हैं—जेहरा इरा और गोसांई

---

१. P. C. Biswas—Santhals in the Santhal Parganas—Page-134-137

ऐरा। गाँव के देवता होते हैं—तुको मुस्को, मारांगबुरू, परमानत। सन्ताल निर्धारित समय पर उनकी पूजा करते हैं।

(६) गाँव की सीमा-शक्ति—गांव की सीमा की शक्ति को वे सीमा बोंगा कहते हैं और गाँव की अन्तिम छोर को वे बहरी बोंगा कहते हैं।

(७) अस्थायी बोंगा—अकाल एवं अप्राकृतिक ढंग से मरे हुए बालकों की मृत आत्मायें

(८) नहियर बोंगा—ससुराल के भी बोंगा आते हैं। महिलायें उन्हें नहियर बोंगा कहती हैं। वह वधू के साथ आती है। वह विदेशी बोंगा भी कहलाता है। उसकी अर्चना होती है, उसकी आवश्य-कताओं की पूर्ति होती है। उसकी उपेक्षा होने पर घर में बीमारी फैलती है—मृत्यु होती है।

(९) किसार बोंगा—अस्थायी चरित्र का होता है। वह जब खुश रहता है तब परिवार को धनी बना देता है। जिस सन्ताल के घर में वह रहता है उस घर में कोई कमी नहीं रहती है। जब वह रंज होता है, तब उस घर में विपदा का राज्य होता है। रोग और शोक से घर भर जाता है। मृत्यु होती है। सन्ताल इस बोंगा को घर से निकालने के लिए कई प्रकार के अनुष्ठान करता है।

(१०) युद्ध बोंगा—युद्ध में आनेवाले अस्त्रों के नाम पर इस बोंगा के नाम पड़ते हैं। कपि कएँ बोंगा और भसा बोंगा विशेष रूप से उल्लेख-नीय हैं। इनकी अर्चना वैसी नहीं होती, जैसी अन्य शक्तियों की अर्चना होती है।

ऊपर हम कह आये हैं कि सन्तालों की अर्चना के लिए कोई मन्दिर नहीं है और न उन स्थानों पर कोई मूर्ति ही पायी जाती है। पर उनके यहां

पूजा का स्थान रहता है , उस स्थान को वे जहरी स्थान कहते हैं । वहाँ पर वे देवी-देवताओं तथा अन्य शक्तियों की पूजा करते हैं । उसी निर्धारित स्थान पर गाँव भर के धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न होते हैं । वह गाँव के अन्त में होता है । पर गाँव की सीमा के अन्दर उसे रखा जाता है । साधारणतः वह गाँव के पश्चिम में रहता है । 'सरजाम' के लम्बे-लम्बे वृक्ष वहाँ रहते हैं । गाँव की स्थापना के साथ इन वृक्षों का रोपन होता है । वे जंगल साफ कर जमीन बनाते हैं , कुछ गुफा रख छोड़ते हैं । दो लम्बा वृक्ष जो होते हैं , एक पर मरांग बुरु रहते हैं और दूसरे पर जहर एरा रहती हैं । अन्य देवी-देवताओं के लिए भी अन्य वृक्ष रहते हैं । अनुष्ठान के समय कुदमनाके अपना खून चढाता है ; सीमा के बोंगा पर इस प्रकार का रक्तदान होता है । स्थान स्वच्छ रखा जाता है और अनुष्ठान के पूर्व गोबर से लीपा जाता है । स्थान बहुत लम्बा-चौड़ा नहीं होता है । साधारणतः एक सौ गज मे वह फैला रहता है । केवल बाहर ही उनकी पूजा का स्थान नही है ; प्रत्येक घर में भी अनुष्ठान का कुछ स्थान रहता है , उसे वे भीतार कहते हैं । वहाँ कोई धार्मिक प्रतीक नही रहता है । उसके अन्दर विवाहित लड़कियाँ प्रवेश नही कर सकती । कारण शादी के बाद लड़कियाँ अपने पति के घर की हो जाती हैं । यह इसलिए करते हैं कि विवाहित कन्या के रूप में अपने साथ अपने नहियर से बोंगा न लेते जायें । भीतार में घर की शक्तियाँ निवास करती हैं । मृत-पूर्वज भी उसमें आकर निवास करते हैं—ऐसा सन्तालों का विश्वास है ।

सन्ताल अपनी धार्मिक भावनाओ के माध्यम से अपने सामाजिक संगठन को मजबूत करते हैं । उनमें एक सामाजिक जिम्मेवारी आती है , उनकी सामाजिक चेतना जगती है । वह अपने से ही नहीं , अपनी मृतक-

आत्माओं से भी सम्बन्ध रखते हैं। सन्ताल अपनी धार्मिक पूजा एवं अनुष्ठान के द्वारा मानव-जीवन की कहानी को रखते आये हैं। सन्तालों की धार्मिक भावनाओं से हमें उनके सामाजिक जीवन की एक झाँकी मिल जाती है।



सन्तालों का पर्व-त्योहार

दैवी-शक्तियों की अर्चना एवं पूजा के लिए सन्ताल पर्व मनाते हैं, त्योहार करते हैं। कुछ त्योहार तो उनके अपने हैं और कुछ हिन्दुओं से प्रभावित हैं। सन्तालों को हिन्दुओं से अलग रखने की चेष्टायें होती रही हैं, पर अन्य आदिवासियों की भाँति वे भी हिन्दू ही हैं। एकबार अखिल भारतीय विज्ञान परिषद् की नृतत्व शाखा के अध्यक्ष डाक्टर वैरियर एल्विन ने १९४४ में कहा था—'कतिपय विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों ने जनगणना के समय आदिम जातियों को हिन्दू समाज से पृथक करने की चेष्टा की। प्रारम्भिक कार्यों में जनगणना के अधिकारियों ने प्रेतवाद एवं हिन्दूत्व में विभेद दिखाने का प्रयत्न किया है। पीछे आदिम जातियों के धर्म के अनुयायी जैसी शब्दावली का प्रयोग होने लगा है। इसकी परीक्षा की प्रस्तावित कसौटी यह थी की किसी मनुष्य को लेकर यह देखा जाय कि वह हिन्दू देवताओं की उपासना करता है या आदिम जातियों के देवताओं की। यह कसौटी निरर्थक थी। इस देश (भारत) में रहने वाले आदिम जातियों का धर्म हिन्दू धर्म ही है। स्वयं हिन्दू धर्म में भी बहुत से ऐसे तत्व हैं,

जिन्हें धर्म विज्ञानवेत्ता लोग प्रेतवादी कहेंगे। इसलिए जनगणना के समय धर्म के खाने में आदिम जातियों को शुरू से ही हिन्दू लिखना चाहिए था। इसके सिवा कोई भी दूसरा वर्गीकरण व्यर्थ से भी गया बीता है।"[१]

सन्ताल छठ पर्व मनाते हैं। यह पर्व हिन्दुओं का है। यह पर्व भादो मास में मनता है। साधारणतः हासदाक् इसे मनाते हैं। अन्य पर्वों की भाँति ही इसे भी वे मनाते हैं, पर इस पर्व के अन्त में एक विशेष आयोजन होता है। एक लकड़ी का १२ हाथ के बल्ला को वे गाड़ते हैं, और उसे वे लम्बावत् एवं आकाशावृत्त के सामानान्तर अर्धवृत्त में मोड़ते हैं। बल्ला एक टीला पर मजबूत लोहे के चूल से बँधा रहता है। ६ फीट ऊँचाई पर बल्ला में दो छेद किया हुआ रहता है, जो लोहे के चूल में फँसाया जाता है। उसके ऊँचे शीर्ष पर एक बल्ला के साथ रंगीन छाता बँधा रहता है। छाता कभी इधर और कभी उधर घूमता है; बल्ला के गड जाने के बाद आनन्द-प्रदर्शन होता है। तोद मोद मनाते हैं, नाच और गाना करते हैं। लोगों के हाथों में गोबर और मिट्टी रहती हैं; वे छाता पर लगाते हैं, छाता पर वे लीप करते हैं। इसके बाद स्त्री और पुरुष नाचकर-गाकर अपने आराध्य का पूजन करते हैं। बल्ला से कुछ दूरी पर एक छावनी वे बनाते हैं, उसमें जाकर भोजन करते हैं, हड़िया पीते हैं। खुले मैदान में फिर वे आमोद-प्रमोद करते हैं। इस अवसर पर वे बलि चढाते हैं, बलि का प्रसाद वे वहाँ नहीं खाते, उसे वे घर लाकर खाते हैं।

---

१. बिहार के आदिवासी : पृष्ठ—६८-६९

सन्ताल हिन्दुओं के पर्व-त्योहार केवल मनाते ही नहीं हैं, उसमें वे भाग भी लेते हैं। दुमका में हजारों की संख्या में सन्ताल दुर्गा-पूजन में भाग लेते हैं। सुना है और देखा भी है कि सन्ताल तीन से पाँच दिन तक नाच-गान कर दुर्गा की प्रतिमा की अर्चना करते हैं। सन्ताल काली पूजा भी करते हैं। काली पूजा में सन्ताल किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं चाहते। १६ वीं फरवरी, १९३३ को एक संवाद जो अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, उससे पता चलता है कि सन्तालों में काली जी के प्रति कितनी श्रद्धा है। संवाद में कहा गया था कि सन्ताल के गुरु सन्यासी बाबा ने मालदह के जिलाधिकारी ने पत्र लिखते हुए लिखा था—'मालदह के एक सौ सन्तालो ने मुझे बताया है कि उनकी वार्षिक काली-पूजा जिसे वे वर्षों से सरदार जीतू के द्वारा मनाते आ रहे थे, वह बन्द की जा रही है।……सन्तालों की काली-पूजा रोकी नहीं जाय। वे स्वयं काली-पूजा मालदह में करना चाहते हैं। मैं आपको आश्वासन दे सकता हूँ कि किसी प्रकार शान्ति भंग नहीं होगी और पहले की सद्-भावना जाग्रत होगी। फागुन के महीने में यह पूजा होगी; अतः इसका जबाब उन्हें शीघ्र मिलना चाहिए। गंगापुर-सन्ताल-गोली-काण्ड के बाद भी काली पूजा दिनाजपुर जिला में शान्ति पूर्ण ढंग से मनाई गई है, और अधिकारियों ने उसे मनाने दिया है।'[१]

हिन्दुओं के सम्पर्क में रहने के कारण सन्तालों की धार्मिक भावना पर उनका प्रभाव पड़ा है, पर फिर भी उनकी धार्मिक भावनाओं में काफी अन्तर है। उसी अन्तर के कारण, सन्ताल धर्म को एक अलग धर्म ही माना जाने लगा है। कुछ लोगों ने सन्ताल धर्म के लिए 'बोंगा

१. Amrita Bazar Patrika, February, 19, 1934.

होड़' शब्द को प्रयोग में लाने का प्रस्ताव किया है। इसके औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है "बोंगा होड़ यानि सनातन सन्तालों का विश्वास है कि किसी भी व्यक्ति, परिवार या गाँव का कुशल-मंगल उनके बोंगा-गुरु और हापड़ामको (देवी-देवताओं और पितरों) पर ही मुख्यतः निर्भर है तथा अकाल, महामारी, हैजा आदि उन्हीं के कोप के परिणाम है। अतः उन्हें प्रसन्न रखने के लिए समय-समय पर उनके नाम मुर्गी के बच्चों, बकरों या सूअरों का बलिदान, हँडिया का चढ़ौआ तथा नये अन्न और फल-मूलों का भोग लगाना अनिवार्य है।"[१]

सन्ताल को हिन्दु धर्म का अनुयायी कहें या प्रेतवादी कहें या उन्हें बोंगा होड़ कहें; इस विवाद में हम नहीं पड़ना चाहते हैं। अपनी धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए वे पर्व-त्योहार मनाते हैं। सन्तालों का पर्व-त्योहार अधिकांश रूप में प्रकृति से सम्बन्धित है। उनके मुख्य पर्व–त्योहार इस प्रकार हैं:—

बन्धा-पर्व

सन्तालों का सबसे उल्लास का पर्व बन्धा पर्व है। इसे वे बान्धना पर्व भी कहते हैं। इसे ही सोराई पर्व भी कहा जाता है। यह पूसमास याने जनवरी में मनाया जाता है। धान कटने पर सन्ताल इस पर्व को मनाते हैं। इस पर्व में 'नये धान के उपलक्ष में अपने देवी-देवताओं, पितरों तथा गोधन का पूजार्चन एवं सगे-सम्बन्धियों का मान-सम्मान किया जाता है।'[२] पहले यह पर्व किसी निश्चित दिन को नहीं होता था।

१. बिहार के आदिवासी : सन्ताल - अध्याय; पृष्ठ—७०–७१

२. बिहार के आदिवासी : सन्ताल - अध्याय; पृष्ठ—७२

कुछ लोग एक दिन करते थे, कुछ गाँव वाले दूसरे दिन उसे मनाते थे। पर अब अधिकारी तौर पर ही एक दिन सभी सन्ताल इस पर्व को मनाते हैं। तिथि पर्व में निश्चित हो जाती है और गाँव-गाँव हाट-हाट में इस पर्व की सूचना दी जाती है। जिस वर्ष धान की उपज कम होती है उस वर्ष वे इस पर्व को उल्लासपूर्ण ढंग से नहीं मनाते हैं। अकाल के वर्ष में सताल कहते हैं–"इस वर्ष सोहराय या बन्धा पर्व वे नहीं मनायेंगे। कारण यह है, इस वर्ष उनके पास खाने को धान नहीं, वे मित्रों को बुलाकर कहां से खाना खिलायें।"[१]

निर्धारित दिन की पूर्व संध्या को गोडायित गाँव के पुरोहित के घर बलिदान के लिए तीन उजली मुर्गी और एक भूरे रंग की मुर्गी को पहुँचाता है। पुरोहित उस रात को कुछ परम्परागत कार्य करता है, जमीन पर सोता है। धार्मिक आचरण वह प्रदर्शित करता है। दूसरे दिन गोड़ायित गाँव के प्रत्येक घर से एक मुर्गी लाता है। चावल, नमक और मसाला भी वह प्रत्येक घर से संग्रह करता है। चपाती बनाने के लिए चावल को पीसा जाता है। यह काम साधारणतः पुरोहित की पत्नी करती है। पुरोहित की अविवाहित बहन भी इस काम को कर सकती है। सुबह में पुरोहित ऐसी भूमि पर, जो पहले से गोबर से लीपा रहता है, पूजा का दीर्घा बनाता है। उस दिन दोपहर को बलिदान होता है; एक पवित्र गुफा में भी यह बलिदान - समारोह सम्पन्न होता है। जहाँ नदी-नाला, पोखर या तालाब होता है, उसके तट पर यह समारोह किया जाता है। पवित्र स्थान के लिए जो दीर्घा बनता है, वह उत्तर से दक्षिण की ओर रहता है। चावल पर सेन्दुर लगाया जाता है।

१. Shree W. J. Culshaw : Tribal Heritage–110

उसे दीवाँ के चारों ओर छींटा जाता है। चावल पक्षियों को खाने के लिए दिया जाता है। उन पक्षियों पर जल छींटा जाता है। उनके माथ पर सेन्दूर लगाया जाता है। सेन्दूर उनके दोनों टांगों एवं उनके पंखों पर भी लगाया जाता है। जब बलिदान पूरा हो जाता है, तब पुरोहित पक्षियों के माथे का मांस खाता है, गाँव के अन्य लोग दूसरे भाग के मांस खाते हैं। खाने के बाद नाच और गाना का कार्यक्रम चलता है।

इसके बाद ग्रामीण लोग कुलीखुश जाते हैं। गाँव के बाहर के चरागाह को कुलीमोचा कहते हैं। वहाँ वे चौखूँटा वृत्त बनाते हैं। ऐसे वृत्त कई बनाये जाते हैं। सभी वृत्तों में कुछ अरवा चावल रखा जाता है; एक वृत्त में मुर्गी का एक अण्डा रहता है। चराने वाले बालकों को बुलाया जाता है; वे सभी अपने जानवरों को लेकर आते हैं। पुरोहित चरवाहों की लाठी को पूजता है, उस पर सेन्दूर और दूर्वादल चढ़ाता है। वे अपने जानवरों को बने हुए वृत्तों के अन्दर हाँक देते हैं। जानवर उन वृत्तों के अन्दर तबतक रखे जाते हैं, जब उनमें से एक मुर्गी के अण्डे को पैरों से मसल न दे। जिस गाय या बैल ने अण्डे को तोड़ा है, उसे फूलों की माला पहनायी जाती है; उसके सींग और माथे पर सेन्दूर लगाया जाता है। जिस बालक की वह गाय होती है, उसे भाग्यशाली समझा जाता है। गाँव के प्रमुख के पास उस बालक को कंधे पर बैठाकर वे ले जाते हैं। बालक चरवाहा मांझी को प्रणाम करता है। वह गाँव के अन्य लोगों के सामने नतमस्तक होता है। गाँव में जब सब लौट आते हैं, तब वे पुरोहित के घर जाते हैं। वहाँ पीने को हड़िया उन्हें मिलता है, फिर वे अपने सम्बन्धियों के घर जाते हैं। वहाँ वे खाते-पीते

हैं। संध्या समय कुमार और कुमारियाँ जोगमांझी के घर जाते हैं।[१] जोगमांझी से अनुरोध करते हैं कि पर्व की अवधि में उनके कामों की ओर वह ध्यान नहीं दे। पर्व की इस अवधि में उन्हें नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। यौन-सीमा का उल्लंघन यत्र-तत्र हो जाता है।[१] पर्व की प्रथम रात्रि को गांव के लोग जानवरों को जगाते फिरते हैं। 'गो-स्थान' के चारो ओर नगाड़ा बजाते हैं, वे गाते हैं। गाय जब जग जाती हैं, तब उसे रंग-बिरंग के फूल-पत्त से सजाते हैं। उस पर अक्षत चढ़ाते हैं, उसके सींघ और माथे पर सेन्दूर लगाते हैं। जब गाँव के जानवर जग जाते हैं, तब सभी कुमार जानवरों से आशीष लेते हैं। उन्हें माला पहनायी जाती है। उन्हें खाने के लिए मिठाइयाँ दी जाती हैं। उन्हें औरतें आशीष देती हैं-वे कहती हैं, आनेवाले वर्ष में वे निरोग रहेंगे, भूत-प्रेत - डायन से उनकी सुरक्षा होगी। चोर-डाकू और जंगली

---

१. The youth and young women visit the home of the Jogmanjhi and request him to turn a blind eye to their doings for the duration of the festival. The whole period is characterised by its freedom from traditional morality. The rules of avoidance are treated highly and many liberties are taken with members of the opposite sex.

W. J. Culshaw : Tribal Heritage-page. 111-112.

जानवरों से भगवान उन्हें बचायेंगे। सन्ताल इस पूजा को गो-पूजा कहते हैं। दूसरे दिन गाँव के प्रत्येक घर में घर का बड़ा आदमी गोहाल (गौओं के घर) में पूजा करता है। वह गोहाल को साफ - सुथरा करता है। गोहाल के मध्य में वह एक वृत्त बनाता है, उसमें वह अरवा-चावल रखता है, उसे सेन्दूर से रंगता है; वह उजला और लाल रंग की मुर्गी का बलिदान करता है। मरांग बुरू, कुल देवता एवं अपने पूर्वजों के नाम पर वे बलि चढ़ाते हैं और कहते हैं—लो हमारी सेवा स्वीकार करो। हम तुम्हारा प्रसाद पायेंगे, हमें सिर-दर्द, पेट-दर्द न हो, हममें कोई कलह भी नहीं हो। सन्ताल अपने कृषि-यन्त्रों एवं अस्त्र-शस्त्रों के साथ स्नान करने जाते हैं। घर में बाहर के लोगों का प्रवेश निषिद्ध रहता है। पर उस दिन परिवार की सभी बेटियाँ अपने-अपने मायके आ जाती हैं। सन्ताल इस पूजा को बोंगा पूजा कहते हैं।

तीसरे दिन 'खुण्टाऊ' होता है। गाँव की गली में लकड़ी का बल्ला गड़ा रहता है। बल्ला के ऊपरी अंश पर कुछ पुआल रखा रहता है। उस पर कुछ फूल और चावल की पाँच रोटियाँ रखी रहती हैं। एक बैल को लाया जाता है, उसे स्नान कराया जाता है, उसके सींग और माथे पर तेल और सेन्दूर लगाया जाता है। बल्ला में उसे बाँध दिया जाता है। ऐसी व्यवस्था मांझी, पारानिक एवं गाँव के साधारण लोग अपने-अपने दरवाजे पर करते हैं। गांव के कुमार एवं छोटे बच्चे सामूहिक रूप से नाचकर, गाकर, बाजा बजाकर बैल को भड़काते हैं। बैल भड़कता है, बल्ला को तोड़ देता है। दो-तीन घण्टों तक आमोद-प्रमोद कर बैलों को वे गोहाल में लाकर बांध देते हैं। इसके बाद वे एक - दूसरे के घर जाकर नाच - गाना करते हैं, आनन्द

मनाते हैं, खाते-पीते हैं। जब पर्व समाप्त हो जाता है, तब सभी नवयुवक जोगमाझी के घर जाकर भोजन करते हैं और हँड़िया पीते हैं।

चौथे दिन जाले होता है। इस दिन युवक-युवतियों का दल घर-घर जाता है। खाने-पीने की वस्तुओं को लाकर जमा करता है। सामूहिक भोजन करता है। नाच-गान, खान-पान पूर्व के दिनों की भाँति चलता है। पाचवें दिन जोगमांझी के घर सहभोज होता है। अन्तिम दो दिनों में सन्ताल-जीवन का आनन्द लेते हैं। हँसने-खेलने की पूरी स्वच्छन्दता रहती है। यौन-सम्बन्ध की स्थापना में पूरी स्वतन्त्रता रहती है।[1] फिर भी यह स्वतन्त्रता विवाहित लोगो को नही प्राप्त होती है। इस अवसर पर भी यौन-सम्बन्ध एक गोत्र में वे नही करते। इस प्रकार की आचरण हीनता पर कठोर दण्ड दिया जाता है। पर्व की अन्तिम रात्रि में कुमार-कुमारी लड़कियां जोगमाझी के घर सोती हैं और उन्हें हँसने-खेलने को जो स्वच्छन्दता मिली थी, उसे वापस करती हैं।

---

१. The other two days are for nothing but to enjoy life, merry-making going on in full swing with full sex licence. ....Although this licence does not allow adultary, nor does it sanction intercourse between persons of the same sect, yet if the latter offence is committed; it is punished less severely than at other times.

P. C. Biswas : Santal of the Santal Pargana.
page-140

साकरात-पर्व

पूस मास के अन्तिम दिन को साकरात पर्व सन्ताल मनाते हैं। हिन्दुओं के संक्रांति पर्व का नकल मात्र यह पर्व है। शिकार खेलना इस पर्व का मुख्य काम है। घर की महिलायें सुबह से ही चावल की रोटियाँ पकाती हैं। मर्द लोग साधारणतः दही-चूड़ा खाते हैं। खाकर वे शिकार खेलने जाते हैं। रोटियां पहले मृत-पूर्वजों को चढ़ायी जाती हैं, तब उसे लोग खाते हैं। दोपहर में जोगमांझी गांव के सभी युवकों को जमा करता है, धनुष वाण चलाया जाता है; कुछ अन्य खेल-कूद भी वे करते हैं। इसके बाद वे मछली का शिकार करते हैं। रात को वे नाचते और गाते हैं। हड़िया पीते हैं। दूसरे दिन वे जंगलों में जाकर जंगली पशु-पक्षियों का शिकार करते हैं। उसके मांस को मरांग बुरू एवं पितरों को वे चढ़ाते हैं। घर-गृहस्थी के कुशल - क्षेम के लिए प्रार्थनाएं भी करते हैं। उस दिन की रात्रि में भी वे नाच-गान करते हैं। तीसरे दिन वे हाट जाते हैं वहां से लौटकर वे आनन्द-प्रमोद मनाते हैं।

बाहा पर्व

'बाहा' एक सन्ताली शब्द है। बाहा का अर्थ होता है—फूल। सखुआ के वृक्ष में जब फूल खिलते हैं, तब यह पर्व मनाया जाता है। साधारणतः यह पर्व फागुन में मनाया जाता है। इस पर्व का मूल लक्ष्य यह है कि सन्तालों का अगला वर्ष सुखद हो। नाच - गान खाना-पीना, इस पर्व की विशेषता है। यह पर्व जोहेर स्थान में मनाया जाता है। नायके और कुडुम नायके जोहेर स्थान में पूजा करते हैं। पर्व के पहले दिन नवयुवक

लोग जोहेर स्थान में दो छावनी बनाते हैं, एक जोहरा ऐरा और मरांग बुरू के लिए और दूसरी छावनी गोसांई एरा के लिए। स्थान को गोबर से लीप-पोतकर पवित्र किया जाता है। वे गांव से बाहर स्नान करने जाते हैं। नाच के उस दिन विशेष रूप से वे पवित्र रहते हैं। वे उस दिन पूर्ण पवित्रता का पालन करते हैं। पूरी रात नाच के घर में नगाड़ा बजता है। बोंगा के साथ सभी वहाँ उपस्थित रहते हैं। जोहरा ऐरा उनकी देवी है। जिस व्यक्ति में जोहरा ऐरा की आत्मा आ जाती है, वह गहना पहनता है, बक्स रखता है और झाड़ू उसके हाथो में रहता है। मरांग बुरू के हाथों में मृत्यु का अस्त्र-शस्त्र रहता है। इन चीजों के साथ जोहरा - ऐरा और मरांग बुरू जोहेरस्थान में आते हैं। उनके साथ गाँव के बच्चे नाचते - गाते, बाजा बजाते आते हैं। जोहेर-स्थान में पहुँचकर जोहरा - ऐरा जमीन को साफ करती है; नायके उनसे अनुरोध करता है कि अपने साथ जो वस्तुएँ लाये हैं, उन्हें चटाई पर रख दें। वह उनसे कई प्रश्न करता है। प्रश्न कई विषय पर होते हैं। साधारणतः उनका प्रश्न उनके भविष्य से सम्बन्धित रहता है। नायके बाद में बोंगा के हाथ - पैर धोता है और उन पर जल फेंकता है। बोंगा उठ खड़े होते हैं, और घर चले जाते हैं। दूसरे दिन पुनः जोहेर-स्थान जाते हैं। मरांग बुरू सखुए के वृक्ष पर चढ़ जाते हैं और फूलों को तोड़-तोड़कर फेंकते हैं, जोहरा - एरा फूलो को चुन-चुनकर टोकरी में रखती है। मरांग बुरू मार्ग में महुआ के फूल चुनते जाते हैं। बोंगा को जोहेरस्थान में पहुंचने पर चटाई पर बैठाया जाता है। नायके उनके सामने बैठता है। वह धूप, दीप, सेन्दूर, जल, दूर्वादल, हड़िया और सखुए के फूलों की भेंट चढ़ाता है। वह मुर्गियों की बलि देता है। बोंगा मुर्गियों

के खून को ओठों से स्पर्श करते हैं। नायके उनके चरणों को धोता है। जोहरा-ऐरा भी नायके का अभिनन्दन करती है। नायके बलि की गई मुर्गी को भात के साथ पकाता है और सपत्नीक वह खाता है। गाँव के अन्य लोग भी जोहेरस्थान में ही खाते हैं। नायके को छोड़कर सभी लोग घर चले जाते हैं। नायके जोहेरस्थान में अकेले रहता है। गाँव के लोग अपने-अपने घर में जाकर मुर्गी एवं सुअर की बलि देते हैं। वे आमोद-प्रमोद मनाते हैं, खाते-पीते हैं। वे पुनः तीसरे पहर जोहेरस्थान को जाते हैं और नायके को गाँव वापस लाते हैं। प्रत्येक घर में उसकी अर्चना होती है। उसका पाँव पखारा जाता है। नायके प्रत्येक गृहस्थ को सखुए की मंजरियों का गुच्छा प्रसाद के रूप में देता है। इसके बाद होली खेली जाती है। हँसी-दिल्लगी भी होती है। पानी एक दूसरे पर डाला जाता है। स्त्रियाँ भी होली खेलती हैं। आमोद-प्रमोद में वे भी भाग लेती हैं। "एक दूसरे पर पानी डालकर वर्ष भर के वैर-द्वेष को धो डालने का विश्वास सन्ताल में है।"[1]

एरोक पूजा

एरोक पूजा बीज-वपन का त्योहार है। खेत में बीज डालने के पूर्व यह पूजा होती है। जोहेरस्थान में यह पूजा आषाढ में होती है। नायके और उसके सहायक कुदुम नायके पूजा कराते हैं। पाँच मुर्गियो की बलि जोहेरस्थान में दी जाती है। पितरों से, देवताओं से अनुरोध किया जाता है कि उनके बीज खेतों में अच्छी तरह लगें। इसके बाद खिचड़ी पकती है, मुर्गी को पकाते हैं और उसे सब लोग प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। मुर्गी का आगे का अंश नायके या कुदुम नायक खाते हैं।

---

१. बिहार के आदिवासी : पृष्ठ—७४

हरियाड़ा पर्व

हरियाड़ा पर्व तब मनाया जाता है, जब खेतों में धान हरियाने लगते हैं। यह पर्व सावन में मनाया जाता है। मुर्गी की बलि चढ़ाते हैं। सभी देव-देवी, पितर एवं अन्य लोगों की वे आराधना करते हैं। धूप, दीप, सिन्दूर, जल, मुर्गियो की बलि समर्पित कर देवी-देवताओं से वे प्रार्थना करते हैं कि लो हमारी प्रार्थना स्वीकार करो! फसलें भली-भांति फूलें-फलें, फसलें नष्ट नहीं हों, जगली जानवर इन्हें बर्बाद न करें। बलि में समर्पित मुर्गी को वे पकाते हैं, और सब लोग प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। इस पर्व का पौरोहित्य नायके के ही द्वारा सम्पन्न होता है।

जान्पाड पर्व

जान्पाड पर्व अगहन में सम्पन्न होता है। जाहेराथान में पूजन के लिए सब लोग जमा होते हैं। वहाँ एक सूअर की बलि पड़ती है। बलि समर्पित करते हुए नायके देवी-देवताओ से प्रार्थना करता है कि हमारे खेतो में और हमारे खलिहानो में सुखदा का राज्य हो। जान्पाड के बाद नवान्न होता है। यह पूजा बर्ष में दो बार होती है। चावल के लिए अगहन में और बाजरा के लिए भादो में। नायके नया पैदा हुआ अन्न को लेता है और जाहेराथान में वह ग्रामीण देवताओं के ऊपर चढ़ाता है। नायके मंत्रो के उच्चारण के समय कुछ दूध भी चढ़ाता है। प्रत्येक गृहस्थ उस प्रकार का पूजन करता है। वे अपने पितरों एव अन्य प्रेतों के नाम पर नये अन्न को चढ़ाते हैं।

माक मोर

साधारणतः सन्ताल इस पर्व को पाँच वर्ष के बाद जाहेरथान में मनाते हैं। यह पर्व विशेषतः अकाल, महामारी, हैजा आदि होने पर मनाया जाता है। सन्तालों को विश्वास है कि ये सब विपदा 'बोंगा गुरु' और 'हापडानको' के कोप के कारण हैं। अतः उन्हें प्रसन्न करने के लिए वे माक मोर पर्व मनाते हैं। मुर्गियों की बलि दी जाती है। उजला बकरा की भी बलि समर्पित होती है। यह बलि सभी गाँव के लोगों की ओर मोकरीको को समर्पित की जाती है। जाहेरथान में जिन पाँच देवताओं को सन्ताल पूजते हैं, उनमें यह भी एक देवता है। मुर्गी जो भेंट की जाती है, उसके माँस केवल पुरुष ही खाते हैं। नारियों को खाना वर्जित है। पुरोहित की पत्नी केवल अपवाद है। नाचना, पीना और गाना इस पर्व की विशेषता है। गाँव के युवक और युवतियाँ मस्ती में आ जाती हैं।

जोम सीम

यह गोत्र एवं सम्प्रदाय का पर्व है। इस पर्व को मनाने के लिए प्रत्येक गोत्र या सम्प्रदाय का अपना-अपना विधान है, अपना-अपना नियम है। अतः इस पर्व में विभिन्नताएँ बहुत मिलती हैं। बहुत से लोक-कथाएँ मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि इस पर्व का सम्बन्ध गोत्र से रहा है। खारवार हासदाक् की अपनी एक कहानी है, उससे पता चलता है कि उनके पूर्वज जोम सीम पर्व को मनाते थे। सभी हासदाक् उसमें भाग लेते थे। वे बलि समर्पित करते थे, सभी को चावल और मांस खाने को दिया जाता था। पर उसमें कुछ नवयुवक थे। उन्हें यह अनुमान

हुआ कि खाने को पर्याप्त नहीं मिला है, तब वे मुर्गी की बलि चढ़ाने के बदले भैंसा की बलि चढ़ाने लगे। जिन्होंने भैंसा को बलि दी, वे हासदाक् के खारवार हासदाक् कहलाने लगे।'[१] सोरन योद्धा हैं। नेपाल के गोरखा के समान वे निडर हैं, मृत्यु से उन्हें डर नहीं। उनके रक्त से शक्ति खेलती है। सोरन के एक उपगोत्र हैं जिसे पोटिया सोरन कहते हैं। पोटिया जनेव को कहते हैं। सोरन सन्ताल कहते हैं कि कुछ दिन पूर्व सोरनों के पूर्वजों ने जोम सीम पर्व मनाया था। कुछ लोगों ने जनेव पहनकर खाना बनाया था। खाना सबको खिलाया था। तब से वे लोग पोटिया सोरन कहे जाने लगे।[२]

दीहरी पर्व

दीहरी पर्व फागुन में मनाया जाता है। यह शिकार खेलने का पर्व है। यह फागुन में मनाया जाता है। दीहरी उनके शिकार के पुरोहित होते हैं, वे सखुआ की टहनी पत्तों सहित लेकर हाट जाते हैं। लोगों को मालूम हो जाता है कि दीहरी पर्व होने वाला है। प्रत्येक पत्ते से उन्हें दिन का अनुमान होता है। उस टहनी में जितने पत्ते होते हैं, उतने दिन के बाद वे शिकार पर जाते हैं। दीहरी पर्व में विभिन्न गाँवों के लोग भाग लेते हैं। दीहरी स्वयं शिकार के समय में होने वाली घटनाओं के लिए उत्तरदायी होता है। वह देवी-देवताओं की पूजा करता है। उन्हें वह मुर्गी भेंट करता है। देवी-देवताओं से अनुरोध करता है कि शिकार खेलने की अवधि में कोई दुर्घटना न हो। जंगल के बोंगा की भी पूजा वह करता

१. W. J. Culshaw— Tribal Heritage—Page-74.
२. ,, ,, ,, ,, Page-72.

है। शिकार में लोगों को सफलता मिले और उन्हें आने-जाने में कोई विघ्न नहीं उपस्थित हो। दीहरी को जैसे ही आभास मिलता है कि दुर्घटना की आशंका है तो सभी को शिकार से वापस आने का वह आदेश देता है।

शिकार में जाने के पूर्व दोहरी ही जंगल में प्रवेश करता है। वह काँटो से अपने बदन में छेद करता है। वह जमीन पर एक छोटा वृत्त बनाता है; उसमें चावल के आटा से घेरा बनाता है। अपने रक्त में भीगा हुआ अरवा चावल उस वृत्त में फैलाता है और फिर वृत्त में सिन्दूर का चिन्ह लगाता है। दीहरी जगल के बोंगा को चावल चढ़ाता है। उसके बाद अन्य लोग जगल में प्रवेश करते हैं, शिकार खेलते हैं।

मग-सीम

माघ में सन्ताल इस पर्व को मनाते हैं। सभी बोंगो को मुर्गी चढायी जाती है। नायके और कुडुम नायके बलि चढाते हैं। इस पर्व से सतालो के वर्ष की समाप्ति होती है। गाँवो के सभी अधिकारी अपने पदों से त्याग-पत्र दे देते हैं और किसान अपनी जमीन सौंप देते हैं। एक सप्ताह के बाद गाँव के प्रमुख गाँववाले को समक्ष कर कहते है कि वे पुनः कार्यभार लेना चाहते हैं, गाँव वाले साधारणतः उन्हे पुन. चुनते हैं। इसके बाद हड़िया पीते हैं, उत्सव मनाते हैं। सभी अधिकारी ऐसे ही करते हैं, पूर्ववत् स्थिति फिर कायम हो जाती है।

यात्रा पर्व

यात्रा पर्व सन्तालो का अपना पर्व नहीं है। यह पर्व छोटानागपुर के आदिवासी– 'सुयाज' से लिया गया है। माघ में यह पर्व गाँव से बाहर

मनाया जाता है। मिट्टी का चौतारा बनाते हैं और उस पर पत्थर रखते हैं। उन पर सेन्दूर लगाते हैं, नायके अरवा चावल, सोपाडी और दूध बोंगा पर चढाते हैं। एक कबूतर और एक बकरी की बलि समर्पित होती है। तीन या चार आदमी मिलकर बलि के समय मन्त्रोच्चारण करते हैं। उस समय उनमें ईश्वरी-शक्ति आ जाती है—ऐसा विश्वास सन्तालों में है। वे श्रद्धायुक्त ढंग से उनसे प्रश्न करते हैं, अपनी समस्याओं को समाधान के लिए रखते हैं, उन्हें समुचित उत्तर मिलता है, उनकी समस्याओं का समाधान होता है। वे बताते है कि शरीर में दर्द कैसा है, उसके घर में भूत-प्रेत का निवास है। उनके चरणों के नीचे वे चार आना पैसा रख देते हैं।

पत्ता पर्व

पत्ता बोंगा की शान्ति के लिए सन्ताल पत्ता पर्व भादो मास में करते हैं। यह पर्व हिन्दुओं से उन्होंने लिया है। वे अपने देवी-देवताओं की अर्चना करते हैं। इस पर्व में बलि चढ़ायी जाती है। पहले सन्ताल एक खम्बरूप बालक पर एक लोहा का छड़ बाँधते थे; उसके प्रत्येक छोर पर लोहे का कुलावा लगा रहता था, आदमी का कपडा उस कुलावा से बँधा रहता है। आजकल लोहा के कुलावा के बदले रस्सी का प्रयोग वे करते हैं।

सन्तालों के पर्व में बलि की प्रधानता है। उनके प्रायः सभी पर्वों के अवसर पर विभिन्न देवी-देवता, पितर भूत-प्रेत की पूजा होती है। वे उनकी अर्चना इसलिए करते हैं कि कुशल-क्षेम बना रहे, घर-गाँव में सुख-शान्ति रहे। उनका पर्व अधिकाश रूप में सामूहिक होता है। पर्वों के माध्यम से भी सन्तालों में एकता बनी रहती है। पर्व या त्योहार सन्तालों के लोक-जीवन को सुव्यस्थित करता है, एकता के सूत्र में उन्हें बाँधता है।

सन्तालों का रोग-निदान

रोग अप्राकृतिक है। दैव की अकृपा मात्र है। सन्ताल यह मानते हैं कि वे मानव हैं; उन्हें स्वस्थ और सुखद जीवन प्राप्त करने का ईश्वरीय अधिकार प्राप्त है। इसके फलस्वरूप वे अच्छा और सुखद बुढ़ापा की अपेक्षा करते हैं। उन्हें यह समझ में नहीं आता, जब कोई बीमार पड़ता है, रोगी होता है और मर जाता है।[1] इसके साथ ही साथ सन्तालों में यह भी भावना काम करती है कि मानव ईश्वर का अंश है और उसमें पुनः उसे मिलना है। किसी की मृत्यु हो जाती है, तब वे यह समझने लगते हैं—उसका दिन पूरा हो गया, ईश्वर की इच्छा से उसकी मृत्यु हुई है। अकाल मृत्यु पर ही उन्हें यह आशका होने लगती है कि किसी डायन या अन्य बुरी शक्तियों के द्वारा हुई है। उन्हें ईश्वर में विश्वास है। वे मानते हैं; ईश्वर उन्हें कभी कष्ट नहीं देगा। वह ममतामय है। पर सन्ताल मानते हैं—ईश्वर बहुत अनुशासन प्रिय है। वह नियम भंग नहीं चाहता। सामाजिक सीमाओं के उलंघन करने पर वह दण्डित करता है। रोग को वे ईश्वर प्रदत्त दण्ड ही मानते हैं। पाप-जन्य कामों के लिए रोग का दण्ड लोगों को ईश्वर से प्राप्त होता है। महादेव मराण्डी ने मुझे बताया था कि उसके गाँव में एक व्यक्ति ने अपनी विधवा लड़की से अवैध

१. Bodding, Rev. P.O. (1927)—Studies in Santal Medicines and connected folk-lore.-Memoirs of the Asiatic Society of Bengal. Vol. X, Page 1.

यौन-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। यह उसका बहुत ही पापपूर्ण कर्म था। कुछ ही दिनों के अन्दर वह रोग पीडित हुआ। उसके अंग-अंग में फोड़े उठे। कुछ ही महीनों में उसका देहान्त हो गया। ईश्वर ने उसे पाप के लिए दण्ड दिया था। सन्ताल रोग को जहाँ ईश्वरीय दण्ड-विधान मानते हैं, वहीं हम देखते हैं कि शक्तियों द्वारा भी वे रोगी बनाये जाते हैं। शक्तियाँ उनसे आराधना चाहती हैं, भोजन चाहती हैं। वे उन्हें भूल जाते हैं; तब वे रोग को उनके पास भेज देती हैं। शक्तियाँ बहुत भावुक होती हैं, वे किसी प्रकार की उपेक्षा और अवज्ञा को सहन नहीं कर सकतीं। निर्धारित संस्कार में किसी प्रकार की कमी आने पर वे लोगों को दण्डित करती हैं। उनके भोजन का कोई भी शिकार हो सकता है। वे भोले-भाले को नष्ट कर देती हैं। उसके आराधक भी उससे दण्डित होते हैं। हृदय-रोग, पागलपन, शारीरिक अंग-भंग की बीमारी को वे दैवी–प्रकोप मानते हैं। सन्तालों पर रोगों का जब आक्रमण होता है तब वे अपने कार्यों का सिंहावलोकन करते हैं। रोग शक्तियों की दण्ड-प्रक्रिया है। मानव को उनकी भूलों के लिए दण्ड देने की व्यवस्था है— रोग। रोग के सम्बन्ध में उनकी कितनी भोली धारणा है। मृतक व्यक्ति भी रोग के माध्यम से अपने निकटतम व्यक्तियों को दण्डित करता है—ऐसा सन्ताल मानते हैं। पूर्वजों की आत्माएँ जीवित स्थिति में जैसी रहती हैं, मरने के बाद उनके आचरण में परिवर्तन नहीं होता है। सन्ताल मानते हैं, उनके पूर्वज मरकर भी उनकी निगरानी करते हैं। उन्हें भय रहता है कि यदि वे अपने पूर्वजों की उपेक्षा कर अपने बच्चों का नामकरण करें, तो यह उनके प्रति अवज्ञा की भावना प्रदर्शित करना है। पुनः परिवार में किसी की शादी के अवसर पर उनकी याद नहीं करना भी उनकी उपेक्षा करना है। ऐसी स्थिति में

मृतत्य आत्मायें अपने परिवार के लोगों को दण्डित करती हैं। रोग उनके भी दण्ड की प्रक्रिया है। रोग को वे डायन का भी प्रकोप मानते हैं। कुछ लोगों की आँखों में बुरी शक्ति रहती है। उनकी नजर जिसपर पड़ती है, रोगी हो जाता है। उसे वे नजर लगना मानते हैं। जब बच्चे पर उनकी नजर पड़ती है, तब वह रोगी हो जाता है। जब युवक या युवतियों पर उनकी नजर पड़ती है, तब उन्हें शादी में उनके अनुकूल पात्र नहीं मिलता है। गर्भवती स्त्री पर उनकी नजर पड़ जाती है, तब या तो उसका देहान्त हो जाता है या प्रसव-क्रिया में विघ्न उपस्थित होता है।[१]

सन्ताल शक्तियों की आराधना करते हैं। अपने पूर्वज मृत-आत्माओं को प्रत्येक समारोह में याद करते हैं। पूजा चढ़ाते हैं। उनके सम्मान में मुर्गी कटवाते हैं;उनसे अनुरोध करते हैं कि उन्हें या उनके परिवार के लोगों को रोग न हो। कुमारी बहन या भाई जो मर गये हैं, उन्हें भी वे याद करते हैं, अपने परिवार को रोग-मुक्त करने के लिए अनुरोध करते हैं। घर में उनकी कई शक्तियाँ हैं — ओराक बोंगा और अबेज बोंगा। ओराक बोंगा के कई नाम उनके यहाँ प्रचलित हैं; जैसे— बासपाहर, देशवाली, सास, गोरखोया,

१. When the evil eyes fall on the children they cause them to become sickly; when last youths, prevent them from finding suitable parteners in marriage, when falling on a pregnant woman, they cause death or very difficult and painful child-birth.

Rev. J. Hoffmann: Encyclopaedia Mundarica, vol - IV, Page 1032.

वारपाहर, सर्चवावदी, चुनतातुर्गा आदि। उसी प्रकार अवेक्ष बोंगा के नाम हमें इस प्रकार मिलते हैं— धारासतधा, खेट को मुखेन्द्र, चम्पा दितागढ़, कुद्दाकन्डी, बरहारा, चूरासीटी, कुद्रज, गोसांइ ईरा, अचली, पहारदावा आदि। सन्तालों की ये घरेलू शक्तियाँ हैं। अपनी घरेलू शक्ति के नाम सन्ताल नहीं बताते हैं। उन्हें भय रहता है, जो उनकी घरेलू शक्ति नहीं हैं, वे उन्हें रोग प्रदान करेंगी। सन्ताल के परिवार का कर्त्ता याने बड़े लड़के को ही मालूम रहता है कि उसकी घरेलू शक्ति कौन है। ओरका बोंगा सन्तालों की रोग से रक्षा करता है, उनके कल्याण के सम्बन्ध में सोचता रहता है। उनके घर, द्वार, खेत-खलिहान, उनके जीव-जन्तु एवं उनके बाल-बच्चो का वह प्रहरी होता है।

सन्तालों की रोग के सम्बन्ध में तीन धारणायें हैं।[१] वे इस प्रकार हैं:—

(क) प्राकृतिक कारणवश

(ख) मानवी क्रियाओं के कारण

(ग) मानवेतर क्रियाओं के कारण

अपनी धारणाओं के अनुरूप ही वे रोगों का निदान करते हैं। उनका रोग के प्रति दृष्टिकोण बहुत अभौतिक नहीं है; वे स्वीकार भी करते हैं कि रोग के कारण प्राकृतिक हैं। रोग के कारण और परिणाम पर वे विचार करते हैं। रोग के मूल कारणों की छान-बीन करते हैं। यह इनकार

१. Forrest E. Clement's Primitive Concepts of Disease. University of California Publications in American Archaeology and Ethnology. Page 186, vol.-32; No. 2, Page 185, 252; year 1932.

नहीं किया जा सकता कि उन्हे सदैव इस बात की आशका रहती है कि रोग का मूल कारण मानवी क्रियाओ के फलस्वरूप तो नही है। बुरे प्रभाव से रोग की उत्पत्ति पर वे घबड़ाते हैं। जब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि रोग साधारण है, तब वे घबड़ाते नही। इस आशा को लेकर दवा कराते हैं कि समय पर रोग अच्छा हो जायेगा। पर उनके द्वारा अनुमानित समय पर जब रोग का निदान नहीं हो पाता है तब उन्हें आशका होने लगती है कि रोग प्राकृतिक कारण से नही हुआ है, वह किसी प्रकोप के कारण हुआ है। पेड से कोई सन्ताल गिर जाता है, साक्ष्य सामने है—वह गिरा है, उसे रोग हुआ है, पर शीघ्र वह अच्छा नही हो रहा है, तब यह समझा जाता है कि पेड से गिरना भी दैवी प्रकोप है। प्राकृतिक कारण के रहते हुए भी सन्ताल रोग के कारण को अप्राकृतिक मानते हैं।

प्राकृतिक कारणवश जो रोगी होते हैं, उनके रोग के निदान के लिए ओझा को बुलाया जाता है। 'ओझा' शब्द सन्ताल ने हिन्दुओ से लिया है। सन्तालो मे ओझावाद सिद्धान्त का जो प्रचलन है, वह मुख्यतः हिन्दुओ का है।"[१] हिन्दू घरो में ओझा को बहुत अच्छी नजर से नही देखा जाता है। उनका प्रभाव धीरे-धीरे घटता जा रहा है। कुछ अनपढ़ महिलाओं पर उनका प्रभाव है। वे भी रोग के निदान के लिए ओझा पर भरोसा करती हैं। सन्तालों में जो ओझा प्रथा प्रचलित है, वह बोडिंग महोदय के अनुसार हिन्दुओ की ओझा प्रथा के समान है। ओझा वैद्य होते हैं। वे दवा के साथ ही साथ अपने जादू-मन्त्रो से भी रोग को भगाते हैं। वे बोंगा की शक्ति का प्रयोग करते हैं। ओझा मानवेतर शक्तियों पर प्रभाव रखते

१. Rev. P. O. Bodding: Studies in Santal Disease and Connected folk-lore, Page 1.

हैं। मानवेतर शक्तियों के कारण जो रोग होते हैं, उनका निदान ओझा ही करते हैं। ओझा रोगी की नाड़ी को पहले देखते हैं; फिर उसकी जीभ को। जब उन्हें यह पता चलता है कि रोग का कारण अप्राकृतिक है, तब वे उपचार के विधान चलाते हैं। वे मन्त्र पढते हैं। प्रत्येक रोग के लिए अलग-अलग मन्त्र हैं।[१] मन्त्र पढ़ने के बाद ओझा रोगी के माथा से लेकर पैर तक पर हाथ फेरते हैं। मन्त्र से लाभ नही होता है, तब झारनी गीत गाते हैं; जब इसका भी प्रभाव नही होता है, तब वे उपचार की क्रिया में परिवर्तन करते हैं। सखुआ के पत्ते और कड़ुआ तेल लेकर सुनुपबोंगा को चढाते हैं और इस क्रिया के द्वारा वे जानना चाहते हैं कि रोगी को कौन-सा रोग है। रोगी की नाड़ी से उसके रोग का जो पता उन्हें पूर्व में चला था, उसका सत्यापन वे करते हैं। सत्यापन करने के बाद वे दवा देते हैं; दवा देने के नियम बताते हैं; खाने पर नियंत्रण रखते हैं। अपने दवा का नाम वे दूसरो को नही बतलाते हैं। एक ओझा से रोगी जब अच्छा नही होता है, तब वे एक दूसरे बड़े ओझा को बुलाते हैं, उससे रोगी का उपचार कराते हैं। बड़े ओझा को अगर ऐसा अनुमान हुआ कि रोगी पर अप्राकृतिक तत्वों का प्रभाव है; मानवेतर शक्तियाँ उसे तंग कर रही हैं; तब वे व्यावहारिक व्यक्ति के समान रोग का निदान करने के पहले उन अप्राकृतिक तत्वो और मानवेतर शक्तियों को नियंत्रित करना चाहते हैं, उन्हें वे दण्डित करना चाहते हैं। वे जानते हैं कि ऐसे तत्व, ऐसी शक्तियाँ बुरी होती हैं, दूसरे को तंग करने में उन्हें आनन्द आता है। सन्ताल

१. Rev. P. O. Bodding: Studies in Santal Medicine and Connected folk-lore; Memoirs of the Asiatic Society of Bengal, Vol X, Page 1-32.

श्रोभा को ईश्वर में विश्वास है। वे समझते हैं, भगवान ने जन्म दिया है, वही उसे मार सकता है। अतः शक्तियाँ उन्हें कष्ट पहुँचा सकती हैं; वह प्राण नही ले सकती हैं। श्रोभा हाथ धोने के बाद हाथ में चावल लेता है और सीग बोंगा से विनती करते हुए कहता है—"हे भगवन ! ये अपनी मूर्खता एवं अज्ञानतावश निदान चाहते हैं। सत्य प्राप्ति में हमें सहायता दें। गलत निष्कर्ष पर हमें पहुँचने न दें; जिस कारणवश रोगी को रोग हुआ है, उसका पता चल जाय। चावल को देखकर, परीक्षा कर हम रोग को समझ जायँ। रोगी को स्वस्थ करें, उसे शक्ति मिले और वह अपना खाना खाये।" इस विनती के बाद वह चावल के कुछ अंश को बायें हाथ से लेता है और जमीन पर किसी शक्ति के नाम से फैला देता है। यह क्रिया वह तीन बार करता है। जब धरती पर गिर जाते हैं, तब वह समझता है कि उस शक्ति का प्रभाव रोगी पर नही है। वह अन्य शक्तियो के नाम पर चावल इस प्रकार फैलाता है, और तबतक फैलाता है जबतक चावल नही जुटते। जब चावल नही जुटते, तब वे समझते हैं कि जिस शक्ति के नाम पर चावल गिराया गया था, वह नही जुटा। वही शक्ति रोग के कारण हैं। विपदा की जड वही हैं।[१] रोग का पता लगाने के लिए और भी कई प्रयोग वे करते है। साधारणतः श्रोभा रोग के निदान के लिए निम्नलिखित प्रक्रियाओं को प्रयोग में लाते हैं :—

(१) अरवा चावल

(२) रोग जब एक ही स्थान पर केन्द्रभूत रहता है; तब उस स्थान को वे काटकर रोगी के बदन से रक्त बहाते हैं।

१. Rev.J.Hoffmann : Encyclopaedia Mundarica, vol. IV, Page 1026.

(३) बोंगा को जमीन में गाड़ देते हैं।

(४) बोंगा को दण्डित करते हैं।

(५) दवा देते हैं।

श्रोझा बनना साधारण काम नहीं है। श्रोझा एक विद्या है। सन्तालों को विश्वास है, उनके पूर्वजों को यह विद्या स्वयं मरांगबुरु से प्राप्त है। पहले इसका बहुत महत्व था, पर अब वह महत्व नहीं रह गया। सन्तालों में दो प्रकार के श्रोझा मिलते हैं—एक तो श्रोझा ऐसा है जिसने आनन्द के लिए इस ज्ञान को प्राप्त किया है और कुछने पेशा के लिए। श्रोझा की कला को प्राप्त करने के लिए दक्ष श्रोझा के पास जाकर वे प्रशिक्षण लेते हैं। साधारण रूप में श्रोझा का प्रशिक्षण जेष्ठ मास में चलता है। रविवार को उनका प्रशिक्षण आरम्भ होता है। शुक्रवार को भी वे प्रशिक्षण आरम्भ कर सकते हैं। गुरु के घर पर उनकी शिक्षा होती है। वहाँ एक चौतरा बना हुआ होता है। तुलसी का पौधा लगा रहता है। एक छावनी रहती है। अविवाहित शिष्य छावनी बनाते हैं। उसके बनाने में विवाहितों का सहयोग नहीं लिया जाता है। छावनी के नीचे मुर्गी का अंडा टगा रहता है। वहाँ लोहे की एक अँगुठी भी लटकी रहती है। यह इसलिए लटकी रहती है कि प्रशिक्षण की अवधि में डायन या बुरी शक्तियों की नजर न लगे। ४ महीने की अवधि प्रशिक्षण की होती है। मंगलाचरण श्रोझा स्वयं प्रशिक्षण करते हैं। दैवी शक्तियों से अनुरोध किया जाता है कि प्रशिक्षण अवधि में वे शान्त रहें, कोई विघ्न-बाधा नहीं रहे। प्रशिक्षण को पहली रात को श्रोझा को उनके शिष्यगण सेन्दूर देते हैं और उस सेन्दूर से विभिन्न स्थान पर प्रशिक्षण-केन्द्र के अहाता में चिन्ह लगाते हैं, वे चिन्ह निम्नलिखित देवता या देवियों के नाम पर लगाये जाते हैं :—

(१) कामरू गुरु
(२) सिन बोंगा
(३) काली माँ
(४) देवी माँ
(५) गंगा माँ ।

इन बोंगा की पूजा नाम लेकर करते हैं। मन्त्र उनका एक ही होता है, पर देवता के नाम जब लेते हैं तब मन्त्र के आगे उनका नाम जोड़ लेते हैं। उनका मन्त्र[१] का अर्थ इस प्रकार है :—

"कमरू गुरु ! यहाँ आप देखते हैं, मैं निशान लगा रहा हूँ। यहाँ आप देखते हैं; शिष्य बैठे हैं, रात के अन्धकार में वे आयेंगे और जायेंगे। इन शिष्यों को कोई विघ्न बाधा या शत्रुता का सामना नही करना पड़े। इसपर किसी की बुरी नजर न पड़े। वे डरें नहीं ! पूर्ण सुरक्षा में वे आयें और जायें।"

बोंगा की अर्चना कर उनके प्रशिक्षण की क्रिया आरम्भ होती है। शिक्षा की पाँच प्रक्रिया होती हैं। श्री बोडिंग ने अपने एक निबन्ध एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की पत्रिका में 'सन्ताल मेडिसिन एण्ड कनेक्टेड फाकलोर' शीर्षक से प्रकाशित किया था। उस निबन्ध में उन्होंने उन पाँचों प्रक्रियाओं पर विस्तृत विवेचन किया है। पहली प्रक्रिया में मन्त्र पढ़ा जाता है। विभिन्न रोग के लिए विभिन्न मन्त्र होते हैं। रोगी को कोई विशेष शिकायत होती है, तब मरूची भजन गाते हैं। मरूची के लिए एक

१. Rev. P.O.Bodding : Studies in SantalDisease and Connected Folklore, Part I, Page 6-8. Memoirs of the A. S. B., vol. X, Page 1-132.

विशेष स्वर होता है, उसी स्वर से वे गाते हैं। 'देशायी दरान' की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। उसमें नाच और गाना का सहारा लिया जाता है। चौथी क्रिया में नाच और क्रिया अभिनय होता है। जब ये चारों क्रियायें निरर्थक प्रमाणित होती हैं, तब दवा की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। प्रशिक्षण समाप्ति पर शिष्यों से ओझा को कपड़ा, एक बकरी, एक जोड़ा कबूतर, कुछ मुर्गियाँ प्राप्त होती हैं और शिष्य एक रुपया से पाँच रुपया तक उन्हें प्रशिक्षण का शुल्क देता है।

रोग के निदान के लिए वे वैद्य का भी सहारा लेते हैं। उसे वे रारानीक कहते हैं। वे जड़ी और बूटी से दवा करते हैं। उन्हें अपनी दवाओं पर विश्वास है। वे ओझा को पसन्द नहीं करते। उन्हें यह विश्वास है कि रोगी अगर समुचित रूप से दवा कराये तो रोग का निदान हो सकता है। रारानीक को भी प्रशिक्षित होना पड़ता है। पुराने वैद्य के पास जाते हैं। सन्ताल के जो पुराने वैद्य हैं, वे दवा लोगों को देते हैं, दवा का नाम नहीं बतलाते हैं। व जड़ी का परिचय अपने में ही रखते हैं। जो व्यक्ति उनके अपने होते हैं या उनके निकट आ जाते हैं, उन्हीं को वे दवा बनाने एवं किस रोग में कौन दवा दी जायेगी, बताते हैं। श्री बोडिंग और श्रीमती बोडिंग ने सन्तालों से उनके दवा एवं उनके नुसखों का विवरण लिया था, उन्हें वे प्रकाशित भी कराये थे। उनके नुसखों को देखने से मालूम होता है कि उनपर कविराजों का प्रभाव पड़ा है।[१] कविराजों की पद्धति पर ही दवा तैयार करते हैं और उनके ही अनुसार रोगी के रोग निदान के लिए प्रचार करते हैं।

१. Shree P. C. Biswas: Santals of the Santal Parganas. Page 112

सन्ताल अपने रारानीक को तब दवा के लिए बुलाते हैं, जब उन्हें विश्वास होता है कि प्राकृतिक कारणों से रोग है। पेट शरीर का बहुत बड़ा अंग है। स्वास्थ्य के लिए उसे ठीक करना आवश्यक है। सन्ताल हरी सब्जी अधिक खाते हैं। निर्धनता के कारण वे प्रतिदिन मांस नहीं खा पाते हैं, जब उन्हें मांस खाने का अवसर मिलता है, वे अधिक खा लेते हैं। यह स्वाभाविक भी है। कच्चा मांस या ठीक से नही पकाया गया मास खाने से पेट में गडबडी होती है, और वह कई रोगो को जन्म देती है। सन्तालों को मालूम है– चमडे की बीमारी, हैजा, प्लेग, चेचक की बीमारी छूत की बीमारी है; पर उन बीमारियो के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण भिन्न है। कोढ के सम्बन्ध में उनका विश्वास है कि वह खानदानी बीमारी है। उन्हें विश्वास है, लोग बीमार इसलिए पड़ते हैं कि वे साफ-सुथरा नहीं रहते हैं। अस्वच्छ पानी पीने या अस्वच्छ खाना खाने से लोग बीमार पडते हैं। कोढ को वे मराग रोग कहते हैं। टी० बी० को वे कफ-ज्वर कहते हैं। अन्धा होने पर वे मानते हैं कि उस व्यक्ति में विटामिन की कमी है।

आज इस निर्माण के युग में सन्तालों को उपेक्षा नहीं हो सकती है। कल्याण राज्य में सन्ताली क्षेत्र में अस्पताल खुल रहे हैं। सन्तालों को अच्छी दवा दी जा सके, इसके लिए अस्पताल खुले है; डाक्टर रखे गये हैं, प्रशिक्षित सेवक और नर्सें रखी गई हैं। स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये हैं, सन्ताल उत्साह के साथ इन स्वास्थ्य-केन्द्रो मे दवा ले जाते हैं। सरकार द्वारा स्थापित दवा के केन्द्र मे उनका सम्बन्ध अच्छा रहा है।

सन्तालों में जादू-टोना-संस्कार

सूर्य, चाँद और तारे, इन्हें सन्ताल अपनी दृष्टि से देखते हैं, उन्हें अपने विचारों की सीमा में रखते हैं। उनके सम्बन्ध में उनकी धारणायें अपनी हैं, जो अन्य जातियों से भिन्न हैं। सूर्य को सन्ताल पुरुष मानते हैं; चाँद को नारी और तारे उनकी सन्तान हैं। ग्रहण के सम्बन्ध में भी उनकी अपनी धारणा है। कहा जाता है कि सर्वप्रथम सूर्य या चाँद या दोनों एक समय मानव जाति की सुरक्षा के लिए तत्पर थे; चाँद को ईश्वरी शक्ति से अन्न मांगने के लिए मजबूर होना पड़ा था। ईश्वर ने कर्ज के रूप में चाँद को सहायता दी थी, पर कर्ज का भुगतान आजतक नहीं हो सका। ईश्वर हाथ बढ़ाकर उन्हें पकड़ना चाहता है। वह उनसे अपना पावना वसूल करना चाहता है। जब सूर्य या चाँद पकड़ा जाते हैं, तब ग्रहण लगता है। ग्रहण के समय सन्ताल अपने जानवरों को जमा करते हैं; उनके घरों में जो कुछ अन्न रहता है, उसे निकाल कर बाहर करते हैं। सूर्य और चाँद से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने कर्ज का भुगतान कर लें और उन्हें मुक्त करें। जिस दिन ग्रहण लगता है, उस दिन वे व्रत करते हैं, भूखे रहते हैं। उनकी एक लोककथा में ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे चाँद की गति का उन्हें अनुमान होता है। चाँद और सूर्य को बहुत सन्तान थी। बेटे अपने बाप सूर्य के साथ रहते और लड़कियाँ अपनी माँ चाँद के साथ रहती थीं। सूर्य और उनके लड़कों की गर्मी से धरती के जल जाने की आशंका हुई; अतः चाँद ने सूर्य से कहा कि धरती को नष्ट होने से बचाने के लिए वे अपने बेटों को नष्ट कर दें, धरती की जलन उससे कम हो जायेगी। सूर्य ने कहा— चाँद तुम अपनी

बेटियों को पहले नष्ट कर दो, तब हम अपने बेटों को नष्ट कर देंगे। लोककथा में आगे चलकर बताया गया है कि धोखा देकर चाँद ने अपनी बेटियों को छिपा दिया और सूर्य से कहा कि उसने अपनी बेटियों को नष्ट कर दिया है, फिर भी धरती की ताप कम नहीं हुई। अगर सूर्य अपने बेटों को नष्ट न करेंगे तो मानव जाति नष्ट हो जायेगी, धरती रसातल में चली जायेगी। सूर्य ने अपने लड़को को नष्ट कर दिया। यही कारण है, दिन में तारे दिखायी नहीं पड़ते। सन्तालों का खगोल के सम्बन्ध में ऐसा ही विश्वास है। पर रात में तारों को देखकर सूर्य को मालूम हुआ, चाँद ने उसे धोखा दिया है। उसे क्रोध हुआ। उसे वह जान से मार देने को तैयार हो गया। उसने अपनी दो बेटियाँ सूर्य को देकर क्षमा माँगी। यही दो तारे हैं— जिन्हें शुक्र और Jupiter कहा जाता है। यही दोनों तारे दिन में उगते हैं। पर प्रत्येक मास में सूर्य चाँद के धोखे को एकबार याद करता है। उसे मार देना चाहता है। चाँद को शान्ति नहीं रहती है। मास मे वह केवल दो दिन विश्राम पाती है। आकाश में जब बिजली चमकती है, गर्जन होता है, तब सन्ताल उसे ईश्वरी प्रकोप समझते हैं। "सन्ताल बिजली की चमक से अपने को बचाने के लिए अपने अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। गरजते हुए बादल की ओर संकेत कर अपने अस्त्र को वे रखते हैं।"

सन्तालों को जादू और टोना में बहुत विश्वास है। टोना बुरा भी होता है, अच्छा भी होता है। पर "साधारणतः जादू और टोना दोनों का प्रयोग अपने शत्रुओं के प्रतिशोध के लिए ही होता है।" दोनों में विभाजक रेखा है। टोना में जो शक्ति रहती है, वह अधिक खराबी पहुँचाती है। वह व्यक्ति में रहती है। डायनपन एक कला है, जो जन्मजात भी

है, और उसे अभ्यास के द्वारा अर्जित भी किया जाता है। सन्तालों में यह विश्वास है कि रविवार की रात में सब डायन एक जगह मिलती हैं। वे गाती हैं, नाचती हैं और मन्त्र पाठ करती हैं तथा बलिदान भी करती हैं। वे वहाँ मिलती हैं, जहाँ मानव नहीं रहते हैं। अगर कोई उन्हें डायनपन की क्रिया करते देख लेते हैं, तो उन्हें वे पकड़कर लाते हैं और अपनी कला को उन्हें सीखाते हैं। उन्हें जब विश्वास हो जाता है कि वह व्यक्ति केवल देखने के लिए ही आया है, तब उसे वे आगाह करती हैं कि वह किसी से उनके सम्बन्ध में नहीं कहेगा और अगर वह किसी से कह देगा तब वे उसका प्राण ले लेंगी। अगर आगाह करने के बाद वह उनके सम्बन्ध में कहता है, तब वे उसका प्राण ले लेती हैं। वे जादू से अपने नाच तथा अन्य खेलों के कारण जो पदचिन्ह जमीन पर पड़ते हैं, उसे मिटा देती हैं। वे मनुष्यों को जादू से मारती हैं। वे बोंगा को जमीन में गाड़ देती हैं। यह काम वे इसलिए करती हैं कि उन्हें विश्वास है कि बोंगा उनका काम कर देगा। वे बाल और सेन्दूर को जमीन में गाड़कर जादू करती हैं। डायनों के द्वारा बोंगा निर्धारित दिन को निर्देशित व्यक्ति को मारते हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। डायन कुछ चावल उस व्यक्ति के दरवाजे पर फेंक आती है, जिसपर वह टोना करना चाहती है। ओरांव तथा हो में स्त्री और पुरुष दोनो डायनपन कला में दक्ष होते हैं। पर सन्तालों में केवल स्त्रियाँ ही इस कला में दक्षता प्राप्त करती हैं। बोमपास ने सन्तालों में डायनपन संस्कार का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"एक समय मरांगबरू ने यह निर्णय किया कि वे डायनपन की कला की शिक्षा देंगे। उस समय एक ऐसा स्थान था, जहाँ मरांगबरू से मिलने के लिए लोग जमा होते थे, उनसे विचार करते थे। लोग उनकी वाणी

को सुनते थे, पर उनका दर्शन नहीं करते थे। एक दिन मरांगबरू ने उनसे कहा कि वे अपने सुन्दर और स्वच्छ कपड़े पहन कर आयें और उन्हें वे डायनपन की कला की शिक्षा देंगे। वे सब घर चले गये और अपनी पत्नियों से कहा कि उनके वस्त्र को वे साफ कर दें। उन्होंने उन्हें बताया कि मरांगबरू ने उन्हें डायनपन की कला की शिक्षा देने को कहा है। सभी औरतों ने यह निश्चय किया कि वे स्वयं इसकी शिक्षा लें और निर्धारित दिन को अपने पतियों को पोचाई पिलाकर बेहोश कर दें। ऐसा ही हुआ। पुरुषों का वस्त्र पहनकर डायनपन की शिक्षा पाने के लिए वे मरांगबरू के पास गईं। मरांगबरू उन्हें पहचान नहीं सके और उन्हें पुरुष मानकर डायनपन की शिक्षा प्रदान की। उनके घर वापस आने के बाद उनके पतियों को होश आ गया था, वे सब मरांगबरू के पास डायनपन की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये। मरांगबरू ने उन्हें कहा— 'आज प्रातःकाल ही तुम लोगो को शिक्षा दी गई है, फिर वही शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे क्यों कर आये।' उन्हे आश्चर्य हुआ और उन्होने कहा—वे मरांगबरू के पास प्रातःकाल शिक्षा प्राप्त करने के लिए नही आये थे। मरांगबरू ने कहा—'तुमलोगो ने अवश्य ही अपनी पत्नी से कहा होगा,जिसे नही कहने का आदेश दिया था।' सबो ने अपनी गल्ती स्वीकार की। मरांगबरू ने कहा—तुमलोग अब ओझापन की शिक्षा लो, तुम्हारी पत्नियों के द्वारा जो डायनपन से हानि होगी, उससे लोगो को थोडी राहत मिलेगी। इसी कारण डायन केवल औरतें होती है और ओझा तथा जन गुरु पुरुष होते हैं।"

कार्त्तिक के अमावस्या की रात्रि में निकटवर्ती गाँवो की डायन एक स्थान पर नग्न होती हैं। रातभर वे भ्रमण करती हैं। लोग डर के मारे घर से नहीं निकलते हैं। नयी लड़कियो को उसी दिन डायनपन की शिक्षा दी

जाती है। उन्हें मन्त्र याद कराया जाता है; गाना सिखाया जाता है। दीपक और झाड़ू के साथ वह घर से निकलती है। वह बोंगा के पास आती है, वहाँ वह आत्मसमर्पण करती है। सब लोग यह मान लेते हैं कि उसकी शादी बोंगा से हो गई। प्रशिक्षण लेने के बाद वह तबतक प्रशिक्षित नहीं समझी जाती है जबतक वह किसी आदमी के कलेजा को निकालकर नये बर्त्तन में चावल के साथ नहीं पकाती है। जिससे वह शिक्षा पाती है, उसके साथ वह खाती है और उसे उसकी शिक्षिका आशीर्वाद देती है कि वह डायनपन कला को नहीं भूलेगी। मनुष्य के मांस खाने से यदि नयी प्रशिक्षिता इनकार करती है, तो वह पागल हो जाती है या आत्म हत्या कर लेती है।

डायन लोगों को रोगी बनाती हैं, अन्य प्रकार की विपदा लाती हैं। वे व्यक्ति पर प्रयोग करती हैं, गाँव पर भी प्रयोग करती हैं। सन्तालों को यह विश्वास है कि डायन को वह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने को जानवर के रूप में परिवर्त्तन कर लेती हैं। पहले तो बाघ अगर किसी सन्ताल को खा जाता था, तो इसे भी सन्ताल समझते थे—बाघ का रूप धरकर डायन ही उस व्यक्ति को खा गयी है। वे बाघ को मानव-भक्षक नहीं मानते थे। ऐसी धारणा मुण्डा लोगों में भी पायी जाती है। डायन विशेष रूप से बिल्ली का रूप धारण कर किसी घर में प्रवेश करती है, वहाँ वह हानि पहुँचाने का कार्य करती है, निद्रा में पड़े हुए व्यक्ति के पास जाती है, उसके ओठों को चाटती है, वह आदमी बीमार पड़ जाता है। ऐसी बिल्ली पकड़ी जाती है, तब वे उसका प्राण ले लेते हैं, उसकी टाँग तोड़ देते हैं, या उसके किसी अंग पर चोट पहुँचाते हैं। बिल्ली को जान से मार डालते हैं; तब डायन मर जाती है। अगर बिल्ली की टांग टूटती है, तब डायन भी

लंगड़ी हो जाती है। डायन अन्य अदृश्य शक्तियों को भी प्रयोग में लाती है। वे अदृश्य शक्तियों को साकार बनाती है, वे जानवरों के रूप धारण करती हैं। सन्तालों में इतनी शक्ति है कि वे जानवरों से लड़कर अपनी सुरक्षा कर सकते हैं, पर डायनों द्वारा प्रयोग में लायी गई शक्तियों से वे अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। अस्त्र-शस्त्र का उनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। डायन अदृश्य शक्तियों की पूजा करती हैं। यह आराधना वे गुप्त रीति से करती हैं। उन्हें वह शक्ति अर्जित होती है कि वे जब चाहें तब बिल्ली, बकरी या भेंड़ का रूप धारण कर सकती हैं। रात भर कुकर्म करती रहती हैं। वे स्वप्न में लोगों को तंग करती हैं। डायन आदमी या जानवर का कलेजा चाहती हैं। वह जादू से किसी व्यक्ति का कलेजा निकालती है और पीपल के पत्ता में बांधकर रखती है। आदमी के मरने का जो दिन डायन निश्चित करती है, उस दिन वह आदमी मर जाता है। जादू का प्रयोग डायन तीर की सहायता से करती है। दूर के क्षेत्र के लिए इसका प्रयोग होता है। निर्धारित समय पर निश्चित व्यक्ति को तीर लगती है, वह व्यक्ति मर जाता है। सन्तालों को यह विश्वास है कि पक्की डायन हरा-भरा वृक्ष को सुखा सकती है; रातों-रात वृक्ष को उखाड़ कर १२ कोस पर पहुँचा सकती है। फिर जिस स्थान से वह उखाड़ती है, वहाँ उसे वे पदस्थापित भी करती हैं। डायन धन को चुराती है, सुख-साधन को नष्ट करती है। जहाँ उसका पैर जाता है, वहाँ अशान्ति, रोग का बहार हो जाता है। सन्तालों को विश्वास है कि डायनों से छेड़खानी करके वह बच नहीं सकता। बोमपास ने 'फाकलोर ऑफ दी सन्ताल परगना' में एक कहानी का उल्लेख किया है। उससे पता चलता है कि मोहुल पहाड़ी गाँव में जेवरा नाम का एक युवक रहता था। एक रात को उसे डायनों के समूह से भेंट हो गई।

उसने डायनों के साथ छेड़-छाड़ की। बाद में वहाँ से वह भाग आया। पर डायनों ने अपने जादू के द्वारा उसे दण्ड देने का निश्चय किया। दो दिन के बाद वह एक पेड़ से गिर गया। हाथ में चोट आयी। ओझा बुलाया गया, पर वह अच्छा नहीं हो सका। कुछ दिनों में जेवरा का देहान्त हो गया।

डायन पर नियन्त्रण रखने वाले ओझा और जन होते हैं। जन का अर्थ है– जानना। जन जानते हैं कि कौन डायन है। उन्हें भी एक शक्ति प्राप्त रहती है; वे अपनी विद्या से यह जान जाते हैं कि किसी डायन ने अमुक व्यक्ति पर जादू किया है। उन्हें कहाँ तक शक्ति प्राप्त रहती है, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर उन्हें 'जन' पर बहुत भरोसा है, विश्वास है। जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है, दवा कराने के बाद वह अच्छा नहीं होता है, तब उसके परिवार के लोग जन के पास जाते हैं और डायन का पता चाहते हैं। जन के पास पहुँचने में भी उन्हें एक क्रिया करनी पड़ती है। गुप्त रूप से जन के सामने बातें रक्खी जाती हैं। वे पहले गाँव के प्रमुख से कहते हैं कि वह जन से उनका परिचय करा दें। वह जन के पास निम्नलिखित वस्तुओं को लेकर जाता है—एक खोपाड़ी, एक सखुआ का पत्ता, कुछ अरवा चावल, कड़ुआ तेल, सेन्दुर, सखुआ की एक टहनी, बेल के कुछ पत्ते। जन अपने घर में या जेहरस्थान में अपना अनुष्ठान करता है। जन अरवा चावल को कई स्थान पर विभिन्न बोंगा के नाम पर रखता है। उस पर बेल की पत्तियाँ चढ़ाता है, तेल को सेन्दुर में मिला-कर उससे चावल के सामने चिन्ह अंकित करता है, सखुआ की टहनी से आग को प्रज्ज्वलित करता है। इसके बाद मन्त्र पढ़ता है। वह लोगों पर विश्वास जमाने के लिए पहले उनका परिचय देता है, उनके घर, गाँव,

उनके मुखिया का परिचय देता है, रोगी के सम्बन्ध में उन्हें जानकारी देता है। जन की जानकारियों से उन्हें विश्वास हो जाता है कि वह दक्ष व्यक्ति है। जन बताने के लिए निर्धारित शुल्क लेता है। निर्धारित शुल्क एक रुपया है। जन शुल्क लेने के बाद घोषणा करता है कि रोग पर किसका जादू टोना है। बोंगा की अकृपा होती है, बोंगा का नाम वह बताता है। अगर डायन की करामात रहती है, तब वह डायन का नाम बताता है। मिस्टर बोडिंग के अनुसार जन अच्छे आदमी नहीं होते हैं, वे विश्वास के पात्र भी नहीं हैं। वे लोगों के सम्बन्ध में अपने गुप्तचरों के माध्यम से पूर्व में ही जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। भोले सन्तालों को विश्वास दिलाकर डायन के रूप में किसी का नाम बता सकते हैं। बोडिंग ने उन्हें अनेक अपराधों का उत्तरदायी माना है। उनके द्वारा बताये हुए डायन को वे जान से मार डालते हैं, वह घर से निकाल दी जाती है। जन का प्रभाव बहुत ही है। प्रत्येक वर्ग में कुछ घटनायें होती हैं, जिससे यह पता लगता है कि जन के द्वारा घोषित डायन की सन्तालों ने हत्या कर दी। गौरा मुर्मु की हत्या इसी प्रकार हुई थी। जन से सूचना पाकर विजयापुर के मगल सोरेन ने गौरा मुर्मु की हत्या की थी। गौरा मुर्मु को डायन घोषित किया गया था और उसपर राजम सन्ताल की मृत्यु का अभियोग लगाया गया था। पटना हाईकोर्ट में ५ जनवरी, १९३३ को माननीय जज श्री कुलवन्त सहाय और सर टी० एम० मैकफरसन के इजलास में गौरा मुर्मु की हत्या के मुकदमे की सुनवाई हुई और जजों ने मगल सोरेन को फांसी दे दी।[1]

भूत और प्रेतों में भी सन्तालों को विश्वास है। उनकी लोक-कथाओं में अनेक भूतों की कहानियाँ हैं। गर्भवती महिला या प्रसव काल में मरी

१. अमृत बाजार पत्रिका, (७ जनवरी, १९५३) में प्रकाशित संवाद।

हुई नारी प्रेत होती है, ऐसा सन्ताल मानते हैं। हिन्दु घरानों में भी यह धारणा प्रचलित है। ऐसा समझा जाता है कि गर्भवती स्त्री अपना घर वापस आना चाहती है। सन्ताल समझते हैं कि अगर वे घर वापस आ गईं तो वह जिसे अधिक प्यार करती थी, उसे वह ले जायेगी। प्रसव कराने के बाद सौर-गृह में नारी का देहान्त हो जाता है, तब वह अपने बच्चे को लेने आयेगी। अतः ऐसी औरत के शव का क्रियाकर्म वे बहुत सावधानी से करते हैं। वह घर वापस नहीं आवे, इसकी व्यवस्था वे करते हैं। उसके पैर और हाथ में काँटा गाड़ दिया जाता है। शव से आँख निकाल ली जाती है। ऐसा कर उन्हें शान्ति होती है कि वह न तो चल सकेगी और न देख सकेगी अपने घर को। सन्ताल ओझा घर को बाँध देते हैं। ये कोयला से एक रेखा मकान के चारो ओर खींच देते हैं। उस लक्ष्मण-रेखा के अन्दर प्रेत नहीं आ सकता।



ईसाई सन्तालों की स्थिति

सन्तालो के बीच ईसाई मिशनरी बहुत दिनों से काम कर रही है। ईसाई धर्म में आकर्षण है; अभावग्रसित व्यक्तियों पर उस धर्म का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। उपलब्ध साहित्य से यह ज्ञात होता है कि ईसाई मिशनरी द्वारा सन् १८६४ में सन्तालो के बीच ईसाई मत का प्रचार हुआ। लगभग १२५ वर्षों के बीच सफलता पूर्वक उन्होने काम किया है। उसके फल-स्वरूप सन्ताल परगना में ३ से ४ प्रतिशत ईसाई हैं। सन् १९४१ की

जन संख्या मरातम्न को दृष्टि में रखकर मिस्टर आर्चर ने कहा है कि सन्ताल परगना में ७८६,८३० सन्ताल है और २३,२०१ आदिवासी ईसाई हैं। आदिवासी ईसाइयों की जो संख्या है, उस संख्या में सभी सन्ताल नहीं हैं। ईसाई सन्तालों की संख्या लगभग २०,००० है। इससे प्रगट होता है कि सन्तालों की आबादी के केवल २.५ प्रतिशत ही ईसाई हैं। उस समय भी और आज भी सन्ताल परगना में विभिन्न ईसाई मिशनरियाँ काम कर रही हैं। सफन्डेनेभीयन मिशनरी, चर्च मिशनरी, सेभुन्थ डे एडमेन्टीस्ट, रोमन कैथिलिक, पलाई माउथ ब्रदरन आदि मिशनरियों ने बहुत कार्य किये हैं। धर्म के क्षेत्र में, संस्कृति के क्षेत्र में और शिक्षा के क्षेत्र में उनके जो कार्य हुए हैं, उन्हें हम क्रान्तिकारी काम कह सकते हैं। सन्तालों में सबसे पहला कार्य सन् १८३८ में अमेरिकन फ्री बील बेभिस्ट मिशनरी के द्वारा आरम्भ हुआ। इसका उल्लेख डब्लू. हन्टर ने 'एनल्स ऑफ बंगाल' में किया है। यह पुस्तक १८६८ में लन्दन से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में उसने सन्तालों के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किया है। पर उन्होने स्वीकार किया है कि जो कुछ उन्हे सन्तालों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हुआ है, वे सभी ज्ञान अमेरिकन बेभिस्ट मिशनरी से प्राप्त हुए हैं। वह मिशनरी मिदनापुर और उड़ीसा के सन्तालो में काम कर रही थी। अमेरिकन फ्री बील बेपिस्ट मिशनरी से 'क्वार्टस् नोयम' नामक एक पत्र निकलता था। इस पत्र के २९ दिसम्बर, १८३८ को एक प्रतिवेदन सन्तालों के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ था।[१] उस प्रतिवेदन में कहा गया था—'जंगल के बीच में एक गाँव में गया। जैसे ही मैंने उस घर को देखा, मुझे

१. W. W. Hunter : Annals of Rural Bengal, London, 1868.

अनुभव हुआ कि हम अपने पुराने मुलाकातियों के बीच आ गये हैं। उनसे बहुत साम्य है। जब मैंने इन काले आदमियों को उनके अपने विशेष कपड़ों में देखा, तब उनके सम्बन्ध में हमारी धारणा पूर्णतः पुष्ट हो गयी। मैं अपने घोड़े से उतरा और जानना चाहा कि क्या यह गाँव कोलों का है ? कोल नाम से वे परिचित नहीं थे। मुझे बताया गया कि वे कोल नहीं हैं, वे सन्ताल हैं। "मिस्टर हन्टर को विश्वख्याति प्राप्त भाषा शास्त्री श्री जेरीमीह फिलिप से बहुत बातों का पता चला था, जैसा उन्होंने स्वीकार किया है। सन्ताली बोली पर सबसे पहले उन्होंने ही काम किया था। सन्ताली भाषा में ८ पृष्ठ की उनकी एक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी। वह सन्ताली भाषा की पहली पुस्तक थी।[१] वह पुस्तक सन् १८४१-४२ में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने १० फरवरी, १८४१ के अपने परिपत्र में लिखा है—"प्रातःकाल का समय सन्ताली शब्दों के समझने में लगा। १५० शब्दों को प्राप्त किया। यह जानकर कि तीन या चार मील की दूरी पर नाच देखने गये हैं; हम लोग भी जाने को तैयार हो गये। रास्ते में औरत, मर्द और बच्चों से भेंट हुई; वे सभी रंगीन और अच्छे कपड़े पहने हुए थे, आनन्दमग्न होकर नाचते और कूदते थे। निर्धारित स्थान पर हमलोगों ने देखा, लगभग ६ सौ आदमी एक गोलाकार अहाते में जमा थे। सखुआ की डाली लिये हुए घोड़ा और हाथियों की मूर्त्ति पर चढ़े हुए थे। दृश्य देखने में आनन्ददायक था। नृत्य देखने लायक थे। औरत मर्दों के सम्पर्क में रहती हैं। नाच-गान में उनके साथ में वे हाथ बँटाती है। नारियों को हीन भावना से देखा नहीं जाता। इसका परिणाम यह है कि

१. W. J. Culshaw : Tribal Heritage–London, Page 4.

वे मानव के समान रहते हैं; वे एक दूसरे का सम्मान करना जानते हैं।''[१]

अमेरिकन बेपिस्ट मिशनरी ने शिक्षा के माध्यम से अपने धर्म का प्रचार सन्तालों में आरम्भ किया। उनके लिए साहित्य का निर्माण-कार्य आरम्भ किया। प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था की। इन सभी प्रयासो के पीछे ईसाई धर्म का प्रचार करना उनका लक्ष्य था। सन् १८६५ के एक मिशनरी के प्रतिवेदन से यह पता चलता है कि ईसाई मिशनरी ने यह माना था कि धार्मिक शिक्षा के बगैर शिक्षा का कोई परिणाम नही है। यही कारण है, उन्होंने ईसाई मत की शिक्षा देने पर अधिक जोर दिया है।[२]

सन्ताल विद्रोह के बाद संतालो की ओर मिशनरियों का विशेष ध्यान गया। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से एवं धार्मिक दृष्टिकोण से संतालो की उपेक्षा उन दिनो करना सम्भव नही था। नार्दन चार्य ने सन्ताल परगना में धर्म प्रचार के लिए एक सन्ताल मिशनरी की स्थापना थी। बेनागरीया में एक मिशनरी का केन्द्र खोला गया। सन् १८६७ से स्करिफंसरूड ने सन्ताल भाषा का व्याकरण तैयार किया जो सन् १८७३ में प्रकाशित हुआ

---

१. उद्धरण फिचिल बेपिस्ट फारेन मिशनरी सोसाइटी के ८वी वार्षिक प्रतिवेदन से लिया गया है, जो प्रतिवेदन न्यू इंगलैण्ड के तोप साम में ७वी अक्टूबर, १८४१ के अधिवेशन में स्वीकृत हुआ था। इस उद्धरण को मिस्टर डब्लू० जे० कुलशाह ने १९४५ में 'मैन ऑफ इण्डीया, १९४५' में अपने निबन्ध "एरली रेकार्डस् कन्सरनिंग दी सन्ताल' शीर्षक में तथा अपनी पुस्तक ट्राइबल हिरटेज में प्रयोग किया है।"

२. Stacy, Life of Otis Robinson Bachelor, Page.—318, quoted from Primary Education among Santhals of Midnapore, 1931.

था[1]। १८८७ में ' मेरे हेपरायकी रेक कथा ' प्रकाशित हुआ। सन्ताल संस्कार से यह पुस्तक सम्बन्धित है। मि० पी० ओ० बोडिंग ने इस पुस्तक का अनुवाद अंग्रेजी में किया था, जो ' ट्रेडिसन्स एण्ड इन्टीच्यूसन ऑफ दी सन्ताल ' के नाम से १९४२ में प्रकाशित हुआ था। सन्ताल भाषा के लिए रोमन लिपि का प्रचार किया गया। सन्ताल परगना में विभिन्न मिशनरियो के द्वारा ईसाई मत का काम चल रहा था। सभी मिशनरियों पर नियंत्रण रखने के लिए सन् १९३४ में एक सन्ताल ईसाई परिषद् की स्थापना हुई। इस परिषद् द्वारा सन्तालो के जन-जीवन में विकास लाने की बड़ी चेष्टा की गई है।[1] इन मिशनरियों के द्वारा केवल सांस्कृतिक एवं धार्मिक काम ही नही हुआ था। सन्ताल के आर्थिक जीवन में सुधार लाने में भी इनका कम योगदान नहीं था। नार्दन चार्च की सन्ताल मिशनरी ने जमीदारी ली थी, आसाम के चाय-बगान में भी उनकी जमीदारी थी। वहाँ सन्तालों को काम में वे भेजते थे। सन्तालों की जमीन जो सूद-भरना में चली गयी थी, उसे भी रुपया दिलाकर मिशनरियों ने उन्हें सहायता दी थी। आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए सन्ताल चर्च में जाते थे, पादरियों से राय लेते थे। पादरियो द्वारा उन्हें केवल राय ही मिलती थी, उनसे अर्थ सहयोग भी उन्हें प्राप्त होता था। नार्दन चर्च सन्ताल मिशनरी के एक प्रतिवेदन से पता चलता है कि एक बार अकाल की स्थिति दुमका अनुमण्डल में उपस्थित थी। यह ज्ञात हुआ है कि सर-

---

१. Through the influence exercised by its members in their several localities it has done not a little to lighten the community consciousness of the Santhals in many places.
— Mr. W. J. Culshaw; Tribal Heritage.

कार की ओर से भूमि सुधार ऋण योजना चालू की गई है। इस योजना के अन्तर्गत सरकार बीज खरीदने के लिए ऋण दे रही है। सन्तालों को भी इस योजना के अन्दर औरों की तरह ऋण मिलने का अधिकार प्राप्त था, पर उन्हें ऋण मिल नहीं रहा था।* सन्ताल मिशनरी के नेतृत्व में सन्ताल परगना के उपायुक्त के पास एक प्रतिनिधि मंडल भेजा गया और सन्तालो को भी उक्त योजना से ऋण प्राप्त हुआ।[1] इस प्रकार हम देखते हैं, मिशनरियो ने सन्तालो को केवल धर्म की महिमा बताकर अपनी ओर उन्मुख नही किया है। उन्होने सन्तालो की सेवायें की हैं, उन्हे शिक्षित बनाने की चेष्टा की है, उन्हे आर्थिक सहयोग देकर या 'सरकार से दिलवा-कर उनकी समस्याओ को सहानुभूति से देखकर उन्हें हल करने की चेष्टा की है। सन्तालो के सामने रोटी-रोजी की समस्या बहुत बडी रही है। मिशनरियो द्वारा जमीन ली गई, मिशन कृषक बना और सन्ताल खेतिहर। उनसे मिशनरियो ने काम लिया और उन्हे दाम दिया। सन्ताल के आर्थिक जीवन को बर्बाद करने में उनका ऋण बहुत अंश में उत्तरदायी है। सन्ताल मिशनरियो द्वारा कम सूद पर उन्हे ऋण दिया गया। सन्ताल परगना मे कई अस्पताल एवं शिक्षण सस्थान इन मिशनरियो द्वारा सचालित हैं।

सन्ताल ईसाई वर्ग का अपना एक समाज है। इस समाज में वे सन्ताल हैं, जो अपने धर्म को छोडकर ईसाई मत में आ गये हैं या जो पहले आ गये थे, उनके वशज हैं। उनका अपना सामाजिक जीवन है, उनपर वाह्य परिस्थितियो का प्रभाव पडा है। उनमें नये आदेश आयें, जीवन का माप-

१. The Seventy-fifth Annual Report of the Santhal Mission of the Northern Churches, 1941, Page ·46 - 47.

दराड् नया है; उनका आचार-विचार पहले के अपने पुरखो मे भिन्न है। धर्म बदला है, जीवन बदला है। फिर भी कुछ अश मे ईसाई सन्तालों पर पहले के संस्कार का कुछ प्रभाव रहा है। वे प्रभाव साधारण नहीं हैं, बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अभी भी ईसाई सन्ताल अपने पूर्वजों की तरह गाँवो में रहना पसन्द करते हैं। आज भी उन्हें धरती उतनी ही प्यारी है जितनी पहले थी। गैर ईसाई सन्ताल और ईसाई सन्ताल में धरती के प्रति एक ही ममता मिलती है। दोनो रोटी के लिए धरती पर पसीना बहाते हैं, दोनो का खेती का औजार एक है, खेती करने की क्रियायें एक हैं, पद्धति एक हैं। उनके पुरखो ने श्रम को जिस प्रकार स्त्री-पुरुष में बाँटा था, वही विभाजन ईसाई सन्तालो के यहाँ भी हमे मिलता है। सन्ताल परम्परा के अनुसार पुरुष खेत जोतता है, घर बनाता है, जङ्गल काटता है, लकडी को गाडी पर लेकर बाहर पहुँचाता है। ईसाई समाज मे भी सन्ताल वही काम करता है। सन्ताल औरतें जो काम करती हैं, वही काम ईसाई समाज मे ईसाई मत ग्रहण करनेवाली नारियाँ भी करती हैं। सामाजिक जीवन में एव आर्थिक जीवन मे बहुत कम विभिन्नता मिलती है। पर धार्मिक जीवन में विभिन्नता बहुत अधिक है। ईसाई सन्तालो पर भी सन्ताल कानून लागू है। यह ठीक है, सन्ताल कानून कुछ परम्पराओं के चलते ईसाई सन्तालो के लिए संशोधित हुए हैं, फिर भी अभी बहुत अंश हैं, जो मूल रूप में हैं और दोनो पर लागू हैं। सन्ताल कानून के द्वारा ईसाई सन्ताल कहाँ तक प्रशासित हो— यह प्रश्न सन् १९३८ में सन्ताल परगना जाँच के समय उठाया गया था। मिस्टर डब्लू० जी० आर्चर ने इस सम्बन्ध में जाच किया था। अन्य विचारको के द्वारा भी इस सम्बन्ध मे शोध कार्य हुए थे। फिर भी मूल सन्ताल कानून के द्वारा ही (कुछ

संशोधन के बाद) ईसाई सन्ताल प्रशासित होते हैं।

ईसाई मिशनरियो द्वारा प्रचार होने तथा उनके द्वारा शिक्षित होने के कारण बोगा तथा भूत-प्रेत की भावना ईसाई सन्तालो से दूर हुई है। बोगा या भूत-प्रेत की अर्चना ईसाई सन्ताल नही करते हैं। कुछ ईसाई मिशनरियो ने पोचाई पीने के विरोध में अभियान किया था। आज भी अभियान जारी है। ईसाई सन्तालो पर इसका अच्छा प्रभाव पडा है। ईसाई सन्ताल सन्तालो के परम्परागत व्रत एव उत्सव में साधारणतः भाग नही लेते हैं। कारण सन्तालो के व्रत एव उत्सव में बोंगा की प्रधानता रहती है। बोडिंग ने स्वीकार किया है कि मिशनरियो ने सन्ताल सस्कारो की तबतक उपेक्षा नही की है, जबतक ईसाई मत मे उनका संघर्ष नही हुआ है। बोगा की अर्चना एव पोचाई पीने की प्रवृत्ति का ईसाई मिशनरियों द्वारा विरोध हुआ था। पोचाई पीने के सम्बन्ध में मिशनरियो ने थोडी उदारता दिखलायी है, पर बोगा एव भूत की अर्चना में किसी प्रकार को उदारता मिशनरियो की ओर से नही दिखायी गई है। ईसाई समाज में ही उन्होंने उदारता प्रदर्शित की है या बोंगा एवं भूतो का विरोध किया है। रोमन कैथिलिकों द्वारा धार्मिक अनुष्ठानो के समय नृत्य निषेध नही किया गया है। कुछ मिशनरियो के द्वारा पीने पर निषेध है, पर नृत्य पर निषेध नही है। वे नृत्य के विरोधी नही हैं, पर वे यह नहीं चाहते हैं कि नृत्य करते समय कामुकता का प्रदर्शन हो। ईसाई सन्ताल में शादी साधारणत. चर्च में हुआ करती है। सन्तालो की शादी के लिए अपनी बहुत सी रीतियाँ हैं, बहुत सी परम्परायें हैं। पर ईसाई सन्ताल उनमें से बहुत ही कम रीतियों को मानते हैं, उसका अनुपालन करते हैं। सेन्दूरदान ईसाई सन्तालो में भी होता है। यह सत्य है—शादी चर्चों में होती है,

पर शादी की तैयारी ईसाई सन्तालो में भी सन्तालो के ही समान होती है। उसमें भी कन्या देखना, कन्या के पिता के पास सन्देश भेजना, दोनों में बीच-बीचाव करनेवाला होता है, उपहारों का आदान-प्रदान होता है। कन्या मूल्य भी चुकाया जाता है। सन्ताल समाज में जो बातें होती हैं, वे सभी बातें ईसाई सन्तालो के घर मे भी हम देखते हैं। साधारणतः ईसाई सन्ताल अपने लडका-लडकी की शादी ईसाई सन्ताल परिवार में करता है। वह अन्य ईसाई परिवार में शादी नही करता। ईसाई सन्ताल कन्या से अन्य ईसाई का यौन सम्बन्ध घृणा से देखा जाता है। मुझे ऐसा कोई प्रमाण नही मिला, जहाँ यह प्रकट हो कि ईसाई सन्ताल की शादी अन्य सन्ताल के साथ हुई है। एक विवाहित सन्ताल जब ईसाई मत ग्रहण कर लेता है और उसकी पत्नी ईसाई मत ग्रहण नही करती है, तब एक विशेष स्थिति का जन्म होता है। रोमन कैथोलिको के अनुसार गैर-ईसाई पत्नी रखने की मनाही है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तब ईसाई सन्ताल को कैथोलिक सन्ताल लडकी से शादी करनी पडती है। सन्ताल पत्नी का भी अधिकार अपने पति पर है, वह अधिकार ज्यो का त्यो बना रहता है। कुछ मिशनरियो द्वारा विवाहित सन्तालो को दूसरी शादी नही करने दिया जाता है और न पहली पत्नी के साथ उन्हे रहने की अनुमति मिलती है। उसपर मिशनरियो का जोर रहता है कि वह अपनी पत्नी को भी ईसाई बनाये। साधारणतः दम्पति ही ईसाई मत में आते हैं। अगर सन्ताल पत्नी ने अपने पति को छोड दिया हो या ईसाई मत वह ग्रहण नही करती हो, ऐसी स्थिति में ईसाई मत ग्रहण करने वाले विवाहित ईसाई सन्ताल को ईसाई सन्ताल लडकी से शादी करने की अनुमती मिलती है; पर ऐसी शादी चर्च में नही होती है। चर्च के बाहर शादी होती है,

वहाँ मन्त्र पढ़े जाते हैं, विनती होती है। सन्तालो मे कई प्रकार की शादियाँ प्रचलित हैं, पर ईसाई सन्तालों में तीन प्रकार की शादी सन्ताल परम्परा की होती है, वे हैं– दोस्त बापला, गोलहटी और 'टुनकी दोपली'। पर इन विवाहो मे बोगो की अर्चना होती है। जावे कीरी नोक बापाला ईसाई सन्तालों में नही होता है। 'इपीटूट' बापाल का ईसाई सन्ताल में प्रचलन नही के बराबर है।

यह सर्वमान्य है कि ईसाई सन्तालो मे सन्ताल सस्कार और उनकी परम्परा आज भी प्रचलित है। ईसाई सन्तालो ने अपने पुरखो के उन्ही सस्कारो को छोडा है, जो संस्कार ईसाई मत के विपरीत हैं। घर में जब बच्चा पैदा होता है, तब सन्ताल एव ईसाई सन्तालो में एक ही परम्परा है, वे घर को शुद्ध करते हैं, स्नान करते हैं और उत्सव मनाते हैं। जब ईसाई सन्ताल बीमार पडते है तब लुक-छिपकर ओझा-वैद्य से उपचार कराना चाहते है। पादडी लोग इसे अच्छा नही समझते। पर ईसाई सन्तालो पर अपने पूर्व संस्कार की छाप पडी है, अतः वे मन्त्र के उपचार मे विश्वास करते है। बागो को बलि दी जाती है। गुप्त रूप मे ईसाई समाज मे बोगो की अर्चना होती है। ईसाई सन्ताल कभी जलाये नही जाते हैं। सन्तालो के मृत सस्कार अनेक हैं, जैसे—अस्थि बिखेरना, मृतक आत्मा की चीजो की बिक्री, तेल नहान, दामोदर नदी मे अवशष प्रवाह आदि। पर ईसाई सन्ताल इनमे से कोई भी सस्कार सम्पन्न नही करते हैं।

सन्तालो के जन–जीवन मे नृत्य का बहुत बडा महत्व है। पर ईसाई सन्ताल समाज में नृत्य का वह महत्व नही है। बहुत से ईसाई सन्तालों के परिवारो ने नृत्य को बाद कर दिया है। सन्ताल नृत्य के सम्बन्ध में उनकी अनेक आपत्तियाँ हैं और "सबसे बडी आपत्ति यह है कि सन्ताल नृत्यों

के द्वारा दोनो यौनो को मिलने का अवसर रात को प्राप्त होता है, और ऐसे मिलन से उनमें यौन-सम्बन्ध की अधिक सम्भावनाएं रहती हैं।" [१] ईसाई सन्ताल भी बाहर के लडके को गोद लेना चाहता है, तब उसे भी गाँव की पंचायत की अनुमति लेनी होती है। गाँव के पंचायत के सामने उसे यह घोषणा करनी पडती है कि वह उक्त बालक को गोद ले रहा है। बालक अगर ईसाई परिवार का है, तब सन्तालों की तरह गाँव की पंचायत से अनुमति लेकर गोद ले लेता है, पर जब वह गैर ईसाई सन्ताल परिवार का होता है, तब उसे ईसाई बनाया जाता है। एक सौतेला लडका, अभिभावक, नौकर के अधिकार प्रायः ईसाई सन्ताल और सन्ताल में एक-सा है। अवैध पुत्र के पालन-पोषण का अधिकार उसके पिता का है; गैर ईसाई सन्ताल से अवैध लड़का है, तब घर के शुद्धिकरण का पूरा व्यय उसे देना पडता है। ईसाई सन्ताल कुमारी अपने अवैध पुत्र के पिता को बता पाती है, तब उसके लिए एक पति की खोज उसी प्रकार से होती है, जिस मंत्र से ऐसी सन्ताल लडकी के लिए होती है। सन्ताल नारियो को जो अधिकार प्राप्त है, वे ही ईसाई-सन्ताल औरतो को प्राप्त है। ईसाई समाज में अनेक पत्नी रखने की अनुमति नही होती है। सन्तालो में तलाक के अपने नियम हैं, अपने व्यवहार हैं। पर ईसाई सन्ताल-समाज में उससे भिन्न नियम है। जब ईसाई सन्ताल समाज में शादी इण्डियन क्रिश्चयन मैरेज एक्ट १८७२ के अन्तर्गत होती है, तब तलाक के लिए जिला जज या हाई कोर्ट के सामने आवेदन पत्र देना पडता है। तलाक देने के लिए कई अव्यवहारिक कठिनाइयाँ होती हैं, अतः मतभेदो के रहते

१. P. O. Bodding : Notes on the Santal's; Census of India, 1931. I III B— Page.— 107

हुए भी तलाक कम देते हैं , और न चाहते हुए भी वे एक साथ रहते हैं ।[१] यही कारण है , वे शादी अधिकांश रूप में इण्डियन क्रिश्चयन एक्ट के अनुसार नही करते हैं। वे चर्च में शादी करते हैं , पर शादी का निबन्धन नही करते हैं। ऐसी स्थिति में तलाक के लिए ईसाई सन्तालो में वही नियम है , जो नियम और व्यवहार गैर ईसाई सन्तालो में है। पंचायत के समक्ष वे तलाक देते हैं। पर चर्च के पादरियो को भी उसकी सूचना वे देते हैं।

सन्ताल कानून दोनो पर लागू है। जानवरो के अधिकार, देन-पावना, शिकार और मछली मारने के सम्बन्ध में जो नियम-कानून सन्तालों का है , उन सभी का प्रचलन ईसाई सन्तालो में भी है। नामकरण में मतभेद है। सिद्धात के रूप मे विशेष अन्तर नही है। सन्तालो में नामकरण के लिए ओझा , देवी देवता का भी नाम आता है , ईसाई सन्तालो में ऐसी पद्धति नही है। ईसाई सन्तालो का दो मूल नाम होता है— एक सन्ताल नाम दूसरा ईसाई नाम। सन्तालो के यहाँ व्यवहार नियम है कि जब पंचायत बैठती है तब पंचायत में पोचाई चलता है। पोचाई पीने के बाद ही किसी निर्णय की पुष्टि करते हैं। पर ईसाई सन्तालो मे पोचाई पीने–पिलाने की प्रथा नही के बराबर है। ईसाई सन्ताल पोचाई के बदले एक कप चाय पीकर इस निर्णय को पुष्ट करते हैं।[२] "मिशनरियो द्वारा आदिवासियो के संस्कार एव परम्परा को बहुत हानि हुई है।" बरियार इलविन ने कहा

१. W. G. Archer's report on Civil Law in Santhal Society. (Unpublished)

२. W. G Archer's report on Civil Law in Santhal Society (unpublished)

है,—'जब आदिवासी ईसाई होते हैं, तब वे ऐसा अनुभव करते हैं कि वे जिन सामाजिक एव नैतिक वातावरण में पले हैं, उससे वे दूर हो गये हैं। स्वतन्त्र एवं प्राकृतिक आमोद-प्रमोदो से जिन्हें वे बहुत प्यार करते थे, उनसे उनका सम्बन्ध टूट जाता है। बहुत अंश में उनका नैतिक और आर्थिक पतन हो जाता है।"[१]



१. W. G. Archer's report on Civil Law in Santhal Society (unpublished)

भाषा-दर्शन



● सन्ताली भाषा आग्नेय परिवार की एक शाखा है। इस शाखा का नाम ग्रियर्सन ने कोलारियन शाखा माना है। फ्रेडरिक कीलर ने उसे मुण्डा भाषा का नाम दिया है। भाषा-विज्ञान के सर्वसम्मत सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर इस शाखा का नाम मुण्डा - कोल - खेरवार भाषा परिवार कहा जाना चाहिए। पहले मध्यकाल में सन्ताल खेरवार ही कहलाते थे। सन्ताली भाषा भारत के एक विस्तृत भूभाग की मातृभाषा है और इसका विस्तार बिहार, पश्चिम बंगाल, उडीसा, आसाम एवं मध्य प्रदेश तक फैला हुआ है।

● सन्ताली भाषा की अपनी कोई लिपि नही है—यह कहना युक्ति-सगत नही है। अग्रेज भाषा शास्त्रियो ने इसे वाक्य-सूत्र मे कहा और आज भी इसे हम कहे जा रहे हैं। पर वस्तु-स्थिति यह नही है। नागरी लिपि उसी हद तक उनकी लिपि रही है, जितनी सीमा तक वह हिन्दी की लिपि रही है। सन्ताल विद्रोह के नेता सिदो ने जो अपना घोषणा-पत्र भागलपुर प्रमण्डल के आयुक्त के पास भेजा था—उसकी लिपि कैथी थी, जो नागरी लिपि का ही एक विकृत रूप है। उन दिनो बिहार मे नागरी लिपि का रूप कैथी रहा था। अतः हमे भाषा-विज्ञान के तत्वो का आधार मानकर यह स्वीकार करना होगा कि सन्ताली भाषा की लिपि नागरी है।

● सन्ताली शब्दावली को देखने से हमें ऐसा लगता है कि केवल २५ प्रतिशत सन्ताली का मूल शब्द है। २५ प्रतिशत शब्द उस भाषा की बगला, मैथिली, उर्दू, भोजपुरी, अगिका, अग्रेजी आदि भाषाओं की है। बाकी ५० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। हमें तो ऐसा लगना है कि सन्ताली भाषा और उसका साहित्य राष्ट्र-भारती के उतना ही निकट है जितनी प्राचीन राजस्थानी भाषा। राष्ट्र-भारती के सेवको से हमारा अनुरोध है कि वे इस वस्तु-स्थिति की ओर ध्यान दें।

●

सन्ताली भाषा और लिपि

संसार में अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है। उन भाषाओं की संख्या अभीतक ठीक-ठीक रूप से निश्चित नहीं हुई है। उपभाषाओं अथवा बोलियों को छोड़कर ससार की भाषाओं की सख्या दो हजार के लगभग है।[1] बहुत सी भाषायें आज लुप्त हो गई हैं। उनकी भी संख्या कम नहीं है। भाषा का अध्ययन समुचित रूप से नहीं होने के कारण आज भी बहुत सी भाषायें या तो नष्ट हो रही है या नष्ट होने की स्थिति में वे हैं। भाषा-विज्ञान के आचार्यों ने १८वी सदी में विदेशों में भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। उनसे लाभ यह हुआ कि कुछ भाषायें बच गई हैं। उनका मूल्यांकन होने लगा है। भारत में भाषा का अध्ययन भाषा-विज्ञान के सर्व-सम्मत सिद्धान्तों के आधार पर डाक्टर जान बीम्स की पुस्तक "कपैरेटिव ग्रैमर औफ दि माडर्न एरियन लैंग्वेजेज औफ इण्डिया" के द्वारा श्री गणेश हुआ है। यह ग्रन्थ तीन भागों में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रथम भाग सन् १८७२ में प्रकाशित हुआ था। उसमें भाषागत ध्वनियों पर प्रकाश डाला गया था। दूसरा भाग, जो सन् १८७५ में प्रकाशित हुआ था, उसमें 'संज्ञा तथा सर्वनाम' तक का विश्लेषण किया गया था। उसका अन्त भाग सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुआ था। उस ग्रन्थ मे 'क्रिया' पर विचार किया गया है। इस पुस्तक का प्रकाशन अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। "त्रुटिपूर्ण तथा अत्यन्त पुराना होने पर भी बीम्स का ग्रन्थ

---

१. डाक्टर उदय नारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृष्ठ–१

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के विद्यार्थी के लिए अब भी महत्व रखता है।"[१] भाषा-विज्ञान के आधार पर भाषाओ का पारिवारिक वर्गीकरण किया गया। भाषाओ में जो विभिन्नतायें थी, उनमे एकता की खोज की गई। विभिन्नता में एकत्व को निर्धारित किया गया। एकत्व के आधार पर भाषाओ के परिवार का निर्माण हुआ। एकता से भाषाओ के परस्पर सम्बन्ध का हमें बोध हुआ। हमें उससे भाषा की विशालता का ज्ञान प्राप्त हुआ और हम यह जान सके कि भाषा का मूल रूप क्या था। मूल भाषा से अनेक भाषायें निकली। ऐसी भाषाओ को एक परिवार में रक्खा गया। हम यह कह सकते है कि एक परिवार की मूल भाषा एक होती है और भाषा-विज्ञान के आचार्य उस परिवार की भाषा को काण्डो, उपकाण्डो, शाखाओ, उपशाखाओ तथा समुदायो में विभक्त करते है। अबतक की खोज के आधार पर ससार की भाषाओ को निम्नलिखित कुलों मे विभक्त किया गया है:— (१) भारोपीय अथवा भारत योरोपीय या भारत जर्मनिक अथवा जफ़ेटिक (२) सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग (३) बट्ट वर्ग (४) फिन्वो-उग्रीय वर्ग (५) तुर्क मगोल मञ्चू वर्ग (६) काकेशीय वर्ग (७) द्राविड वर्ग (८) आस्ट्रिक वर्ग (९) भोट चीन वर्ग (१०) उत्तरी-पूर्वी सीमान्त की भाषायें (११) एस्किमो वर्ग (१२) अमेरिका के आदिवासियों की भाषाये।

सन्ताली भाषा का मूल रूप हमे आस्ट्रिक वर्ग के परिवार में मिलता है। अन्य उपचारो की भाँति आस्ट्रिक वर्ग की मूल भाषा के भी विभाजन कुलो, उपकुलों, उपभाषाओ के रूप मे हुए हैं आस्ट्रिक वर्ग की भाषा निम्नलिखित दो उपकुलो मे विभाजित है– आस्ट्रो एशियाटिक (Austro-

१. डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा . हिन्दी भाषा का इतिहास — पृष्ठ-७

Asiatic) एवं ग्रास्ट्रोनेशियन (Austronesian)। ग्रास्ट्रो-एशियाटिक भाषा को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया गया है—एक वर्ग का नाम मॉनख्मेर (Monkhmer) है और दूसरे वर्ग का नाम कोल-मुण्डा है। सन्ताली भाषा इसके दूसरे वर्ग के ग्रन्तर्गत ग्राती है। सन्ताली ही नहीं हो, मुण्डारी, भूमिज, खड़िया ग्रादि भाषायें इसी के ग्रन्तर्गत ग्राती हैं। ग्रास्ट्रिक परिवार की मूल भाषा के स्वरूप का हमें ज्ञान नही है, उसका कोई नमूना भी उपलब्ध नही है। फिर भी भाषा विज्ञान के सर्वसम्मत सिद्धान्तो को दृष्टि में रखकर ग्रास्ट्रिक परिवार की भाषाग्रो का ग्रध्ययन ग्रारम्भ हुग्रा है। पहले लोग सन्ताली भाषा को द्राविड भाषा के कुल में मानते थे। पर सन्ताली भाषा को द्राविड भाषा परिवार के ग्रन्तर्गत रखने का कोई प्रमाण हमें प्राप्त नही हुग्रा है। विद्वानो ने ग्रब मान लिया है कि सन्ताली भाषा ग्राग्नेय (ग्रास्ट्रिक) परिवार की ही एक शाखा है। सबसे पहले मैक्समूलर ने यह ग्रावाज दी थी कि सन्ताल भाषा द्राविड भाषा से ग्रलग है, उसका कुल ग्रलग है। डाक्टर ग्रियर्सन ने सन्ताल, मुण्डा ग्रादि जातियों की भाषा के लिए 'कोलारियन' शब्द का व्यवहार किया है। फ्रेडरिक कोलर ने इसे 'मुण्डा' भाषा का नाम दिया। पहले सन्ताल खेरवार कहलाते थे, इस कारण लोगो ने सन्ताली भाषा को खेरवारी भाषा परिवार में माना है।

सन्ताली भाषा भारत के एक विस्तृत भूभाग की मातृभाषा है ग्रौर इसका विस्तार बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा ग्रौर ग्रासाम तक फैला हुग्रा है। सन्ताली भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में डाक्टर जे० एम० मैकफेल ने ग्रपनी 'सन्तालिया' नामक पुस्तक में लिखा है— 'सन्ताल जाति एकदम निर्धन है, फिर भी उसके पास एक ग्रत्यन्त ही मूल्यवान वस्तु है, वह है

उसकी भाषा, जो उसके लिए महान गौरव की बात है। इस भाषा के वचन, काल, क्रिया और धातु की अवस्था बतलाने वाले रूप अपने हैं और मिश्रित वाक्य सफलतापूर्वक व्यवहृत होते हैं। सन्ताली भाषा का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन सबसे पहले रेवेरेण्ड जे० फिलिप्स ने अपनी पुस्तक "एन इन्ट्रोडक्शन टू दी सन्टाली लैंगुएज" नामक पुस्तक के माध्यम से सन् १८५२ में आरम्भ किया। यह पुस्तक आज उपलब्ध नहीं है। पर उसका ऐतिहासिक महत्व है। सन् १८६८ में रेवेरेण्ड ई० एल० पक्सले का सन्ताली भाषा का 'एवेकुभलरी ऑफ दी सन्ताली लैंगुएज' प्रकाशित हुआ था। सन् १८७३ में श्री एल० ओ० स्क्रफस्रूड का 'ए ग्रामर ऑफ दी सन्ताली लैंग्वेज' प्रकाश में आया। सन् १८९९ ई० में कैंम्पबेल साहब ने 'सन्ताली अंग्रेजी' शब्दकोष का निर्माण किया। सन् १९२९ में बोडिंग साहब ने 'मैटिरियल्ज फॉर दी सन्ताली ग्रामर' एवं 'ए सन्ताल डिक्शनरी' को प्रकाशित किया है। सन् १९४७ ई० में मैकफेल ने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू सन्ताली' नामक पुस्तक को प्रकाशित किया। इन पुस्तकों के द्वारा सन्ताली भाषा का मूल्यांकन का कार्य आरम्भ हुआ।

सन्ताली भाषा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन ने कहा—"सन्ताली के व्यंजन वर्ण समान हैं। चार कंठ्य, चार तालव्य, चार मूर्धन्य, चार दन्त्य तथा चार ओष्ठ्य और उनमे सम्बन्धित अनुनासिक वर्ण भी उसी प्रकार के हैं। वे हिन्दी के समान ही लिखे जाते हैं तथा उसी प्रकार उच्चारित भी होते हैं।"[१] सन्ताली भाषा में लगभग

१. 'Santali possesses the same sets of consonants as Hindi, four Garttural, four Patatal, four Cerebral, four Dentals and four Lavials, with corresponding nasals. They are written and pronounced as in Hindi—

Dr. George Grierson: Linguistic Survey of India, vol. IV.

सभी स्वर और व्यंजन वर्ण हिन्दी के हैं तथा उसी के नियम पर लिखे जाते हैं। हिन्दी के क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के उच्चारण सन्ताली में ठीक वैसे ही हैं। सन्ताली भाषा का प्रयोग अक्षर इस प्रकार होता है :—

स्वर – अ, आ, इ, ई, ए, ऐ, ओ औ

सवृत स्वर— ई, इ, उ, ऊ

अर्द्ध सवृत—ए, ऐ, ओ, औ

विवृत— अ आ

व्यञ्जन—कंठ्य— क् ख् ग् घ्

तालव्य— च् छ् ज् झ्

मूर्द्धन्य— ट, ठ, ड, ढ

वर्त्स्य— त, ल

दन्तत्य— त् थ, द, ध

ओष्ठ्य— प फ ब, भ, म।

सन्ताली भाषा में ऋ, अः श और ष का व्यवहार नही होता है। सन्ताली भाषा में सयुक्त वर्णों का व्यवहार भी नही के बराबर होता है। सन्ताली भाषा मे हमें स्वर के लिए दो विशिष्ट चिन्हो का व्यवहार करना पड़ता है। वे चिन्ह इस प्रकार हैं— 'अ' और ओ। व्यञ्जन-वर्ण के लिए भी हमारे यहाँ दो चिन्ह हैं— एक हलन्त (्) और दूसरा अनुस्वार (ं)। यही कारण है निम्नलिखित शब्दो का उच्चारण वैसे ही है, जैसा हिन्दी का है—

सन्ताली		हिन्दी
धुती	—	धोती

मुकरी — नौकरी
सलाहा — सलाह
पुखरी — पोखर।

सन्ताली वर्णों की ध्वनि को व्यक्त करने के लिए देवनागरी में तीन नये प्रयोग प्रारम्भ किये गये हैं। वे हैं— ग्रा ऍं और ग्रो। जैसे— गाडी–गाडी, बाबू–बाबू, गिदरा–बच्चा, ऍकेन–सिर्फ, ऍसकार–अकेला, ग्रोल–लिखना, लोलो–गर्म। सन्ताली भाषा मे इकार और उकार शब्द के अन्त में दीर्घ होते हैं और इसके अलावे वे ह्रस्व ही रहते हैं। सन्ताली भाषा में कुछ ऐसे व्यञ्जन वर्ण भी मिलते हैं, जिनके उच्चारण के लिए भी कुछ विशेष प्रयोग होते हैं। चार हलन्त व्यञ्जन की आवश्यकता होती है। वे हैं—क्, च्, त्, प्। 'क्' को छोडकर अन्य हलन्त व्यञ्जनो का प्रयोग मुख्यत शब्द के अन्त में ही होता है। 'क्' हलन्त व्यञ्जन का भी प्रयोग साधारणतः शब्द के अन्त में ही होता है, पर कभी-कभी उसका प्रयोग हम मध्य मे भी पाते हैं। जैसे, हाक्तावको–लेने वाले। हिन्दी में 'ङ' और 'ञ' वर्ण का प्रयोग अलग स्वतन्त्र रूप में नही होता। पर सताली भाषा में इनका प्रयोग अलग होता है, स्वतन्त्र रूप में होता है। उनकी सहगामनी मात्रायें भी होती है। 'ङ' शब्द का साधारणतः शब्दो के अन्त में आता है, परन्तु 'ञ' को यह विशेषता प्राप्त है कि उसका प्रयोग कहीं भी हो सकता है। आदि, मध्य और अन्त तीनो स्थानो मे हम उसका प्रयोग सन्ताली भाषा में पाते हैं। 'ङ्' का उच्चारण जीभ के पिछले भाग की कोमल तालु मे स्पर्श कर होता है। उच्चारण में कोमल तालु सीधे झुक जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वायु के स्पर्श होने से नाकों के छिद्रो से होकर नासिक-शिखर में गूंज पैदा करती है। देवनागरी लिपि में

हम ङ' और 'ञ' के लिए अनुस्वार लिखकर काम चला लेते हैं। सन्ताली भाषा में इनका काम अनुस्वार से नहीं चलाया जा सकता। 'ञ' ध्वनि हिन्दी के शब्दो में नही पायी जाती है। इनका उच्चारण हिन्दी में न् के समान होता है।

'सन्ताली भाषा को अपनी लिपि नही है'— इसे वाक्य सूत्र मानकर अभी तक हम सन्ताली साहित्य का अध्ययन करते रहे हैं। पर इस वाक्य-सूत्र का कोई वैज्ञानिक आधार नही है। सन्ताली भाषा भी अन्य क्षेत्रीय भाषा की तरह रही है। उर्दू को छोड़कर उत्तरी-भारत की जितनी क्षेत्रीय भाषायें हैं, उन सब की लिपि पहले देवनागरी ही थी। १०वी शताब्दी के पूर्व बगला ऐसे धनी भाषा की लिपि भी मागधी लिपि थी, जो 'देवनागरी' का ही एक रूप था। लिपि के इतिहास को सामने रखा जाय और ईमानदारी से कहा जाय कि सन्ताली भाषा जिन अचलो में प्रचलित है, वहाँ की भाषाओं के लिए आरम्भ में जो लिपि थी, वह कौन सी लिपि थी। इस प्रश्न का उत्तर यही मिलेगा—देवनागरी उन दिनों उनकी लिपि थी। जब उन दिनो अन्य आंचलिक भाषाओं की लिपि देवनागरी थी, तब कोई कारण नही जान पडता कि सन्ताली भाषा की लिपि देवनागरी नही रही होगी। देवनागरी केवल हिन्दी की लिपि नही मानी जा सकती। हिन्दी के लिए देवनागरी लिपि जितनी व्यवहार योग्य है, उतनी ही वह सन्ताली भाषा के लिए भी अनुकूल है।

हमारे देश में लिपि का प्रश्न नया है। अंग्रेज आये—लिपि का प्रश्न उठा। उसके पूर्व लिपि का प्रश्न इतना विषाक्त नही था। कम से कम बिहार मे तो लिपि की समस्या अंग्रेजो के आने के पूर्व नही थी। इस प्रान्त मे अन्य प्रान्तो, अन्य किसी सहवर्तिनी भाषाओं से हिन्दी को संघर्ष

नहीं करना पड़ा है। यह सत्य है कि ग्रियर्सन महोदय ने भोजपुरी, मैथिली और मगही आदि बोलियों में अलग अलग पुस्तक छपवाकर बिहारवासियों में फूट का बीज बोया था और उनके ही प्रयासों से मैथिली सभा में नागरी लिपि बहिष्कृत भी हुई थी। फिर भी, हम यह मानते हैं कि मैथिली, भोजपुरी और मगही हिन्दी की उपभाषायें हैं। इन क्षेत्रीय भाषाओं में जो साहित्य का निर्माण हो रहा है, जो साहित्य सर्जन का काम हो रहा है, उसे हिन्दी अपना ही गौरव मानती है। इन भाषाओं में ही क्यों; सन्ताली, मुण्डारी और हो भाषाओं में भी जो साहित्य का निर्माण हो रहा है, उसपर भी हमें नाज है। नागरी लिपि का बिहार में अपना एक इतिहास है, जो बहुत रोचक है। विक्रम संवत् की छठी शताब्दी में बिहार की राज्य भाषा हिन्दी थी और उसकी लिपि नागरी थी। मुसलमानी शासन-काल में भी सम्राट अकबर के १५वें वर्ष तक हिन्दी का प्रवेश मुसलमानी दरबारों में था। यह सत्य है कि मुसलमान शेरशाह सूरी के समय फारसी का प्रचार हुआ था। फिर भी वह अपने कार्यालय का काम हिन्दी को छोड़कर फारसी में नहीं करा सका। यह काम तो राजा टोडरमल के हाथों से होता था। एक हजार वर्ष तक की जमी हुई देवनागरी लिपि राजा टोडरमलकी अदूरदर्शिता के कारण कचहरियोंसे बहिष्कृत हो गयी। इतना होने पर भी अकबर ने अपने सिक्के के साथ एक ऐसा सिक्का भी चलाया, जिसमें न तो उसका नाम था और न राज्य-चिन्ह था। उस सिक्के के एक ओर राम और सीता की मूर्ति थी, उसपर नागरी में राम नाम लिखा हुआ था। यह माना जा सकता है कि नागरी लिपि, कचहरियों में बहिष्कृत थी, पर वह व्यवहार की लिपि थी।

मुसलमानी हुकूमत गयी, अंग्रेजी हुकूमत आयी। अंग्रेज प्रशासकों

ने फारसी को कचहरी से हटाकर अंग्रेजी भाषा एव रोमन लिपि चलाने का प्रस्ताव लाया। उन्होने सरकारी अदालतो और सरकारी कचहरियो में अंग्रेजी का प्रयोग हो—ऐसा सुझाव कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स के सामने रखा। पर वह प्रस्ताव कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स को रोचक नही लगा। उन्होने १६ सितम्बर, सन् १८३० के आज्ञा पत्र मे कह दिया कि "वहाँ के निवासियो को जज की भाषा सीखने के बदले जज को ही भारतवासियो की भाषा सीखना बहुत सुगम होगा। अतएव हम लोगो की सम्मति है कि न्यायालयो मे वही की भाषा का व्यवहार हो।" अंग्रेज-प्रशासको ने कोर्ट आफ डाईरेक्टर्स के उक्त आदेश को दृष्टि में रखकर अपनी एक नीति बनायी। बगाल के गवर्नर ने निश्चय किया कि कचहरी में भाषा सम्बन्धी सारा काम फारसी के बदले वहाँ की देशी भाषा में हुआ करे और अंग्रेजी का प्रयोग सरकारी अफसर लोग ऐसे चिट्ठी पत्रियो मे किया करें, जिनका सर्वसाधारण से कोई सम्बन्ध नही है। इस निश्चय को आदेश का रूप देने के लिए बगाल सरकार के मुख्य सचिव ने सदर बोर्ड आफ रेवेन्यू को अपने पत्र सख्या ६१४, दिनाक ३० जून, १८३७ को लिखा— 'श्री मान गवर्नर महोदय इस बात को स्पष्ट रूप से समझा देना चाहते हैं कि केवल यूरोपीय अफसरो के आपस के पत्र व्यवहार को छोड़कर (जो अंग्रेजी में हुआ करेंगे) प्रत्येक विभाग के सरकारी काम देशी भाषा मे ही हो।' इस प्रकार देशी भाषा का विकास हुआ। नागरी लिपि व्यवहार की लिपि बनी। सन्तालो मे शिक्षा का अभाव रहा। शिक्षा के अभाव के कारण उनका साहित्य लिपिबद्ध होकर नही निकला। सन्तालो में देवनागरी लिपि उन दिनो प्रचलित नही होती तो सन्ताल-विद्रोह के नेता सिदो कॅथी लिपि के माध्यम से वीर कुँअर सिह से सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा नही करता

श्रौर न वह कैथी लिपि में लिखकर या लिखवाकर अपना घोषणा-पत्र भागलपुर प्रमण्डल के आयुक्त के पास भेजता कि अग्रेज सन्तालो की भूमि छोड दें। कैथी नागरी का ही विकृत रूप है।

सन्तालियो को शिक्षित बनाने की योजना पहले सरकार के पास नही थी। सन्ताल-विद्रोह के बाद उनकी ओर अग्रेज सरकार का ध्यान गया। सरकार उन्हे शिक्षित बनाने के लिए सोचने लगी। सन् १८८२ मे लार्ड रिपन ने एजुकेशन कमीशन नियुक्त किया था। उस कमीशन ने सर्वप्रथम सन्तालो को शिक्षित बनाने पर विचार किया और सरकार के पास अपनी सिफारिशें इस प्रकार दी :—

(.) यदि कोई आदिवासियो की शिक्षा का काम करना चाहता है तो उसके काम में सरकार से हर तरह की सहायता दी जाय बशर्ते कि इससे उनके धर्म में कोई बाधा न पडे।

(२) जहाँ की भाषा अब तक लिपि बद्ध न हुई हो या और भी किसी कारण से वह अनुपयुक्त हो तो वहाँ की शिक्षा का माध्यम पडोस के उन्ही लोगो की भाषा हो जिनमें आदिवासियो का सम्पर्क रहा करता है।

(३) जहाँ जिस जाति की शिक्षा उनकी अपनी ही भाषा में होती है, वहाँ यदि सम्भव हो तो उनके पडोस की भाषा भी उनकी शिक्षा में वैकल्पिक विषय की तरह रहे।

इतना ही नही, तत्कालीन बगाल के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर सर ए० पेडलर ने बगाल सरकार के पास सन् १९०२ मे यह सुझाव रखा कि 'काम करने तथा अपनी जिन्दगी बसर के लिए आदिवासियों को आवश्यक है कि वे उनलोगो की भाषा अच्छी तरह जान लें जिनके बीच वे बसते हैं। बचपन में वे कोई भी भाषा क्यो न सीखें, पर यह सत्य है कि उन्हें हिन्दी,

बंगला या उड़िया उच्च शिक्षा पाने के लिए सीखना ही पड़ेगा। वस्तुतः लोग्रर प्राइमरी में ग्रादिवासी-भाषायें रक्खी जायें, पर यह सत्य है कि उच्च-शिक्षा में जो (हिन्दी, बगला या उड़िया) माध्यम बने ; वह पहले ग्रौर दूसरे दर्जे की शिक्षा में भी सैकेंड लैंग्वेज के रूप में रख दी जायें। ”
सरकार ने पेडलर साहब के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। ईसाई मिशनरियो के द्वारा रोमन लिपि का प्रचार कार्य प्रारम्भ हो गया था, पर वे भी यह स्वीकार करते थे— कि नागरी लिपि द्वारा सन्ताली भाषा की पुस्तकें ग्रासानी से तैयार करायी जा सकती हैं। इस बात की पुष्टिमें छोटा नागपुर के स्कूलो के इन्सपेक्टर ने सन् १९७७ की ग्रपनी वार्षिक रिपोर्ट में स्वीकार करते हुए कहा है कि ' जिन मिशनरियो से हमने परामर्श किया है, वे सब एकमत से यही राय देते हैं कि ग्रादिवासियो की किताबें नागरी लिपि में बड़ी ग्रासानी से लिखी जा सकती हैं। कचहरी की भाषा हिन्दी होने के कारण सन्तालियो को हिन्दी सीखने में भी सुविधा होगी।' १९०८ में नागरी लिपि में सन्ताली भाषा में पुस्तकें तैयार कराने की योजना भी सरकार की ग्रोर से स्वीकृत हुई थी। नागरी लिपि के पक्ष में ग्रग्रेज भाषा शास्त्रियों ने एक वातावरण तब तक तैयार कर दिया था। श्री बेडन ने बताया था कि नागरी ग्रक्षरो का कोई कितना ही बडा विरोधी क्यो न हो, वह उसका घोर शत्रु क्यो न हो, पर वह यह नही कह सकता कि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि है। प्रोफेसर विलियमने तो बताया था कि स्थूल रूपसे यह कहा जा सकता है कि देव नागरी ग्रक्षरो से बढकर पूर्ण ग्रौर उत्तम ग्रक्षर दूसरे नही हैं। तब तक नागरी ग्रक्षरो के विरोध में एक ही बात कही जाती थी; द्रुतगामिता ग्रौर सुपाठ्यता की दृष्टि से नागरी दोषयुक्त लिपि है। सरकार के सामने द्रुतगामिता ग्रौर सुपाठ्यता की दृष्टि से लिपि का प्रश्न ग्राया।

उसके सामने फारसी , रोमन और नागरी– ये तीन लिपियाँ थीं। फारसी लिपि प्राचीन थी , रोमन लिपि लादी जा रही थी ; नागरी लिपि की मागें थी। फारसी लिपि का विरोध इसलिए नही था कि वह विदेशी लिपि थी , पर वह इसलिए था कि वह अपूर्ण थी। रोमन लिपि विदेशी थी , वह हमारे लिए ग्राह्य नही थी। जनमत नागरी के पक्ष में था। श्री ओल्डहम साहेब ने इन तीनो लिपियो मे सबसे जल्दी लिखने और सुपाठ्यता की दृष्टि से कौन सी लिपि अच्छी है, इस प्रश्न को हल के लिए एक परीक्षा करायी। उस परीक्षा में ७० फारसी लिखने वाले और २१ रोमन लिखने वालो ने भाग लिया। उस परीक्षा में नागरी लिपि का प्रतिनिधित्व केवल आरा के बाबू जगली लाल ने किया था। द्रुतगामिता और सुपाठ्यता दोनो में वे सर्वप्रथम आये। उन्होने नागरी लिपि की सर्वोत्कता प्रमाणित की। इस परीक्षा के बाद सन् १८८१ मे हिन्दी का प्रवेश बिहार की कचहरियो में हो गया।

ईसाई मिशनरियो ने रोमन लिपि के व्यवहार पर जोर दिया। सन् १८६२–६३ मे बगाल सरकार के पास कई स्मृति पत्र रामन लिपि के प्रचलन के लिए भेजे गये। उन्हें इस बात का पता था, जबतक कचहरियो में रोमन लिपि का प्रचार नही होगा, तबतक रोमन लिपि के माध्यम से शिक्षा देने से काई लाभ नही होगा; उसका प्रचार नही होगा। पर बगाल सरकार ने सन् १८८१ में जो अपना निर्णय नागरी के पक्ष मे दिया था, उसी पर अडिग रही। सन्ताली भाषा को लिपिबद्ध करने का प्रथम सफल प्रयास ईसाई मिशनरियों ने ही किया है। पहली सन्ताली भाषा की पुस्तक सन् १८५२ में उडीसा के रेवरेण्ड जे० फिलिप्स ने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दी सन्ताली लैंग्वेज' प्रकाशित किया था। वह पुस्तक बगला लिपि में मुद्रित

हुई थी। जे० फिलिप्स बगाल और उड़ीसा में रहे हुए थे, उन्हें देवनागरी लिपि का ज्ञान नही था, ऐसा माना जा सकता है। अतः उन्होने सन्ताली भाषा की पहली पुस्तक बंगला लिपि में ही लिखी, बाद में वे रोमन लिपि में सन्ताली भाषा को लिपिबद्ध करने लगे। यूरोप में ईसाई मिशनरियो ने आदिम जातियो की विभिन्न भाषाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया था। वही प्रयास सन्ताली भाषा को लिपिबद्ध करने के लिए उन्होने आरंभ किया। रेवरेण्ड ई० एल० पक्सले ने रोमन लिपि में सन्ताली शब्दकोष का सम्पादन सन् १८६८ में किया। पक्सले साहब उन्ही रोमन अक्षरो को प्रयोग में लाये, जिन्हे उनके पहले फोर्बस, शेक्सपीयर और अन्य अंग्रेज भाषा-शास्त्रियो ने प्रयोग में लाया था। आवश्यकता एव सुविधानुसार इसमें जोडा और हटाया गया है। सन् १८७३ में रेवरेण्ड एल० ओ० एसक्रे-फस्रड ने *सन्ताली व्याकरण* का सम्पादन किया। उसमें उन्होने रोमन लिपि का प्रयोग किया। वे सन्ताली भाषा की ध्वनि के लिए स्वरो के विशिष्ट चिन्हो को वर्ण के ऊपर तथा नीचे चिन्ह लगाकर काम में लाया। जिन सन्ताली वर्णों के लिए रोमन लिपि में वर्ण नही थे, उनके लिए एसक्रेफस्रड साहब ने सयुक्त वर्णों का प्रयोग किया है। सन्ताली भाषा के लिए रोमन वर्णों की कमी की पूर्ति के लिए तीन प्रकार के काम किये गए। तीन प्रयोग इस प्रकार हुए— (१) संयुक्त वर्णों का प्रचलन (२) रोमन वर्णों को ऐसा ही रहने दिया गया, जैसा उसका स्वरूप था। (३) विशिष्ट चिन्हो का प्रयोग। परिणाम यह हुआ कि सन्ताली भाषा के लिए रोमन लिपि में सन्ताली व्यञ्जन वर्ण के बदले दस से कम संयुक्त वर्ण नही पाते हैं। विशिष्ट चिन्हो का इतना प्रयोग हुआ कि वह कठिन लगने लगा। रेवरेण्ड पी० डी० बोडिंग को स्वयं यह स्वीकार करना पडा था कि 'स्वरो

के विशिष्ट चिन्ह का प्रयोग एक कराटक है।' आगे चलकर उन्होंने कहा है—'किसी प्रकार जबतक हमलोगो को इस समय जितने वर्ण हैं, उनसे अधिक वर्ण नही मिल जाते, तबतक स्वरों के विशिष्ट चिन्हो का प्रयोग नही रुक सकता।'

सन्ताली भाषा के लिए रोमन लिपि के औचित्य पर कई बातें कही जाती रही हैं, उनमें कुछ इस प्रकार हैं—

(क) सन्ताली भाषा की ध्वनि के लिए रोमन लिपि अधिक उपयुक्त है। कारण, रोमन लिपि सन्ताली ध्वनि को अच्छी तरह व्यक्त करती है। नागरी लिपि मे वह आसान भी है।

(ख) बाईबिल तथा ईसाई-धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें रोमन लिपि मे हैं उसे सन्तालियो को पढना पडता हैं।

(ग) सन्तालियो को अपनी भाषा रोमन लिपि में अवश्य सुरक्षित रखनी चाहिए ताकि उन्हे अपने अन्य भाइयो से जो दूसरे प्रान्तो मे बसते हैं, उनसे उनका सम्बन्ध कायम हो सके।

(घ) रोमन लिपि समाज का भण्डार है, इसलिए सन्ताली भाषा को रोमन लिपि के माध्यम से सुरक्षित रक्खा जाय।

प्रथम दो बातो के सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नही है। इनके सम्बध में सन् १९३५ मे विहार के तत्कालीन प्राइमरी शिक्षा-विभाग के स्पेशल अधिकारी मिस्टर डिजी ने अपने विचार व्यक्त किये थे। उन्होने कहा था— 'हिन्दी पर मढे गये दोष का सन्ताल मिशन की प्राइमरी पुस्तकें खुद खण्डन करती हैं, जहाँ व्यञ्जन के अक्षर हिन्दी के ही 'क', 'ख' आदि के रक्खे गये हैं। रेवरेण्ड हाटमैन ने एक बार कहा था कि ईसाई-मिशनरियो ने यूरोप की आदिम जातियो को ईसाई बनाते समय उनकी विभिन्न भाषाओं

को लिपिबद्ध कर दिया। ऐसा करते समय रोमन लिपि का ही प्रयोग हुआ। पर विभिन्न भाषाओं को रोमन लिपिबद्ध करने का फल यह हुआ कि यूरोप-वासी एक दूसरे को दोषी ठहराते हैं कि वे लिखते कुछ और हैं और बोलते कुछ और हैं।" आगे चलकर उन्होने उनके दूसरे आरोप के सम्बन्ध में कहा था— 'क्या किताबों के ये पुलिन्दे सन्तालियो की उन जातीय दृष्टि से किसी काम के हो सकती है ?' कुछ को छोडकर ऐसी अधिकाश किताबें तो सन्तालियो के एक वर्ग विशेष के ही काम आती है। उस वर्ग की सख्या जातीय दृष्टि से बहुत कम है। सन्ताल परगना में ईसाइयो की जन-संख्या ०.७ प्रतिशत है। क्या ०.७ प्रतिशत ईसाइयो के लाभ के लिए ९९.३ प्रतिशत अन्य जातियों को रोमन-लिपि सिखाना उचित हो सकता है।

तीसरे आरोप के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय लिपि के माध्यम से सन्ताली भाषा का प्रसार और प्रचार बहुत अधिक हो सकता है। अभी तक सन्ताल परगना में नागरी लिपि के माध्यम से उनका साहित्य तैयार होता है। आसाम में आसामी सरकार ने आसाम की पहाडी जातियों की शिक्षा के लिए रोमन लिपि के स्थान पर आसामी लिपि प्रचलित किया हैं। बगाल में सन्ताली के लिए बगला लिपि का व्यवहार होता है। सन्ताली भाषा-भाषियो को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए यह आवश्यक है कि सभी जगहो के सन्तालो के लिए सन्ताली भाषा को नागरी लिपि में लिपिबद्ध किया जाय।

बिहार में नागरी लिपि सन्ताली भाषा के लिए उपयुक्त मानी गई है और उसी का व्यवहार भी होता है। सन्ताली भाषा को नागरी लिपि के माध्यम से लिपिबद्ध करने के लिए हमें एक सघर्ष भी करना पड़ा था। सन् १९३९-४० में बिहार प्रान्त में निरक्षरता निवारण के काम के लिए

बिहार सरकार ने एक प्रान्तीय निरक्षरता-निवारण समिति गठित की थी। उसने निश्चय किया कि सन्तालों को पढ़ाने के लिए जो प्रारम्भिक पुस्तकें हों, वे देवनागरी लिपि की जगह रोमन लिपि में छापी जायें। सरकार के इस निर्णय से लोगों को बड़ी ठेस लगी थी। बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वारा एक व्यापक आन्दोलन हमलोगों ने आरम्भ किया था। भाषागत आन्दोलन में भाग लेने का मेरा प्रथम अवसर था। सारे प्रान्त में हमलोगो ने हलचल मचा डाली थी। जगह-जगह पर इस निर्णय के विरोध में सभाओ को आयोजित किया गया था। सरकार पर इतना दबाव दिया गया कि प्रान्तीय निरक्षरता निवारण समिति को विवश होकर अपने निर्णय को बदलना पड़ा। उसने निश्चय किया कि सन्तालो को पढाने के लिए प्रारम्भिक पुस्तकें देवनागरी तथा रोमन दोनो लिपियों में छपे। सरकार ने यह भी निश्चय किया कि जिस लिपि में रीडरों की अधिक माँग होगी, उसी लिपि में अधिक सख्या में रीडरें छपेंगी। हमने सम्मेलन के द्वारा प्रारंभिक सन्तालो पुस्तकें तैयार करायी। सम्मेलन के अनवरत प्रयत्नो के फलस्वरूप सन् १६४० ई० में पटना विश्वविद्यालय ने सन्ताली भाषा को मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए स्वीकृत कर लिया और इसके लिए एक 'बोर्ड आफ सन्ताली स्टडीज' बना दिया। इस बोर्ड ने सन्ताली भाषा की परीक्षा के लिए देवनागरी लिपि को ही स्वीकृत किया है और इसके लिए देवनागरी लिपि में सन्ताली भाषा का चार्ट भी बना दिया है। पटना विश्वविद्यालय के इस निर्णय से नागरी लिपि के प्रचार में बहुत बल मिला।

सन्ताली भाषा के लिए रोमन लिपि का प्रश्न नही है। यह लिपि आसाम और बिहार सरकार द्वारा अस्वीकृत हो चुकी है। बगाल और उड़ीसा में सन्तालो को अपनी आँचलिक लिपि में लिखा जाता है। यह

उचित नही है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन लिपियों में कोई दोष नहीं है, पर सन्तालो में एकता के बोध के लिए आवश्यक है कि सभी अंचलों में सन्ताली भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रयोग किया जाय। सामाजिक एवं सास्कृतिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार होना चाहिए। नागरी लिपि के द्वारा सन्ताली भाषा को लिपिवद्ध करने के फलस्वरूप आज सन्ताली भाषा में काफी प्रगति आयी है। उसमें कई अच्छी पुस्तकें तैयार हुई हैं। सैकडो निबन्ध एव हजारो कवितायें प्रकाश में आ चुकी हैं। सन्ताली भाषा में राष्ट्रभारती का जो स्वर मिल रहा है, उसका एकमात्र कारण है, नागरी लिपि का प्रयोग।



सन्ताली शब्दावली

भारत में दूर देश से अंग्रेज आये। उन्होंने भारत में व्यापार किया। हम पर सैकडो वर्ष तक शासन किया। पूरे देश में उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य फैलाया। इस साम्राज्य-विस्तार में भारत की विभिन्न भाषाओं के शब्दकोश भी उनके बहुत बड़े साधन थे। अंग्रेजो ने यह मान लिया था कि भारत पर उनका शासन तभी तक स्थिर नही रह सकता है जब तक भारतीय लोगों के साथ उनका सम्पर्क नही स्थापित होता है। उनके साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने उन लोगों की भाषाओं की जानकारी हासिल करने के लिए उनका शब्दकोष बनाया। अगर हम यह कहें कि अंग्रेजों ने भारत

की भाषाओ का ही नही, बोलियो के शब्दकोषो का निर्माण कर शब्दकोषों के द्वारा भी भारत पर शासन किया था, तो आज आश्चर्य से अधिक विस्मय मालूम होगा। पर यह बात सत्य है। सैनिको से अधिक उन्होने हमारे यहाँ के लोगो की भाषाओ का महत्व दिया। शब्दकोषकारो ने ऐसा स्वीकार भी किया है। सन् १८०१ में एक शब्दकोष प्रकाशित हुआ था–'ए डिक्शनरी आफ दी मलय टग ऐज स्पोकन इन दी पेनिनसुला आफ मलक्का दी आइलेण्ड्स आफ सुमात्रा जावा, बोर्नियो, पुलो, पिनाग एटसेट्रा'। उसके शब्दकोषाकार थे—जेम्स होविसन। उसने स्पष्ट शब्दों में उस पुस्तक की भूमिका में लिखा है—'बहुत दिनो से किन्तु उचित कारणो से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह शिकायत रही है कि उसके कुछ व्यापार-संस्थान दोषपूर्ण ढग से चले है। इसका कारण देशी भाषाओ में कुशलता का अभाव रहा है। राजनीतिक दृष्टि से भी यूरोपीय लोगों में ज्ञान का यह अभाव कम्पनी के हितो के विरूद्ध भी सिद्ध हुआ है।' देशी भाषाओं में अग्रेजो में कुशलता लाने के लिए भारतीय भाषाओ एव बोलियो के शब्दकोष तैयार किये जाने लगे।" 'वोकेबलरी आफ डाइलेक्टस स्पोकन इन निकोबार एण्ड अण्डमन आइल्स' के शब्दकोषकार श्री फ्र० एड० देरोय स्टॉर्फ ने शब्दकोष निर्माण करने के अपने उद्देश्यो को स्पष्ट किया है। उन्होंने अपनी भूमिका मे लिखा है—'इस शब्दकोष को लिख डालने के मेरे सामने दो कारण रहे है, प्रथम निकोबार में जिन अधिकारियो को तैनात किया गया है, वे वास्तव मे इन अद्भुत लोगो के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सके और दूसरा, वैज्ञानिक जगत को इन लोगो की भाषाओं को उपलब्ध करा देना चाहता हूँ, क्योकि ये लोग तेजी से मिटते जा रहे हैं।

बिहार में आदिवासियो की भाषाओ की ओर उनका ध्यान गया।

सरकार एवं ईसाई धर्म-संस्थानो ने अपने हितो को सामने रखकर आदि-वासियों के शब्दकोषो का निर्माण किया। सन्ताली भाषा की ओर पहले न तो अंग्रेज अधिकारियो का ध्यान गया और न ईसाई धर्म-प्रचारको का। सन् १८८४ में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक व्यापक आन्दोलन आरम्भ हुआ था। महात्मा गाँधी से ८७ वर्ष १ महीना १० दिन पूर्व सन्ताल नेता सिदो ने अंग्रेजो को अपनी धरती से हटने को कहा था। अंग्रेज सन्ताल-विद्रोह को दबाने में सफल हो गये थे, फिर भी उन्हें सन्तालों से बहुत आशका थी। कानून के द्वारा सन्तालों को भारत के अन्य लोगो से पृथक किया गया। सन्ताल विद्रोह के बाद ही सन्ताल परगना में ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। सरकार एवं ईसाई धर्म-प्रचारको ने सन्ताली शब्दकोष का निर्माण आरम्भ किया। सन् १८६८ ई० में श्री ई० एल० पक्सले ने 'ए वोकेब्युलरी आफ दि सन्ताली लैंग्वेज' प्रकाशित किया। इस शब्दकोष के निर्माण का उद्देश्य था—प्रशासको एवं धर्म-प्रचारकों का सन्तालो के साथ सम्पर्क की स्थापना। इसके बाद सन् १८९९ में कैम्पबेल ने 'सन्ताली-इंगलिश और इगलिश सन्ताली' शब्दकोष का निर्माण किया। सन १९२९ में श्री बोडिंग का सन्ताली शब्दकोष पाँच खण्डो में प्रकाशित हुआ। जब तक भारत में अंग्रेज रहे तबतक हमारा अपेक्षित ध्यान सन्ताली भाषा की ओर नही गया। स्वतन्त्र होने पर देवनागरी लिपि में प्रथम 'हिन्दी-सन्ताली शब्दकोश' प्रकाश में आया। इसके सम्पादक हैं—श्री पृथ्वीचन्द्र किस्कू और श्री केवल राम सोरेन और उसके प्रकाशक हैं—सन्ताल पहाडिया सेवा मण्डल। आचार्य श्री डोमन साहु 'समीर' ने इस शब्दकोष की भूमिका मे कहा है—'यह गुटका शब्दकोष यात्री पथ-प्रदर्शिका के रूप में तैयार किया गया है, जिसमें सामान्य व्यवहार में आनेवाले हिन्दी के लगभग

दो हजार शब्द उनके सन्ताली पर्याय के साथ संग्रहीत हैं। इसे इस रूप में लिखकर लेखकों और प्रकाशकों ने सन्ताली भाषा सीखने की इच्छा रखनेवालों की एक बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति की है।"

सन्ताली शब्दकोषों को देखने से हमें ऐसा लगता है कि सन्ताली भाषा में हिन्दी, उर्दू, बगला, मैथिली, मगही एवं भोजपुरी आदि के असंख्य शब्द आ गये हैं। उन शब्दों का सन्ताली में व्यवहार होता है। उनके अपने भी शब्द हैं। जो उनके अपने हैं, वे सब सस्कार बोधक है। किसी भाषा मे अपने शब्द संस्कार के बोधक होते हैं। हमारे लिए 'जल' और पृथ्वी' द्वारा जो सस्कार व्यक्त होता है, वह सस्कार सन्ताली भाषा मे व्यक्त नही होता। 'जल और पृथ्वी' के लिए सन्ताल 'दाक' और 'ओत' शब्द को व्यवहार में लाते हैं। सन्ताल-सृष्टि के निर्माण के समय उन्हे ये शब्द मिले हैं। अतः ये शब्द उनके अपने हैं, उनमे उनके सस्कार का बोध होता है। सन्ताल जीवन का आरम्भ वन-पर्वतो में हुआ था। उन्होने जंगली पशु-पक्षियो से अपने सन्ताल-जीवन के शैशव काल में खेला था, के पेड-पौधे उनके तब साथी-संगी थे और उन्हें तब जंगली फल-मूल खाने को मिलता था। सन्ताली जीवन के शैशवकाल में जो संस्कार मिला था, उन्ही संस्कारो को लेकर उनके शब्द बने थे। वन, पहाड, पत्थर, नदी, सिंह, बाघ, भालू, तोता, आम, बाँस आदि से उनका परिचय प्रारम्भ-काल मे हो गया था। इस कारण उनके लिए सन्ताली भाषा में मूल शब्द मिलते हैं। उपरोक्त शब्दो का क्रमशः 'बिर' 'बुरू' 'खिरी', 'गाडा', 'कुल', तारूप, बाना मिरू, उल, मात् सन्ताली शब्द है। उनसे हमें उनके संस्कार का ज्ञान होता है। 'माँ' शब्द हमारे लिए जितना पवित्र है, उतना ही सन्ताली भाषा में 'एंगा' शब्द है। वे

अपनी माँ को एंगा और पिता को आपा कहते है। खाने और पीने की प्रवृति मानव के स्वभाविक गुण हैं; अतः सन्ताली भाषा में इनके लिए अपना उनका शब्द है। 'जोम' का खाने के लिए वे प्रयोग करते हैं। क्रोध और भय की प्रवृत्ति सन्तालों को अन्य मानव की तरह आरम्भ में ही प्राप्त हो गयी थी। इसलिए इनके लिए भी एदरे (क्रोध) और बोतोर (भय) शब्द का प्रयोग होता है। पहले सन्ताल लोटा, कटोरा – थाली को खाने के लिए प्रयोग में नही लाते थे, अतः उनके लिए उनके यहाँ मूल शब्द नहीं हैं। उन्होने इनके लिए संस्कृति से शब्द लिये हैं। पहले वे जमीन पर सोते थे, आर्यो के सम्पर्क मे आने के बाद वे खेती करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्य भाषा से खेती करनेवाले यंत्रों एवं धातुओं के लिए उन्हों-ने शब्द लिये हैं। आरम्भिक अवस्था में सन्ताल समूह बनाकर एक गाँव मे रहते थे। इसलिए 'गाँव' शब्द के लिए सन्ताली भाषा में 'आतो' शब्द का प्रयोग होता है, पर मुझे तो ऐसा लगता है कि एक देश बनाकर रहने की उनकी प्रवृत्ति आर्यो के सम्पर्क में आने के कारण बनी है। अतः देश के लिए उनकी शब्दावली में सन्ताली शब्द नही है। देश के लिए 'दिसोम' शब्द का प्रयोग करते हैं। कानून, फौजदारी, मुकदमा, नौकर, मालिक आदि के लिए सन्ताली में मूल शब्द नही हैं। गरीब-धनी, के लिए भी उनका अपना मूल शब्द नही है। उनकी शब्दावली मे स्पष्ट होता हैं कि—उनके यहाँ आरम्भ में समाजवाद था—कोई गरीब नही था, कोई धनी नही था। संस्कारगत शब्द उनके पास हैं। नारता (छट्टी), बापला (विवाह), भाण्डान (श्राद्ध) — ये उनके मूल शब्द है। पर राजनीतिक एव कलात्मक शब्दावली जो उनकी है, वे सब राष्ट्र भारती की है। सन्ताली शब्दकोषों को देखने से हमें ऐसा अनुमान होता है कि २५

प्रतिशत सन्ताली के मूल शब्द है, २५ प्रतिशत शब्द बंगला, मैथिली, उर्दू, भोजपुरी, अंगिका के हैं और बाकी १० प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं। सन्ताली राष्ट्र भारती के उतनी ही निकट है, जितनी राजस्थानी। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य है, सन्तालों का नया साहित्य तैयार हो रहा है। अतः राष्ट्र भारती के सेवकों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए। इस से सन्ताली भाषा का ही कल्याण नहीं है, राष्ट्रभाषा का भी मंगल होगा—उसका विस्तार होगा।

सामान्य व्यवहार में आनेवाले शब्द—

अ

अण्डा— बेले।	अन्त— मुचेद्।
अन्धाधुन्ध— बे हिमांव।	अकारण— बे-ओज।
अकेला— एसकार।	अक्षर— हारोप।
अखबार— खोबोर कागोज।	अग्रज— माराङ बोयहा।
अनाज— आनाज।	अनुरोध— नेहोर।
अपराध— कसूर।	अभिप्राय— मोतलोब।
अभियुक्त— आसामी।	अमीर— किसाड़।
अर्थी— मांडो।	अवस्था— हाल्तेत।
अश्रु— मेद्दाक।	असमय— बे-ओकत।
असल— आसोल।	अस्पताल— हासपताल।
अहंकार— दिमांग।	

आ

आंख— मेंद।	आंगन— राचा।
आईना— आरसी।	आकार— मुठान।

आखेट— सेन्दरा । आग — सेंगेल ।
आग्रह— जिद् । आज— तेहेञ ।
आटा— गुडुम होलोङ । आदमी— होड़ ।
आदर— मान्नोत् । आदि — एहोप् ।
आनन्द— रसका । आबहवा— होय दाक् ।
आभास— झालाक । आभूषण— गहना ।
आम— उल । आरम्भ— एहोप ।
आराम— जिराउ । आलू— आलू ।
आवाज— आडाङ । आश्चर्य— हाहाडा ।
आश्वासन— आसरा । आसान— आलगा ।
आहार— जोम–जू ।

इ

इन्तजाम— बोन्दोवस । इन्तजार— जेलहोर ।
इन्द्रधनुष— लिटा–आक् । इन्साफ— विचार ।
इकट्ठा— जारावा । इकतीस — पे–गेल–मित् ।
इकरार — इकराड । इच्छा— मोने ।
इतना— नोडका । इति— मुचत् ।
इत्यादि— एमानतेयाक । इधर— नोते ।
इमली— जो जो । इर्द–गिर्द— आडे पासे ।
इसलिए— नोआ इयाते ।

ई

ईंटा— ईंटा । ईख— आक् ।

ईर्षा— मेद् जोलोक् । ईर्ष्या— हिंसका ।
ईश— चान्दे ।

उ

उकताना— ग्राकताउ । उकसाना— उसकाउ ।
उखली— उह्लुड । उग्र— तर्पिस ।
उजला— पोरड । उजाला— मारसाल ।
उठना— राकाप् । उतना— उताक् ।
उत्तम— भातो । उत्तर— उतार ।
उत्तरदायित्व— जोबाबदिही । उत्पत्ति— जानाम ।
उदरण्ड— दायाक्भिच् । उद्देश्य— इका ।
उधार— धार । उन्नीस— मित्-गेल-ग्रोर ।
उपदेश— सिखौना । उमंग— रासका ।
उलटना— उलटाउ । उपासक— उपास ।
उफान— सेक् । उल्लिखित— ग्रोलाब् ।
उणा— सेताक् ।

'ऊ'

ऊँचा— उसुत्व । ऊँघना— भाँगेप् ।
ऊख— ग्राक् । ऊखल— उखुड ।
ऊपर— चोट । ऊबन— ग्राडोसोक् ।
ऊसर— जटाड ग्रोत ।

'ऋ'

ऋण— रिण । ऋणी— रिन्-ए-जोम ।
ऋतु— रितु ।

ए

एक— मित् ।

एकटक— बेगेत् उरिच् ।

एकता— मित्‌मोत ।

एकाएक— अचका ।

एकसा— मित् लेका ।

एकहरा— मित् दुहड़ी ।

एकान्त— एसकार ।

एकाएक— आचका, हाठात ।

एडी— इडी ।

एहसान— उपकार ।

'ऐ'

ऐटना— अग्चुर ।

ऐनक— आरसी ।

ऐसा — नोङका ।

'ओ'

ओकना— दोयोक् ।

ओछ— काटिच् ।

ओझल— दानाडोक् ।

ओढना— ओयोक् ।

ओल— दापिड़ा ।

ओस— शिशिर दाक् ।

ओहदा— हुदा ।

ओला— आदेल ।

'औ'

औधना— आगोप् ।

औजार— साना फाना ।

औटना— लेलोय ।

औषधि— रान ।

और— आर ।

'क'

कंकड— कंकड ।

कंघी— नाकिच ।

कंघी— तोरन ।

कंठ— नाराडरी ।

कंठा— माला ।

कचा— बोरेस ।

कछुआ— होरो ।
कटोरा— बह्टी ।
कड़ा— केटेच् ।
कड़ाही— काराही ।
कतार— पान्ते ।
कदम—डेग ।
कपट— छोल ।
कपड़ा — किचरिच् ।
कपाट— सिलपिञ ।
कपास— कासकोम ।
कबूतर— पारवा ।
कमल— उपेल बाहा ।
कमी— टोएटा ।
करवट— सोडता ।
कलकल— हुदहुद ।
कलम— कोलोम ।
कला— हुनार ।
कसम— किरया ।
कसूर— कसूर ।
कहाँ— ओका ।
काँख— हातलाक ।
काटी— करटी ।
कापना— थारथरावक् ।
कागज— कागोच ।
काजल— आयनोम ।
कान— लुतुर ।
काना— काडा ।
कानून— कानून ।
काम— कामी ।
कामचोर— कुडहिया ।
कामदेव— देवेड बोंगा ।
कामना— साना ।
कारण— ओजे ।
काला— हेन्दे ।
किताब— पुथी ।
किनारा— आड़े ।
कियारी— गाखडारी ।
किवाड़— सिलपिञ ।
किसान— चासाहोड ।
कीचड— लोसोद् ।
कीड़ा— तेजो ।
कुत्ता— सेता ।
कुण्डल— पागरा ।
कुदाल— कुडी ।
कुदिन— बाडिच् दिन ।
कुपथ— बाड़िच् होर ।

कुम्हलाना— गोसोक् ।	कुम्हार— कुङ्काल ।
कुरता— ग्रांगरोप ।	कुलपति— मुखिया ।
कूड़ा— काटाकाटुग्राक ।	कूदना— दोन ।
कृपा— दाया ।	कृषक— किसा॑ड़ ।
केला — कायरा ।	केवट— कॅवटा ।
केवल— एकेन ।	केश — उप् ।
कैंची— काुपची ।	कैसा— चेतुलेका ।
कोई— ग्रोकाय ।	कोख— कुखी ।
कोठरी— कुठली ।	कोडा— कोड़ा ।
कोनो— कोनाच ।	कोबी— कुबी ।
कोर — लापेत ।	कोल्हू— घानी ।
कोशिश— कुरूमुटू ।	कोसना— एगेर ।
कौग्रा— काउड़ी ।	कौन— ग्रोकाय ।
क्या— चेद् ।	क्यो— चेदाक् ।
क्रीड़ा गृह— एतेच् ग्रोडाक् ।	क्रूर— कुरमुताहा ।
क्रोधित— एदरे ग्राकान ।	क्लेश— दुक ।
क्वारा— डाङ्गुग्रा ।	

'ख'

खंड—हाखि ।	खदक– गाडलाक् ।
खम्भा—खुराटी ।	खंग—तरवाडे ।
खटमल—ग्रोडमोच् ।	खट्टा—जोजो ।
खबरदार—खाबेरदार ।	खरगोश—कुलाई ।

खराब—किरिञ।
खलिहान—खराई।
खाना—ञोम।
खीरा—ताहेर।
खुफिया— गोयन्दा।
खेलना— एनेच्
खोदना— टघा।
खोना— ञात्।

ग

गठरी—ोटरा।
गढ़ा— गडलाक्
गरम— होटोक्।
गाँव— ञातो।
गाड़ी— गा़डी।
गाना— सेरेञ।
गाय— गा़इ।
गाता— जोहा।
गाली— एँगॅर।
गिनती— लेखा।
गीला— लोहोद्।
गूलर— लोञा।
गोद— हेव।
गोबर— गुरिच्।
गोरा— एसेल्।
गोल— गुलरडा।
ग्यारह— गेलमित्।
ग्रामीण— ञातोहोड़।
ग्राहक— गा़हकी।
ग्वाला— माहरा।

'घ'

घंटी— घंटी।
घटक— रायवारिच।
घटना – घोटना।
घटा— रिभिल।
घर— ओड़ाक्
घास — घांस।
घाट— घाट।
घिसना— गासाव।
घुटना— गुरुठी।
घूंट— कोडोच्।
घृणा— हिरखा।
घोड़ा— सादोम।
घोषणा— रोड़साडे।

'च'

चक्की— जान्ते ।	चक्का— कारनाव ।
चञ्चल— चोञ्चोल ।	चन्द्रमा— ञिन्दा चान्दो ।
चखना— चाखाय ।	चढना— देजोक्
चतुर— हुसियार	चना— बुट ।
चपत— थापा ।	चरकी— इतिल ।
चर्म— हारता ।	चहारदीवारी— पाचरी ।
चाँदनी— तेरदेच् ।	चाचा— होपोन बाबा ।
चादर— पिछौड़ी ।	चाम— हारता ।
चार— पोनया ।	चारपाई— पारकोम ।
चारा— घाँस ।	चाल— ताजम ।
चावल— चाबले ।	चाहु— मोने ।
चिड़िया— चेडे ।	चिता— सारा ।
चित्र— नाकशा ।	चिरकाल— डेर दिन ।
चिराग— दिवहे ।	चुम्बन— चोक् ।
चूनता— हालाड ।	चुपचाप— हापे होपेते ।
चुडी — चुरली ।	चूना— ओरोक् ।
चूमन — चोक् ।	चेतबनी — चेहाव ।
चोंगा— नाली ।	चोट— बाजाव ।
चोर दरबाजा— कोम्बाडो दुआर ।	चोरी— कोम्बाडोय ।
चौक — दो वटिया ।	चौगुना — पोन दोकोड् ।
चौदह — गेल-पोन ।	चौपट — चौपाट ।

चौपहल — चार पहल । चौरस — मिद् सांव ।
चौहदी — सीमा़न ।

'छ'

छटपटाना — छाटपटावक् । छत्ता — छाता ।
छप्पर — साडीम । छांटना — सोक ।
छाल — बाकलाक् । छिपाना — ञोकोक् ।
छिलका — चोकलाक् । छीकना — ञाछिम ।
छीनना — ऐजे । छेद — युगा़क ।
छेदना — भुगा़न । छोर — मुचा़त ।

'ज'

जगल — बिर । जंजीर — सिकडी ।
जगह — जागा । जनता — होड़ ।
जन्म — जोनोम । जबरदस्ती — जोरमोट ।
जवान — जुआन । जमाना — ञोकते ।
जमीन — ञोत । जल — दाक् ।
जलपान — जुलपान । जबाब — जोबा़ब ।
जहर — मा़हुर । जहाँ — ञोका ।
जाति — जा़त । जामुन — कोद ।
जासूस — गोयंदा । जिस — ञोका ।
जीभ — जिवी । जुदाई — बोगारोक् ।
जूता — पाताही । जेब — था़पला़क ।
जोहार — जोहा़र । ज्वालामुखी — मोलोक बुरू ।

'झ'

झमझट— झोझोट । झगडा— झन्डी ।
झगड़ना— झगडाकू । झगड़ा— झगड़ा ।
झटपट— हाकते पाकते । झांकना— ग्रोक् योड ।
झाड़ू— जोनोक । झूठ— एडे ।
झूठा— एकडे । झूलाना— भिलाक ।
झोका— ग्रांट होय । झोपडी— कुडिया ।

ट

टकराना—तर्किजोक् टपकना—जोरोक्
टपना—दोन पारोम । टहनी—ढारवाक्
टहलना—दौडांत । टांग—जांगा ।
टांगना—ग्राकाय । टिड्डी—पोहा ।
टीला—घुटु टीस—हासो ।
टुकडा—कुटरा टोकन—टोकाव ।
टोकरी—खाच् लाक् । टोपी—टुपरी ।
टोहा—डिहा ।

'ठ'

ठड—रेयाड ठग—ठक
ठगना—ग्रोचोक ठेका—ठिका
ठेलना—ठेलाव ठेस—तोहोत
ठोढ़ी—केवा ठोस—केटेच्

'ड'

डंक—तुड डंडा—ठेंगा

डंडी—तुला। डकैत—डाकू।
डगर—होट। डर—बोतोर।
डरपोक—पोचर। डाँटना—धमकाव।
डिगना—पाचोक्। डोह—म्रातो-गांवता।
डूबना—उनभोक्। डोरी—बावोर।
डोलना—लाड़ाव। डोली—खुडखुडी।

'ढ'

ढकना—हारूप। ढकेलना—ठेलाव।
ढक्कन—ढकनिच्। ढाढस—खातिर।
ढालना—दुल। ढिलाई—ढिलाउ।
ढीठ—म्रारोट। ढूढना—तोलास।
ढेर—म्रायना। ढेला—ढेलका।
ढोंग—ढोंड।

त

तक—हाबिच्। तकदीर—भाग।
तकिया—तकिया। तख्ता—पटरी।
तथापि—एत हो। तबाह—म्राडिस।
तभी—तोबे म्रानेच्। तरकारी—तरकारी।
तरफ़—सेच्। तरह—लेका।
तराजू—तुला। तलवार—तरवाडे।
तलाक—छाडा-छाड़ी। तलाव—पुखरी।
ताजा—टटका। तापना—जोरोक्।
तारा—दूपिल। तिथि—तारीख।

तिरंगा—पेरोंग । तिलक—टीका ।
तोता—हाडहाद् । तीन—पेया ।
तीर्थ—धोराम । तीस—पेगेल ।
तुम—ग्राम । तुरही—बाकया ।
तूफान—होय दाक् । तेल—सुनुम ।
तैयार—तेयार । तैरना—पायराक्
तोड़ना—रापुत् । तोता—मिक्क ।
तोलना—तुला । त्योहार—पोरोब

थ

थकना—थाकावक् । थकावट—लगा ।
थन—ग्राराडनार थप्पड—थापा ।
थाली—थारी । थूक—थैलाक् ।
थैला—थायलाक । थोडा—थोडा ।

'द'

दंग—हाहाडा । दंगा—लाड़हाई ।
दराड—डाराडोम । दम्पति—हाडाम-बुढी
दतुग्रन—दातौनी दत्तक—पोसा बेटा ।
दमन—दाबाव । दरार—पाडाकू ।
दर्पण—ग्रारसी । दवा—रान ।
दश—गेल । दहिना—एतोप ।
दाखिल—दाखिल । दाता—एमोक्-इचा ।
दानव—राकोस । दामाद—जाँवाय गोमके ।
दयरा—गुलाराड । दायित्व—दायिक ।

दाल—दाल । दास—गुती ।
दिमाग—म्राकिल । दिल्लगी—लान्दा-लान्दा ।
दीप—बाती । दीवाल—भीत ।
दुगुना—बार दो बोड । दुबला—म्रासोक् ।
दुबारा—बारदोम । दुम—चारण्ड बोल ।
दुरवस्था—बाडिच् हालोत । दुर्जन—बाडिच होड ।
दुर्दशा—नाचार हालत । दुर्व्यवहार—बाडिचवेवहार ।
दुलहा—जांवाय । दुलार—दुलाड ।
दूकान—दोकान । दूध—तोवा ।
दृष्टि—नोजोर । देर—बिलोम ।
देना—एमोक । देवता—बोंगा ।
देवर—भखेल कोड़ा । देश—दिसम ।
देह—होड़मो । देहात—डिहात ।
दोना—फुड़क । दोष—कासूर ।
दोहराना—दोहड़ाय । दौलत—दाउलात ।
द्वार—दुम्रार । द्वारा—होतेत ।
द्वेष—हिंसका ।

'ध'

धंधा—धन्धा । धतूरा—धातरा ।
धनुष—म्राक् । धर्म—धोरोम ।
धान—होड़ो । धारा—रेंत ।
धूप—सेतोङ । धूल—धुडी ।
धोखा—धोखा । धोती—धुती ।

ध्वजा— झण्डी ।

'न'

नगा—उलुङ ।
नगर—नगराहा ।
नगद—नोगोद ।
नतीजा—फोल ।
नदी— गाडा ।
नमक—बुलुङ ।
नफा – लाव्य ।
नब्बे – ओर-गेल ।
नमी— सेम ।
नर्त्तक—एनेच् कोड़ा ।
नहर—लाटु डाड ।
नहाना—डाबराक ।
नाखून—रामा ।
नाचना—एनेच् ।
नाटा—जेडा ।
नारी—माहत्रिड ।
नाव—लौका
निन्दा—हेतोसता ।
निकट—सोर ।
निजी—आपनार ।
निपट— एकला ।
निशान—चिन्हा ।
नीरस—रोहोड ।
निरोग—निफुट होड़मो ।
नेता—आकमुरिच ।
नौकर—गुती ।
न्याय— विचार ।
नवयुवक—जुआन कोड़ा ।

'प'

पक—लोसोत ।
पंक्ति—पान्ते ।
पंखा—बिनी
पंचायत—कुल्ही दुड़ुप् ।
पक्षी—चेंड़े ।
पगड़ी – दाहड़ी ।
पछताना – कसतावक् ।
पता—ठिकाना ।
पत्ता—सकाम ।
पत्थर—घिरी ।
पत्नी—एरा ।
पथरीला – रोड़गो ।

पद—हुदा । पदवी—खिताब ।
परस्पर—आपनार रे । पराया—एटाक् होड़ाक् ।
पर्व—पोरोब । पलथी—पाटगारुडो ।
पश्चात्—तायोम । पान—पाम ।
पानी—दाक् । पिता—बाबा ।
पीछे—तायोम । पीडा—हासो ।
पुकारना—होहोय । पुत्र—होपोन ।
पुराना—मारे । पुस्तक—पुथी ।
पूर्वज—आगिल हापडामको । पूर्ववत्—पहिल लेका ।
पेट—लाच् । पेड—दारे ।
पेशाब—आडो । पोखरा—पुखरी ।
पोता—गोडोम कीड़ा । प्रकार—लेका ।
प्रजा—पोरजा । प्रसिद्ध—नामडाक ।
प्राचीन—मारे । प्रातःकाल—सेताक् ।
प्रीति—दुलाड़ ।

'फ'

फटना—ओडेजोक् । फसल—फसल ।
फुलवाडी—बाह् बागान । फूकना—ओडा ।
फूफा—कुमाड़ । फल—बाटा ।
फोड़ा—ओजो । फौज—फाद ।

'ब'

बचत—सारेच् बच्चा—गिदरा ।
बन—बिर । बयस—उमेर ।

बरसात—जापुद् । बारात—बारयात ।
बहिन—कुडीबोयहा । बहुत—ग्राडो ।
बहुधा—ग्रोका ग्रोका । बांस—माद ।
बाघ—तारूप । बात—काथा ।
बाद—तायोम । बादल—रिमिल ।
बाल—उप् । बिरादरी—पेडापारभा ।
बीमार—रूग्रा । बुरा—बाडिच् ।
बेटा—होपोन । बेवकूफ—लोडो ।
बैल—डांगरा ब्याह—बापला ।

'भ'

भविष्य—तायोम दाराम । भाई—बोयहा ।
भीड़—भीड़ । भूंजा—भाता ।
भूल—रेंगेच् । भूत—बोंगा ।
भोज—भागडान

'म'

मंजूर—ग्राडगोय । मकान—ग्रोडाक् ।
मजाक—लन्दा-लन्दा । मटर—माटोर ।
मदिरा—पौरा । मधुर—हेडेम ।
मयध्य—होड़ । मांग—होरासी ।
माथा—बोहोक् । मालिक—मालिक ।
मालूम—बाडाय । मिट्टी—हासा ।
मित्र—गाते । मुंह—मोचा ।
मुसकाना—मेसकोच् । मूत्र—ग्राड़ो ।

मैदान—टाण्डी । मोर—माराक ।
मौन—थिरहापेकोक् मौसिम—ग्रोकते ।

'य'

यत्न—कुरूमुटु । यथा—ओलेका ।
यश—नायडाक । यह्—नोग्रा ।
यहाँ—नोएडे । याद—एयाद ।
युग—जुग । योग्य—लेक ।
योनि—चुचुक् ।

'र'

रज—एदरे । रकवा—चौका ।
रखड—रावोड । रसोइया—दाकचिच् ।
रस्सी—बाबेर । राखना—इसिन ।
राख—तोरोच । रात—ञिन्द ।
रास्ता—होर । रुपया—टाका ।
रूई—तुलाम । रुचि—सेबेल ।
रेशम—लुमाम । रोज—दिनाम ।
रोटी—पिठा । रोना—राक् ।

'ल'

लंगड़ा—लेङहा । लम्बा—जेलेज ।
लकड़ी—साहान । लड़का—कोड़ा गिदरा ।
लड़की—कुडी गिदरा । ललाट—चान्दी ।
लापता—ग्रात् । लिपि—ग्राखोर ।
लेख—काथनी । लोहा—मेंडहेद ।

लौटना— रूग़ाड।

लोग — होड़ ।

लेखक— ग्रोलोक्‌इच ।

लिखना — ग्रोल।

'व'

वंश— बौंस ।

वचन— काथा ।

वर्त्तन— बासोन ।

वर्षा— दाष् ।

वहाँ— ग्रोएडे ।

बाण— सार ।

विष— माहुर ।

वेदना— हासो ।

व्यथा · दुक ।

वक्ता— रोरोडिच् ।

वन— बिर ।

वर्त्तमान— नाहाक् ।

वह— उनी ।

वही— ग्रोएडेगे ।

विवाह— बापला ।

चेतन— दारमाहा ।

वैसा— ग्रोनका ।

व्यर्थ— मोड़ोगे ।

'श'

शकल— मुठान ।

शरण— ग्रासरा ।

शाम— ग्रायुप ।

शेर— कुल ।

शोभा— साजावा ।

शक्ति— दाडे ।

शरीर— होडमो ।

शीत— शिशिर ।

शेष— साऱेच् ।

'स'

संकट— विपत्त ।

सच— सारीगे ।

सफेद— पोसड ।

सहायक— गोक्‌डोयिच् ।

संख्या— लेखा ।

सपना— कुकमू ।

सरल— सोझा ।

साथ— सोंगे ।

मिकच— छाडा काते ।
सूत— सुताम ।
सोचना— हुदिम ।
स्वप्न – कुकम् ।
स्वतन्त्र— साधिन ।

मुक्‍— मूक ।
सृष्टि— सिर्जाव ।
स्नन— नूनू ।
स्मरण— दिसा ।
स्वीकार— आँगोय ।

'ह'

हंस— सौंक ।
हजामत— होयोन ।
हल— नाहेल ।
हाँडी— टुकुच् ।
हृदय— ओन्तार ।
हेरफेर— फेराफिरी ।
होना – होय क् ।

हँसुआ— दातरोम ।
हड्डी— जाङ ।
हल्दी— पसाङ ।
हाट— हटिया ।
हींग— अंडगोम ।
हैजा– हवा चुरु ।



सन्ताली-व्याकरण

शब्द कोषो का निर्माण कर अंग्रेज-प्रशासकों ने भारत पर शासन किया था ऐसा कहा जा सकता है। व्याकरणो का निर्माण भी उन्होंने इसी उद्देश्य से किया था। विभिन्न भाषाओं का अध्ययन कर उन्होने उन भाषाओं का व्याकरण बनाया है। केप्टन जेम्स लो की ' ए ग्रामर आफ

दी थाई और सियामीज लैंग्वेज' सन् १८२८ में प्रकाशित हुई थी। जेम्स लो ने उस पुस्तक की भूमिका में लिखा था—'मलक्का में स्थित ब्रिटिश बस्तियो तथा हाल ही में प्राप्त तेनासेरिम क्षेत्र का स्यामीय साम्राज्य के निकट होने, इन बस्तियो मे ब्रिटिश सरक्षण में रहने वाले स्यामियो की सख्या के बढ जाने तथा ब्रिटिश और स्यामी राजदरबार में नए राजनीतिक सम्बन्धो के कारण यह वाछनीय हो गया है कि स्यामी या थाई भाषा सीखने की सुविधा उनलोगो को मिलनी चाहिए, जिन्हे अपनी सरकारी या व्यावसायिक हैसियत के कारण उसका ज्ञान लाभप्रद हो सके।" उन्ही दिनों श्री ए० डी० कैम्पबेल की 'ए ग्रामर आफ दी तेलाग लैंग्वेज' प्रकाशित हुई थी और ग्रन्थकार ने भारत के गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स को उसे समर्पित करते हुए उस पुस्तक में लिखा था कि इस पुस्तक का प्रमुख लक्ष्य लोकोपयोगी है, किन्तु इसका यह प्रमुख दावा भी है कि हेस्टिंग्स जैसे राजनीतिज्ञ इसे अपनाए, जिनका उदार एवं सस्कृत मस्तिष्क उन्हें सौंपे गए विशाल साम्राज्य के हितो को, कितने ही अप्रत्यक्ष तरीको से क्यों न हो, सुदृढ करने वाली किसी भी बात को नजर अन्दाज नहीं करता।' इस क्रम में सन् १८८८ में रेवेरेण्ड डब्ल्यू० ई० विटर का 'आउटलाइन ऑफ ग्रामर आफ दी नागा लैंग्वेज' प्रकाश में आया। उसमें भी लेखक ने अपनी नीति को स्पष्ट किया है—'इस कृति के निर्माण में मेरा लक्ष्य उनलोगो को कुछ सहायता पहुँचाना रहा है जो या तो सुशासन के हितो को ध्यान में रखकर या ईसाई धर्म के हितो के लिए नागा भाषा का अध्ययन करना चाहते है।'

सन्ताली भाषा का अध्ययन भी इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर अंग्रेज प्रशासको ने स्वय किया और ईसाई मिशनरियो के द्वारा कराया

सन्ताली भाषा से अंग्रेज प्रशासकों को परिचय कराने के उद्देश्य से सन्ताली भाषा का व्याकरण लिखा जाने लगा। सन् १८७३ में श्री एल० ओ० स्क्रफ्सरुड ने 'ए ग्रामर आफ दी सन्ताल लैंग्वेज' लिखा। यह व्याकरण अंग्रेज प्रशासकों के लिए लिखा गया था, ताकि वे आसानी से सन्ताली भाषा सीख सकें। सन् १६२२ में पी० ओ० बोडिंग ने 'मैटिरियल फार ए सन्ताली व्याकरण' प्रकाशित कराया। उस पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका में अपने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए श्री पी० ओ० बोडिंग ने कहा है 'इस पुस्तक के निर्माण का लक्ष्य है–उनलोगों की सहायता करना, जो सन्ताली भाषा जानना चाहते हैं और दूसरा लक्ष्य है भाषा–विज्ञान की सेवा करना। इस पुस्तक का दूसरा भाग सन् १६२६ में प्रकाशित हुआ। सन् १६४७ में सन्ताली व्याकरण डाक्टर आर० एम० मैकफल का 'एन इंट्रोडक्शन टु सन्ताली' प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ भी दो भागों में प्रकाशित हुआ। पहले भाग में 'व्याकरण' के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया था और दूसरे भाग मे सन्ताली शब्दावली दी गई थी। हिन्दी में सन्ताली भाषा का व्याकरण आचार्य डोमन साहु 'समीर' का है जो सन् १६५१ में प्रकाशित हुआ था।

किसी भाषा को अनुशासित करने के लिए व्याकरण की आवश्यकता होती है। व्याकरण भाषा को संयमित बनाता है। वह एक लक्ष्मण रेखा है, जिसके अन्दर भाषा को रहना पड़ता है। सन्ताली भाषा को संयमित बनाने के लिए सन्ताली व्याकरणों का निर्माण किया गया। सन्ताली-व्याकरण और हिन्दी व्याकरण में बहुत साम्य है।

शब्द निर्माण में प्रत्ययो का बहुत बड़ा योगदान है। प्रत्ययो का हार्नले ने अपने गौडियन ग्रामर तथा डाक्टर चटर्जी ने अपनी ओरिजिन ओरिजन

ऐण्ड डेव्लेपमेण्ट ग्राफ बंगाली लैंग्वेज में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। सन्ताली भाषा के मूल शब्द में विभिन्न प्रकार के प्रत्यय लगाये जाते हैं। साधारणतः प्रत्येक सन्ताली शब्द का संज्ञा, विशेषण, क्रिया एवं अव्यय के रूप में प्रत्यय लगाकर प्रयोग किया जाता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि भाषाओं में प्रत्यय लगाने की जो क्रियायें थी, वे सभी क्रियायें सन्ताली भाषा में उपलब्ध हैं। 'य' 'वेद्' और 'किन ये तीनो प्रत्यय क्रमशः कर्त्तृ प्रत्यय हैं, काल-प्रत्यय हैं और कर्म-प्रत्यय है। सन्ताली भाषा में इनके शब्दो का उच्चारण मुख्यतः हिन्दी के समान ही है, पर उनके के रूप में हमें भेद भी मिलता है। इस भेद का कारण है-उनका शब्द रचना शास्त्र एवं जीव-जन्तु शरीर रचना शास्त्र के नियम। उन्हीं के चलते इनके शब्दों में अन्तर मिलता है। हिन्दी में शब्दो के जो आठ पद होते हैं, वे ही पद सन्ताली में भी हमें मिलते हैं। वे आठ पद इस प्रकार हैं-(१) संज्ञा (२) सर्वनाम (३) क्रिया (४) विशेषण (५) क्रिया-विशेषण (६) सम्बन्ध सूचक शब्द (७) संयोजक शब्द (८) विस्मय बोधक शब्द। हिन्दी में संज्ञा संज्ञा ही रहता है; पर संताली में ऐसी बात नही है। सन्ताली में एक ही शब्द का व्यवहार उसी गुरुत्व एवं सुर में विभिन्न पदों में होता है। बोडिंग[१] ने माना है कि सन्ताली भाषा में शायद ही ऐसा कोई शब्द हो, जिनमें क्रिया प्रत्यय नही लगाया जा सकता

१. As a matter of fact there is not a word in the Santal Language belonging to any of the above enumerated parts of speech to which a verbal suffix cannot be added, in other words, that cannot be used as a verb or as what we understand by a verb, in some way or other.

Rev. P. O. Bodding: Materials for Santali Grammar: part II, Page— 3.

है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सन्ताली भाषा में ऐसा कोई शब्द नही है, जिसमें प्रत्यय लगाकर क्रिया पद नही बनाया जा सकता है। शब्द की महत्ता, भाषा विज्ञान की दृष्टि में यह है कि वह किसी सामान्य विचार का प्रतिनिधित्व करे या उसके सम्बन्ध में अपनी अभिव्यक्ति दे। सामान्य विचार का विकास एवं यथार्थता से उसका सम्बन्ध एवं गतिशीलता-इन सभी का स्रोत है-सहायक तत्व। शब्दो के अभावों की पूर्तियाँ इन्ही सहायक तत्वो से की जाती हैं। इन्ही सहायक तत्वो में हम प्रत्यय को पाते हैं। सन्ताली भाषा मे, इस कारण मूल शब्दो में प्रत्ययों को जोडकर नये-नये शब्दो के निर्माण होते हैं। सन्ताली भाषा की शब्दावली में हमें दो प्रकार के शब्द मिलते हैं--एक मूल शब्द हैं और दूसरे प्रत्यय युक्त मूल शब्द हैं। मूल शब्दावली में भी व्याकरण की दृष्टि से वर्ग-विभेद किया जा सकता है— विवरणात्मक शब्दावली, सकेतवादक सर्वनाम सम्बन्धी शब्दावली और विस्मयादिबोधक शब्दावली। प्रत्यययुक्त शब्दावली का भी दो भेद सन्ताली भाषा में है, जो इस प्रकार है—कृदन्त एव प्रत्यययुक्त शब्दावली। 'मारा' शब्द को सन्ताली में काल प्रत्यय एवं कर्म प्रत्यय लगाकर 'दालकेत्‌किना' कहा जाता है। 'एक शब्द में निम्नलिखित तत्व हमें मिलते हैं:—

दाल - मूलशब्द - मारना,
दादालिच्—मारनेवाला,
दापाल—मार-पीट करना,
दाल-दालतें—मारते-मारते
दालकेत्‌किना—मारा

सन्ताल जितने सरल हैं, सीधा-सादे हैं, उनके शब्द उतने सरल एवं सीधे-सादे नहीं हैं। उनके शब्द कई तत्वों को अपने में लिये हुए हैं, एक तत्व दूसरे तत्वों को सशोधित करता है, अर्थ में भिन्नता लाता है। सर्वनाम का हमें तब तक ज्ञान नहीं होगा जब तक हमें सन्तालों के क्रिया पदों का ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। उसी प्रकार क्रिया पद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्वनाम को जानना आवश्यक होता है। जहाँ अर्थ एवं प्रसंग के अनुसार एक ही शब्द के व्यवहार विभिन्न पदों में होते हैं, वहीं यह भी सत्य है कि सन्ताली में कुछ ऐसे शब्द हैं, जो अधिकांश रूप में सज्ञा हैं वह सज्ञा के रूप में व्यवहृत होते हैं; जो क्रियात्मक शब्द हैं उनका व्यवहार भी क्रिया पद में ही होता है।

सन्ताली में संज्ञा के दो भेद हैं—एक प्राणिवाचक और दूसरा अप्राणिवाचक। प्राणिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत वे केवल जीवित को ही नहीं रखते हैं, मृत आत्माओं को भी वे प्राणिवाचक सज्ञा ही माना जाता है। भूत-प्रेत भी प्राणिवाचक ही हैं। हम कह सकते हैं - सन्ताली में जीव-जन्तु, ग्रहों-नक्षत्रों, देवी-देवता, भूत प्रेत सभी प्राणिवाचक संज्ञा हैं।

---

१. The distinction is not between living and dead, or between spirit or matter, but between what according to Santal ideas, has a soul and what has not. The animate is matter with a living force inside that makes it capable of acting and moving.

—P. O. Bodding. A Santali Grammar for beginners. Page.—9

जैसे—होड़-(आदमी), रांवल-(त रा), बोंगा (ईश्वर) मेरोम-(बकरो) आदि। अप्राणिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत वे संज्ञायें आती हैं, जो निर्जीव है। जैसे—आरसी-(आइना), बुरू-(पहाड़); बिर-(जंगल), दाक् (पानी), श्रोत (जमीन), पुथी (पुस्तक) आदि। प्राणिवाचक और अप्राणिवाचक संज्ञाओ में भेद दिखलाया जाता है। वह विभेद हमें विशेषणो, कारक-चिन्हों एवं क्रियापदों में दिखाई पड़ता है। हिन्दी में हम नयी धोती और नयी बकरी कहते हैं। प्राणिवाचक और अप्राणि-वाचक दोनो के लिए हम 'नए-शब्द का' प्रयोग करते हैं। पर सन्ताली में भिन्न रीति है। सन्ताली में नयी बकरी के लिए नुई मेराम कहा जाता है और नयी धोती के लिए नोआ धुती कहा जाता है। सन्ताल लोग क्रम-व्रती हैं। क्रमव्रती लोग भावना प्रधान नही होते हैं। इस कारण सन्ताली भाषा मे भाववाचक संज्ञा का अभाव है। इन दिनो सन्ताली भाषा की प्रगति हो रही है। इस प्रगति के क्रम में क्रियाओ एवं विशेषणों के माध्यम से भाववाचक संज्ञाएँ बनने लगी हैं—जैसे ओल (लिखना) से ओनाल (लेख) बना।

सन्ताली में लिंग भेद केवल प्राणिवाचक संज्ञा में होता है। प्र णि-वाचक शब्दों में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनसे पुंलिग और स्त्रीलिंग दोनों का बोध होता है। अ और ई लगाकर लिंग भेद दिखलाया जाता है—

पुंलिग	स्त्रीलिंग
कोड़ा (लड़का)	कोड़ी (लड़की)
काला (बहरा)	काली (बहरी)
भेड़ा (मेंड़)	भेडी (भेड़ी)

एक ही शब्द जो पुंलिग एवं स्त्रीलिंग दोनो में प्रयुक्त होते है,--वे है—

होड़ (मनुष्य-नारी और पुरुष)

सेता—कुत्ता : कुतिया।

सिम—मुर्गा , मुर्गी।

कुल —सिंह : सिंहनी

ऐसे शब्दो के लिए, जब पुंलिग और स्त्रीलिंग में प्रयोग करना पड़ता है तब पुंलिग बोधक शब्दो के लिए अंडिया और स्त्रीलिंग बोधक शब्दों के लिए एंगा शब्द का प्रयोग किया जाता है—जैसे अंडिया सेता--कुत्ता , एंगा सेता--कुत्तो। कुछ ऐसे भी सन्ताली शब्द मिलते हैं , जिनका पुंलिग के लिए एक शब्द है और उसके स्त्रीलिंग के लिए अन्य शब्द है, जैसे—

पुंलिग		स्त्रीलिंग
हेरेल (पुरुष)		माइजिउ (नारी)
अंडिया (पुरुप)		एंगा (नारी)
हड़ाम (बुढा)	–	बुढी (बुढिया)
डाँगर (बैल)	–	गाइ (गाय)
काडा (भैंसा)	–	बित्तकिल (भैंस)

सन्ताली भाषा में प्राणिवाचक संज्ञा और अप्राणिवाचक संज्ञा में विभेद है। इसी विभेद के कारण व्याकरण द्वारा वाक्यों के गठन में भी विभेद दिखाई पड़ता है।

हिन्दी की भाँति सन्ताली में वचन तीन हैं— एक वचन , द्विवचन और बहुवचन। एक वचन में मूल शब्द होता है। द्विवचन में मूल शब्द

१. P. O. Bodding: A Santal Grammer for beginners: Page— 9 .

के साथ 'किन' प्रत्यय जोड़ा जाता है और एक वचन से शब्द को बहु-वचन बनाने के लिए (–) को प्रत्यय को जोड़ने का नियम है। प्राणिवाचक और अप्राणिवाचक शब्दों का वचन-प्रक्रिया द्विवचन एवं बहुवचन में इसी प्रकार से होता है। अगर वचन की अभिव्यक्ति भिन्न से होती है; तब 'किन' और 'को' प्रत्यय को छोड़ दिया जाता है। अगर छोड़ा नहीं जाय, तो उससे निश्चयात्मकता का बोध होता है। अप्राणिवाचक संज्ञा में संख्या का प्रत्यय नही लगाया जाता

एक वचन	द्विवचन,	बहुवचन
सादोम	सादोमकिन	सादोमको
(एक घोड़ा)	(दो घोड़ा)	(दो से अधिक घोड़ा)
ओरक	ओरककिन	ओरकको
(एक घर)	(दो घर)	(दो से अधिक घर)

प्राणिवाचक संज्ञा के वचन का बोध उसके सार्वनामिक कर्तृ प्रत्यय और कर्म प्रत्यय से भी हो जाता है। दो' शब्द के आगे 'य' 'किन' और 'को' प्रत्यय लगाने से एक वचन द्विवचन और बहुवचन होता है। दोय, दो किन और दोको क्रमशः एक वचन, द्विवचन और बहुवचन होता है।

सन्ताली में भिन्न-भिन्न कारक के लिए भिन्न भिन्न चिन्ह है। कर्त्ता और कर्म के लिए कोई चिन्ह नही है, पर अन्य कारकों के लिए इस प्रकार चिन्ह प्रयोग में आते है—

करण—ते, सम्प्रदान—लागित, लगात, अपादान—खोन खोच्, सम्बन्ध—रेँन, रेयाक और आक, अधिकरण—रे, ने, सम्बोधन—एँ, हो, हेन्दा।

सन्ताली भाषा में पाँच प्रकार के सर्वनाम होते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(क) पुरुष वाचक इञ (मैं), आम (तुम)

(ख) निश्चय वाचक नुई (यह), उनी (वह)

(ग) सम्बन्ध वाचक ओकोय (जो)

(घ) प्रश्न वाचक (ओकोय) (कौन) ; (चेले क्या)

(ङ) अनिश्चयवाचक जहाँय (कोई)

इन पाँचों सर्वनामो के दो-दो रूप सन्ताली में होते हैं--प्राणीवाचक और अप्राणिवाचक। प्राणीवाचक में नई (यह) उनी (वह) का अप्राणी-वाचक में नोआ (वह), ओना (वह)। प्रत्येक सर्वनाम के तीन वचन होते हैं एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। सर्वनामो में 'य' 'किन' और 'को' प्रत्यय लगाकर क्रमशः एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन बनाया जाता है।

सन्ताली भाषा मे २० तक ही की संख्या है। उसके आगे वे हिन्दी या बंगला की संख्या को प्रयोग में लाते हैं। शिक्षित सन्ताल वो सभी संख्याओं के लिए हिन्दी या बंगला का ही प्रयोग करते हैं।[१] सन्ताली में संख्यावाचक विशेषण कुछ इस प्रकार हैं—

१ मित्

२. बारया

३. पेया

४. पोन

५. मोंडे

६. तुरूये

७. एमाय

८. इराल

९. आरें

१०. गेल

सन्ताली भाषा मे इस प्रकार दस तक गिनती होती और उसके बाद इकाई जोडा जाता है। 'खोन' दोनो के बीच जोडा जाता है। सन्ताली भाषा में क्रमवाचक संख्या जो मिलती है वह हिन्दी की ही है। पहिल (पहला) दोसार (दूसरा) तीसार (तीसरा), चोठा (चौथा) सन्ताली भाषा में क्रम वाचक संख्या में प्रयोग होते हैं। यह क्रम वाचक संख्या प्राणिवाचक एवं अप्राणिवाचक दोनो के लिए व्यवहृत की जाती है। सन्ताली भाषा में क्रमवाचक संख्या की कमी इसलिए है कि सन्तालो को उन संख्याओं की आवश्यकता उनके दैनिक जीवन में कम पडती है।

मूल शब्द का सन्ताली मे क्रिया विशेषण के रूप में भी प्रयोग होता है। पर यह प्रयोग तब होता है, जब उसके प्रयोग से शब्द का अर्थ निकलता हो। ऐसे शब्द सताली भाषा में बहुत हैं, जिनका व्यवहार क्रिया-विशेषण के रूप में किया जाता है। स्थान बोधक शब्दो एवं समय बोधक शब्दो का व्यवहार क्रिया विशेषण के रूप मे होता है। सन्ताली में कुछ ऐसे भी शब्द हैं, जिनसे परिणाम का बोध होता है, उन्हें भी क्रिया-विशेषण के रूप में व्यवहार में लाया जाता है।

सन्ताली भाषा में अकर्मक, सकर्मक और द्विकर्मक तीन तरह की क्रियायें होती हैं। तीन का भेद हमें काल- प्रत्ययो से होता है। उनके काल-प्रत्यय, अकर्मक, सकर्मक और द्विकर्मक के लिए काल प्रत्यय क्रमशः अकान्, अकात् और अकावात् व्यवहार में आता है। प्रत्येक काल के लिए भिन्न-भिन्न अकर्मक, सकर्मक और द्विकर्मक काल-प्रत्यय होता है। संताली भाषा में काल-प्रत्यय तीन प्रकार का है –

(क) प्रत्येक काल से सम्बन्धित सभी क्रियाओं के लिए जो सरल हो, शुद्ध हो, प्रधान कर्म से सकर्मक या अकर्मक हो।

(ख) गौण कर्म के साथ क्रियायें सकर्मक और द्विकर्मक जिसका अर्थ कर्त्ता–सम्बन्धी हो।

(ग) प्रत्येक वाच्य (Voice) के लिए, जो क्रियायें उद्देश्ययुक्त हो। प्रत्यय निम्न प्रकार से लगाया जाता है:–

(१) अनिश्चित एवं भविष्य काल– अकर्मक एव द्विकर्मक में। पर सकर्मक में कुछ अपवादो को छोडकर प्रत्यय नही लगता।

(२) वर्त्तमान काल में

(३) भूतकाल में– उसकी तीनो स्थिति में - पूर्णत पू ा हुआ, पूरा हुआ, किन्तु बन्द होकर या समाप्त होकर, पूरा हुआ, पूर्णतः परिणाम की आशा मे।

सन्ताली मे क्रिया हिन्दी से अधिक है। प्रत्येक काल की सन्ताली क्रियाओ के चार रूप होते हैं - (१) अकर्मक (२) अप्राणिवाचक अकर्मक (३) प्राणिवाचक सकर्मक (४) द्विकर्मक। सन्ताली में काल इस प्रकार हैं- (१) सभाव्य-भविष्यत् काल-उसमें प्रत्यय इस प्रकार लगाया जाता है· अकर्मक उसका प्रत्यय - ओक्। जैसे - सेनोक् – जाय। अप्राणिवाचक सकर्मक काल– उसका प्रत्यय कुछ नही है। प्राणिवाचक सकर्मक – उसका भी प्रत्यय कुछ नही है। केवल धातुओ में प्राणिवाचक कर्म–प्रत्यय क्रियापद में लगाया जाता है।

(२) सामान्य भविष्यत् काल– इस काल में प्रत्यय का प्रयोग इस नियम के अनुसार होता है। अकर्मक काल का प्रत्यय– (ओ) क् - 'आ' है। जैसे– सेनोक् - आ जायगा। अप्राणिवाचक सकर्मक काल के प्रत्यय

'श्रा' है। जैसे - इदिया - ले जायगा। प्राणिवाचक सकर्मक काल - प्रत्यय (श्रा) है। जैसे श्रगूमेया - तुम्हें लावेगा। द्विकर्मक काल का प्रत्यय श्रा ···· श्रा है। जैसे श्रगूवाना - तुम्हें ला देगा।

(३) सामान्य वर्त्तमान काल—इस काल में अकर्मक काल प्रत्यय-(श्रो) क्, काना है। जैसे, सेनोक् कान्ना – जाता है। अप्राणिवाचक सकर्मक काल - प्रत्यय - एदा है। जैसे– श्रोल एदा-लिखता है। प्राणि-वाचक सकर्मक काल प्रत्यय– 'एत' ··· 'श्रा', जैसे– श्रगूयेदेया– उसे लाता है। द्विकर्मक काल प्रत्यय है – 'श्रा '········ काना, जैसे– श्रगूवाम काना तुम्हें ला देता है।

(४) तात्कालिक वर्त्तमान काल—इस काल में अकर्मक काल प्रत्यय सामान्य वर्तमान काल की तरह है। अप्राणिवाचक सकर्मक काल-प्रत्यय 'एतकाना' है, जैसे--श्रोल एत्काना (लिख रहा है)। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय है – एद्···काना। जैसे — श्रगूयेदे काना, (उसे ला रहा है)। द्विकर्मक काल-प्रत्यय-सामान्य वर्त्तमान काल की तरह है।

(५) अपूर्ण भूतकाल—इस काल में अकर्मक काल-प्रत्यय तात्कालिक भूतकाल की तरह है। अप्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय है – एत् ताहेकान; जैसे—श्रगूयेत ताहेकाना (लाता था)। प्राणीवाचक सकर्मक काल प्रत्यय एद्···ताहेकाना; जैसे श्रगूयेदे ताहेंकाना। द्विकर्मक काल प्रत्यय तात्कालिक भूतकाल की तरह है।

(६) तात्कालिक भूतकाल—इस काल में अकर्मक काल प्रत्यय (श्रो) क् कान ताहेंकान, जैसे—सेनोक् कान—ताहेंकान—जा रहा था। अप्राणिवाचक मकर्मक काल प्रत्यय एत कान ताहेंकाना, जैसे श्रोल एद् कान ताहेंकाना—लिख रहा था। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय

एत'''कान ताहेंकाना , जैसे आगूयेदे कान ताहेंकाना–उसे ला रहा था। द्विकर्मक काल प्रत्यय–आ'''कान ताहेंकाना , जैसे—आगूवाको कान ताहें काना—उनलोगों को ला दे रहा था।

(७) सामान्य भूत काल— इस काल में अकर्मक काल प्रत्यय एना' है , जैसे— सेना एना— गया। अप्राणिवाचक सकर्मक काल-प्रत्यय—केदा , जैसे— जोम केदा— खाया। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय—केत '' आ , जैसे— आगू केदया— उसे लाया। द्विकर्मक काल प्रत्यय—आद्'''आ ; जैसे— आगू वाद्मेया— तुम्हें ला दिया।

(८) पूर्ण भूत काल -- सन्ताली भाषा में पूर्ण भूत काल के दो प्रकार होते हैं। पूर्ण भूत काल—सख्या १ के अन्तर्गत अकर्मक काल प्रत्यय—लेना है , जैसे— सेन लेना— गया था। अप्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय-लेदा है , जैसे— आगू लेदा— लाया था। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय— लेत्'''' आ , जैसे— आगू लेदेया — उसे लाया था। द्विक 'क काल प्रत्यय— पूर्ण भूतकाल सख्या २ के अनुसार। पूर्ण भूत काल—संख्या २ के अन्तर्गत अकर्मक काल प्रत्यय— लेन ताहेकाना हैं ; जैसे—सेन लेन ताहेकाना— गया था। अप्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय—लेते ताहेकाना , जैसे— आगु लेते ताहेंकाना— लाया था। प्राणि-वाचक सकर्मक काल प्रत्यय— लेत् '''' ताहेंकाना ; जैसे—आगू लेदे ताहें काना— उसे लाया था। द्विकर्मक काल प्रत्यय— आत'''ताहेंकाना , जैसे — आगू वादे ताहेंकाना— उसे ला दिया था।

(९) आसन्न भूतकाल – इस काल के अन्तर्गत अकर्मक काल प्रत्यय-अकाना , जैसे सेन अकाना – गया है। अप्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय अकादा , जैसे – आगूवकादा – लाया है। प्राणिवाचक सकर्मक

काल प्रत्यय — अकाद् ·· आ , जैसे — आगू वकादेया , उसे लाया। द्विकर्मक काल प्रत्यय अकावाद् ···· आ ; जैसे , आगू अकावादेया — उसे ला दिया।

(१०) हेतुहेतुमद्भूत काल इस काल के दो भेद हैं (१) अपूर्ण संकेतार्थक और (२) पूर्ण संकेतार्थक। अपूर्ण संकेतार्थक में वाक्य का अर्थ पूरा पूरा नहीं रहता। उसका संकेत किसी दूसरी क्रिया पर रहता है। इस अपूर्ण संकेतार्थक के अन्तर्गत अकर्मक प्रत्यय लेता है , जैसे सेन लेन— जाता है। अप्राणिवाक सकर्मक काल प्रत्यय— ले (रवाना), जैसे— आगू ले— लाता तो। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय —'ले' है , जैसे— आगू लें लें— मुझे लाता तो। द्विकर्मक काल प्रत्यय— कुछ नहीं।

इस क्रिया का दूसरा रूप पूर्ण संकेतार्थक है। इसमें वाक्य का अर्थ पूर्ण रहता है। इसमें अकर्मक काल प्रत्यय— कोक् — आ है। जैसे ; सेन कोक् आ— जाता। अप्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय— केया है, जैसे— जेलकेय— लाता। प्राणिवाचक सकर्मक काल प्रत्यय—के'''अ। जैसे— आगू केया— उसे लाता।

(११) पूर्वकालिक क्रिया— सन्ताली में पूर्वकालिक क्रिया बनाने का नियम बहुत साधारण है— धातु में काते जोड़ने से पूर्वकालिक क्रिया बनती है ; सेन काते— जाकर।

विशेषण , सन्ताली में हिन्दी की तरह है। उसके भी चार प्रकार हैं— गुणवाचक , परिमाणवाचक , संख्यावाचक और सार्वनामिक। संख्यावाचक विशेषण का विवरण ऊपर आ गया है। गुणवाचक , परिमाणवाचक और सार्वनामिक परिमाण हिन्दी के ही अनुरूप है। हिन्दी की

तरह सन्ताली में भी विशेषणों की द्विरुक्ति हुआ करती है ; जैसे— लाट्ट-लाट्ट—बड़े - बड़े। क्रिया विशेषण भी हिन्दी के ही अनुरूप हैं। उसके भी हिन्दी की भाँति चार प्रकार है— (१) कालवाचक, (२) स्थान वाचक, (३) परिणामवाचक और (४) रीतिवाचक। एक प्रकार सन्ताली भाषा में और होता है-वह प्रावृतिमूलक है। उसमे अर्थ व्यंजना में एक विशेषता आ जाती है। जैसे— हिड़िर–हिड़िर - ढेर-ढेर। सन्ताली में सम्बन्ध सूचक शब्द कम नही हैं। प्रधान रूप से सन्ताली भाषा में सम्बन्ध सूचक शब्द हैं— तें (मे), रें (में, पर), रेंन— (का के की), रेयाक् (का के की) लागित्‌ लगात (के, लिए) खोन खोच (मे), टेन, ठेंच— पास, आदि। इसी प्रकार सन्ताली भाषा में समुच्चय बोधक शब्द भी हैं, जैसे— आर (और), से (या अथवा), खान खाच् (तो, तब), खान गे (जब), बिचकोम (बल्कि), हो (भी), एन हो (तथापि), एन्ते (इसलिए), मेनते (ऐसा), चेदाक् जे (क्योंकि), जेमोन (ताकि) जुदि (यदि), कथाय— (कहते हैं), मेताकमे— (जैसे) आदि। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सन्ताली भाषा में विस्मयादि-बोधक शब्दो का व्यवहार होता है, जैसे— हेन्दा! (ऐ अजी), हेन्दा हो (अजी! भाई!, हेन्दा गो (ऐ भाई), ये हेन्दा गे (अरी!), आइखा (मगर-देखना), आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्ताली व्याकरण भी हिन्दी व्याकरण से दूर नही है। हिन्दी के ही बहुत से नियम हम सन्ताली व्याकरण में पाते हैं।



सन्ताली-दर्शन



● सन्ताली साहित्य आज का नही है। वह बहुत प्राचीन है। उसका सम्बन्ध बहुत दूर दिनो से है। उसका प्राचीन साहित्य अलिखित रह गया। पर सन्ताल उसे युगो से सुनते, कहते और गाते आये हैं। अभी भी उनका क्रम ऐसा ही चलता है। उनके अलिखित साहित्य को लिपिबद्ध करने की अपेक्षा है। इस सम्बन्ध में जो कुछ कार्य हुए हैं, वे अधिक सन्तोषजनक नही कहे जा सकते हैं।

● सन्ताली लोकवार्ताओ से हमे सन्तालो के आचरण, उनके चरित्र, उनके रीति–रिवाज, अनुष्ठान, त्योहार, परम्परायें, संस्कार, आखेट, युद्ध, मत्स्य-व्यवसाय, पशु पालन आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक सन्तालो का समस्त सामाजिक जीवन सगीतमय है। उन्होने आरम्भ काल से ही प्रत्येक कार्य में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सन्तालो में शिक्षा का अभाव अवश्य है, पर लोक गीतो के कारण उनमें कुसस्कार नही आया।

● होड सोम्बाद' का प्रकाशन सन्ताली साहित्य–निर्माण के लिए एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण में 'सरस्वती' की जो देन रही है, वही देन 'होड सोम्बाद' की सन्ताल–साहित्य के निर्माण में रही है। सन्ताली साहित्य मे जो नये-नये प्रयोग हुए, वे सब 'होड सोम्बाद की देन हैं। सन्तालो - साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए कोई सक्रिय साहित्यिक सस्था नही है और उस अभाव की पूर्ति 'होड सोम्बाद' ने की है। बिहार सरकार ने इसका प्रकाशन आरम्भ करके सन्ताली साहित्य के निर्माण में जो योगदान दिया है, उसके लिए वह बधाई की पात्र है।

●

सन्ताली लोक-वार्ता

अंग्रेजी के 'फोकलोर' शब्द के हमारे यहाँ कई पर्यायवाची शब्द हैं। 'लोक-वार्ता, लोक-विद्या और लोक-ज्ञान आदि ' फोकलोर ' शब्द के पर्याय वाची शब्द हैं। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने '८४ वैष्णवो की वार्ता' के आधार पर ,फोकलोर' का 'लोक-वार्ता' पर्याय रूप में स्वीकार किया है। प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'फोकलोर' के लिए लोक-संस्कृति का प्रयोग किया है। 'फोकलोर' के लिए 'लोकायन' शब्द का भी प्रयोग होता है। डाक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ऐसा ही मानते हैं। उन्होंने स्वयं कहा भी है— " पितृ-परम्परागत जीवन-यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक अनुष्ठानों, विश्वास विचारो तथा वाङ्मय से अपने लौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है, उन्हे अंग्रेजी में फोकलोर कहते है। इस शब्द का भारतीय प्रतिशब्द हमने 'लोकायन' बना लिया है। १ " मराठी के पारिवारिक शब्दकोष में फोक - लोर के लिए 'जनश्रुति' शब्द दिया हुआ है , फिर भी कालेलकर एवं फर्वे ऐसे विद्वान मराठी लेखको ने फोकलोर के लिए 'लोक-दिव्या' शब्द पर अधिक जोर दिया है। ऐसे तो फोकलोर शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है— असस्कृत लोगो का ज्ञान। इस अर्थ को दृष्टि में रखते हुए इस शब्द का 'लोक-ज्ञान' पर्यायवाची है। लोक-ज्ञान , लोक—विद्या , लौकिन दन्त कथा, जनश्रुति , किंवदन्ति , लोक सस्कृति , लोकायन आदि शब्दो में लोक वार्ता शब्द बहुत व्यापक है , विस्तृत भावों को ग्रहण करने वाला है। 'फोकलोर' शब्द से अंग्रेजी में प्रथमवार ई० स० १८४६ में डब्ल्यू० जे० थामस ने

१. राजस्थानी कहावतें— (भाग-१) २००६ , कलकत्ता पृष्ठ—११.

प्रयोग में लाया था।[1]

लोक-वार्ता को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से परिभाषित किया है। महात्मा लेनिन ने कहा है— लोक-वार्ता जन की आशाओं और आत्म-भावों से सम्बन्धित सामग्री है।[2] इसी प्रकार पूज्य बापू ने कहा है- ,लोक-वार्ता लोगों का साहित्य है ; पर वह लुप्त होती हुई सामग्री यदि अब तक नष्ट न हो चुकी हो , से सम्बन्धित है।[3]

लोक-वार्ता का अपना महत्व है। लोक-जीवन उसका आधार है। संस्कार एवं परम्परायें लोक-वार्ता की देन हैं। शिक्षा के विकास के बाद विज्ञान की प्रगति होने के उपरान्त भी मानव अपने संस्कार को नहीं खो रहा है , उसकी परम्परायें नहीं मिट रही हैं , उसका एक मात्र कारण है- लोक-वार्ता। हम लोक-वार्ता में मानव की शक्ति , उसके विचार , उसके भाव , उसके विश्वास , उसकी धारणायें , उसके रीति-रिवाज आदि का स्वरूप पा सकते हैं। यही कारण है , आज लोक-वार्ता एक सामाजिक-शास्त्र बनती जा रही है। सन् १६०८ में श्री जी० एलगोमे ने कहा है कि ' फोकलोर इज ए हिस्ट्रीकल साइन्स ' । इसी प्रकार सन् १६२० में आर० आर० मरेट ने लोक-वार्ता को मनोवैज्ञानिक सत्य माना है।

---

१. इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज- जि० ५, पृष्ठ- २८८

२. Folklore is matarial about the hopes and yearnings of the people— लेनिन।

३. Folklore is the literature of the people, but it belongs to an order of things that is passing away , if it has not already done so.

—महात्मा गाँधी

बोटकिन ने भी कहा है–[१] ' लोक–वार्ता अत्यधिक दूर और अत्यन्त प्राचीन कोई वस्तु नहीं है, वह तो हमारे मध्य सत्य और जीवित है। यहाँ भूत–काल को वर्तमान से और पुस्तकहीन समाज को उस समाज से कुछ कहना है जो अपने ही विषय में पढ़ना चाहता है, जिसका सम्बन्ध लौकिक और लोकतान्त्रिक सस्कृति को मूल कलाओं के प्रारम्भिक स्त्रोतों और इतिहास के एक अंग के प्रकाश से है। लोक–वार्ता पुस्तकहीन समाज का एक मौखिक विश्वविद्यालय है। यह वि.वविद्यालय हजारों वर्षों से लोक–वार्ता के माध्यम से बिना किसी उपकुलपति की देखरेख और बगैर एक पैसे खर्च के चल रहा है।

१६ वी शताब्दी के प्रथम दशक से ही लोक–वार्ता का अध्ययन मनो–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से होने लगा है। यह माने जाने लगा है कि लोक–वार्ता निर्जीव विज्ञान नहीं है। मानव को समझने, जानने एवं परखने की जिज्ञासा जब वैज्ञानिकों में उत्पन्न हुई, तब उन्होंने उस समाज में प्रच-लित लोक–वार्ताओं का अध्ययन आरम्भ किया। जॉन ऑब्रे ने सन् १६८७ ' रिमेन्स ऑफ जैंटिलिस्मि एण्ड जुडाइज्म ' में लोक–वार्ता की ओर संकेत किया था। लोक–वार्ता का अध्ययन हम तब से ही मानते हैं। पर १५०

१. Folklore is not something far away and long ago but real and living among us...... Here the past has some thing to say to the presents and bookless world to a world that likes to read about itself. Concerning our basic oral and democratic cultural as the root of arts and as a side light on history.

— अमेरिकन फोकलोर (पाकेट बुक) की भूमिका, पृष्ठ— १५

वर्षों से हमने उसका वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ किया है। लोक-वार्ता का अध्ययन विभिन्न स्तरों पर होता रहा है। मिस्टर ग्रीम ने लोक-वार्ता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया। मान हर्डथ, लार्ग, फ्रेजर, रोवर्टसन, स्मीथ आदि ने लोक-वार्ता का अध्ययन मानववादियो की भाँति की। इसके बाद लोक-वार्ता पर अध्ययन करने के लिए उन लोगों ने एक फोकलोर सोसाइटी की स्थापना की। भारतीय लोक-वार्ताओं का इस संस्था के माध्यम से काफी अध्ययन किया गया। 'फोक टेल्स आफ महाकोशल' (१८६६),[१] 'ओल्ड डेक्कन डेज' (१८६८)[२] 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आफ बेंगाल (१८७१),[३] लोजेण्ड्स् आफ दी पंजाब (१८८४),[४] 'वाइड अवेक स्टोरीज (१८८५)',[५] 'फोकलोर इन सदर्न इण्डिया'[६] 'इण्डियन फोकलोर'[७], 'शिमला विलेज टेल्स'[८], 'रोमाण्टिक टेल्स फ्राम पंजाब'[९], 'बंगाली टाउनहोल्ड टेल्स'[१०], 'ओरियण्टल पर्ल्स'[११] 'इण्डियन फेबेल्स'[१२], 'फोकलोर आफ दी तेलगूज'[१३] 'फोकलोर ऑफ बाम्बे'[१४] आदि ग्रन्थ लोक-वार्ता पर प्रकाशित हुए। इन लोक-वार्ताओ के अध्ययन में अधिकाश समय गैर आदिवासियो की लोक-वार्ता में लगाया गया। आदिवासियो की लोक-वार्ता विशेष रूप में उपेक्षित ही रही। सन्ताली लोक-वार्ता की ओर ध्यान नही गया। आदिवासी लोक-वार्ता की ओर ध्यान 'जनरल ऑफ रायल एशियाटिक

१. डाक्टर वेरियर एल्विन २. मिस फ्रेयर ३. डाल्टन ४. आर० सी० टेम्पल ५. श्रीमती स्टील ६. नरेश शास्त्री ७. आर० सी० मुकर्जी ८. श्रीमती डेकाई ९. सी० स्त्रीन्टर्न १०. एम० कुलक ११. शोभन देवी १२. राम स्वामी राजू १३. जी० आर० सुब्राह्मिम पतालु १४. आर० ई० एन्थोवेन।

सोसाइटी , इण्डियन एन्टिक्वेरी , नार्थ इण्डिया नोट्स एण्ड क्वेराज , बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी जनरल, मैन इन इण्डिया के माध्यम मे डैमेन्ट , क्रूक, जे० एचनालोज, बोम्पास ; बोडिंग , वलूम फील्ड, शरतचन्द्र राय , वेंजर , ग्रियर्सन, हॉफमैन आदि ने लोक-वार्ता पर अच्छा काम किया है। सन्ताली लोक-वार्ता का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया गया है और उसका संकलन कार्य भी बहुत सुचारू रूप मे किया गया है। सन् १८७५ में श्री फेगटी कोल ने राजमहल अनुमण्डल से दो सन्ताली लोक-वार्ता को इण्डियन ऐंटिक्वेरी में प्रकाशित किया। यह प्रथम प्रयास था। सन् १८६१ में डाक्टर ए० कैम्पबेल ने मानभूम क्षेत्र के सन्ताली लोक-वार्ताओं का एक संकलन प्रकाश मे लाया। सन् १६०६ में सी० एच० बोम्पास ने सन्ताली की लोक-वार्ता प्रकाशित किया। यह बहुत बडा प्रयास था। बोम्पास का यह काम ऐतिहासिक महत्व का है। सन् १६२५ से १६२६ के बीच श्री बोडिंग ने ६३ सन्ताली लोक-वार्ताओ को प्रकाशित किया। उन्होंने सन्ताली भाषाओ में ही उन्हें मूल रूप में दिया और अग्रेजी में उनका अनुवाद भी साथ ही साथ दिया। मोहल पहाडी एवं वेनी गडिया क्षेत्र मे वे कहानियाँ प्राप्त की गई थी और उन्हे बोडिंग साहब ने आठ व्यक्तियों मे प्राप्त किया था। सन् १६४४ में सन्ताल शिक्षा समिति ने १३८ लोक-वार्ताएँ 'ग्राम कहानियाँ' के नाम से प्रकाशित किया। इन कहानियो के सकलन कर्त्ता मिस्टर एस० सी० मुरमू थे। नार्मन बाउन ने बताया है कि भारत में लगभग ३००० लोक-कथायें लिपिबद्ध होकर प्रकाशित हुई हैं। उनमें से पंजाब, सन्ताल परगना और मध्य प्रदेश से लगभग ६०० कथाएँ प्राप्त की गई है।[1] सन्ताली लोक वार्ताओ में हमें संस्कृत

---

१. डाक्टर वेरियर एलविन के ग्रन्थ 'फोकटेल्स ऑफ महाकोशल' की भूमिका से।

साहित्य की ही वार्ताओं को ध्वनि प्राप्त होती है। कारण यह है कि उन कहानियों का आधार भारतीय है। अबतक सन्ताली लोक-वार्ता का जो संकलन कार्य हुआ है, उसे सन्तोषजनक नही कहा जा सकता है। अबतक जिन व्यक्तियो ने सन्ताली लोक-वार्ता पर काम किये हैं, उनका उद्देश्य हमारे लक्ष्य के पूरक नही था। उनका उद्देश्य था मात्र रोमांच एवं मनोरञ्जन प्राप्त करना। जहाँ तक मेरा अनुमान है, केवल सन्ताल परगना में ही लगभग एक हजार सन्ताली लोक-वार्तायें उपलब्ध हैं। उनका संकलन-कार्य होना चाहिए। संकलन-कार्य एक निर्धारित योजना के अनुसार करना चाहिए। सन् १९३७ में श्री राहुल साकृत्यायन ने संकलन-कार्य के लिए एक योजना देश के सामने रक्खी थी।[1] उन्होने कहा था—

(१) भाषा ऐसी हो, जिसका क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा हो।

(२) जिस भाषा के (कई शताब्दियो के अन्तर से) अनेक रूप उपलब्ध हो, जिससे कि तुलनात्मक अध्ययन में पूरी मदद मिल सके।

(३) जहाँ भाषा-तत्वज्ञ तथा भाषा के मर्मज्ञ भी मिल सकें।

(४) जहाँ की स्थानीय सस्थाएँ इसके लिए तैयार हो।

(५) जहाँ उत्साही लेखक और कार्यकर्त्ता सुलभ हो।

(६) जहाँ काम जल्दी समाप्त किया जा सकता है।

सन्ताली लोकवार्ताओ का हमें संकलन करना है। पर हमें यह ध्यान में रखना है कि लोक वार्ताओ के मूल मे जो भावनाएँ हैं, वे नष्ट न होने पायें।

सन्ताली लोकवार्ताओ का वर्गीकरण करना कम कठिन काम नही है। सन्ताली लोकवार्तायें तीन प्रधान समूहो में बँटी हुई हैं— (१) विश्वास

१. पुरातत्व निबन्धावली— हिन्दी की स्थानीय भाषा।

एवं आचरण से सम्बन्धित (२) रीति-रिवाज (३) कथा एवं कहानियाँ। अधिकांश कहानियाँ प्रथम समूह में ही आती हैं। डाक्टर सत्येन्द्र[1] के अनुसार प्रथम समूह में निम्नलिखित प्रकार की वार्तायें आ सकती हैं :—

वे विश्वास और आचरण अभ्यास, जो सम्बन्धित हैं—

पृथ्वी और आकाश से

वनस्पति जगत से

पशु जगत से

मानव जगत से

मनुष्य निर्मित वस्तुओ से

आत्मा तथा दूसरे जीव से

परा - मानवी व्यक्तियो से

शकुनो–अपशकुनो, भविष्यवाणियो, आकाशवाणियो से

जादू–टोना से

रोगो तथा स्थानो की कला से।

कैम्पबेल, बोम्पास और बोडिंग एवं कोल्स द्वारा संकलित सताल लोक-वार्ताओ की संख्या लगभग २०० से अधिक है, जिनका अंग्रेजी में अनुवाद हो गया है। बोम्पास ने अपने संकलन में कैम्पबेल की सभी लोकवार्ताओं को शामिल कर लिया हैं। पुन: श्री बोडिंग ने बोम्पास की १८५ कहानियों में ३२ कहानियों को अपने ढंग से लिखकर अपने ग्रन्थ में संकलित किया है। बोडिंग ने ६३ सन्ताली लोक वार्ताओं को संकलित किया था। ७२ लोकवार्ताएँ तो बोम्पास से ही उसने लिया था और बाकी २१ नई लोक-वार्ताएँ थी। कोल्स की दो सन्ताली लोकवार्ताएँ जो सन् १८७५ में

१. श्री श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य ; पृष्ठ–१६

इण्डियन ऐन्टीक्वेयरी में प्रकाशित हुई थी, उनका सकलन किसी ग्रन्थ में अभी तक शामिल नही किया गया है। इस प्रकार हिसाब लगाकर देखा जाय तो दो सौ से अधिक कहानियाँ अंग्रेजी के माध्यम से प्रकाश में आ चुकी हैं। सन्ताली भाषा में 'ग्राम कहानियाँ' जिसमें १३८ कहानियाँ संकलित हैं, वे उससे भिन्न हैं। इन्हे शामिल कर लिया जाय तो सन्ताली लोक वार्ताओ की सख्या ३५० तक पहुँच जाती है। हिन्दी में भी सन्ताली लोक वार्तायें अनूदित होकर आयी हैं। पर उनकी संख्या बहुत अधिक नही है। कुछ कहानियाँ 'प्रकाश' में छपी थी। इस क्षेत्र में हमें काम करना है। सन्ताली लोक-वार्तायें राष्ट्रभारती के मन्दिर में आना चाहती हैं। उन्हें लाना हमारा काम है।

सन्ताली लोक-वार्ताओ से हमे सन्तालो के आचरण, उनके चरित्र, उनके धर्म एवं उनके रीति-रिवाज, अनुष्ठान, त्यौहार, परम्परायें, सस्कार, आखेट, युद्ध, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि का ज्ञान होता है। सन्तालो के जीवन में लोकवार्ता का बहुत अधिक महत्व है। वह उनके मनोरंजन एक बहुत बडा साधन है। रात में बच्चे अपने दादा-दादी या नाना-नानी को घेरकर बैठ जाते हैं और उनसे सन्ताली लोक-वार्ताएँ सुनते हैं। बच्चो को कथा सुनने में उत्साह रहता है, उमंग रहता है। वृद्ध व्यक्तियों को भी कथा-कहानी कहने में कम आनन्द नही मिलता है। खेतों में भी एक दूसरे को वे कहानी सुनाते रहते हैं। पर्व एवं त्यौहार के समय भी वे लोक-वार्ताओं को सुनते या सुनाते हैं। इस प्रकार अशिक्षित सन्ताल युगो से अपनी परम्परा को जानते, सुनते एवं परखते आये हैं। लोक-वार्ताएँ भी इसी क्रम से सुरक्षित रह पायी हैं।

व्यंग्यात्मक कहानियाँ सन्ताली लोक-वार्ता में प्रचुरता से मिलती है। वे

हास्यात्मक भी है। मनोरंजन के लिए लोक वार्ताओ को सन्ताल अपना एक साधन बनाये हुए हैं। पाँच प्रकार की ऐसी मनोरञ्जक लोक-वार्तायें उपलब्ध हैं। पहले प्रकार की लोक-कहानियाँ वार्तालापात्मक है। बोडिंग के द्वारा सकलित कहानी सख्या ६१ इसी प्रकार की लोक-वार्ता है। कुछ लोग वधू की खोज में गये हुए हैं। उन्हे एक कन्या से भेंट होती है। वे लोग उस कन्या से उसके पिता की जानकारी चाहते हैं। वह उन्हें बताती है कि उसके पिता वर्षा से मिलने घर से बाहर गये हैं और उसकी माँ दो आदमियो को एक बनाने गयी है। कन्या की उटपटांग बातो से उन्हें बहुत क्रोध हुआ और असंगत बातो के कारण उसे वे मूर्ख मानकर घर लौट गये। घर पर आने के बाद जब उन्होने अपने घर की औरतो से कन्या की असंगत बातें कही। तब उन्हें कन्या में कोई असंगति नही मालूम पड़ी। उन्हें तो अपने पुरुषो पर आश्चर्य हुआ। महिलाओ ने कन्या के संकेतात्मक भावों को समझ लिया। उन्होने अपने पुरुषो की बुद्धि पर व्यंग्य करते हुए बतलाया कि कन्या के कहने का भावार्थ था— उसके पिता घास काटने गये थे और उसकी माँ बूँट को पिसकर सत्तू बनाने गयी थी। बोडिंग द्वारा संकलित २७ वी कहानी में इसी प्रकार का संकेत है। एक दामाद एक दिन भोजन कर रहा था। भोजन उसे अच्छा लग रहा था। उसने अपने सास से यह जानना चाहा कि वह किस चीज का बना है। उसने अपने दामाद से कहा— 'अपने पीछे देखें, उसी का वह बना है।' दामाद ने फिर कर देखा—उसे केवल बाँस का किवाड़ दिखाई पडा। जब सभी लोग सो गये, तब रात को दामाद किवाड़ को चुराकर घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से किवाड़ का खाना बनाने को कहा। जब उसकी पत्नी ने उसे जलाकर खाना बनाया, तब वह खाने के योग्य नही रहा। सास ने

सांकेतिक भाषा में बताया था कि बाँस के पत्ते का खाना बना था। दामाद ने उसे नहीं समझा। इस प्रकार की सन्ताली भाषा में बहुत कहानियाँ मिलती हैं, जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं रहता है।

सन्तालो में दो भाइयो की एक कहानी है। बोर्डिंग में इस कहानी की संख्या २५ है। एक दिन बडा भाई ने अपने छोटे भाई को कहा कि वह कुदाल ले ले और उसे वहाँ मारे जहाँ वह काट सके, गाड़ सके। वह खेत जोत रहा था, उसका हल वही रुक गया। भाई के आदेशानुसार उसने बैल की टाँग काट ली और उसे लंगडा बना दिया। दूसरे दिन उसका बडा भाई खेत पर गया और अपने छोटे भाई से कहकर गया कि गर्म पानी से वह अपनी भाभी को स्नान करा देगा। उसने पानी गर्म करके अपनी भाभी के ब न पर इस प्रकार गिराया कि वह जल मरी।

सन्तालो की लोक-वार्ता में भाषा सम्बन्धी बातों का उल्लेख मिलता है। हिन्दी में सन्ताल बातें असन्तालो से करते हैं, जिन्हें वे 'डिकू' कहते हैं। 'डिकू' और सन्तालो में लेन-देन चलता है। बोर्डिंग द्वारा संकलित २०वी, २६वी और २८वी कहानियाँ भाषा-विनोद की कहानियाँ है। संख्या २० में सेम शब्द लेकर विनोद किया गया है। हिन्दी में सेम शब्द का अर्थ होता है एक तरकारी और सन्ताली सेम् का अर्थ होता है—मुर्गी। इसी प्रकार हिन्दी में काडा का अर्थ है—भैंस और सन्ताली में काडी का अर्थ होता है— छडी से मारना। २६ वी लोक वार्ता में बताया गया है कि एक डिकू बहरे सन्ताल से मार्ग जानना चाहता है और सन्ताल समझता है कि वह उसका बैल चाहता है। बोर्डिंग द्वारा संकलित कहानी २८ में केवल भाषा-विनोद है। उनमें न कथा है और न कथा-शैली है। उनमें हमें केवल भाषा का विनोद मिलता है। हमें कुछ कहानियाँ ऐसी

भी मिलती हैं, जिनके द्वारा सन्तालो की बुद्धि-हीनता का हमें परिचय मिलता है।' बोम्पास द्वारा सकलित एक कहानी में बताया गया है कि जंगल में जंगली फल तोडते हुए एक औरत को दो बच्चे हुए। वह अपने साथ बच्चे और जगली फल को लेकर घर आने में असमर्थ थी। उसे दोनों में एक को छोडकर घर आना था। बच्चों से फल उसे अधिक उपयोगी लगा, अतः उसने बच्चो को जंगल में छोड दिया और फल लेकर घर आयी। इसी प्रकार की एक कहानी बोडिंग की है, जिसकी संख्या ८० है। उस कहानी में बताया गया है कि एक आदमी अपनी माँ के शव को गंगा में प्रवाहित करने के लिए लिये जा रहा था। उसने मार्ग में कुछ व्यापारियो पर आक्षेप लगाया कि उन्होने उसकी माँ को मार डाला है। महाजनो ने उस आदमी को अपना बैल दिया और उसे धन भी दिया। वह आदमी अपनी माँ के शव को सडक पर छोडकर घर वापस आया। गाँव के लोगों को उसने सारा बातें बतायो। उन्हें उस आदमी के भाग्य पर ईर्ष्या हुई और उन्होने अपनी-अपनी पत्नियों की हत्या कर दो। उन्हें आशा थी, उन्हे भी शव के बदले बैल और धन मिलेगा। पर कुछ नहो मिला। पर इन लोक-वार्ताओ से सन्तालो के जीवन पर प्रकाश नही पडता है। ये वार्तायें सन्तालो के लोक-जीवन का प्रतिबिम्ब नही करती हैं। वे तो सन्तालो का मनोरंजन करती हैं।[१] सन्तालो के यहाँ कुछ ऐसी

१. These humorous stories are in no way a mirror of the tribe for they do not present Santal life as it is. Yet their style and humour make them essentially Santal. They emerge a sense of buoyancy, a resilience in living. They entertain Santals because they make the world absurd and show the Santals as master of it."

Mildred Archer : The Folk - Tale in Santal Society, Man in India, Vol. XXIV, December, 1944.

भी कहानियाँ है , जो सन्तालो के ज्ञान–विज्ञान की द्योतक है। उन्होंने अपनी कुछ वार्ताओं के माध्यम से विज्ञान को आलोक दिया है। बम्पास के द्वारा सख्या २६ में संकलित कहानी कुछ ऐसी ही कहानी है। बोडिंग की सख्या ८५ की कहानी में सबई घास के उगने की वार्ता है। कहानी में बताया गया है कि एक गाँव में सात भाई और एक बहन रहती थी। एक दिन बहन खाना बना रही थी। तरकारी काटते हुए उसका हाथ कट गया। खून बहने लगा। वह तरकारी बना रही थी। हाथ का खून तरकारी मे मिल गया। उन्हे तरक री बहुत अच्छा लगा। भाइयों ने निश्चय किया कि बहन को मार कर खाया जाय। सात में ६ भाइया ने बहन का मास खाया और छोटा भाई ने अपना अश जमीन में गाड दिया। वहाँ एक बांस निकला। एक आदमी आया। बास को काट दिया और उससे एक बक्स बनाया। बक्स से एक लडकी निकली। उसने अपने भाइयो को बतलाया कि वह कौन है। बडे भाई को अपने किये हुए अप-राध के लिए दु ख हुआ। उन्होने एक गड्ढा खोदा और उसी में वे समा गये। इस क्रम में उसके अन्य भाई भी गड्ढे में समा गये। केवल छोटा भाई को रोक लिया। वह जमीन पर गिर पडा। कुछ दिनो के बाद वही सबई घास के रूप में निकला।

इस प्रकार की कहानियो का अधिक महत्व सन्तालों के जीवन में नही है। पर सन्तालो के दृष्टिकोण को समझने मे इनसे सहायता मिलती है। इन कहानियो द्वारा हमें उनके जीवन का ज्ञान नही प्राप्त होता है। हम तो इन कहानियो के माध्यम से इतना जान पाते हैं कि विश्व को सन्तालो ने किस प्रकार ग्रहण किया है। विश्व की धारणाओं के प्रति सन्तालो की मान्यता का हम एक स्पष्टीकरण उनकी कहानियो के द्वारा पाते हैं।

उनसे हमें उनकी नैतिकता का ज्ञान प्राप्त होता है।[1] बोडिंग की कहानी संख्या १६, १७ और १८ में हमें सन्ताल संस्कृति पर एक आलोक मिलता है। इन कहानियों से पता चलता है कि धार्मिक अनुष्ठानों में नारियाँ भाग नही लेती हैं। धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पादित करने की उनकी क्षमता नहीं है। सन्तालों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं; जिनमें पारिवारिक संघर्ष एवं विभाजन के कुपरिणामों को व्यक्त किया गया है। बोम्पास की कहानी संख्या ६ में बताया गया है कि— पाँच भाई अलग-अलग रहना चाहते हैं। उनकी पत्नियाँ आपस में संघर्ष करती हैं। अतः अलग होकर वे रहना चाहते हैं। उनके पिता ने एक बडी लकडी दी और कहा कि वे उसे तोड़ें। पर वे उसे तोड न सके। फिर उन्हें कहा कि उसे ६ भाग में काट दें। उन्होंने ऐसा ही किया। एक-एक को एक टुकडी उसने दिया और कहा— अब उन्हें तोडो। लकडी की टुकडी उन्होने तोड डाली। बाप ने बताया कि एक में रहने पर कोई उनपर आक्रमण नही कर सकता है, अलग-अलग रहने पर वे सबो से पराजित होंगे।

सन्तालों को कुछ लोक-वार्तायें इस प्रकार मिलती हैं—

(क) सात भाई और एक बहन:—

एक परिवार में सात भाई और एक बहन रहती थी। भाई बड़े थे,

---

१. "The importance of such stories does not lie in their facts but in the way they conserve a Santal attitude. It is not their 'Science' that matters—for it is not science but poetry. It is reduction of the world to Santal terms and the assertion of Santhal explanations that heightens tribal morale and preserves its way of life."

बहन छोटी थी। छोटी होने के कारण वह सबको प्रिय थी। उसे सब प्यार करते थे। उसे वे लोग कोई काम नही करने देते थे। जब वह सयानी हुई, तब उसकी शादी की बात चली। लडका देखा गया। उसे उपहार दिया गया। शादी की पूरी तैयारी हो गई। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी। वे तालाब खोद रहे थे। काफी खोदाई करने के बाद भी उन्हे पानी नही मिला। एक ब्राह्मण ने बताया कि पानी उन्हें तब मिलेगा, जब वे अपनी प्रिय बहन का बलिदान करेंगे। बहन को उन्होने बुलाया। उसे एक लोटा दिया गया और अन्दर जाकर उसे पानी लाने को कहा गया। लडकी पानी नही ला सकी; वह तो स्वय पानी में डूब गयी। निर्धारित दिन को बारात घर आयी। भाइयो ने बारात के लोगों को बताया कि वह लडकी जगल में लकडी काटने गई है। बारात दिन भर रही, पर लडकी घर वापस नही आयी। अतः बाराती लोग घर वापस जाने लगे। रास्ते में उन्हे वह तालाब मिला। उसमें उन्होने एक सुन्दर फूल देखा। सबका मन उसे तोडने का हो गया। सभी लोगो ने उसे तोडने का प्रयास किया, पर सब असफल रहे। बारात में जो दुल्हा बना नव-युवक था, उसके हाथ वह लगा। उसने फूल को तोड लिया। अपने पालकी में उसे लाया। पालकी ढोने वालो को ऐसा अनुमान हुआ कि पालकी में कोई सवारी आ गया है। देखा गया तो वह लडकी उसमें है जिसकी शादी होने वाली थी। आनन्दमग्न बारात के लोग दुलहिन लेकर घर आये। भाइयो को इसकी कोई सूचना नही मिली।

कुछ समय के बाद उसके सभी भाई गरीब हो गये। दाने-दाने के लिए मुहताज हो गये। एक दिन भीख मांगते हुए वे अपनी बहन के गाँव आये। बहन ने उन्हें देखा। वह बडे जोर से रो उठी। घरवालों को

बड़ी चिन्ता हुई , बहू रोयी क्यो ? बहू ने बताया कि पत्थर से चोट लग गयी है , अतः वह रो रही है। पत्थर हटा दिया गया , फिर भी उसका रोना बन्द नही हुआ। उसने कई बहाने बताये , सभी को उसने घरवालो ने दूर किया। अन्त में उसने स्वीकार किया कि उसके सातो भाई गाँव में भीख मागने के लिए आये हैं। वह जानती है , वे इस दशा में केवल अपने कुकर्म के कारण आये हैं। उसके भाई बुलाये गये। उन्हें तेल लगाने के लिए दिया गया। उन्हें स्नान कराया गया। उन्हें भर पेट भोजन दिया गया। इसके बाद उनकी बहन उनके सामने आयी। उन्हें देखते ही , उनकी जमीन काँप उठी। वह फट गयी और सभी उसमें उसमें चले गये। छोटा भाई के माथे का बाल बँधा हुआ था। वह बहुत कोमल था। उसी से रूई का जन्म बाद मे हुआ।[1]

(ख) सात भाई और एक बिछावन—

सात भाई एक साथ रहते थे। ६ भाई काम करते थे , छोटा भाई आलसी था। वह कुआँरा भी था। भाई उसको कुछ करने को कहते थे तब वह उनके आदेशो की अवज्ञा करता था। उसके भाई जब घर रहते थे , तब वह घर से बाहर रहता था। जब वे घर से बाहर रहते थे , तब वह घर पर रहता था। आता था और भाभियो से खाना मांग कर खा लेता था , फिर वह आवारागर्दी में चला जाता था। एक दिन उसके बड़े भाई ने एक काम करने को कहा। उसने काम नही किया। उसके बड़े भाई ने अपनी पत्नी से कहा कि इस आलसी को कल से खाने को कुछ मत देना। नवयुवक ने घर आकर खाना मागा। उसकी भाभी ने पहले

१. W. J. Culshaw: Tribal Heritage: A study of the Santals. Page— 56 to 58.

खाना नहीं दिया। वह उसे गाली देने लगा। विवश होकर उसने खाना दे दिया। इसी बीच उसके बडे भाई आ गये। पहले तो उन्होने युवक से ही प्रश्न किया कि उसने काम क्यो नही किया। युवक मौन रहा। कुछ जबाब नही दिया। उसने अपनी पत्नी को खाना देने के लिए अच्छी भर्त्सना की। अन्त में उसने अपनी पत्नी को आगाह किया कि भविष्य में उसे खाना नही मिलना चाहिए। जब वह खाना मागे तो उसे राख दिया जाय। दूसरे दिन ऐसा ही हुआ। नवयुवक घर छोडकर दूसरे गाँव चला गया। एक आदमी के यहाँ ठहरा। उसकी एक लडकी थी। वे शादी करना चाहते थे। लडका उन्हें मिल नहीं रहा था। नवयुवक को देखते ही उससे वे शादी करने को तैयार हो गये। नवयुवक को अच्छा खाना दिया। उसे बहुत सम्मान के साथ घर में रक्खा। दो या तीन मास के बाद उस नवयुवक की शादी उसकी लडकी से कर दो गयी। एक वर्ष तक वह उसके साथ रहा, पर एक काम उसने नही किया। उसके श्वसुर को इससे बहुत क्रोध हुआ। उसे वह अपने घर से अलग कर दिया और कहा— अब तुम्हारी शादी हो गयी है, अपना घर बसाओ और उसे चलाओ। जिस दिन वे उसके घर से बाहर जाने लगे उसी दिन उसने उसे एक लकडी काटने के लिए टागी दिया। उसे लिए हुए वह अपनी पत्नी के साथ--बेसहारे घर से निकल पडा। वह जंगल गया। लकडी काटकर उसे बेचेगा—घर चलायेगा — यही उसका लक्ष्य बना। एक दिन वह जंगल में था। दो वृक्ष आपस में बातें कर रहे थे। उसने एक वृक्ष को काट लाया। उससे एक पलग बनाया। पलग को एक राजा ने खरीद लिया। जिस रात को राजा पलंग पर सोया उस रात को उसे पलंग के पांवों की बातें सुनायी पडी। एक पांव ने कहा— मै राजा के

महल के अन्दर गया था— देखा उनकी दासियाँ खाना खाने में मग्न हैं। इसी प्रकार तीसरे पाव ने अन्य पांवो से कहा— जो दृश्य देखकर आया है, वह कहने लायक नही है। कहने में शर्म मालूम होती है। राजा की रानी अपने मंत्री से प्रेम करती है। प्यार भरी बातें वे कर रहे थे। मन्त्री ने रानी से कहा— 'राजा को जहर देकर मार डालो। हमलोग फिर प्रेम से रहेंगे। रानी ने कहा— ऐसा करना ठीक नही होगा। जैसे वे लोग रह रहे हैं, वैसे ही गुप्त रूप से वे लोग रहें। मन्त्री को क्रोध हो गया। उसने रानी को एक चाँटा मारा और उसको पाँचो अगु-लियो का निशान रानी के गाल पर उखड़ गया। राजा पलग के पावों से अधिक नही सुन सका। वह क्रोध में उठा और रानी के पास गया। देखा उसके गाल पर चिह्न है। पलंग के पाव की बातो पर उसे वि वास हो गया। उसने रानी और मन्त्री को प्राण-दण्ड दिया। जिस नवयुवक ने पलंग को बनाया था, उसे बुलाकर अपना आधा राज्य और अपनी एक कन्या विवाह के रूप में दिया। नवयुवक अपनी पहली पत्नी को भी वही लाकर आनन्द भोग करने लगा।[१]

१. W. J Culshaw: Tribal Heritage: A story of the Santals, Page— 58 to 60

सन्ताली लोकगीत

लोक गीत को माना गया है कि वह आदिमानव का संगीत है। मानव जब झोपड़ियों में रहता था, तब उसके मन में एक उल्लास उठा होगा और

भावनायें आयी होगी , तब उसके स्वर फूटे होगे। उसने आलाप लिया होगा। वही आलाप लोकगीत है। वह पुराना होते हुए भी नया है। लोकगीत पुराना और नया नही होता। इन शब्दो के द्वारा हम उसे बाँध नही सकते। एल्फ विलियम्स ने यह माना भी है कि लोकगीत न पुराना होता है और न नया। वह तो जगल के एक वृक्ष के समान है , जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में धँसी हुई हैं , परन्तु जिसमें निरन्तर नई-नई डालियों में पल्लव और फल फूलते रहते हैं।[१] लोक गीत में हम मानव हृदय का स्पन्दन पाते हैं। लोकगीतो से हमें यह मालूम पडता है— मानव एक है। सबका हृदय एक है। भारतीय लोक गीतो में हम वही भावना पाते हैं , जो भावना इगलैंड के लोकगीतो में है। लोकगीत एक देश का नही , एक जाति का नही , वह तो सम्पूर्ण मानव का प्रतिनिधित्व करता है। लोकगीत को परिभाषाओ में बाँधने की चेष्टा हुई हैं। मराठी लेखक डाक्टर सदाशिव फडके ने लोकगीत की व्याख्या करते हुए कहा है— ' शास्त्रीय नियमो की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक–व्यवहार को उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है , वही लोकगीत है।[२] इसी प्रकार की व्याख्या

---

१. A Folk—song is neither new nor old , it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past , but which continually puts forth new branches , new leaves , new fruit.

Ralph V. Williams.

२. लोक संस्कृति विशेषांक , सम्मेलन पत्रिका; मराठी लोकगीत पृष्ठ— २५०

उड़िया लेखक श्री कुञ्जबिहारी दास ने की है। वे कहते हैं— " लोक-गीत लोगो के उस जीवन की प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में है।[१]

लोकगीतों में हमारी परम्परायें, हमारे संस्कार, हमारी सभ्यता, सभी की झाँकी मिलती है। इतिहास तो बहुत बाद की चीज है, उसके पहले मानव की कहानी लोकगीतो में ही कही गई है। लोकगीतों की रक्षा होना आवश्यक है। उसका क्षय राष्ट्रीय महत्व का क्षय है। लाला लाजपतराय ने अपने एक पत्र में कहा था— ' देश का सच्चा इतिहास और नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतो में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।[२] इसलिए इन लोकगीतो की सुरक्षा के लिए योजनाबद्ध काम हमें करना है। लोकगीतों से हमें कई नयी बातो का ज्ञान प्राप्त होगा। हमने यह मान लिया है कि हमारी अपढ माता, बहनें अशिक्षिता थी। उन्हें हम मूर्ख मानते रहे हैं। पर उनके द्वारा गाये हुए लोकगीतो के अध्ययन से यह मानना पडता है कि उनके गीतो में कवित्व है। उन लोकगीतो को देखकर भारतरत्न डाक्टर भगवान दास ने एक बार कहा था— ' उनमें रस को मात्रा व्यास, बाल्मीकि, कालिदास और भवभूति मे भी तथा तुलसीदास, सूरदास से भी अधिक है।' इन

---

१. ', Folk—song is a spontaneous outflow of life of the people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences. "

मोट माई पीपल, पृष्ठ— १६४

२. लाला लाजपत राय के पत्र से उद्धृत 'कविता कौमुदी' भाग ५, श्री रामनरेश त्रिपाठी; पृष्ठ—७७

लोकगीतों में हमें स्वाभाविक रस मिलेगा। उनके द्वारा हम अपने संस्कार को जान पायेंगे। अपनी परम्परा को हमें समझने में आसानी होगी। हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को लोगों के सामने रख सकेंगे।

लोकगीतों की अपनी विशेषतायें भी कम नहीं हैं। डाक्टर यदुनाथ सरकार ने लोकगीतों की विशेषता इस प्रकार बतायी है— 'प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्द–विन्यास की सादगी, विश्वव्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोरोग, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र–चित्रण, क्रीडा-स्थली अथवा देशकाल का स्थूल अंकन साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार–सच्चे लोकगीत की ये नितान्त आवश्यक विशेषताएँ हैं।'[१]

सन्तालो का लिखित साहित्य बहुत नया है, पर उनका लोकगीत बहुत पुराना है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सन्तालो का समस्त सामाजिक जीवन संगीतमय है। उन्होने आरभ काल से ही प्रत्येक कार्य में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। हमें तो कोई ऐसा सन्ताल नही मिला, जिसके कण्ठ से लोकगीत न फूटा हो। सन्ताल लोकगीतो को केवल अपने सामा-

---

१. "Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotion of universal appeal, action rather than subtle analysis, broad striking characterisation thumb-rail sketches of background and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are essential requisites of the true ballad.

देखिये— ढोलामारूए दूहा— पृष्ठ— ४२

जिक जीवन में - लोककार्यों में नहीं लगाते ; वे तो परिश्रम करते हुए प्रत्येक काम में गीत गाते हैं। वे गीत—गाकर अपनी थकान मिटाते हैं। खेतों में काम करते हुए, ईंट ढोते हुए एवं अन्य मजदूरी के काम करते हुए जब हम सन्तालों को देखते हैं, तब हम पाते है, वे अपनी मेहनत को हल्का करने के लिए लोकगीत गाते हैं। सन्तालों में शिक्षा का अभाव अवश्य रहा है, पर उनमें कुसंस्कार नहीं आया। इसका एक मात्र कारण है, उनके लोक जीवन में लोकगीतों का स्थान। संस्कारों, उत्सवों और अनुष्ठानो के समस्त गीत स्त्रियों की परम्परागत सम्पत्ति हैं। इन लोकगीतों में सन्ताली नारियों की रूढ़िगत मान्यताएँ देखने को मिलती हैं। सन्ताली लोकगीतों में रोमानी अंश अधिक है, वीर गाथाओं का अभाव है। लोकगीतो में हमें वीर भावना कम मिलती है। उनके यहाँ वीर चरित्रों का अभाव भी है। इसका कारण है, सन्ताल शांतिप्रिय जीव रहे हैं। उन्होने कभी संघर्ष को निमन्त्रण नही दिया है। इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता, जिससे यह पता चले कि सन्तालो ने संघर्ष के लिए दूसरों को चुनौती दी हो। सन्तालो में 'मधुसिज', 'भलुआ विजय', 'कपि करान', सिदो मांझी आदि ऐसे चरित्र हुए हैं, जिनमें वीरता की भावना मिलती है। 'भलुआ विजय' और कपि करान ने पहाड़ों को पराजित कर सन्तालो के लिए मार्ग बताया था। सिदो के नेतृत्व में सन्तालो ने अंग्रेजी सत्ता के विरोध में विद्रोह किया था। 'चल चंपा' के रक्षार्थ सन्तालो ने संघर्ष किया। इन सब की झांकी हमें सन्ताली लोकगीतो में मिलती है। जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता–आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तब सन्तालों ने खुलकर उसमें भाग लिया। अतः सन्ताली लोकगीतो में गांधी-प्रशस्ति भी मिलती है।

सन्ताली लोकगीतों के आधार पर सन्तालों की उत्पत्ति, विकास का इतिहास तैयार किया जा सकता है। सन्तालों की उत्पत्ति की कहानी उनके लोकगीत में वर्णित है। यही कारण है, लिखित साहित्य के अभाव में अनेकों उलट-पलट के बाद भी उसे वे सुरक्षित रक्खे हुए हैं। शुभ अवसरों पर उन लोकगीतों को वे गाते हैं। वे गीत प्रायः काको छठिहार के समय गाये जाते हैं। काको छठिहार के समय सन्ताल अपने बच्चे को सन्ताल समाज की पूरी शिक्षा देते हैं। वे अपना सृष्टि-गीत पुनः जोमसिम् व्रत तथा करमा त्योहार के समय गाते हैं। प्रत्येक सन्ताल इस लोकगीत को गाता है—

"हिहिडी मा जेनोम होय तो
पीपिडी मा गढिलो
माधोसिंग नो पिडराली जा
जो, जय, चल चम्पा गाडा।"

सन्तालो का जन्म हिहिडी - पिपिडी देश में हुआ था। सन्ताल जाति उसी देश में जन्मा और बढी। माधो सिंह के चलते उन्हें जन्मभूमि छोडकर भागना पड़ा और चम्पागढ को चले गये।

इस क्रम में सन्तालो में एक और लोकगीत प्रसारित है। उस गीत में यह बतलाया गया है कि एक जमाने में सन्ताल पंचनद नामक देश में रहा करते थे। गीत में कहा गया है—

"नुमित माराग बान्दा छाड़ा
नेदाक् पोरायनो पायडेरे दो
देलाङ पोरायनो मोंडेनॉय विसाम ते
देलाङ पोरायनी दाक् तालाते।"

अर्थात्— "हे कमल ! तुम इतने बड़े तालाब को छोड़कर छिछलेदार पानी में क्यों हो ? तुम पचनद वाले देश पजाब चलो, वहा पानी के बीच रहोगे।"

सन्ताली लोक-गीतों से स्पष्ट होता है कि भगवान राम से उनका त्रेता-काल में सम्बन्ध था। राम उनके लिए उतना ही श्रद्धा के पात्र हैं, जितना वे हिन्दुओं के हैं। सन्ताली कथा में यह वर्णित है— 'मारे हाथड़ाम को को रोड आकात आ काथाय सेदाय जुगरे दे। राम राजाए ताहें काता ओकते जो तो खारवार होड उनी तुलुच् लोङ्काते सेनकाते रावोन राजा हारे लागित को गोडों आदेआ।" अर्थात्—हमलोगों के पूर्वजों की कहानी है कि प्राचीन काल में राम राजा थे, उनको खेरवार जाति के लोगो ने लंका के राजा रावण को हराने में सहायता दी थी। स्मरण रहे, सन्तालों का प्राचीन नाम खेरवार ही था।

राम जी के जन्म के सम्बन्ध में एक लोकगीत इस प्रकार सन्तालों में प्रचलित है—

गुरु मुनि कहायेते सुनुभा
या राजा दासारथे,
कोन गाछे चारयाम जो फेराय,
हो यामवाला यानी देहो।
ये हो ये हो भाया राजा दासाराथे
बायें हाँथे माराय हो
दहिन हाथें वाला लुकीले हो।
याम केरा फल जुगीरे
देवला राजारे हाते

से हो खाया तीनो रानी
बाला आस पति हो।
छमासे होलो रानी
देखा चलो दोसार रूपे;
नोमासे होयलो रनी
वेदान जी बाला मेलाय हो।
कौसल्या बेटवा जो राम
सुमित्रा बेटवा जो लखन।
कैकायर बेटा गोचायोतो होरा
पुता भरत आर सत्रुहन।"
झिकिमिक केरा रूप रामे लखन
देखाये जतथो होरे चाँद सुरज हो
दिने - दिन बढायेते राम हो लखन
सोवाई लोके लाखे-लाखे बाला खुमई हो।"[1]

अर्थात्— "गुरु मुनि कहते हैं कि सुनो भैया दशरथ! किसी आम के पेड़ में चार आम के फल हैं, उनको लाओ।

हे भइया राजा दशरथ बायें हाथ से उसे मारो और दाहिने हाथ से उसे लोक लो। इन आमों के फलों को मुनि ने राजा के हाथ में दिया। इन फलों को खाकर रानियाँ गर्भवती हो गयी।

छः मास बीतने पर रानियों के रूप दूसरे प्रकार दिखाई पड़ने लगा।

१. यह गीत गोड्डा अनुमण्डल के घुठिया गाँव के रहनेवाले श्री महादेव मराण्डी से प्राप्त हुआ।

—लेखक

नौ महीना होने पर रानियों को प्रसव वेदना हुई और बालकों का जन्म हुआ। कौशल्या का बेटा राम और सुमित्रा के बेटा लखन कहलाये। कैकेई के बेटा भरत और शत्रुहन हुए।

राम और लखन का रूप सूरज के समान झकमक-झकमक करता था। दिनों दिन राम, लखन बढने लगे और सब लोग उन्हें देख-देखकर आनन्दित होते थे तथा लाखो-लाख बलाइयाँ ले लेते थे।"

सन्ताली लोक-गीत सन्तालो के इतिहास में व्यक्त हुए हैं। सन्तालो का प्राचीन काल में एक दुर्ग था, उसका नाम था—चम्पागढ। सन्तालों को उस दुर्ग पर बहुत नाज था। एक समय ऐसा हुआ कि शत्रुओं से सन्ताल हार गये और वे चम्पागढ से निकाले गये। इसका उन्हें बहुत दुःख था। निम्नलिखित लोकगीत में उनकी व्यथा इस प्रकार व्यक्त हुई है—

" दादरे इन्दान सिंग्र मानदान सिंग्र।
दादरे छुटाल्रो चम्पा का गढ।
बहन गे ना कान्दो न खो जी ;
बहन के लले का साँका बिचो॑।
बहन गे काने का सोता बिचो॑।
बहन गे तोम्रो होता लेबो चम्पा का गढ़।"

भाई-बहन दोनो चम्पागढ़ के खो जाने से दुःखी हैं। भाई बहन को आश्वासन दे रहा है।

गीत का भाव इस प्रकार है— बहन—हे दादा, इन्दान सिंह, मन्दान सिंह ने हमलोगों के चम्पागढ़ को ले लिया है।

भाई—हे बहन! उसके लिए मत रोम्रो और न दुःखी होम्रो। हम हाथ के कड़े और कान के सोने बेचकर चम्पागढ़ फिर वापस लेंगे।

इतिहास की दूसरी कड़ी हमें उनके लोकगीत में सन्ताल विद्रोह की मिलती है। सन्ताल विद्रोह भारतीय इतिहास का प्रभीतक अनखुला पृष्ट ही है। महात्मा गान्धी की परम्परा का एक नेता सन्तालो में हुआ था, उसका नाम था सिदो। शिक्षा का प्रभाव होने के कारण सन्ताल भगवान विरसा की तरह उनकी अर्चना नही कर सके। स्मरण रहे, सिदो ने अगस्त क्रान्ति से ८७ वर्ष १ महीना १० दिन पूर्व अंग्रेजो से कहा थ —वे उनकी धरती को छोड दें और अपनी धरती से अग्रेजो को हटाने के लिए 'करो या मरो' का मन्त्र दिया था। इतिहास भले ही उन्हें भूल गया हो, पर सन्ताली लोकगीतो मे उनकी याद सुरक्षित है। एक लोकगीत में उनकी चर्चा आती है—

" सिदो - कान्हू खुडखुडी भितोरे
चाँद - भैरो घोड़ा चुपोरे।
देखो रे, चाँद रे, भैरो रे।
घोडा भैरा मुलिने - मुलिने। "

सिदू और कानू पालकियो पर चलते थे। सन्ताली भाषा में पालकी को 'खुडखुडी' कहा जाता है। चाँद और भैरव घोड़ा पर चलते थे। यही बात उपरोक्त गीत में व्यक्त है।

सन्ताली लोकगीतों में जहाँ हम एक ओर सन्तालो की उत्पत्ति एवं विकास की कहानी पाते हैं, वहाँ हम उनके लोकगीतों में गांधीजी, विनोबा जी तथा नेहरू जी के सम्बन्ध में कई बातें पाते हैं। एक बार सन्तालों के जीवन में पाप का इतना समावेश हो गया था कि संसार में उनका नाश हो गया। तब सन्ताल दिन - रात सुरा और सुन्दरियों में रहने लगे थे। उनका पतन हुआ। उनके पतन पर ठाकुर जी को बहुत खेद हुआ।

उन्होंने म नव को अभिशप्त किया। प्रलय हो गया। सन्ताली लोकगीतों में उस प्रलय का एक रूप हमें इस प्रकार मिलता है—

'एयाय सिन एयाय जिन्दा सेंगेल दांगे हो ;
एयाय सिन एयाय जिन्दा जाडाम-जाडाम हो।
तोकारे बेन ताहें काना मानेवा ?
तोकारे बेन सोरो लेना।
मेनाक् मेनाक् हाराना हो ,
मेनाक् केनाक बुरू दान्देर हो
ग्रोन रे लिव ताहें काना यालिव दो
ग्रोन रे लिव सोरो लेन।"

अर्थात्—"सात दिन, सात रात, अग्नि–पानी हुआ। सात दिन सात रात छमा–छम होता था, तब हे दोनों मनुष्य ! तुम कहाँ छुमे हुए थे ? हे ! हे ! हराता ! हे ! हे ! उस पहाड़ की गुफा में हम दोनो छिपे हुए थे।

जहाँ हम उनके इस लोकगीत में प्रलय काल की भावना पाते हैं, वहीं हम उनके लोकगीत में स्वाधीनता संग्राम की कहानी भी पाते हैं। एक लोकगीत में उनकी भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है—

पोरैर आधिन रे दिमान होड को
आडी सामेत बोन ताहें काना
दुख दान्दी ते बोन पेरेच् लेना ,
रेंगेच तेताङ ते बोन लांगा लेना।
गान्धी बाबा तेय नायुर केद् बोन,
सारी निरा होरे उदुक् आद् बोन,
पंजा केदा बोन जोतो कोते ,

दुलाड दिसाम बोन साथिन केदा।

अर्थात् हमारा देश पहले दूसरे के अधीन में था। हम परतन्त्र थे। बड़ी मुसीबत में हम थे। हमारा जीवन दु:ख और कठिनाइयों से भरा हुआ था। गरीबी एवं भूख से हम थके हुए थे। महात्मा गान्धी ने हम सबों को मार्ग दर्शन किया। हमें सत्य एवं अहिंसा का रास्ता दिखलाया। हम सबने उसका अनुकरण किया। अपने प्यारे देश को स्वाधीन किया।

सन्तालों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सन्ताल कर्म-प्रधान जाति है, भाव-प्रधान नही। यह उचित नही है। सन्ताल जितना कर्म प्रधान हैं, उतना ही वे भाव प्रधान हैं। वे तो यह दावा करते हैं कि महर्षि बाल्मीकि के वे वंशज हैं। उनकी ही भाँति एक अज्ञात सन्ताल लोक कवि ने एक लोकगीत में कहा है—

" कुन्दरू जनुम रे पोतामे नुनुकउअेल ले दिशाँ
होपोन बाडेउ नगू लिकिन खान।
नेंडा दो बाया गिये राजा
मेंडा वाडेअ पसी लेखान दो
होपोन दो जोनोन-जेनोम किन टुअोरोक् अा "

सन्ताल व्याध कहता है—' कुन्दरू पर पण्डुकी को घोंसला बनाते देखा था। यदि मैं बच्चों को ले आऊँ तो माँ अत्यन्त करुण विलाप करेगी और यदि पण्डुकी को फँसा लूँ तो बच्चे आजीवन अनाथ हो जायेंगे।

सन्तालों में संस्कार-गीत बहुत हैं। उनके जन्म, विवाह एवं नृत्य सम्बन्धी भी लोकगीत हैं। कर्त्तव्य गीत भी हम उनमें पाते हैं। सन्ताल मानते हैं— ईश्वर के समान उनके माँ-बाप हैं। एक लोकगीत में सन्ताल

गाता है—

उपहार ले रेम आम,
नोवा धरती रेभा,
प्रायो बाबा गेथो तेंगो बोगा,
चान्दो तायोम नुकिन
प्रायो बाबा निकिन
जोहार प्रकिन से हो दिनाम प्रागा।

भावार्थ— "स्मरण करने से यह ज्ञान प्राप्त होगा कि इस पृथ्वी पर माता-पिता ही जीवित देव हैं। प्रभु के बाद माँ-बाप दोनो को नित्य सुबह प्रणाम करें।"

ऐसा क्यो करें, इसका उत्तर आगे की पक्तियों में इस प्रकार दिया गया है—

" नेंगा नाया हो तोवा दारे,
धरती पुरी हेन तेंया बोगा;
निगाज दुलाड दो मेग्मा खोन सोरोसा;
नापुत्र दुलाड दो धरतो मारेड।
निगाज दुलाड ते धरती दोज दुडाडन;
नापुत्र दुलाड ते मानुस जोनोम। "

एक सन्ताल अपने एक लोकगीत मे कहता है— माता और पिता ही कल्प तरू हैं। वे दोनो इस पृथ्वी के दृश्यमान देव हैं। माँ का प्यार स्वर्ग से बढकर है। पिता का स्नेह पृथ्वी मे भी नही समाता है। माँ के प्यार से मैं इस पृथ्वी में विचरण करता हूँ। पिता के स्नेह से मुझे मनुष्य-जीवन मिला है।

सन्ताल माता-पिता से जन्म पाकर प्रकृति की गोद में पलता है।

प्रकृति ने उसे पाला है, जीवन-शक्ति दी है। सन्ताल किसी भी स्थिति में रहे, प्रकृति जननी को वह नही भूलता। प्रकृति के सौंदर्य पर वह मुग्ध रहता है। इसी भावना के कारण सन्ताल अपनी भूख, गरीबी एव अशिक्षा को भी ध्यान मे नही देता। वह प्रकृति में किसी प्रकार की त्रुटि नही देखना चाहता है। सब कुछ पाकर भी सन्ताल प्रकृति के सौंदर्य को खोकर खुश नही रहता। एक लोकगीत में एक सन्ताली बालिका ने अपनी भावनाओ को इस प्रकार व्यक्त किया है—

" मराग बुरू चोट आकाड़ बाहा।
बाहा आकान दो लेगेच् लेगेच्
ओंता तावारे तेत्र सित् केदा
बेरेत गोदोक सावते मो सों त एना
दुडप जेराव कातेत्र बाहा केदा।"

अर्थात्— " विशाल पर्वत की चोटी पर पलिदाहा फूल का पेड है। उसमें बहुत ही सुन्दर फूल खिले थे। मैंने गिरते-पडते फूल तोडा और शान्त भाव मे बैठकर बडे चाव से अपनी वेणी मे गूंथा किन्तु खडी होते ही वह मुरझा गया।" सन्ताल बालिका को फूल मुरझाने का बहुत दु:ख है। वह अपना खेद व्यक्त कर रही है।

सन्ताली लोकगीतो में प्रेम और विरह के गीत अनेक हैं। एक संताल कुमारी अपने प्रेम को तब तक छिपाती है, जब तक उसकी शादी नही हो जाती है। उसे पी-पी शब्द से भय लगता है। उसे आशका होती है कि उसका क्वांरापन ऐसा कुछ नही कर दे, जिससे वह समाज में कलंकित हो जाय। वह पपीहा पक्षी को स्मरण कर कहती है—

" नाबे धाडकारे सोसा रारे

दोन माते चियो नालोम रागा ।
निज मिनाञ मोर पियो नालन पियोज
कुँआरी मौन पियो डाले-डाले ।"

अर्थात्— हे पपीहे ! आंगन में सीसम का वृक्ष है , तुम उसपर फुदक-फुदक कर मत बोलना । जब तक मैं क्वाँरी हूँ तब तक पी-पी मत बोलना, क्योंकि बोली सुनने से मेरा क्वाँरा मन हिल-डोल करने लगता है— विह्वल होने लगता है ।

सन्ताल कुमारी को प्रेम करते समय सदैव यह स्मरण रहता है कि वह एक सामाजिक जीव है । सन्ताल सस्कार का उसे सदैव भय रहता है । वह अपने प्रेमी को सुग्गा के प्रतीक बनाकर समझाती है कि प्रेम में भरोसा रखो , चंचल मत हो । उसे भय है कि उसके प्रियतम की चंचलता उसे विह्वल बना देगी और वह धर्म-लज्जा को छोड़कर समाज के निर्धारित नियम को भंग कर देगी । वह कहती है—

" होरेञ चालाक् मिस हॅरेम पाञ्जाय
विरेञ चालाक् मिस विरेञ पाञ्जाय ।
जाँहाय दुडप् मिस, ताहांम रागा ।
नाला किदिञ दोम नासुत मिस ।"

अर्थात्— हे सुग्गा ! कहीं जाने के लिए चलती हूँ , तो तुम पीछा करने लगते हो , जंगल जाती हूँ , तो वहाँ भी तुम साथ हो जाते हो । जहाँ कहीं बैठती हूँ कि तुम प्यार भरी बातें सुनाने लगते हो । ऐ पालतू सुग्गा ! तुमने मुझे चंचल कर दिया है ।

प्रेमी जब उसे भूल जाता है , उसे याद नहीं करता है तब उसे दुःख होता है । वह शकुन्तला बन जाती है । एक सन्ताल बिरहिणी

लोकगीत में कहती है—

'सोनेरो रूप रूपेरो रूप
सोनेरो रूप लेका गातेय मेनाय
गातेञ दिस भरे सोना मुन्दाम
गातञङ इहर जिवो दोलो कतिञा '

अर्थात्— सोने और रुपये के रूप से अधिक रूपवान मेरा प्रियतम है। सोने की अंगूठी से मेरे प्रियतम की याद मेरे दिल में आकर टीस पहुँचाती हैं।

सन्ताल कुमारी का प्रियतम दूर देश चला गया है। उसका मन नहीं लगता है। वह उसे स्मरण कर अपने को बहलाना चाहती है। वह कहती है—

फुरी मनुक् कोताय आम दो होरे–झारे।
फुरी जोड़ मे बाडे चाक् एम ताहेन मारे।
बाहाय रेवेद रेहो चम्पा किलो
फुगी वाङ रवान जोनो मिघ गिया।

वह अपनी भाभी से अपनी दर्द भरी कहानी कहती है। वह कहती है—

" ढाका किदाञ हिञी उतू किदाञ
ढाका जोजोमिञ् वानुगितिञ।
पारकोमिञ आदेर केदा गादलेयिञ आतेत केदा!
आञ्चार तेतनिज मनुगेतिञ।"

अर्थात्— हे भाभी! दाल–भात तो मैं बना चुकी हूँ, पर खाने वाला कहां है? पलग पर बिछावन लगा दिया है, पर उसपर सोने वाला कहां है? वह विह्वल होकर कह उठती है कि उसका आंचल ढांकने वाला

कोई नही है। जोडा के बगैर लडकी का जीवन ही निरर्थक है।

गाँव के प्रेमी पर सन्ताल कुमारियों को विश्वास नही है। वे प्रेम की बातें करते हैं, पर जीवन–संगिनी बनाने की शक्ति उनमें नही है। वह इस भावना को व्यक्त करती हुई एक लोकगीत में गाती है—

"कुल्ही मुचा़त रे बादे दोरे,
जोरो जोरो काते बाड जोरो लेन।
ग्रोने ग्रोनका गे ग्रातो मिलवा
दोहो दोहो काते बाकी दोक हो।"

ग्रर्थात्— सन्ताल कुमारी उस बड के पेड को देखती है, जो गाँव की गली के छोर पर खडा है। उसे देखकर वह ग्रपने प्रेमी को याद करने लगती है। बड के पेड में ग्रौर गाँव के प्रेमी के स्वभाव में उसे एक ही बात दिखायी पडती है। दोनों एक समान हैं। बड के पेड की बरोह जमीन तक ग्राते-ग्राते रूक जाती है, वह जमीन तक नही पहुँचती। गाँव के प्रेमी भी उसी स्वभाव के होते हैं। वे प्रेम करते हैं, शादी के लिए हाथ बढाते हैं, पर हाथ पकड़ते नही, बीच में ही ग्रपना हाथ खीच लेते हैं।

सन्ताली लोकगीतो मे हमें केवल प्रेम के ही गीत नही मिलते। विकास के भी गीत मिलते हैं। स्वदेशी धूम सन्तालो में बहुत दिनो से मची हुई है। उनके गीतो का सन्देश है— स्वदेशी धारण करो। कपास की खेती पर जोर देते हुए एक पत्नी ग्रपने पति से कहती है—

"बेडा रे कासकोम एराबोन में,
बाबोन ताहेंना गा़न्दुर गा़पुर।
रिद ताबोना़ज, ताकोय ताबोना़ज

तेत्र आबोन में भोरोम दापाल।"

अर्थात्— पत्नी अपने पति से कहती है— 'पहाड की तराई में हम लोगों के लिए कपास लगाओ। हम लोग फटे पुराने कपड़े पहन कर नही रहेंगे। आगे वह अपने पति से कहती है कि वह कपास धूनेगी, सूत काटेगी और वह उसके लज्जा निवारण के लिए कपडा बिनेगी।

सन्ताल कृषक हैं। धरती को वे अपनी माँ मानते हैं। अभावों के बीच में अबतक रहते आये हैं। उनके उत्पादन-गीत का दर्शन हमें उनके लोकगीतों में होता है। एक लोकगीत में कहा गया है—

"चास आबाद दिन सेटेरेना
बानुक कोता बोना नुरिच नारांङ।
किरिञ आबोन में नुरिच नारांङ काड़ा।
चास आबोन में बुरू बेडा।"

अर्थात्—खेती-गृहस्थी का दिन पहुँच गया है। हमलोगों को हल और बैल तो है ही नही। हमलोगो के लिए हल, बैल और भैंसा खरीदो। पहाड़ की तराई में हमलोग खेती करेंगी।

लोकगीतो द्वारा किसानो को वे सन्देश भी देते हैं, उपदेश भी देते हैं। एक लोकगीत में कहा गया है—

बाडगे रे कुंभ दो लावाबीन मे,
रोहोयाबोन में मारिच् बोगाड
पोथ ताबोन में पाटाव ताबोन में,
आरजाव ताबोन में आचेल पाचेल।

अर्थात्—बाडी में हमलोगो के लिए एक कुआँ खोदो। उसमें मिरचाई एवं बैगन लगाओ। उसे कोड़ो और पटाओ। ऐसा करके बेहिसाब पैदा

करो।

' सन्ताली लोकगीतों में विपुल वैभव वर्त्तमान है, जिनके संग्रहीत और प्रकाशित किये जाने की आवश्यकता है।



साहित्य-साधना

सन्ताली भाषा बहुत पुरानी है। उसका लोक-साहित्य भी बहुत पुराना है। पर उसके लिखित साहित्य का प्रारम्भ हुए लगभग एक सौ वर्ष हो रहा है। सन् १८५० के पूर्व सन्ताली साहित्य का कोई प्रकाश नहीं हुआ। हम बोडिंग[१] महोदय से सहमत हैं कि ईसाई मिशनरियों के पूर्व सन्ताली

१. When missioneries met with Santals no one had tried to reduce their language to writing. The European who first attempted to do this, was, I believe, the Rev. J. Phillips who tried in Orissa and having come in contact with Santals in 1852 published "An Introduction to the Santal language."

—Rev. P.O. Bodding : Materials for A Santali Grammar, Part I, Page 2.

साहित्य को लिपिबद्ध करने की चेष्टा नहीं हुई। ईसाई मिशनरियों ने सन्तालों के संस्कार, भाषा एवं धर्म का अध्ययन किया। सन्ताली भाषा में उन्हें व्यक्त किया। उनके व्यक्त करने का उद्देश्य जो भी रहा हो, पर सन्ताली साहित्य को लिपिबद्ध करने का श्री गणेश उन्हीं मिशनरियों ने किया है। इस कार्य के लिए हमें उनका चिर ऋणी रहना पड़ेगा। सन्ताली भाषा में पहली पुस्तक श्री जमिया फिलिप्स की है। वे उडिसा के एक पादरी थे। सन् १८५२ ई० में उन्होंने एक पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दि सन्ताली लैंग्वेज' लिखी, जो बंगला लिपि में छपी थी। इसके बाद सन् १८६८ में श्री ई० एल० पक्सले ने 'ए वोकेब्युलरी ग्रॉफ दि सन्ताली लैंग्वेज' लिखा। सन् १८७३ ई० में श्री एल० ग्रो० स्क्रेफसरूड ने 'ए ग्रामर ग्रॉफ दि सन्ताली लैंग्वेज' लिखा। सन् १८८७ ई० मे 'ए होडको रेन मारे हापडाम को रेयाक् कथा' को श्री स्क्रेफसरूड साहब ने कल्याण नामक एक बूढ़े सन्ताल से सुनकर लिपिबद्ध किया। सन् १८९९ में कैम्पबेल ने 'सन्ताली-इगलिश शब्दकोश' तैयार किया। सन् १९२९ ई० में बोडिंग साहब का 'मैटिरियल्स फार ए सन्ताली ग्रामर' ग्रौर 'ए सन्ताल डिक्शनरी' प्रकाशित हुग्रा। बोडिंग का ग्रनुवाद भी सन्ताली में प्रकाशित हुग्रा। सन् १९२४ में उनका ही सन्ताली लोक-कथाओं का 'होड़ काहनी को' प्रकाशित हुग्रा था। सन् १९३० ई० में सी० एच० कुमार का 'सन्ताल परगना, सन्ताल ग्रार पहाडिया कोवाक इतिहास' प्रकाशित हुग्रा। सन् १९४६ ई० में ग्रार० के० रापाज का 'हाडमावाक ग्रातो उपन्यास' सन्ताली मे प्रकाशित हुग्रा। यह उपन्यास कार्स्टेयर्स के ग्रंग्रेजी उपन्यास 'हाडमाज विलेज' का ग्रनुवाद है। सन् १९४५ में श्री डब्लू० जी० ग्रार्चर की प्रेरणा से 'होड़ मेरेन' ग्रौर 'दोड़ सेरेञ' नाम के दो लोकगीत भी प्रकाशित

हुए।

स्वतन्त्र रूप से सन्ताल साहित्य का निर्माण कार्य स्वयं साहित्यकारों ने किया। उनकी सख्या अधिक है, कुछ की चर्चा इस प्रकार की जा सकती है।

(१) श्री पाउल जुझार सोरेन (१८९२-१९५४)

सन्ताल-साहित्य का पिता आप को माना जाता है। सन्ताल-साहित्य, अंग्रेजो के लिखे साहित्य को छोडकर, जो उपलब्ध हैं, उसका श्री गणेश आपके ही साहित्य से होता है। आप यह भावना रखते थे कि जब तक साहित्य का विकास नही होगा, तब तक उनकी जाति का विकास नहीं होगा। आपकी धारणा थी— साहित्य एक माध्यम है, जिसके द्वारा मानव का विकास हो सकता है। आपने अपने विचारों को अपनी पुस्तक ' ओनोंड हे बाहा— डालवाक् लोन ' (१९३६ ई०) में व्यक्त करते हुए कहा है— रोड अकादा को ओक जाद रेयाक् पारसीगो मे कथा रेंगेच् गेया ओना जात लागित् द्वारा आर रकाबोक् दो मुश्किल गेया; ओकोय होड सेरेञ मे ओनोडहे बाच बडाय: उनी दो कुमायाचिच्।" अर्थात्— ' कहा जाता है कि जिस जाति की भाषा या उसका साहित्य उन्नत नही है, उस जाति का विकास और प्रगति होना कठिन है। जो व्यक्ति गीत गाना नहीं जानता है वह व्यक्ति कठोर प्रकृति का होता है।" पाउल साहेब को अपनी भाषा की शक्ति पर विश्वास था। वे मानते थे— उनकी भाषा गतिशील है। उसमें ओज है, बल है। उसका अतीत भव्य है और उसका भविष्य उससे भी भव्य होगा—ऐसा आपका विश्वास था। आपकी दृष्टि में वही भाषा उन्नति कर सकती है; जिसके पास कहने को कुछ सन्देश हो, जिसके पास कहने का कोई कथा-कहानी हो, या उसके पास भाषा के माध्यम से ज्ञान एवं सद्गुण की शिक्षा देने की क्षमता हो।

जिस जाति के पास ये सब न हो, उस जाति की भाषा उन्नति नही कर सकती है। अपनी रचना ' ओनोड हें–बाहा-डालवाक् खोना ' की भूमिका में आपने कहा भी है— ' ओका नाव् रेयाक ' लाइ आगू ' कथा और ओनाको रे चलाव पारोम अकान बडाय जोङ रेयाक् चेतगे बानुक ओन आन रेयाक् पार सीगो रकाबोक दो ओसाघ गेया।' अर्थात्— 'जिस जाति के पास कथा नही है या उसमे ज्ञान - सद्गुण की शिक्षा देने की कोई चीज नही है, उस जाति की भाषा की उन्नति सम्भव नही है।' पर पाउल साहेब को यह विश्वास था कि सन्तालों के पास अपना संस्कार है, अपनी परम्परा है और उनकी अपनी संस्कृति है। सन्ताल युगों से संघर्ष करता हुआ आज भी जीवित है। उनके जीवित रहने का आधार रहा है— उनकी भाषा और उनका अलिखित साहित्य। सन्तालो के पास कहने की बातें हैं। अतः उसमें उन्नति करने की क्षमता है। उसी भूमिका में पाउल साहेब ने गौरव के साथ कहा है— " नोश्रा भारोत् वर्ष बोल्लो तोरा मोडे नॉई दिसोम रे इन्दाज आर मान्दान सिन्न सौंव चेत् आवो रेन हुपडाम को लडहाई जिताउ लेन रेयाक् कथा बानुक्–आ ? चेत चम्पा गाड रेन किसकू राजाज कोवाक् दाडे सालाक् राजोस्टी चलाव बाबोत आर आतो रे तापाहेन रेयाक् बैसी, आगुआडी, मोञ्ज–मोञ्ज गाम को आर ईसोरेर (एसकार ठाकुर) मरहाब आर आगा–पूजाबाय रेयाक् 'लाई आगू कथा' बानुक–आ ?' अर्थात् 'क्या भारतवर्ष में प्रवेश के समय पंजाब में इन्दन सिंह एवं मान्दन सिंह के साथ संघर्ष में विजय का विषय नही है ? क्या चम्पागढ मे रहते समय किस्कू राजाओ की शक्तिशाली शासन–व्यवस्था और ग्रामीण–शासन पद्धति, अच्छी–अच्छी कहानियाँ तथा एक ही ईश्वर की आराधना का उत्तम गुण नही है ? " पाउल साहेब मानते थे कि उनकी

संस्कृति में - परम्पराओ मे बहुत-सी बातें हैं , जिनके आधार पर सन्ताल-साहित्य का निर्माण किया जा सकता है। पर इसके साथ ही साथ वे साहित्य का विस्तार भी चाहते थे। कथा-कहानी, कविता तक ही साहित्य का क्षेत्र नही। वे तो साहित्य के अन्तर्गत ही भूगोल, गणित और विज्ञान को भी रखना चाहते हैं। साहित्य पर जितना उनका ध्यान था, उतना ही उनका ध्यान साहित्येतर साहित्य पर भी था। उन्होने सन्तालों से कहा भी था— ' तेहेञ आबो धारोञ्ज रे नवां आर आ़नाड़ी तीज बोन जुडाउएत् लेका काहनी , धरकोल , हिसा़ब , जावरूकिल एमान बाबोत नवां-नवां तीज (साडे) पा़रसी गोता बोन बाबो जोगाड आय खान चेकातेय जोम दाडे उम्बराड आेचोवोना ?' अर्थात्— 'हम अपने घरों में जैसे नयी-नयी वस्तुओं को व्यवहार में लाते हैं ; उसी प्रकार हमें चाहिए कि साहित्य में भी कहानी , भूगोल , गणित एवं विज्ञान आदि विषयो को प्रचलित करें। इन विषयों को अपनी मातृभाषा में प्रचलित नही कर सके तो हम अपने समाज को शक्तिशाली कैसे बना सकते हैं।" साहित्य को वे सोद्देश्य मानते थे। साहित्य साहित्य केलिए इस विचार धारा को वे नही मानते थे। साहित्य समाज का दर्पण है— यह उनकी भी धारणा थी। जाति एवं समाज का दर्शन हम अपने साहित्य के द्वारा ही कर सकते हैं! वे अपनी जाति का विकास चाहते थे, समाज में जो कमजोरियां दिखाई पडती थी-उनसे समाज को वे मुक्ति चाहते थे। उन्हें विश्वास था— साहित्य ही समाज को दोषों से मुक्त कर सकता है। कारण , साहित्य का विशेषकर कविताओं का असर समाज पर अधिक पडता है। साहित्यकार पाउल ने कहा भी है— आेनोंड़ हें , दो थोडा़ , खाय आर खाटो रोड़ ते आयमा मान बुझा़उ आेक् चोवाक् सेरेञ् कान ते अलगा ते मेंन रे दबावक् आर आेनको रेयाक् सिखौना दो

मोन्-पाटा रे ग्रोल दोहोक् काना ' । अर्थात्— " गीत या कविता द्वारा बहुत कम शब्दो मे अनेक अर्थ शीघ्र प्रकट होने के कारण उसमे मन पर बहुत शीघ्र असर पड़ जाता है और वह स्थायी होता है।"

श्री पाउल जुझार सोरेन का जन्म सन्ताल परगना जिले के पाकुडिया थाना में स्थित चुनपाडा गाँव में २६ दिसम्बर, १८६२ को हुआ था। उनके पिता श्री मुन्शी सोरेन अपने गाँव में ही एक शिक्षक का काम करते थे। अपने गाँव में ही नही, गाँव के बाहर भी आपके पितामह श्री पेकोक् सोरेन एक परगनैत थे। परगनैतो की सन्ताल समाज में काफी प्रतिष्ठा रहती है। एक शिक्षक के पुत्र होने से उनकी शिक्षा की व्यवस्था आरम्भ से अच्छी हुई। आज तो सन्तालो मे कुछ शिक्षा का प्रसार हो गया है। कॉलेजो में वे शिक्षा पाने लगे हैं। पर उस समय कॉलेज की शिक्षा पायें, बहुत कम लोगो के मन मे ऐसी बातें उठती थी। उस समय पूरे सन्ताल परगना जिले में एक भी कालेज नही था। पर बालक जुझार सोरेन कालेज की शिक्षा पायेगा, यह धारणा उसके मन में बचपन मे ही उठी। उनकी शिक्षा का श्रीगणेश उनके पिता ने स्वयं कराया। गाँव से शिक्षा प्राप्त कर वे आगे पढ़ने के लिए दुमका जिला स्कूल में दाखिल किये गए। उन्होंने वहाँ से मैट्रिक की परीक्षा पास की। कालेज की शिक्षा पाने के लिए वे कलकत्ता गये और वहां 'सन्त पाउलस कालेज' मे नाम लिखाया। वही से उन्होने आई० ए० की परीक्षा पास की। प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण वे बी० ए० पास न कर सके। बिहार सरकार ने सन् १६१६ में उन्हें सबइन्सपेक्टर आफ सन्ताल स्कूल्स् के पद पर नियुक्त किया। बिहार सरकार के शिक्षा विभाग में उन्होने ३२ वर्ष तक सेवा की और वही से पेन्शन लिया। उक्त पद पर रहकर पाउल साहब ने सन्तालों के बीच जो

शिक्षा का काम किया है, वह इतिहास का विषय है। सन्तालो में जो आज शिक्षा का प्रसार देखा जाता है, उसमें उनकी बडी देन है—यह अस्वीकार नही किया जा सकता है। शिक्षा की व्यवस्था के साथ ही साथ उन्होने समाज सुधार पर भी जोर दिया था। सरकारी सेवा में रहते हुए भी वे बहुत लोकप्रिय व्यक्ति हो गये थे। यही कारण था, सरकारी सेवा से मुक्ति पाते ही उन्हे सन्तालो ने अपना नेता मान लिया और सन् १९५२ ई० के चुनाव में 'लोक-सभा, नई दिल्ली' के लिए जनता ने उन्हें अपना प्रतिनिधि निर्वाचित किया। उस पद से भी उन्होने देश की बडी सेवा की थी। दिल्ली में ही उनका देहान्त १९ फरवरी, १९५४ को हो गया। सन्ताली साहित्य एवं सन्ताल भाषा के विशेषज्ञ के रूप में वे माने जाते थे। पटना विश्वविद्यालय ने सन्ताल पाठ्य समिति के लिए १९४३–४४ के लिए उन्हे सदस्य मनोनीत किया था और सन्ताल परगना के उपायुक्त ने उन्हे १९४७-४८ की अवधि में सरकारी कर्मचारियो की सन्ताली भाषा की दक्षता सम्बन्धी परीक्षा का परीक्षक नियुक्त किया था।

पाउल साहेब ने लिखा बहुत है, पर परिस्थितिवस उनकी अधिकांश रचनायें प्रकाश में नही आ सकी। उनकी पहली पुस्तक 'बाहा-डालवाक्' सन् १९३६ में छपी थी। उस प्रति को हमें देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। दूसरी बार वह पुस्तक १९४३ में छपी, वह प्रति मुझे न मिल सकी। पर मुझे ऐसा बताया गया कि नये-सस्करण में उस पुस्तक का कलेवर बदल गया था, उसमें उनकी और कई कवितायें संकलित थी। उसी कविता पुस्तक पर सन्ताल समाज ने उन्हें अपना आदि कवि माना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य में जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान सन्ताल-साहित्य में श्री पाउल जुझार सोरेन को प्राप्त है। उन्हें हम सन्ताल साहित्य

का भारतेन्दु भी कह सकते हैं। बताया जाता है कि उनकी २०–२४ पुस्तकें अप्रकाशित रही गयी हैं। उनमें 'जोसेफ', 'हाला–बादला', 'माघो-सिञ', 'जदुडीह् आतो', 'मारे ढोल', 'आतो पुनासी', 'तहेञाक् सन्ताल परगना' कापी कर न (इतिहास), देशमांझी सीतारामाक् वक्तान, दिसाम-दुलाड, होमोन्तराग़ (शिक्षा) आदि उनकी पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेख-नीय हैं। उनकी अप्रकाशित पुस्तकों को छपवाने की व्यवस्था होनी चाहिए। हमें भय है, अगर शीघ्र इस ओर ध्यान नहीं दिया गया, तो भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि नष्ट हो जायेगी। उन्होंने अपनी आत्म-कथा भी लिखी थी, जो अप्रकाशित है। उसका भी प्रकाशन होना चाहिए।

हम देखते हैं कि श्री पाउल सोरेन का ध्यान विशाल सन्ताल–साहित्य के निर्माण की ओर था। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं पर लिखा है। नाटक, कहानी निबन्ध, इतिहास, जीवनी, यात्रा–वर्णन, शिक्षा-विज्ञान, कविता आदि साहित्य की सभी विधाओं पर उनकी लेखनी चली थी। सभी में उनको सफलता मिली थी। उनकी कविताओं का विषय भी विस्तृत था। अध्यात्म, समाज, राष्ट्रप्रेम, जाति–जीवन, देश–व्यक्ति सभी उनके काव्य के विषय थे। सृष्टि की निर्माण–कथा, ईश्वर–महिमा, लोक–जीवन आदि पर विशेष रूप से उन्होंने लिखा है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनके काव्य–दर्शन की एक झांकी हमें मिलती है—

'दारे आसराय ठेन तियोग, कोक् राऽका कुकुच्;
काड़ू , कुञ्च्किो , गिदी , हुच् - हुच्।

गुपीको साँव गाड़-मेरोम, होड़को चातोम गोक् ;
रुमाड़ कानको हो, हानको, उमुल ते ओड़ाक्।'

अर्थात्— 'वृक्ष के पास पहुँचते ही आनन्द से बगला अपने शरीर को समेट कर बैठ जाता है। उसके पास ही कऊआ, चीला और अन्य चिड़ियाँ भी आकर वहीं बैठ जाती है।

गाय चराने वाले के साथ गाय, बकरी, अन्य मवेशी, सभी लौटकर घर आ रहे हैं और ग्रामीण लोग कंधोपर छाता रखकर गाँव वापस आ रहे हैं।'

कवि ने घर वापसी के समय का एक शब्द चित्र दिया है। घर स्वर्ग-सा सुखद है। घर पर थके मन को राहत मिलती है। कवि मानता है—सुख का अनुभव तबतक नहीं हो सकता है जबतक उसे दुख का अनुभव नहीं होगा। कारण मानव-जीवन सुख दुख के संगम पर ही बना है। अपनी कविता 'हेडेम' शीर्षक में कवि ने इसी विषय पर जोर दिया है। कवि की कविता देखें—

हेडेम हड़हाद् हो, हड़हाद् हेडेम,
हड़हाद् गे मागे, नासोल हेडेम;
मानेवा होंपोन बुझाउ चाहीम,
हड़हाद् सुम्बराउ रेम हामेट हेडे !

अर्थात् — मधु में ही गरल है। गरल में ही मधु छिपा है। वास्तविक बात तो यह है कि गरल में ही मधु का असली रूप हमें मिलता है। कवि मानव को उपदेश देते हुए कहता है— हे मानव! अगर तुम मधु को प्राप्त करना चाहते हो तो पहले गरल को पान करो। गरल पान में ही मधु की प्राप्ति है।

(२) श्री गोपाल लाल वर्मा— (सन् १८६१-)

आज सन्ताल-साहित्य की लिपि नागरी मानी जाने लगी है। पर एक दिन था जब सन्ताली साहित्य की एक भी पुस्तक नागरी लिपि में नहीं थी।

सन्ताली साहित्य के लिए रोमन लिपि का व्यापक प्रचार था। पाठ्य-पुस्तकें रोमन लिपि में छापी जाती थी। सन् १९३९-४० में बिहार प्रांत में निरक्षरता निवारण का काम करने के लिए एक प्रादेशिक संस्था निरक्षरता निवारण समिति के नाम पर सरकार की ओर से गठित की गई थी। उसने निश्चय किया था कि सन्तालो को पढाने के लिये जो प्रारम्भिक पुस्तकें तैयार करायी जायें, वे सभी रोमन लिपि में छापी जायें। सरकार का यह निर्णय बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सामने आया था। सम्मेलन ने इसका विरोध करने का निश्चय किया। सम्मेलन के माध्यम से हमलोगों ने सरकार के निर्णय के विरोध में एक व्यापक आन्दोलन आरम्भ किया। सरकार के सामने एक संकट उपस्थित करने में हम सफल भी हुए। पर तब तक सरकार के सामने हम कोई व्यावहारिक स्वरूप उपस्थित नही कर पाये थे। इसी बीच सन्ताल परगना के एक शिक्षा-विभाग के अधिकारी ने देवनागरी लिपि में सन्ताल भाषा का एक चार्ट बना दिया। इतना ही नही, उसने यह भी प्रमाणित करने की चेष्टा की कि देवनागरी लिपि बहुत दिनो से सन्तालो की लिपि रही है। उनसे हम सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं को बहुत बल मिला था। हमने निरक्षरता निवारण समिति को विवश किया कि वे अपने निर्णय को बदलें। हमें उस समय पूरी सफलता तो न मिली, फिर भी उक्त कमिटी ने सन्तालो के पढने के चार्ट देवनागरी और रोमन दोनो में छापने का निश्चय किया। नागरी लिपि में सन्ताल भाषा के चार्ट तैयार करने का भार उसी शिक्षा-विभाग के अधिकारी को दिया गया।

शिक्षा-विभाग के वे अधिकारी श्री गोपाल लाल वर्मा थे। उन्होंने सन्ताली भाषा का चार्ट ही नही बनाया था, एक पुस्तक भी सन्ताली भाषा

को नागरी में लिखी थी। उस पुस्तक का नाम था—'सन्ताली प्रहिल पुथी'। यह पुस्तक सन् १९४० में छपी थी। उन दिनों श्री गोपाल लाल वर्मा गोड्डा में स्कूल के डिप्टी इन्सपेक्टर थे। इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व सन्ताली भाषा के लिए जो पुस्तकें प्रचलित थी, उनका नाम था—'होड रोड रे ग्राक'। वह रोमन लिपि में छपी थी। गोपाल बाबू ने अपनी उक्त पुस्तक के सम्बन्ध में कहा है—'सन्ताली के लगभग सभी स्वर और व्यञ्जन वर्ण हिन्दी के हैं तथा उसी के नियम पर रखे जाते हैं। हिन्दी के क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग के उच्चारण सन्ताली में ठीक वैसे ही हैं। इतना ही नहीं उसी पुस्तक में उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि संस्कृत भाषा के व्याकरण के अनुसार तीन वचन सन्ताली भाषा में भी पाये जाते है। ऐसी अवस्था में उन्होंने अपनी मान्यता दी कि सन्ताली भाषा के लिए देवनागरी लिपि के अतिरिक्त कोई दूसरी लिपि उपयुक्त नहीं हो सकती है। गोपाल बाबू ३० वर्षों से यह प्रचारित करते रहे हैं कि सन्ताली भाषा की समस्त ध्वनि समूह देवनागरी लिपि में वर्त्तमान है। गोपाल बाबू और उनके ऐसे कुछ अन्य व्यक्तियों के सहयोग से हमलोगों ने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से एक आन्दोलन चलाकर सन् १९४० में पटना विश्वविद्यालय को विवश किया था कि मैट्रिकुलेसन परीक्षा में सन्ताली भाषा के रूप में स्वीकृत करें और 'बोर्ड आफ सन्ताली स्टडीज' बनाये। हमलोगों को सफलता मिली। सन्ताली भाषा को विश्व-विद्यालय में स्थान दिया गया। सन्ताली भाषा के लिए देवनागरी लिपि स्वीकृत हुई और बोर्ड ऑफ सन्ताली स्टडीज की स्थापना हुई। बोर्ड आफ सन्ताल स्टडीज के वे सदस्य हुए और उन्होने अपने दो सहयोगियों के सहयोग से एक पुस्तक सन्ताली भाषा में सम्पादित की, जो पटना विश्व-

विद्यालय के मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए स्वीकृत भी हुई।

श्री गोपाल लाल वर्मा का जन्म मुंगेर जिला के बरबोधा थाना के अन्तर्गत माऊर गाँव में सन् १८९१ में हुआ था। माऊर गाँव का बिहार में आज एक ऐतिहासिक महत्व हो गया है। इस गाँव को बिहार केसरी डाक्टर श्री कृष्ण सिंह को जन्म देने का गौरव प्राप्त है। पर गोपाल बाबू माऊर में जन्म पाकर भी दुमका के हो गये हैं। दुमका में उन्होंने अपना मकान बना लिया है, २५ वर्षों से इस नगर में रह रहे हैं। दुमका में मूल-निवासियो की सख्या कम है, अधिकांश इस नगर के निवासी गोपाल बाबू के सामान ही प्रवासी हैं। यही कारण है, गोपाल बाबू अपने को दुमका का प्रवासी नही, दुमका का निवासी मानते हैं। श्री गोपाल लाल वर्मा के पिता का नाम श्री नन्दलाल था। वे बड़े ही स्वाभिमानी और उर्दू-फारसी के विद्वान थे। यही कारण था, गोपाल बाबू की शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी के माध्यम से आरम्भ हुई। उन दिनों उर्दू रोटी की भाषा थी। पर उस समय आर्यसमाज का आन्दोलन चल रहा था। उसके अन्तर्गत धर्म-भाषा का आन्दोलन चल रहा था। सदैव धर्म का स्थान रोटी से आगे रहा है। गोपाल बाबू के पिताजी चाहते थे— गोपाल रोटी की भाषा पढ़ें और उनके बड़े भाई जो आर्यसमाजी थे, वे चाहते थे कि गोपाल धर्म की भाषा पढ़ें। भाई को सफलता मिली। ग्राम के प्राथमिक पाठशाला में वे भरती हुए। वहाँ से आगे की पढ़ाई उन्होंने गया और पटना में समाप्त की। कालेज की पढ़ाई भागलपुर टी० एन० जे० कालेज में पायी। सन् १९१८ में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। सन् १९२६ में पटना ट्रेनिंग कालेज से उन्होंने बी० एड० की परीक्षा पास की। घर की आर्थिक स्थिति को देखकर उन्होंने शिक्षा-विभाग में नौकरी कर ली।

वे सब इन्सपेक्टर ग्राफ स्कूल्स के पद पर नियुक्त हुए। उस पद में सदैव उनकी पदोन्नति होती रही। वे अपनी कार्यदक्षता के कारण पदोन्नति करते-करते असिस्टेन्ट डायरेक्टर ग्राफ पब्लिक एजुकेशन तक हो गये थे। सन्ताल परगना मे आने के पूर्व गोपाल बाबू ने छपरा तथा गया जिले में काम किया था।

सन् १६३६ में गोपाल बाबू गोड्डा मे डिप्टी इन्सपेक्टर के पद पर पदस्थापित हो गये थे। यहाँ आते ही सन्ताली भाषा के लिए रोमन लिपि के स्थान पर नागरी लिपि का प्रचलन ग्रारम्भ किया। उनका यह काम हिन्दी साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। यह काम उनके लिए बहुत मँहगा पडा। सन्ताल सस्कृति, सन्ताली भाषा और लिपि एवं सन्ताल परगना का चलता फिरता इतिहास हम गोपाल बाबू को मानते हैं। वे इन विषयो के विश्वकोष है। उन्होंने सन्तालो के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुत लिखा है। सन्ताली भाषा में उनकी कई पुस्तकें मिलती हैं। संताली पहिल पुथी ग्रकिल मारशल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने सन्ताली व्याकरण तथा सन्ताली लोकगीतो पर पुस्तकें तैयार की हैं जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। उन्होंने हापड़ाप को बाक काथा ग्रौर दसाय सेरञे ग्रौर टुड्डु कोडा मादाडिया नामक पुस्तकों का मम्पादन भी किया है।

(३) श्री नारायण सोरेन 'तोडे सुताम' (सन् १६२३–)

कविवर श्री नारायण सोरेन 'तोडे सुताम' जो सन्ताली साहित्य गगन के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनका पाण्डित्य सूर्य्य के समान प्रखर ग्रौर सर्वव्याप्त है। वे 'तोडे सुताम' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे सन्तालागम के एक अच्छे ज्ञाता एवं एक अनुभवी विद्वान हैं। उनकी रचनाओं को देखने पर मालूम होता है कि उन्होने सन्ताल समाज का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन

किया है। 'तोडे सुताम' केवल आचार-शास्त्र के ही पण्डित नहीं हैं, पर इसके साथ ही साथ उन्होने अध्यात्म, दर्शन एवं राष्ट्र-प्रेम में भी अपनी कुशलता का परिचय दिया है। उनके सम्बन्ध में एक बार होड-संवाद में इस प्रकार विचार व्यक्त हुआ था—

'तोडे सुताम'ाक् ओनोडहें रे दो सिमिरज़ाविच् आर सिरजोन रेयाक् ओको भेद बड़ाय जोङ रेयाक् रेंगेच् सालाक् जुग, जियोन आर दिसाम रेयाक् नवां-नवां सान्देश हो आमोक्-आ। कथा कुन्दा़उ आर लाड सोक्दोर धारा हो उनीयाक् ओनोडहें रे दो जुदा आर नवां गे आ़इकाउक्-आ। आ़डो उता़र ओनोडहे 'तोडे सुता़म' दो 'नवां ओनोडहे जोकडाव बारा' तेय जोडाव अकावताबोना।

अर्थात्— तोडे सुताम की कविता में सृजनहार तथा सृष्टि के भेद-भाव प्रकट होते हैं तथा साथ ही साथ देशके नवीन सन्देश का भी उसमें समावेश होता है। उनकी कविता में युग जीवन एव देश के नये-नये विचारो का दर्शन हमें मिलता है। श्री नारायण सोरेन 'तोडे सुताम' का जन्म सन् १९२३ में सन्ताल परगना जिला के पाकुड अनुमण्डल के अन्तगत स्थित छोटा गाँव अशिला में हुआ है। उन्होने बी० ए० तक शिक्षा पायी है। उन्होने अपने जीवन का श्रीगणेश सरकारी नौकरी से किया है। सन् १९४८ में उन्हें एक सरकारी पद पर नियुक्त किया गया और सन् १९५२ तक वे सरकारी पद पर रहे। सरकारी नौकरी उनके लिए एक बन्धन थी। अतः उन्होने उसे छोड़ दिया और राजनीति से अपना सबन्ध उन्होने जोड़ लिया। कुछ दिनो तक एक स्कूल में वे शिक्षक भी रहे हैं। आजकल वे एम० एल० सी० हैं।

उनका साहित्यिक जीवन उनके विद्यार्थी जीवन से ही आरम्भ हो जाता

है। राजनीति में वे अवश्य है, पर पहले वे अपने को साहित्यिक मानते हैं। वे हृदय से साहित्यकार हैं, कर्म से राजनीतिज्ञ। ऐसा कोई व्यक्ति नही मिलेगा जिसका सन्ताल साहित्य से सम्बन्ध हो और वह अपने लोकप्रिय साहित्यकार 'तोडे सुताम' को नही जानता हो। उनका 'गिरा' (निमंत्रण) नामक कविता-संग्रह सन् १९५४ ई० में ही प्रकाशित हुआ है। 'गिरा' सन्ताल साहित्य का एक मील-स्तम्भ माना गया है। मै तो कह सकता हूँ— इस पुस्तक से सन्ताल-काव्य साहित्य में एक नए युग का आरम्भ हुआ है। इस काव्य संग्रह में उनकी कई कवितायें सकलित हैं। उनकी प्रकाशित कवितायों का दो-तीन अन्य काव्य-संग्रह प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। 'उभनी सगेन' और 'डाहारधुडी' इन दोनो कविता संग्रहो की प्रेस कापी भी उन्होने तैयार कर ली है। 'तोडे सुताम' केवल कवि ही नही हैं, वे बहुत अच्छे कहानीकार भी हैं। उनकी कई कहानियाँ 'होड सोम्बाद' में प्रकाशित हुई हैं। कहानी के क्षेत्र में इन्होने नया प्रयोग किया है, नयी मान्यतायें स्थापित की हैं। उनकी कहानियो में 'अप-टु-डेट', 'जहार धुडी', 'केमितञ', 'मताल' आदि का नाम बहुत उल्लेखनीय है। सन्ताली भाषा-भाषियों में उनकी कहानियाँ विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। तोडे सुताम जी की कवितायें जिस प्रकार गेय हैं, उसी प्रकार उनकी कहानियाँ भी पठनीय हैं। संताल-विद्रोह के नायक सिदो—कान्हू के जन्म-स्थान 'भोगनाडी' गाँव के ऊपर उनकी एक ऐतिहासिक कविता प्रकाश में आयी है, जो बहुत ही लोकप्रिय है। उस कविता मे तोडे सुताम जी ने 'भोगनाड़ी' को एक तीर्थ-स्थान माना है। जिस धरती ने महात्मा गान्धी से ८७ वर्ष पूर्व अंग्रेजों को मातृभूमि को छोडकर जाने के लिए कहने वाले को जन्म दिया हो, वह धरती केवल सन्तालों का ही नहीं, पूरे भारत का तीर्थ-स्थान है। 'तोडे सुताम' जी

केवल कवि और कहानीकार ही नही हैं, सन्ताल-साहित्य के प्रहरी भी हैं। उसके विकास एवं प्रगति के लिए वे सचेष्ट रहते हैं। उन्होने दुमका में सन्ताली भाषा समिति की स्थापना की है, उसके वे सभापति भी रहे हैं। उन्होने सन्ताली भाषा मे मालोक नामक एक पत्रिका भी निकाली थी।

तोडे सुताम जी की कविता में हम आध्यात्मवाद पाते हैं। ईश्वर के प्रति कवि को अगाध श्रद्धा है। 'नान्लोम सुम्राड' शीर्षक कविता मे कवि कहता है—

जहाँतिस जुदि ओन्तोर दुआर
प्रभु ! भिच् ताम जाम
इआक्, दुआर रापुत् काते
जिवी ते बोलमे, दुलाड !

नालोम सुम्राड।

अर्थात्— कवि ईश्वर से निवेदन करते हुए कहता है—'हे प्रभु ! यदि कभी मेरे अन्तर-द्वार बन्द पाओ, तो उसे बलपूर्वक तोड दो और मेरे प्राणों में आ बैठो। हे प्रिय ! द्वार पर आकर योंही मत लौट जाओ।

कवि 'तोडे सुताम' ने सिदो के गाँव 'भगनाडी' के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए कहा है—

"भागान गेयाम भोगनाडी सोनोत होपोन-थान ;
आवान ताहें, सुती, गुनान होपोन देश-भक्तियान।

ओकोय दो निजेको गिडीयेन ओवारको लागित् पोर ;
बेहोक बिरुद बाछावानको लांदावाते कुचित जानुम होर।

अर्थात्— 'भोगनाडी' तुम भाग्यवान हो, जहाँ पवित्र पुत्र ने जन्म लिया और जहाँ देशभक्त पुत्र पैदा हुए। उस पुत्र ने दूसरे के उद्धार के लिए

अपने को निछावर कर दिया और जन-कल्याण के लिए हँसकर काँटे भरे रास्ते पर कदम रखा।

हिन्दी में प्रयोगवादी काव्य-धारा जो बह रही है, वही काव्य-धारा हम तोडे सुताम जी की कविताओं में पाते हैं। इस प्रकार की कविता के लिए मुक्त छन्द का प्रयोग होता है। कवि ने सन्ताली साहित्य में मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। उनकी मुक्त छन्द की रचना देखें—

तिमिन चो जुग केरा धारना तायोम
होड़मो-मोने-जिवी दान काते
तोपोस्सा आवाना, नोआ,
रासका रूप
पारिजात बाहा
पोरजातेन राज
बे-ताबे, बिदलाई!

तिमिन इपिल, हाय! —
मरसाल लान्दावाते
—बे-मुलिन, ओन्तोर ताला—
रिलामाला सेरमा खोन

अर्थात्— बहुत दिनों मे आराधना के पश्चात तन–मन दान करके तथा तपस्या करके यह आनन्दित रूप हमने प्राप्त किया है और कमल रूपी मन अब विकसित हो गया है। नीले गगन पर अनेक तारे खिल रहे हैं।

चीन का जब नेफा और लद्दाख पर आक्रमण हुआ, तब प्रयोगवादी तोडे सुताम जी ने मुक्त छन्द में यह रचना की—

नेफा आर लदाक,

" कुलीयेम, ए कवि ! ए ग्रोन्तोर !
ग्रामाक् ग्रोन्तोर ।

साग्गुन तेहेव दिन—
वेंलकोम
ग्रोनको,
तोम्रा-दारे जोनोम-दिसाम रेन ग्रोनको गुलाल,
सुरुज-ग्रकूर नितिबे-ईंडिच् लेप् ,

ग्रर्थात्— हे कवि ! नेफा ग्रौर लद्दाख मे पूछो ग्रौर ग्रपने ग्रन्तःकरण से पूछो । ग्राज पुण्य का दिन है, हमारी मातृभूमि के लाल ग्राग की लौ के समान जगमगा रहे हैं।

कवि मानता है कि वह भारत के मनोबल का प्रहरी है। ग्रतः वह चाहता है कि लोगों में जागृति रहे, उत्साह रहे। राष्ट्र की सबसे बडी शक्ति उत्साह है। जागृत लोगों के घर में चोर प्रवेश नहीं करता है। ग्रतः माँ से निवेदन करता हुग्रा कवि 'तोडे सुताम' कहता है—

तोम्रा दारे !
एग्रेनमे जुग्रान दाडे,
भग्राडमे सेदाय बिदाल ;
गुन, पुन, ग्रोन, धोन ।
एगो मानोतान, म न, दिन
रुग्राड रोफाय, नायो ।
दिन - दाता चाँदो

ग्रर्थात्— हे माँ ! हमारी जवानी को वापस करो। हमारे पूर्वजों को वापस करो। उनके गुण, पुण्य ग्रौर धन को हमें वापस करो। हमलोगों

को जन्म देने वाली आदरणीय माँ, हमें शान्ति दो।

कवि चाहता है कि उसका देश हरा-भरा रहे। हिमालय उसका है, गंगा नदी उसकी है, दोनों कवि के लिए पवित्र है। गंगा के प्रति अपनी भावनाओं को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है—

हिमालय चोट चुड़ा बोरोप - लोदाम
सीमा तोल थोल बिनु दाक्-वान—
मे हाले—
महादेव जाटा जान-ओको
गाङ नोंई,—
जुग-जुग जिवी-दाक् एमोक् मे ताहेन
ओंजदोक् बानुक् आन,
आतुक् मे ताहेन

अर्थात्— हिमालय पर्वत की चोटी पर स्थित महादेव की जटा से निकली हुई गगा नदी, जीवन रूपी पानी को सदैव देती रहे। गंगा सदैव जल मे भरी हुई रहे और वह सदैव बहती रहे।

श्री नारायण सोरेन 'तोडे सुताम' की रचनाओं को राष्ट्रभारती में अनुवाद करके प्रकाशित किया जाय, तो हमें आशा है, राष्ट्रभारती को उनसे बल मिलेगा। सन्ताली साहित्य को उनसे बडी-बड़ी आशायें है। राजनीति के चक्र से वे अपने को बचा सके तो सन्ताली साहित्य की ही श्रीवृद्धि नही होगी, भारतीय साहित्य भण्डार भी उनसे भरेगा। तोडे सुताम के प्रति हमारी यही मंगल कामना है।

(४) साधु रामचाँद मुर्मू—

साधु रामचांद मुर्मू एक सन्त कवि हैं। वे जिज्ञासुओं को अध्यात्म रस

का पान कराते है। इनका जन्म पश्चिम बंगाल के जिला मेदनीपुर में स्थित बेगमार बान्दी गाँव में हुआ है। उनका विशेष परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका। धर्म एवं कर्मकाण्ड पर उनका अपना विशेष अध्ययन है। उन्होंने सन्ताल-धर्म पर एक ग्रन्थ लिखा है। बताया जाता है कि उन्होने सन्ताली भाषा में एक नाटक 'संसार भेद' के नाम से लिखा है। 'होड़ सोम्बाद' में उनकी कवितायें प्रकाशित हुई हैं। 'बाहा' शीर्षक कविता में कवि ने फूल के प्रति अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त की है—

होड़मो टोलाक्, मोने टोलाक्,
नाना रूपको ओरड़े ओलाक्;
आबी-आबी ते जिवी गोलाक् चोंड़ुट चिगार सालाक्।

होय साँव ते सेनोक् मोखोन,
ढेब साँव ते केड़ेप् दोदोन;
चेद् हाहाड़ा मोनेर मोतोन खोलोन मिलोन चोलोन।

मेंंहिर मधुर मोहोक आमाक्,
गोटा तोरोप बास ते आमाक्,
उरू गुन-गुन हुना-तामाक् हेच् आमको जोजोमाक्॥

अर्थात्— फूल की पंखुड़ियाँ बहुत प्रकार की हैं। वे शरीर तथा मन को लुभाने वाली हैं। उनके स्मरण मात्र से ही शान्ति प्राप्त होती है। वह पानी और हवा से पालित है और वह सबको आश्चर्यजनक आनन्द देती हैं। फूल से कवि कहता है— तुम्हारा सुगन्ध बहुत मधुर है और भौंरें तुम पर गुनगुनाते रहते हैं।

इतना ही नही, कवि कमल फूल को सुहागन रानी मानता है। उसके रूप को सोना और चाँदी के समान मानता है। कवि फूल को कहता है—

जालापुरी रे पोरायनी !
सोहाग रिनिच् आम दो रानी ;
चोंहुट चिकोन होड़मो कांड़ोक् दोरया शोभाम साडोक् ।

सोना - रूपा ओलोन काठी ,
होड़मो रोड़ ओना जुटी ;
शिशिर जुराक् लिटी-पिटी चाँदो आच् होय लिटी ।

अर्थात्— हे सागर के कमल ! तुम बहुत सोहागन हो। तुम्हारा शरीर बहुत चिकना है। वह सोना और चाँदी के समान शोभायमान है। तुम्हारी चोटी पर शिशिर की वर्षा होती है, चन्द्रमा की कान्ति भी तुम्हारे सामने मात है।

(५) श्री डोमन साहु 'समीर' (१९०४–)

सन्ताली साहित्य का जो रूप हम आज देखते हैं और २० वर्षों में सन्ताली साहित्य में जो प्रयोग हुए हैं, जो इसकी उपलब्धि है, उसका सारा श्रेय एक ऐसे व्यक्ति को प्राप्त है जो स्वयं सन्ताली भाषा-भाषी नही हैं, पर वह सन्ताली भाषा का विशेषज्ञ माना जाता है। उस व्यक्ति को सन्ताली साहित्य में वही स्थान प्राप्त है, जो आधुनिक हिन्दी में आचार्य महावीर प्रसाद को प्राप्त है। उस व्यक्ति का नाम डोमन साहु 'समीर' है। डोमन साहु 'समीर' ने सन्ताली भाषा के लिए वही काम किया है, जो काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी के लिए किया है। उनकी 'सरस्वती' की बहुत बड़ी देन है। 'सरस्वती के माध्यम से आचार्य महावीर

प्रसाद द्विवेदी ने सैंकड़ो लेखक, कवि और कहानीकारो का निर्माण किया था। श्री डोमन साहु 'समीर' ने भी अपने 'होड़ सोम्बाद' के द्वारा अनेक सन्ताली लेखक, कवि एवं कहानीकार का निर्माण किया है। 'होड़ सोम्बाद' केवल एक साप्ताहिक पत्र ही नही है, वह तो सन्ताली साहित्य–निर्माण की एक विशाल संस्था है। सन्ताली साहित्य के निर्माण के लिए या उसके प्रचार एवं प्रसार के लिए कोई साहित्यिक संस्था सक्रिय नही है। उसके अभाव में 'होड़ सोम्बाद' एक साहित्यिक सस्थान का काम कर रहा है। १८ वर्षों से 'होड़ सोम्बाद' का सम्पादन श्री डोमन साहु समीर कर रहे हैं। व्याकरण के द्वारा उन्होने भाषा को अनुशासित किया है; सयमित बनाया है। लगभग एक सौ कहानियाँ, तीन सौ कवितायें एवं विभिन्न विषय पर एक सौ निबन्ध भी समीर जी ने 'होड़ सोम्बाद' में प्रकाशित किया है। इन्ही उपादानो से सन्ताली साहित्य का निर्माण हुआ है। समीर जी ने कुछ सन्ताली शब्दो की लिखावट में परिवर्त्तन किया है। शब्दो के स्वरूप में परिवर्त्तन होना स्वाभाविक है। समीर जी ने स्वयं यह स्वीकार करते हुए कहा है— सन्ताली के कतिपय शब्दो के हिज्जे पहले से कुछ भिन्न हैं, जैसे—अकान्, अकाद् आदि। पहले इनके हिज्जे आकान, आकाद् आदि थे। परन्तु देवनागरी लिपि की कसौटी पर अकान, अकाद् आदि ही शुद्ध जँचते हैं। आकान, आकात् आदि रोमन-सन्ताली के अनुकरण पर हैं, जो सही नही हैं। मुझे ये हिज्जे देवनागरी लिपि के माध्यम से सन्ताली सीखने वालो के लिए विशेष रूप से आवश्यक और सही जान पड़े हैं। साथ ही, मुझे यह विश्वास है कि अपने इस नये हिज्जेओं के कारण यह भाषा मुंडारी, हो आदि अपनी सहोदराओ के निकटतर आ जाती है।' समीर जी सन्ताली भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए सचेष्ट

है।, मुझे यह कहते हुए गौरव का अनुभव हो रहा है कि मेरे मित्रवर समीर जी अब एक व्यक्तिमात्र नहीं रह गये हैं; वे तो अपने आप में एक संस्था हो गये हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय ने समीर जी का उल्लेख करते हुए कहा था— 'नागरी लिपि के माध्यम से सन्ताली साहित्य के निर्माण का श्रेय 'होड सोम्बाद' के सम्पादक 'समीर' जी को है, जो सन्ताली के पण्डित होते हुए भी हिन्दी के सुपरिचित लेखक हैं और जिनके लेखों से हिन्दी संसार मे आदिवासी क्षेत्र की भाषाओ के साहित्य की विशेषता प्रकट हुई है। डाक्टर लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने तो इन्हें सन्ताली साहित्य का एक पुरोहित माना है। वे कहते हैं— 'श्री डोमन साहु 'समीर' सन्ताली भाषा के एक जाने-माने विशेषज्ञ हैं। बहुत दिनो मे समीर जी सन्ताली भाषा और सन्ताली सस्कृति के सम्बन्ध में लिखते आ रहे हैं।' 'आचार्य' की पदवी से उन्हे मैं सम्बोधित करता हूँ। सही माने मे समीर जी आचार्य हैं। इन पक्तियो के माध्यम से मेरा हिन्दी साहित्य के सामने एक प्रस्ताव है कि अब समीर जी को 'आचार्य डोमन साहु 'समीर' कहा जाय। आशा है, मेरे इस प्रस्ताव का स्वागत होगा।

आचार्य समीर जी का जन्म सन्ताल परगना जिला के 'पन्दाहा' नामक गाँव में ३० जून, १९२४ को हुआ था। उन्होने हिन्दी में भी काफी लिखा है। जब सन्तालो की लिपि का प्रश्न लेकर हमलोगो ने बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से आन्दोलन आरम्भ किया था, तब समीर जी ने खुलकर सक्रिय भाग लिया था। सन्ताली भाषा को नागरी लिपि में लिखे जाने का जो सफल प्रयास हुआ, उसमें समीर जी का काफी योगदान रहा है। नागरी लिपि के लिए उनकी जो सेवायें हैं, वे सदैव याद की जायेंगी। समीर जी सन्तालो की भाषा, सभ्यता तथा संस्कृति

सम्बन्धी कई निबन्ध विभिन्न पत्रों में लिखते रहे हैं। सन् १९४१ में सरस्वती में उनका एक निबन्ध 'सन्तालों के जातीय सस्कार' शीर्षक से छपा था। उस निबन्ध की चर्चा हुई थी। उन्होंने एक वर्ष के बाद सन् १९४२ में माधुरी में 'सन्ताली भाषा और साहित्य' का संक्षिप्त परिचय दिया था। इसी प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि उनका 'सन्ताली संस्कृति की थाती' (आजकल, १९४९), सन्ताल शब्द की उत्पत्ति (साहित्य), सन्ताल और उनकी संस्कृति (अवन्तिका), सन्तालों की धार्मिक संस्कृति (अनुग्रह अभिनन्दन ग्रन्थावली), 'सन्ताल संस्कृति के स्वर'– (मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ), सन्तालो मे ईश्वर और जीवात्मा सम्बन्धी मान्यताएँ (जनपद) आदि निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। बिहार के आदिवासी में सन्तालो के सामाजिक स्वरूप पर समीर जी का एक व्यापक निबन्ध संकलित किया गया है। उस पुस्तक की भूमिका मे कहा गया है कि समीर जी ने एक बहुत रोचक पुस्तक सन्तालो के जन-जीवन पर तैयार की है। 'राष्ट्रभाषा परिषद' के चतुर्थ वार्षिकोत्सव के अवसर पर समीर जी ने 'सन्ताली भाषा और साहित्य' पर एक निबन्ध का पाठ किया था। समीर जी बिहार पाठ्य पुस्तक समिति (पटना) की सन्ताली भाषा की पाठ्य समिति के संयोजक सदस्य हैं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) की सन्ताली समिति के सदस्य हैं। पटना विश्व-विद्यालय के बोर्ड ऑफ़ सन्ताली स्टडीज के सदस्य रहे हैं।

समीर जी की सन्ताली भाषा की छोटी-बड़ी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हैं :— (१) सेदाय गाते (समाजोपयोगी), (२) महात्मा गान्धी (जीवन चरित्र), (३) दिसोम बाबा (काव्य), (४) बुलमुराडा (कहानी सग्रह), (५) रामायण (संक्षिप्त गद्यानुवाद), (६) सन्ताली प्रवेशिका (भाषा ज्ञान)। दिसोम बाबा में कवि समीर जी सन्ताली भाषा में कहते हैं—

हिसका - सँगेल दो , गुरु हो , इँडिच् एना रे ;
गुरु हो , इँडिच् एना रे ।
(हरि - हरि) नँयाव-भारराडो दो, चेला हो, दोम्बड़ाव एना रे
चेला हो, दोम्बडाव एना रे ।।

होड़को लाइ केत् , ' उनी दो चाँदोय ताहेँकान ? '
गुरु दो चाँदोय ताहेकान ।
(हरि - हरि) होडको भाञ्जोम केत्, 'उनी दो ईसोरे ताहेँकान ।
गुरु दो ईसोरे ताहेकान ।

समीर जी ने हिन्दी में इसका पद में ही अनुवाद किया है, जो इस प्रकार है—

कलह की आग बुझ गई ;
बुझ गई कलह की आग ।
विद्वेष का बवंडर दब गया ;
दब गया विद्वेष का बवडर ।

लोगो ने कहा, " वे भगवान थे । "
" भगवान् थे वे "—कहा लोगो ने ।
लोगो ने सुना, " वे परमेश्वर थे । "
"परमेश्वर थे वे" सुना लोगो ने ।।

समीर जी ने सन्ताली भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों के लिए देवनागरी लिपि में कतिपय नये प्रयोग किये है । रोमन लिपि के समर्थकों को पहले यह दावा था कि नागरी लिपि में सन्ताली भाषा की जो कुछ विशिष्ट

ध्वनियाँ है, उनके लिए नागरी लिपि अनुपयुक्त हैं, पर समीर जी ने नये नये आविष्कार कर यह प्रमाणित कर दिया है कि आवश्यक चिन्हों को लगाकर सन्ताली भाषा की विशिष्ट ध्वनियों को प्रयोग में लाया जा सकता है। सन्ताली भाषा में सन्ताली प्रवेशिका (व्याकरण) तीन भागो में उनका प्रकाशित हो चुका है। इधर कुछ ही दिनो पहले 'सन्ताली प्रकाशिका' नामक सन्ताली व्याकरण उनका प्रकाशित हुआ है, जो सन्ताली सीखने-वालों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो रहा है। प्रेमचन्द की कुछ कहानियो का इन्होने सन्ताली में अनुवाद किया है। समीर जी की अधिकाश सन्ताली कवितायें गेय हैं और वे 'सोहराय' लय मे हैं, इस-लिए लोग उन्हें आसानी से गाते हैं। 'होड़ सोम्बाद' का सन् १९४७ ई० के जून माह से वे सम्पादन कर रहे हैं। इधर उन्होने 'होड़ सोम्बाद' के तीन-चार विशेषाक निकाले हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

(६) श्री आदित्य मित्र सन्ताली (१९२३-)

श्री आदित्य मित्र सन्ताली का जन्म सन्ताल परगना जिले के अन्तर्गत पिरड़ाराहाट गाँव में सन् १९२३ में हुआ है। उनकी शिक्षा गाँव में पहले आरम्भ हुई। संस्कृत के प्रति उनकी अभिरूची थी। अतः संस्कृत पढ़ने के लिए वे अयोध्या गये। वहाँ उन्होने सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। वही से वे अपने नाम के साथ मित्र लगाने लगे। सन्ताली जी के पिता का नाम श्री रगपू हेम्बरम था। सन्ताली जी सन्ताली, हिन्दी और सस्कृत भाषा के जानकार हैं। वे मानते हैं कि सन्ताली उनकी मातृभाषा है, हिन्दी उनकी राज्य-भाषा है और सस्कृत उनकी धर्मभाषा है। अतः हम देखते हैं, तीनों पर उनका एक-सा मोह है। सन्ताली जी का सेवा-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न रहा है। उन्होंने राँची में आदिम जाति सेवा मण्डल,

राँची में पहले नौकरी की, बाद में वे सन्ताल पहाड़िया सेवा मण्डल, देवघर में काम करने लगे। इसके बाद वे रघुनाथपुर मिडिल स्कूल में एक शिक्षक के पद पर काम करने लगे। राँची के 'ग्राम निर्माण' एवं देवघर के 'प्रकाश' का उन्होंने सम्पादन भी किया है। आजकल वे राँची रेडियो स्टेशन में काम करते हैं।

श्री आदित्य मित्र सन्ताली हिन्दी और सन्ताली दोनों भाषा में लिखते हैं। सन्ताली भाषा में इनकी कई पुस्तकें तैयार है, जो प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। कहानीकार, नाटककार एवं कवि के रूप में वे बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनकी कहानियों में 'सलहा', 'सग़ुन', 'आर मान्ता', 'टाँड़ि', 'एदेल बोंगा', 'मिल गेले गिदरा ऐं गाय' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी कविताओं में 'एमेन सेरेञ्', और 'गोसा बाहा' बहुत ही लोकप्रिय है। 'गोसा बाहा' में सन्ताली जी ने एक मुरझाए हुए फूल को सम्बोधित करते हुए कहा है—

माराव एना आमाक् रूप, बानुक् चेहरा मोञ्ज ;
इजिञ मेना—एनरे हो मेनाक् सोताम मोञ्ज।

अर्थात्— तुम्हारा रूप ढल चुका है, तुम्हारे मुखडा में अब कान्ति न रही, सुन्दरता नही रही, परन्तु मै कहता हूँ कि तुम्हारा सौरभ अब भी कायम है।

अंग्रेजी साहित्य में वर्ड्सवर्थ, शेली और मेरडिथ आदि कवियों ने प्राकृतिक वर्णनो का मन में सत्कार लिए हुए काव्य रचना की है, वही प्रवृत्ति हम सन्ताली जी की कविताओं में पाते है। सन्ताली जी ने प्राकृतिक दृश्यो की ओर अपनी प्यार भरी सूक्ष्म दृष्टि डाली है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का प्रत्यक्षीकरण हुआ है। पर इसका अर्थ यह नही है कि कवि का ध्यान प्रकृति निरीक्षण के बाहर नहीं गया है। कवि ने नये

विषयों की ओर भी ध्यान दिया है। कवि अपने समाज को देखता है, अपने पुत्र को देखता है। समाज की रीति-नीति से उसे सन्तोष नहीं; कवि समाज में परिवर्त्तन लाना चाहता है। कवि कहता है—

सोमाज रे बोलोयेन पतियाउ आन्धाताम,
बाड़िच् दाक् मेनाक्-आ पेरेच्-आन काण्डाताम।
सोमाजाक् सगाड दो लाहाक् आ चेकाते ?
पोसाक् काम ओना दो, साूरी सार अडामगे ॥
साकेवा साडे कान दिसाम रे आरूजोममे ॥

अर्थात्—समाज के अन्दर में अन्धविश्वास ने प्रवेश किया है। तुम्हारा कलश गन्दे पानी से भरा पड़ा है। ऐसी स्थिति में कवि सोचा करता है कि समाज रूपी पहिया कैसे प्रगति के पथ पर बैठे। कवि अपने समाज एवं जाति के लोगों को कहता है कि वे अपनी पुरानी पोशाक को उतार कर फेंक दें और अपना अचूक वाण छोड़ें। इतना ही नहीं, कवि तो अपने लोगों को जागरण के स्वर सुनने को कहता है कि देश का बिगुल बज रहा है, उसे सुनो।

कवि सन्ताली जी यह मानते हैं कि जो सामाजिक पतन हुआ है, उसका दोष यह है कि देश तब गुलाम था। चारों ओर अन्धकार फैला हुआ था। सारा देश पराधीनता की साया में सोया हुआ था। पर देश अब आजाद हो गया है, लोगों में नयी-नयी आशायें जगने लगी हैं। कवि कहता है—

मेदाय दो भारोत-गोय ताहेंकान वुताूत रे,
जापित्‌बो ताहेंकान पोरेकाक् गोबोल रे।
नहाक् दो भारोत-गो मेनाया मरसाल रे,

एमेनोक् पोहोर कान, एमेनबो, एमेनमे ।
साकेवा साडे कान दिसाम रे आञ्जोममे ।।

अर्थात्— पहले भारत अन्धेरे में था । हम पराधीन थे । पराधीनता की छाया में हम सब सोये थे । पर अब देश आजाद हो गया है । हमारी माता प्रकाश में है । अब हमारे जगने का समय आ गया है । अपने लोगों को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है— देश का बिगुल बज रहा है, उसकी आवाज को सुनो ।

कवि देश की आवाज को लोगों को सुनाता है । नये देश के निर्माण में हाथ बटाने के लिए कवि देशवासियों से अनुरोध करते हुए कहता है—

दिसाम रे पोन्था कान मोंडे'याक् बोञ्छोराक्,
जोतोको ते देलाबो गोडोवाक् गहीयाक् ।
रेंगेच् आर तेताङताम बिदा काम जहाँ ते ,
रूप्रा आर हासोताम देया काम, एमेनमे ।
साकेवा साडे कान दिसाम रे आञ्जोममे ।।

अर्थात्— हमारे देश में जो पंचवर्षीय योजना चल रही है, उसमें हाथ बटायें, योगदान करें गरीबी को मार भगायें, प्यास को त्याग दें । रोग-बाधाओं के ऊपर-ऊपर चलें । उसकी परवाह न करें । केवल जागें— यह देश की माँग है । चारों ओर से यही आवाज आ रही है ।

(७) श्री ठाकुर प्रसाद मुर्मू (१९३१-)

श्री ठाकुर प्रसाद मुर्मू का जन्म २ जनवरी, सन् १९३१ ई० को जिला सिंहभूम के अन्तर्गत धालभूम अनुमण्डल के देवली गाँव में हुआ है । कवि की कविताओं में प्रकृति की झाँकी बहुत मिलती है । ठाकुर बाबू की दृष्टि में स्वर्णरेखा नदी बड़ी ही पवित्र नदी है । वह ममता से भरी हुई है ।

कवि का बचपन स्वर्णरेखा के तट पर बीता है, वह स्वर्णरेखा का जल ग्रहण कर हमारे सामने आये हैं। उनका गाँव स्वर्णरेखा के तट पर अवस्थित है। यही कारण है, स्वर्णरेखा ने अपने स्नेह-आँचल में कवि को बाँध रक्खा है। कविता हो या कहानी हो या निबन्ध हो, कवि स्वर्णरेखा को नही भूल पाता। उसकी स्मृतियाँ उसके सामने आ जाती हैं। कवि ठाकुर प्रसाद आत्मविभोर हो उठता है। उनके साहित्य में उनकी लेखनी द्वारा स्वर्णरेखा का एक चित्र बनने लगता है। उनकी अधिकाश रचनाओं में हम स्वर्णरेखा का उल्लेख पाते हैं।

श्री ठाकुर प्रसाद मुमू संन्ताली साहित्य के जाने माने साहित्यकार हैं। साहित्य की सभी विधाओं पर वे लिखते हैं। 'होड सोम्बाद' और 'खेरवाल आडाक' पत्रो में उनकी रचनायें प्रकाशित हुई हैं। उनकी रचनायें कला के लिए नही हैं, वे समाज के लिए हैं। समाज में सुधार हो, उसमें गति आवे, यही उनकी रचनाओं का उद्देश्य है। राष्ट्रप्रेम प्रदर्शित करना उनका लक्ष्य है। यही कारण है, उनकी कविताओं में राष्ट्रप्रेम, समाज सुधार आदि का सन्देश रहा करता है। ठाकुर बाबू की कविताओं का एक सग्रह 'एभेन आडाक' नाम से प्रकाशित हुआ है। उनका अप्रकाशित साहित्य काफी है। कविताओं में 'सुवात् दान', 'ठाकुर रेन नेंहोर; बाडिआक बोन ग्रेतीन्', 'रेगेच राक' आदि बहुत ही प्रमुख हैं। कहानियों में 'हुदुपगिरी तथा डिगू' बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनकी कई अच्छी रचनायें आकाशवाणी से प्रसारित हुई हैं। कवि ठाकुर प्रसाद मुमू ने नागरिकों में नवजागरण का सन्देश देते हुए कहा है—

दारा काना ओकतो आड़ा, आम हों सेंडोक्-आम ;
बोयहा लेका साकेन सोमात्र आम हों तिगुयाम।

अर्थात्— कवि 'बाड़ेम हुड़िया' शीर्षक अपनी कविता में कह रहा है—नवयुग का प्रभात पास में आ रहा है। अतः नागरिकों को वह आशा दिलाता है— अब तुम भी आगे बढ़ोगे। अन्यान्य लोगों की तरह तुम भी अपने समाज में फूलोगे फलोगे।'

कवि देश के प्रति लोगों में आदर्श की भावना भरता है। वह अपने देश को स्वर्ग-सा महान मानता है। कवि मानता है— देश माता के लिए प्राण की बाजी लगाना है। उसने लिखा भी है—

भारोत गे दो तोआ दारे दिसाम सोरेग सोमाना;
भारोत लागिद् जिवी दाँडे आम दो आलोम तायोमा।
होहोयमे आम, होहोयमे आम, बेगोर बोतोर होहोयमे;
भारोत इनाक्, भारोत इनाक्, भारोत इनाक् होहोयमे।

अर्थात्— हमारी भारत माता स्वर्ग के तुल्य है। माता के लिए प्राणों की बाजी लगाना है। कवि लोगों से कहता है, पुकारो! पुकारो! पुकारो! भारत हमारा है, भारत हमारा है।

भारत को कवि ठाकुर प्रसाद मुर्मू प्रगतिशील बनाना चाहता है। वह समझता है जाति, धर्म एवं भाषा के विवाद उठ खड़ा होने से देश की प्रगति नहीं हो सकती। अतः कवि चाहता है, देश के नागरिक इन अभिशापों से ऊपर उठें, देश को शक्तिशाली बनायें। कवि ने अपनी एक कविता में कहा है—

आजाद दिसाम भारोत दिसाम, आम दो आजाद होपोनमे;
चेदाक् आदो थिर दो ताहेन नित हो ताहेन जापित गे?
लाहाक्मे आम, लाहाक्मे आम, लाहाक्मे आम, लाहाक्मे;
जाति-धोरोम – भाषा-बिवाद हिडिञ काते लाहाक्मे।

अर्थात्— भारत आजाद देश है; तुम भी आजाद देश के पुत्र हो। अब तक तुम क्यो सोये हुए हो। उठो! आगे बढो, आगे बढो। जाति, धर्म, भाषा के विवाद को भूल जाओ। इन्हें भूलकर ही वह आगे बढ़ सकता है।

ठाकुर प्रसाद जी की कविताओ में अन्तर्वेदना कम नही है। उसमें हमें कवि की आत्म-अनुभूति मिलती है। उनकी रचनाओ में आत्म-विभोर होने की क्षमता है। एक उदाहरण देखें—

बुरू लतार बा़द रे गुपा काडा,
ओरोङ केदाय तिरिया़ ञोहोड-ञोहोड
ओना ञोहोड आतेन, इञ दो आ़इकाउ,
ओटाङ आ़चुर लेका बुरू लोदाम।

तिरे घिर एन तिरिया़, बाङ इञ बडाय,
तिरे हा़सुर बेरे बाङ इञ ञेलान।
इञ दो ञू बुल जेमोन ञोहोड ञू ते,
बुड ुप् ताहेन बुरू घिरी चेतान।

अर्थात्— पहाड की तलहटी में गोपी ने बाँसुरी बजायी है। उसकी मधुर आवाज सुनकर मेरा मन प्रफुल्लित हो गया। वह इतना ध्यानमग्न हो गया कि बाँसुरी की ध्वनि कब बन्द हुई, मुझे मालूम नही हुआ। मैंने उसकी मधुर ध्वनि में अपने आप को खो दिया।

कवि के काव्य में आध्यात्मवाद की भी पुट है। कवि ने एक स्थल पर कहा है—

इञ दोय एभेन किदिञ, इञ दोय बेरेद् किदिञ्।

आमाक् दुलाड़ राड ते जिवी राड़ेन् ।
इन होय होहोवादिञ, इञ दोय देलावादिञ,
आमाक् बेंगेत् गातिञ ! दुलाड़ पेरेच् ।

(४)

नवाँ जिवी गातिञ ! नवाँ जियोन ,
आमाक् आपाम बेंगोर तारा गेया।
नवाँ एनेच् गातिञ ! नवाँ सेरेञ ,
आमाक् दुलाड़ बेंगोर बेरथा गेया।

अर्थात्— मैं तुम्हारी प्रेमवाणी से जागृत हूँ। तुमने मुझे पुकारा है, तुमने मुझे ललकारा है। तुम्हारी आँखों में प्रेम प्रभावित है। कवि आगे चलकर कहता है— तुम्हारे बिना जीना बेकार है। तुम्हारे बिना नाच, गान और प्रेम सब व्यर्थ है।

कवि ठाकुर प्रसाद मुर्मू इन दिनों महालेखापाल, राँची के कार्यालय में एक सहायक का काम कर रहे हैं। इसके पूर्व वे किसी स्कूल में शिक्षक थे।

(८) श्री शारदा प्रसाद किसकू (१९२६-)

श्री शारदा प्रसाद किसकू का जन्म सन् १९२६ ई० में पुरुलिया जिला के अन्तर्गत दाँडिकाडोला' गाँव में हुआ है। उनके पिता का नाम श्री चरण किसकू है। उनका जन्म एक साधारण परिवार में हुआ है। पढ़ने में वे बहुत तेज थे, पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण उन्होंने अपनी कालेज-शिक्षा को पूरा नहीं किया। मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास की थी और कालेजी शिक्षा पाने के लिए विष्णुपुर रामानन्द कालेज में वे दाखिल भी हुए थे, पर विपरीत परिस्थिति के कारण वे असफल रहे।

श्री शारदा प्रसाद किसकू एक कवि हैं। उन्होंने अधिकतर कविताएँ ही लिखी हैं। उनका उपनाम 'सोतको मोलोक' है। उनकी 'प्रसाद' नामक कहानी बहुत प्रसिद्ध है। उनकी दो कविता की पुस्तकें— 'भुरका इपिल' तथा 'कुहुवाङ' प्रकाशित हुई हैं। उनकी कविताएँ देश-प्रेम, समाज-कल्याण एवं प्रेम और भक्ति सम्बन्धी हैं। उनके पद गेय हैं, इसी कारण वे लोकप्रिय हैं। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में प्रेम की छवि अभिव्यक्त हुई हैं—

"आमाक् मोने बाहा दारे इञाक् मोने रातेत् ;
ओकोय लेकानिच् एदिला लोर्आं बाहा जोतेद् ॥"

अर्थात्— प्रेयसी ! तुम्हारा मन फूल का पौधा है और मेरे मनरूपी झाड़ी से घेरा हुआ है। अब किसको इतनी हिम्मत है कि इस फूल को छू सकता है।

कवि झरना को सम्बोधित कर कहता है—

झरना जुदि बञाव जोङाय बाथान
दनाङ आड़ी दनाङ,
बाय सोदोरा जुदि धरती चेतान
रासका चिलि समाङ,

अर्थात्— यदि पानी का झरना अपना पथ भूलता है, तो वह उबड़-खाबड़ धरती को चुनता है। फिर भी वह अपनी खुशी को किसी पर प्रकट नहीं करता है।

कवि शारदा प्रसाद किसकू को गरीबों पर दया है। उन्हें वे मानव मानते हैं। गरीबी के कारण उसकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मानव गरीबी से कैसे मुक्त हो, यही कवि को चिन्ता है। कवि अपने 'सगेंड सेरेञ'

शीर्षक'कविता मे कहता है—

चेद् रे दोम आमाऽलिया ?
आम दो एहो नामालिया !
कुहाड़ दो ताम ये'बार आना मे ?

सनाम टाएडी हाड़ी - हाड़ी ,
सुकेम आमा ओका घडी ?
इञ दोञ सुनोगाविक् ओना गे ।।

अर्थात् -- हे गरीब ! तुम किसी के मालिक नही हो। तुम्हारी मजदूरी ही मात्र बारह आना है। सर्वत्र तुम्हें उपेक्षा मिलती है। कवि जानना चाहता है—उसे कब और कहाँ सुख मिलेगा। कवि सदैव उसकी ही चिंता में डूबा रहता है।

किसकू जी ने राजनीति से भी अपना सम्बन्ध स्थापित किया है। सन् १९६२ के चुनाव में विधान-सभा के लिए वे खड़ा हुए थे, पर सफल नही हो सके। आजकल वे एक स्कूल में शिक्षक है। 'खेरवाल आड़ाङ' पत्रिका के वे सहायक सम्पादक भी रह चुके हैं। वह पत्र बाकुडा (बंगाल) से बगला लिपि मे निकलता था।

(६) श्री राजेन्द्र प्रसाद किसकू (सन् १९३७–)

श्री राजेन्द्र प्रसाद किसकू का जन्म सन्ताल परगना के गोड्डा थाना अन्तर्गत अमरपुर नामक गाँव मे २७ फरवरी, १९६२ ई० को हुआ है। उनके पिता का नाम श्री अर्जुन किसकू है। एक साधारण कृषक के घर मे जन्म लेकर उन्होंने बी० ए० किया है। यह उनकी लगनशीलता का ही द्योतक है। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है— सन्ताल साहित्य का विकास। साहित्य का वे प्रचार भी चाहते हैं, निर्माण भी। सस्ता साहित्य

वे नहीं चाहते हैं। काफी चिन्तन और मनन के बाद वे लिखते हैं। उर्दू की कुछ रूबाइयो का सन्ताली में अनुवाद किया है। कविताओं में 'जुड़ासी धारती योक् ग्राम रिमिल', 'हुयाक दिसा' आदि उनकी कवितायें बहुत प्रसिद्ध हैं। कवि बादल को सम्बोधित कर कहता है—

" उदुगताम मुठान सेरमा पेरेच् ;
दुखःली धरती इरची राङेच् ।
चासा होड़ाक् हाँसा बेनाव ;
सिरजोन रानीयाक् होड़मो साजाव ।
चासा होड़ रेन आशा रिमिल !
जुड़ासी धरती चोक् ग्राम रिमिल !"

अर्थात्— हे बादल ! तुम अपने मुखड़े को आसमान में दिखाओ तथा तपती हुई धरती को शान्त करो। ऐसा होने के बाद ही कृषक की जमीन बन सकती है और सृष्टिकर्त्ता का शरीर शोभायमान हो सकता है। कारण, कवि कहता है—कृषको की आशा बादल ही है। यह सुन्दर धरती बादल का अभिनन्दन करती है।

श्री राजेन्द्र प्रसाद किसकू ने उर्दू रूबाइयों का सन्ताली भाषा में अनुवाद किया है। उसका एक नमूना इस प्रकार है—

चादोय हासुरोक्, हासुर ओचोवाय मे,
बाम्बेर मुठान मेटावक्, मेटाव ओचोवा से।
मेदाय खोनिञ मेरेञ आगूयेत् कान ओका—
ओना गे तेहेञ दो सेरेञ ओचोवाञमे।
जिनगी रेयाक् 'सर्चलाइट' जोल ओचोवा।
जुगे-जुग ओना दो डिगिर ओचोवा।

सेताक् शिशिर जियोन मेनातेय हायोक्,
हाय - हाय तिरे - जुगे हाय ओचोवा।

अर्थात्— सूर्य डूब रहा है, तो डूबने दो।
उज्ज्वल मुखड़ा ह्रास हो रहा है, तो ह्रास होने दो।
चिरकाल से गाना गा रहा हूँ, तो उसे गाने दो।
जिन्दगी की रोशनी को रौशन होने दो,
दो युग - युग प्रज्ज्वलित होने दो।
सुबह का शिशिर अपना अल्प जीवन पर
तरस खा रहा है, उसे तरस खाने दो।

श्री राजेन्द्र प्रसाद किसकू इन दिनों मसलिया प्रखण्ड में कल्याण-निरीक्षक है। कविता के अलावे उनकी कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। प्रकाशित कविताओं का उनका एक संकलन प्रकाशन के लिए तैयार है। पर जानने में आया है कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे वे प्रकाशित नहीं करा पा रहे है।

(१०) श्री लक्ष्मी नारायण मुर्मू 'पानीर पियो' (सन् १६४४—)

श्री लक्ष्मी नारायण मुर्मू 'पनीर पियो' का जन्म संताल परगना जिले के महगामा थाना के अन्तर्गत फुदकीपुर गाँव में १ ली मार्च सन् १६४४ में हुआ है। आजकल पानीर जी एक स्कूल में शिक्षक हैं। कवि ने एक साधारण कृषक के घर में जन्म लिया है। गरीब के लड़के भी कुछ कर सकते हैं, अपने से ऊपर उठ सकते हैं। कवि ने अपनी इस भावना को 'रेंगेच होपोन' शीर्षक कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है—

रेंगेच् ओडाक् रेन जनाम एना,
आन्हें लोबोक् ओम तेन हारायेना।

इंगाञाक् जिद ते, ग्रापुञाक् बुद ते,
थोड़ा ग्राकिल होव पड़ाव एना।
ग्रामवा सुरपुच् काते ग्रापुञे काुमी वेत् ,
इञ लागित् गे हाँकोर-कादोर।
बाखरा दाका एम काते इंगाञे कोल किदिञ,
'ग्राकिल हारजोङमे, पोरहोम ञामा।'

ग्रर्थात्— मैंने गरीब के घर जन्म लिया। कोदो की गुरुई खाकर मैं बड़ा हुग्रा। कुछ ग्रपनी जिद्दी ग्रादत से तथा कुछ पिता की प्रेरणा से मैंने कुछ विद्या प्राप्त की है। मेरे पिता ने मेरे लिए ही दिन-रात काम किया है ग्रौर ग्रपने मुँह से रोटी देकर मुझे पढ़ाया है। तुम भी विद्या प्राप्त करो, विद्या में ही लाभ है।

कवि ग्रपना, ग्रपने समाज का एव ग्रपनी जाति का विकास चाहता है। गरीबी-ग्रशिक्षा उसकी प्रगति को रोक नही सकती। ग्रतः कवि देशवासियो के नाम सन्देश ग्रपनी कविता 'देबोन कुँकुक् ग्रा' में देता है —

बाबो, ताहेन ञापित् ग्राकात्,—
बाबो ताहेन नितोङ होहाक्।
लाहाक् ग्राबो, बाबो बोकाक्,
बोयहा! देबोन कुँकुक्-ग्रा ॥
बाबो बाताव रेंगेच्-तेताङ,
बाबो बाताव सेतोङ-राबाङ।
देजोक्-ग्राबो, लाहाक्-ग्राबो,
बोयहा! देबोन कुँकुक्-ग्रा ॥

ग्रर्थात्— हम लोग सोये हुए न रहें तथा हम ग्रब मूर्ख न रहें।

आगे बढें , अभिज्ञ न रहें। हे भाई ! आगे बढें , अभिज्ञ न रहें। हे भाई हम लोग पूरी कोशिश करें। गरीबी की परवाह न करें। जाड़े तथा ग्रीष्म की परवाह न करे। आगे बढते चलें ; ऊपर चढ़ते चलें। हे भाई ! हम लोग पूरी चेष्ट करें।

(११) श्री इगनातिकम सोरेन 'बिरवाहा' (सन् १६४१—)

श्री बिरवाहा जी का जन्म सन्ताल परगना जिले के अतोन्डा नामक गाँव में सन् १६४१ में हुआ है। नौकरी करना और पढना , इनके जीवन के दो पक्ष रहा है। जीवन से संघर्ष करते हुए उन्होंने बी० ए० किया है। विद्यार्थी-जीवन से ही साहित्य के प्रति उन्हें ममता रही है। कविता , कहानी और निबन्ध उन्होने सन्ताली भाषा में लिखा है। कहानियो में उनकी चुडिन , दान , बिरवास्टा बहुत ही प्रसिद्ध है। कवितायो में ' वाङआलगांवा ' , ' ओन्तोर रिवहा ' और ' कोयोक् होर ' बहुत अच्छी है। 'वाङआलगावा' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जाय :—

'दुलाड़ रे सुक आमोक् गेया मेनरपान
दुलाड़ रे ओन्तोर आमोक् दो बाङ आलगावा।
हिडिञेम कुरूमुटु गेया मेन खान
ओन्तोर गेच् ओडोक् काक् दो बाङ आलगावा

अर्थात्— प्रेम में सुख मिलता है , यह बात सही है , लेकिन प्रेम में हृदय पाना आसान नही है। प्रियतम को भूलने की चेष्टा की जायेगी , हृदय से उसकी याद को काट कर बाहर कर देना आसान नहीं है।

श्री बिरवाहा जी आजकल साहेबगंज कालेज में है। प्रेम सम्बन्धी कहानी और कविताओं के लिए सन्ताली भाषा के साहित्यकारो में उनका अच्छा स्थान है।

(१२) श्री बाबू लाल मारवाडी ' लू '

कवि का जन्म सन्ताल परगना जिला अन्तर्गत जामा थाना में अवस्थित चिट्ठुड बीना नामक गाँव में हुआ है। उन्होने समाज सुधार की कविताएँ लिखी हैं। ' ऐभन ', 'भारोत गो लागित', 'सोमाज सागाड' आदि उनकी कविताएँ अच्छी जान पडती हैं। ' सोमाज सागाड् ' शीर्षक कविता में कवि ने अपने समाज के लोगो से आत्मनिवेदन करते हुए कहा-

" जोतोम दिसाम रेन जोतो बो यहा
देबोन बेगॅन फारनाक् लाहाक लागित्
रिफिड़ जो मोक ते देबोन लडाके !
आबो गे चोड बाने तायनोम् ओकान ।।"

अर्थात्— कवि देश के भाइयो से अनुरोध करता है कि हम आगे बढने के लिए तैयार हो जायँ। कवि कहता है कि सोये हुए रहने से हमारी उन्नति नही हो सकती है। हम विश्वास एव धैर्य के साथ बढते जायँ क्योकि हम लोग ही सबसे बिछड़े हुए हैं।

(१३) श्री सल्हाय हासदा—

श्री सल्हाय हाँसदा का जन्म सिंहभूम जिला के बारूडागुवा नामक गाँव में हुआ है। उनमें लिखने की प्रवृत्ति बचपन से ही उत्पन्न हुई है। उनकी लेखनी किसी साहित्य को विधा मानकर उसी पर नहीं चली है; उन्होने साहित्य की सभी विधाओ पर लिखा है। नाटक, कहानी लेख, कविता— सभी कुछ उन्होंने लिखा है। उनकी कहानियो में 'हानहार भायो हेबेर होतोद्', 'महोंच जालोका उनी मानलेका', नाहाक् दो राकेन जहाव सेरेत्र', 'रूपी माई', 'रॅगेच्' आदि बहुत प्रसारित हैं। उनकी कविताओं में 'जानाम दिसाम लागित्, 'चिरगाल' चालाक् गियाज इल हो" लाइहाई' बोड़सोरेत्र

आदि बहुत प्रसिद्ध है। उनकी कविताओं की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

" छातकाज नोडोक लेन, कवाज आञ्जोम केद् ।
दुलाड़ गातेज नित हो बानुगिच् थां ।
दायाक् मे दे दुलाड़ जानाम दिसाम लागित ।
साआक् मे दे दुलाड़ जानाम दिसाम ।"

अर्थात्— प्रिय ! मैं पिछवाड़ी की ओर निकली तो तुम्हारी चर्चा सुनी। लोग कह रहे थे—'उसका पति कहाँ है। प्रिय तुम कहाँ चले गये हो ? अपनी मातृभूमि के प्यार के लिए तैयार हो जाओ। अस्त्र-सस्त्र से सज्जित होकर दुश्मनों से लडने के लिए मैदान में आओ।' पत्नी की यह बात पति के लिए कितना उत्साहवर्द्धक है।

श्री सल्हाय हाँसदा सन्ताली भाषा में लिखने के अलावे मुण्डारी और हो भाषा में भी लिखते है। ज्ञात हुआ है कि सन्ताली भाषा में उनके तीन-चार नाटक तैयार है, पर आर्थिक कठिनाईयों के कारण उनका प्रकाशन नही हो रहा है।

(१४) श्री भागवत मुर्मू 'ठाकुर' (१६३०—)

श्री भागवत मुर्मू 'ठाकुर' जी का जन्म सन् १६३० ई० में मुंगेर जिला के बेला नामक गाँव में हुआ है। उन्होने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और आई० एस० सी० तक की शिक्षा हजारीबाग कालेज में पायी है। उनका सेवा कार्य सन्ताल पहाड़िया सेवा मण्डल से आरम्भ हुआ। इसके बाद वे राजनीति में आ गये। सन् १६५७ से १६६२ तक बिहार विधान सभा के एम० एल० सी० रहे हैं। आज भी वे सेवा मण्डल के सहायक मन्त्री हैं। वे ठक्करबापा सेवाग्राम (फतेपुर, देवघर) में रहते हैं।

सन्ताली भाषा के वे विशेषज्ञ हैं। उनकी लेखनी बहुत शक्तिशाली है।

उनकी रचनाओं का प्रभाव भी स्थायी होता है। इनकी कहानियों में 'लोग्रावाड़ेजोम', मुई जे सारी बुरी दो', 'किया बाहा लागिव ललाव एना रोमेन' आदि प्रमुख हैं। कविताओं में 'सेन्दरा', 'मराङ्ग बुरूय होहो रदा, चेद् हों वाङ लान' प्रमुख हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'आबोरेन राष्ट्रपति', 'सन्त विनोबा भावे', 'दोङ सेरेञ' आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियों एवं कविताओ में राष्ट्रप्रेम एवं समाज को सुधारने का सन्देश रहा करता है। उनकी कविताओं का एक नमूना देखें—

" येद् हो, वाङरपान बार ठोप मेत दाक् गे
जोरो वाम दिवहारे।
इञाक् दुलाड़ आम ठेन सेतेर काते उदास
आलोम समाड़ चोरे।।"

अर्थात्— यदि तुम मेरे लिए कुछ नहीं कर दे सको तो कम से कम जलते हुए चिराग में दो बूँद आँसू गिरा दिया करो ताकि मेरा प्यार तुम्हारे पास से निराश न लौटे।

(१५) श्री चित्त टुडु—

श्री चित्त टुडु जी का जन्म भागलपुर जिला में शाम बाजार के निकटवर्ती गाँव शोभापथर में हुआ है। कवि राष्ट्रभक्त है। उसे समाज से से मोह है। वह अपने समाज को उठाना चाहता है। उसका राष्ट्र सबल हो, यही कवि का लक्ष्य है। उनकी कविताओं का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। उनके कई स्वरचित गीतो का रेकार्डिंग भी हुआ है। चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण के समय कवि ने नागरिकों को देश के लिए बलिदान होने का सन्देश दिया था। एक कविता में कवि ने कहता है—

'थू' मकडो बोजताम मे ढेका पागरा तो दताम
दिसाम रूखिञाय कामी लागित दान होवताम।
चाय चम्पा रेपेच् भापाक्-मेपीय् दिसाई मेसे
कानेर सीना हाँतिर साक्कुहोको भाकरिञलेद्।'

अर्थात्— अपने शरीर का सारा आभूषण उतार दो एवं उसे सुरक्षा कोष में दान कर दो। क्या तुम चई-चम्पागढ़ में हुई लड़ाई को भूल गई हो? उस समय कान का इयरिंग तथा हाथ की चाँदी की चूड़ियाँ भी दे दी गई थी।

(१६) राम सहाय किसकू 'रापाज' (१६३२-)

रापाज जी का जन्म हजारीबाग के चम्पानगर में सन् १६३२ ई० में हुआ है। उन्होंने कहानियाँ एवं कविताएँ लिखी हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक भावनाओं एवं राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत हुआ करती हैं। कहानियों में 'तेजपुर सेच्', 'अस्पताल रे', 'दिसाम दुलाड' आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं। कविताओं में 'नेडब्रिज जोहाराम आबोदिसाम' 'तोबोदारे' आदि बहुत प्रमुख हैं। उनकी कविता का एक नमूना देखें:—

भारती पुरी पृथिवीरे आमगे सोरोस मेनामा
भारोत इलाङ जोनोम दिसाम ते हजोत जो हाराना।

अर्थात्— इस पृथ्वी पर हे मातृभूमि भारत! तुम्ही सबसे श्रेष्ठ हो। भारत मेरी मातृभूमि है, मैं तुम्हें श्रद्धा से नमस्कार करता हूँ।

(१७) श्री मनीन्द्र हाँसदा (१६३४-)

श्री मनीन्द्र हाँसदा का जन्म में भागलपुर जिला के बौंसी के निकट बेलनिकरो गाँव में १ ली फरवरी, १६३४ को हुआ है। उनके पिता का नाम श्री चुनकू हाँसदा है। सन्ताली, हिन्दी, संस्कृत एवं

अंग्रेजी की शिक्षा उन्होंने पायी है। लिखने की प्रवृति उनमें बाल काल से ही उत्पन्न हुई है। गीता प्रवचन का सन्ताली अनुवाद उन्होंने किया है। इनकी कहानियों में ' कुकमू ', ' दिमा ', ' दान ' आदि बहुत ही प्रसिद्ध है। उनकी कविताओं में 'बिदाकाज में' और 'आलोसेन उइहार' प्रमुख हैं। नेहरू जी के कई भाषणों का उन्होंने सन्ताली में अनुवाद किया है। आकाशवाणी से उनकी रचनायें प्रसारित होती रहती है। इन दिनों वे जन सम्पर्क विभाग में सहायक जन सम्पर्क अधिकारी है।

(१८) श्री गुमास्ता प्रसाद सोरेन (जन्म १९४३—)

श्री गुमास्ता प्रसाद सोरेन का जन्म पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत पुरूलिया जिला के उदलबानी गाँव में २ जून, १९४३ को हुआ है। वे अपनी मातृभाषा के बड़े प्रेमी हैं। उन्हें विश्वास है, जब तक मातृभाषा का विकास नही होगा ; तब तक राष्ट्र का विकास नही होगा। देश और समाज प्रगतिशील नही होगा। बनावटी दाँत से विदेशी भाषा की उन्होने तुलना की है। स्वाभाविक दाँत से खाने में जो आनन्द मिलता है, वह आनन्द बनावटी दाँत से खाने में नही मिलता। वैसे ही सन्ताली भाषा में पढने से सुख, दुःख, हँसी–खुशी प्राप्त होता है, वैसा अनुभव विदेशी भाषा के माध्यम से पढने में नही होता है।

उनकी प्रकाशित पुस्तको में ' होड़ सेरेञ पुथि ' तथा ' आखड़ा पुथि ' बहु उल्लेखनीय हैं। उनकी कविताओं में ' दिसा़ आचुर ', 'उदुक् आलेमें ', ' नेहरू बाबा ', ' बाड़वी कुड़ी ', ' गोरीवा बाङ बोगेया ' आदि बहुत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं।

(१९) माँझी हाँसदा (जन्म १९२७–)

इनका जन्म सन्ताल परगना में अवस्थित मोहालो नामक गाँव में २४

जनवरी, १९२७ को हुआ है। इनके पिता का नाम श्री सरजू हाँसदा है। पेशा से वे एक स्कूल में शिक्षक है और कर्म से एक सुधारक है। सन् १९४७ ई० से रांगा अपर प्राईमरी स्कूल में वे अध्यापन कर रहे हैं। उन्होंने लिखा तो बहुत है, पर सुविधा के अभाव में उनकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुई हैं। उनकी कुछ रचनायें पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने सन्ताली भाषा में कई कविताएँ लिखी हैं जो बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं। उनकी 'सुरजमनी' कहानी बहुत प्रसिद्ध है। कवि ने अपनी कविता में एक सन्देश दिया है—

" दिडह्रेयेनेम सोतामोङ ,
ओक्ते रेताम गोपोङ ।
आलोम पाचोक् भुकोक् मे ,
सुई भुगाक् रे हातीम पारोमे ।"

अर्थात्— कवि अपने देश के नागरिकों से कहता है— तुम बलवान हो ; तुम शक्तिशाली हो। अपने समय को यों ही नष्ट न करो। हिम्मत पस्त नहीं होना चाहिए। चेष्टा करो। कवि को विश्वास है कि चेष्टा करने पर असम्भव काम भी सम्भव जान पड़ेगा। उसमें सफलता मिलेगी।

(२०) श्री महादेव चन्द्र दास मारखडी

श्री मारखडी का जन्म सन्ताल परगना जिले के बुटिया नामक गाँव में हुआ है, जो पत्थरगामा थाना के अन्तर्गत बसा हुआ है। सन्तालों में सुधार लाने के लिए इन्होंने 'सन्ताल सुधार समिति' कायम की है। उस समिति द्वारा सन्तालों को अच्छा मानव बनने की शिक्षा दी जाती है। स्वयं उस समिति द्वारा सभाओं का आयोजन कर वे भाषण दिया करते हैं। वे गायक कवि है। उनकी सभी कविताएँ गेय हैं। अब तक उनकी दो

रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं— एक का नाम 'म़ाकिल बातो' है और दूसरे का नाम 'म़ाकिल डाहार' है। ये दोनों उनके गीतों के संग्रह हैं। पहली पुस्तक उनकी १९६० में छपी थी और दूसरी पुस्तक १९६२ में। उनकी नयी पुस्तक 'लखी माँ' छप रही है। उन्होंने रामायण का अनुवाद सन्ताली भाषा में किया है, जो अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है। 'सन्ताल पोरोब रेयाक ओपोनो' और 'बुरू बोंडे आर करमू-धरमू' ये दोनों ग्रन्थ उनके तैयार हैं। वे आकाशवाणी के कलाकार हैं। कवि महादेव चन्द्र दास मारण्डी ने अपने 'डीते दो कामी' शीर्षक कविता में कहा है—

तीते दो कामी मे नाना हुतार कामी में

अर्थात्— तुम अपने हाथों मे नाना प्रकार के काम करो, लेकिन तुम्हारा ध्यान भगवान में ही रहे। कवि अपने लोगों को आगाह करता है कि सूर्य्य और चन्द्रमा ही उनके कामों के गवाह हैं। अतः कवि चाहता है कि लोग धार्मिक कामों में लगे रहें। उसी में सुख है।

(२१) श्री छोटेलाल सोरेन 'उपेलबाहा' (जन्म १९४२ ई०-)

इनका जन्म भागलपुर जिलान्तर्गत देवराज गाँव मे ५ जनवरी, १९४२ ई० को एक साधारण परिवार में हुआ है। कविता और कहानी, साहित्य के इन दोनों पक्षों पर उन्होंने लिखा है। इनकी लेखनी में एक नये राष्ट्र का स्वर निकलता है। देश-प्रेम और राष्ट्रीय एकता इनकी कविताओं का सन्देश है। इनकी कहानियाँ भी देशभक्ति की भावना से भरी रहती हैं। 'कोचे काडवा बड़े ओनाय में' तथा 'पाहिला बुरी' शीर्षक इनकी कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कविता के माध्यम से इन्होंने समाज को अच्छी शिक्षा दी है—

जुग दो रे बोदोल एन,
दिसामताबोन साधिन एन,
सोमाज देबोन बोदोलताबोना।
मारी - चालीबोन सुधारा,
देबोन बेरेद् उसारा,
सोमाज देबोन लाहायताबोना ॥

हारडी - पौरा सोहोक् रे,
बुद - माकिल बागुक् ते,
सोमाजताबोन जुरहा बकाना!
हारडी जुबोन बागीया,
माकिल देबोन सेंडाया,
सोमाज देबोन लाहायताबोना ॥

अर्थात्— कवि समाज की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहता है—समय बदल गया है, देश स्वाधीन हो गया है। अतः हमलोगों को अपने समाज को बदलना है, महान देश के रूप में उसे बनाना है। कवि स्वीकार करता है कि उसके समाज में अनेक बुराइयाँ आ गई हैं, उनसे हमें मुक्त होना है। हमें नशीली चीजों को छोड़ना है और शिक्षा प्राप्त कर अपनी रीति-नीति में सुधार लाना है। अपने समाज को प्रगति के पथ पर अविलम्ब ले जाना है।

(२२) श्री भुवनेश्वर सोरेन 'भैरव' (जन्म १६२६ ई०)

भैरव जी का जन्म भागलपुर जिलान्तर्गत देवराज गांव में १ जनवरी, १६२६ ई० को हुआ है। कवि के सामने उसका समाज है। जिस समाज

में कवि ने पैदा लिया है, उसके सहारे वह भारत को एक नया राष्ट्र नहीं बना सकता। समाज में चारो ओर अन्धविश्वास फैला हुआ है। अन्ध-विश्वास को कवि प्रगति का रोडा मानता है। वह उस रोडा को हटाने के लिए चिन्ताशील है। वह साहित्य के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र का सुधार चाहता है। इसी लक्ष्य को लेकर कवि कविता करता है। उनकी कविताओं में 'भागे कामी', 'सिखौना पेरेच् औनडहे', 'जेरद् रिवाह', 'गोगो बेरथा', 'गेताय जियोन' आदि बडी ही अच्छी है। 'लाहा तेगेल ताडाम' नामक उनकी कविता बहुत ही प्रेरणादायक है। कवि कहता है—

" ओलोक् मेसे बाबू पाठहाक् मेसे
साहित्य बाती बाबू जेरेद मेमे।
जुत अकान बाबू सामोज ओडाक्
मारसाल ताम से बाबू सामोज ओडाक्।"

अर्थात्— बेटा! पढना-लिखना सीखो। साहित्यरूपी दीपक को जलाओ एव अपने समाज के घर को प्रकाशित कर दो।'

' गे मोड अगस्त ' शीर्षक कविता में कवि ने कहा है—

ओका दिनबो साधिन अकान ओना दिन गे तेहेञ ;
आचुर - बिहुर काते भारहो सेटेर अकान तेहेञ।
ओल मा दोहो काक्-आबोन नोआ सोनोत दिन—
सोना - रेनाक् हारोप ते नोआ रासकाक् दिन।
नोआ रासकाक् सोनोत दिन—गेमोड़ अगस्त तेहेञ—
मनावाबोन कुसी-रासका - हुलास सालाक् तेहेञ।
एन्ते गेमोड़ अगस्त दिन गे साधिन अकानाबोन ,
नोआ गेमोड अगस्त दिन दो दिसा दोहोयाबोन।

गैमोड प्रगस्त दिन गे चोक जिवी प्रालाय काते ,
दिसम दोबो सुधिन प्रकाद इंगरेज लागा काते ।

अर्थात्— स्वतंत्रता दिवस को कवि पवित्र दिवस मानता है। वह चाहता है कि यह पवित्र दिवस उसके हृदय में अंकित रहे। कवि कहता है— आज स्वतंत्रता दिवस है, आनन्द का दिवस है। वह स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहे। आज १५ अगस्त है, इसे आनन्दविभोर होकर मनावें। हम १५ अगस्त के दिन को कभी नही भूलें। यह दिन प्राण दान करने के पश्चात् ही प्राप्त हुआ है। अंग्रेजो के भगाने के बाद ही यह देश स्वाधीन हुआ है।

(२३) श्री जेठू मुर्मू 'कोचेकाड़वा' (जन्म १९४३ ई०)

'कोचेकाडवा' जी का जन्म भागलपुर जिलान्तर्गत इटवा गाँव में जो राजबाडा के पास है, २ जनवरी, १९४३ ई० को हुआ है। उनके पिता का नाम श्री लक्ष्मण मुर्मू है। वे सन्ताली भाषा का विकास चाहते हैं। जिस प्रकार आज सन्ताल साहित्य का निर्माण हो रहा है, उनसे उन्हें संतोष नही है। उनका कहना है—'सन्ताली पुस्तको के प्रकाशन के लिए हमें अच्छी-अच्छी पुस्तकें—कविता संग्रह, नाटक, उपन्यास आदि लिखना है एवं उन्हें सहयोगी प्रकाशन के माध्यम से प्रकाशित करना है।' वे चाहते है कि विश्वविद्यालयो में भी सन्ताली एक वैकल्पिक विषय रहे। इसके लिए उन्होंने कुछ आन्दोलन भी किया है। उनकी प्रमुख कविताएँ है—'सन्देश कोडा', 'गा—बा—भोक्ता', 'रोंगाद दुलाड', 'एन हों आबो गे बोन जिताक्', 'पुरवरी मार गाडा' आदि है।

(२४) श्री चैतन्य कुमार मारवाडी 'अरसाल'

श्री अरसाल जी का जन्म भागलपुर जिलान्तर्गत सबाईजोर गाँव में

हुआ है। उनके पिता का नाम श्री लखन मारण्डी है। वे कविता, कहानियाँ एवं निबन्ध लिखते हैं। समाज सुधार और राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी उनकी रचनायें होती हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'आजाद दिशाम', 'हाय रे भुकाँड घासा', 'जोनोम दिसामिञ', नानुवाव गेए' आदि हैं। कवि कहता है—

" आतो-आतो हो इस्कूल-ओड़ाक्,
मौजा मौजा हो हुनार चेतेतु जागा;
आयो होड़ कान हो'ले बाबा होड़ कान,
निलोक् बा'ले ताहेन हो होहाक् कौंडी।"

अर्थात्— गाँव गाँव में विद्यालय - भवन,
इससे हर मौजे का हुआ जागरण
हम सभी गाँव के आदमी में
हुआ नित्य प्रकाश का संचरण।

(२५) श्री जोसेफ चन्द्रशेखर हाँसदा—

श्री जोसेफ चन्द्रशेखर हाँसदा जी का जन्म सन्ताल परगना जिलान्तर्गत बरहेट के निकट सिमोलटाव गाँव में हुआ है। कवि के रूप में उन्होंने अच्छी ख्याति पायी है। उन्होने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कविताओं में 'दुलाड़', 'जोनोम दिसाम' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

(२६) श्री जेठा कुमार चोंडे 'बिरचेंड़े' (जन्म १६४२–)

इनका जन्म भागलपुर जिलान्तर्गत नीमटांड गाँव में जो कटसकरा के पास है, सन् १६४२ ई० के दिसम्बर माह में हुआ है। इनकी लेखनी एक साथ नाटक, कहानी एवं कविता पर चलती है। समय की पुकार पर वे लिखते हैं। उनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि वे समाज में प्रगति

लाना चाहते हैं। इनकी ' अन्धा पतियाड ' (नाटक), 'बिरचेंडे साखी' (कहानियो का संग्रह) आदि पुस्तकें प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

(८७) श्री बुद्धिराय मुर्मू (जन्म १९३१ ई०)

श्री बुद्धिराय मुर्मू का जन्म दुमका से उत्तर दुमका–रामगढ़ सड़क के किनारे १० मील की दूरी पर अवस्थित कैराबनी ग्राम में ३१ मार्च, १९३१ ई० को एक साधारण किसान परिवार में हुआ है। इनके पिता का ना काडयो मुर्मू था। उन्होने आई० ए० तक की शिक्षा पायी है। वे एक भावना प्रधान कवि है। उनकी इस कविता में उनकी भावना प्रकट होती है—

माड़ लेन रे बाहा चेपेच् ,
दुमुर तेरोम आसेच् तामेच् ।
हेमेच् सेकरेच् एकेन वारसिञ,
मोसोद् लेन रे वाहा तारासिञ ।

धारती दुन्डाङ एकेन आऊडियाक् ,
बानुक् आनाङ चेद् हो सारियाक् ,
आसोम लेमाव ओकते आऊड़ियाक्,
दिसाय में जीवन ताय, दाबानाक्,

अर्थात्— कवि ने इन पक्तियो में मानव जीवन का अनुभव करते हुए जीवन को अनमोल और जवानी की फूल के साथ तुलना की है। कवि का कहना है कि फूल जब खिल जाता है तो मधु निकलता है तथा भौंरा रसपान करने चले आते हैं। परन्तु फूल जब मुरझा जाता है तो फूलों को पूछवे वाला कोई नहीं रह जाता है तथा फूलो में अस्थायी खुशियाली चन्द दिनो के लिए ही रहती है।

फिर आगे कवि का कहना है कि संसार क्षणभंगुर है, ससार में रहना मिथ्या है, क्योंकि सच्चाई कुछ भी नही है। इसलिये हे मानव ! समय को फजूल बर्बाद मत किया करो, क्योंकि तुम्हारा जीवन अनमोल है, इसे अच्छे कामो में ही लगाना।

(२८) श्री हृदय नारायण मण्डल 'अधीर'—

इनका जन्म गोड्डा सबडिवीजन के दलदली गाँव में हुआ है। इनकी मातृभाषा सन्ताली नही है, फिर भी उन्हें सन्ताली भाषा का अच्छा ज्ञान है। उसके एक अच्छे साहित्यिक हैं। उन्होने कहानियाँ लिखी हैं। इनका दोड सेरेञ नामक पुस्तक सेवामण्डल से प्रकाशित हुआ है। पेशा से कवि सरकारी नौकर है, कर्म से सन्ताली भाषा के साहित्यकार हैं। इन दिनों वे सहायक जन सम्पर्क पदाधिकारी के पद पर काम कर रहे हैं।

(२९) श्री पृथ्वीचन्द्र किस्कू—

श्री पृथ्वीचन्द्र किस्कू का जन्म गोड्डा अनुमण्डल में अवस्थित अमरपुर गाँव में हुआ है। राजनीति में उलझे रहने के कारण उन्हे साहित्य की सेवा करने का समय कम मिलता है। पर जब भी उन्हे समय मिलता है तब वे सन्ताली साहित्य निर्माण के लिए अपने समय को लगाते हैं। उन्हें सन्ताल समाज और सन्ताली साहित्य की बडी चिन्ता है। उन्होंने हिन्दी सन्ताली शब्दकोष का भी सोरेन के साथ मिलकर निर्माण किया है। सन्ताली भाषा के साहित्यकारो के वे बहुत बड़े बल है।

(३०) श्री आनन्द प्रसाद किस्कू 'रापाज'—

इनका जन्म सन्ताल परगना जिला में जामताडा अनुमण्डल के ताले-बडिया गाँव में हुआ है। ये बहुत अच्छे कवि हैं। 'उरिच् विश्वास', 'वीर बेरत् में', जय-जय हिन्दुस्तान' आदि इनकी बहुत लोकप्रिय कवितायें हैं।

इनकी दो-तीन पुस्तकें प्रकाशन के लिए तैयार हैं। कवि ने चेदाकएम तेंगो एना' शीर्षक कविता में लिखा है—

चेदाक् एम तेंगो एना ? एहो , होरतेन होड !
जेल काते सामाङ रे आलाक् संगिव होर ?
चेदाक् एम थिर एना मोञ्ज बाहा सिसिद ?
जेल काते जानुम बोतोर सिगिच् - सिगिच् !
एहो , नोमा धरती रे दो ओकारे बाम आम ?
हारखेत - सामेत बेगोर गे सुक दो सोहान !
लोहोदोक् बोतोर ते होडो बाङएम रोहोय ;
हामेटाम ओका खोनाक् एगडेखान जोय ?

अर्थात्—हे पथिक ! लम्बी-लम्बी राह को देखकर तुम क्यों रुक गये ? काँटो के बीच सुन्दर फूल को तोडने से क्यो बाज आये ? हे पथिक ! इस दुनिया में - इस धरती में दुःख और तकलीफ के बिना सुख कहाँ ? यदि तुम पानी से भीगने तथा कादो के लगने से डरते हो तो धान कैसे रोपोगे ? फिर तुम्हारी विजय कैसे होगी ?

(-१) श्री चुड़का सोरेन 'हाले डाले' —

श्री चुड़का सोरेन का जन्म भरोन्दा गाँव में हुआ है , जो सन्ताल परगने के अन्तर्गत हरियारी में अवस्थित है। उनकी कविता में राष्ट्रीयता की भावना भरी रहती है। कवि कहता है—

"जेलेल रानेच् बाबूज मानालेद मे
मयाम एनेच् खेलोड बाज मानामें।
सारडा भरडा बाबू होरोक जोङ मे।
मयाम खेलोङ , बाबू दो चालाक् में।"

भावार्थ— कवि कहता है कि एक बाप ने अपने बेटा को मेला देखने, नाच देखने के लिए मना किया था। उसी पुत्र से वह कहता है— बेटा ! मैंने तुम्हें मेला देखने एवं नाचने के लिए मना किया था, किन्तु खून की होली खेलने, देश रक्षा के लिए मर मिटने के लिए या खून का खेल खेलने के लिए मे तुम्हें मना नही करूँगा। तुम लड़ाई में अस्त्र से सुसज्जित होकर खून की होली खेलने के लिए जाओ !

कवि की कविता बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इसमे प्रेरणा देने की शक्ति है।

(३२) बाल किशोर बासकी 'अरमान' और 'इचाक्'

(जन्म १९३७ ई०-)

श्री अरमान का जन्म सन्ताल परगना जिला में पोडैयाहाट के निकट में स्थित परकटिया गाँव में हुआ है। सन्ताली भाषा के साथ ही साथ वे हिन्दी में भी लिखते हैं। इनका एक कहानी सग्रह 'कुकमू' सन् १९५२ में तथा एक नाटक 'आकिल आरसी' सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ है। उनकी प्रकाशित रचनाओं में रातेत् बाहा, कविता संग्रह; नवाँ दिबाहा नवाँ मारसाल, उपन्यास रासेल कुडी बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उनके प्रकाशन से सन्ताल साहित्य में एक नए युग का आरम्भ होगा। कवि अपनी प्रेयसी से शादी में बन्धने के लिए आग्रह करते हुए कहता है:—

'रूप गोरोंब दो सारी बाङ बेसा।
छिनाग जोरो चाबाक् रूप रासा।
गोसो बाहा लेकाम जेलोक जोवान
ओकोय सानायेया खोज तोर बाय !"

भावार्थ— अपनी प्रेयसी से कवि कहता है कि तुम अपनी जवानी का

गरुड़ मत करो। यह तो क्षणभंगुर है। जब तुम मुरझाये हुए फूल की तरह दिखाई पड़ोगी, तब तुम्हें कौन पसन्द करेगा। इसलिए कवि उसे सलाह देता है कि वह शादी के बन्धन में बँध जाय।

कवि अरमान 'बचोव मानाम काना' शीर्षक अपनी कविता में लोगों को सन्देश देता है कि—

छाता–पाता अँजेल दो रे बाचोव मानाम काना ;
मेनखान नोआ कथा इस दो मेमेन सानाव काना ,—
आपुअ – बारेन्गाक् दाहड़ी
जेमोन आलोम चुडी ;
सरहावमेको सनामको गे
आरहो हारयाड़ साड़ी ;
सोन्तोरेक् मे बाड़िच् खोन दो नोआव मेताम काना।
छाता–पाता अँजेल दो रे बाचोव मानाम काना।

अर्थात्— कवि लोगों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि— मै मेला देखने जाने की मनाही नहीं करता, परन्तु मुझे यह बात कहना है कि अपने बाप एवं भाइयों की इज्जत को मत जाने दो। तुम ऐसा काम करो कि सभी लोग तुमको तथा तुम्हारी साड़ी की ही प्रशंसा करें। यही कारण है कि कवि कह रहा है कि बुरा काम से सावधान रहकर मेला देखो। मेला देखने से कवि मना नही कर रहा है।

(३३) विद्यारत्न, रूपनारायण श्याम शास्त्री (जन्म १६३१)

श्री रूप नारायण जी का जन्म भागलपुर जिला में अवस्थित नवाडीह में १४ अप्रैल, १६३१ ई० को हुआ है। उनके पिता श्री दौलत टुडू हैं। इन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय, देवघर में शिक्षा प्राप्त की है।

इन्होंने कहानी, नाटक, कविता तथा लेख लिखे। उनका ' आले आतो ' नामक नाटक प्रकाशित हुआ है। इस नाटक का अभिनय कई जगह सफलतापूर्वक हुआ है। यह सामाजिक नाटक है। इनकी प्रमुख कहानियो में ' सोनोतो ', ' दिमाम मोहा ', ' जुरी उमुल ', ' दिवी साड़ी ', ' कोय हाडायाक् दान ' और ' छेदेर ओड़ाक् ' आदि हैं। 'छेदेर ओडाक्' काफी अच्छी कहानी है। सन्ताली साहित्य मे वह कहानी सर्वश्रेष्ठ मानी जा सकती है। कविताओं में ' खेरवाड़ आडाड ', ' ओनोलिया ', और ' तिरिया ओरोड़ ' आदि प्रमुख हैं। कवि मानता है— लेखकों का राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति कुछ कर्त्तव्य होता है। अतः साहित्यकारों को सम्बोधित कर कहता है—

आम कुन्दाउ ओनोल–कथा मोन गोबांना,
मतावक्–आको दिसाम–भोक्ता ओनोलिया!
ओनोल काली, ओनोलिया! ओन्तोर–बेथा,
हिडिबाको, चेरठाक्–आको, दोरोदिया ॥
दिसाम आजाद, आम आजाद ओनोलिया!
कोलोम आजाद, ओनोल आजाद डहारिया!
दिसाम ताला ओदोल–बोदोल उरालिया!
मिद् दोम, मिद् मोत दिसाम जागोरिया ॥

अर्थात्— कवि कहता है कि अपने सोच समझ कर बताये या लिखे हुए बातो से मन आकर्षित हो जाता है, जिसके सुनने या पढ़ने से देश के लोगो में उमंग बढ़ती है, जोश पैदा होता है। इस प्रकार की कविताओं एव लेखो से मन की व्यथा दूर हो जाती है और दुःख भरा मन आनन्दित हो उठता है। अतः साहित्यकारों से कवि कहता है— देश आजाद है,

तुम भी आजाद हो, तुम्हारी लेखनी भी आजाद है, देश में अनेकों रद्दो-बदल दूसरे के चलते होता रहा है, इसलिए देश में जागृति लाने के लिए एकमत होना चाहिए।

(३४) श्री भवेशचन्द्र हाँसदा—

इस कवि का जन्म सन्ताल परगना के लगडुम गाँव में हुआ है। ये सन्ताली साहित्य के उदायमान कवि हैं। उनकी कविता का धरातल समाज रहा है। वे समाज में सुधार लाना चाहते हैं। उनकी कविताओं में प्रेम का भी चित्रण हुआ है। उनकी कवितोओं में 'एतेद् बाहा', 'इञबुत', 'दिसाम तो बादारे लागित्', 'भारोतिय जुआन' आदि बहुत अच्छी उतरी हैं। चीनी आक्रमण के समय उन्होंने कई प्रभावोत्पादक कवितायें लिखी थी।

(३५) श्री रामसुन्दर हेम्बरम (जन्म १९४५-)

श्री रामसुन्दर हेम्बरम एक अच्छे नृत्य कलाकार हैं। वे अच्छे गायक भी हैं। उनकी लिखी हुई कवितायें गेय भी हैं। उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। कविताओं में देशप्रेम एव समाज सुधार की भावना है। उनकी कविताओं में 'रूप आर गुण', 'हुबा़र', 'जोनोमदाता' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'कासी गेले' नामक उनका कहानी-सग्रह शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है।

(३६) श्री सहदेव मरराडी—

श्री सहदेव मरराडी का जन्म सन्ताल परगना के सिन्दुरबुनियाँ गाँव में हुआ है। कवि को अपने गाँव, समाज एवं देश से बहुत अधिक ममता है। उनकी ममता कविता के द्वारा व्यक्त होती रही है। वे एक बड़े सुधारक

(४३) श्री वैद्यनाथ माण्डी—

श्री वैद्यनाथ माण्डी सन्ताली भाषा के एक अच्छे कवि हैं। उनकी कविता में दार्शनिक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। कवि कहता है:—

जहाँनक् काइ कामी रे दो
एकला-एकलाबोन कामीया
इका कोय जोखाक् खान दो
नेहोरातेबोन होहोया

मडाङ कामी मडाङ काते
होर ते देबोन लाहाक्-मा;
नोंहाय हाडाक् बिपोद रे हो
आदो बाबोन पाचोक्-मा।

अर्थात्— मानव जब बुरा कार्य अकेले करता है, तब उसे क्षमा मागनी पड़ती है तो विनम्र होकर पुकारता है। काम बड़ा भी हो सकता है; कठिन भी हो सकता है; उसमें बाधायें भी आ सकती हैं। पर उनसे मानव को घबड़ाना नहीं चाहिए। पराजित होकर पीछे हटना नहीं चाहिए। उसे तो कार्यरत रहना चाहिए। कवि मानव को प्रेरणा दे रहा है; पहले सामने जो कार्य हो, उसे पूरा करना चाहिए, फिर बाद में अपने पथ पर अग्रसर होना चाहिए। कवि चाहता है कि उसके लोग प्रतिज्ञाबद्ध हो कि— विघ्न-बाधाओं एवं विपदा से अब वह हारकर पीछे नहीं हटेंगे।

(४४) श्री शीतल प्रसाद मुर्मू—

कवि श्री शीतल प्रसाद मुर्मू एक राष्ट्रभक्त कवि हैं। चीन ने जब

"भारत पर आक्रमण किया , कवि पुकार उठा— हिमालय लाल नहीं हो सकता । हिमालय पहाड की तलहटी में राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा फहराते देखकर कवि कहता है—

पोरड बुरू लोदाम रे पेरोड झण्डी लातार
चेदाक् दादा भाईयेम तेंगो एना ?
गाइ बाइ बाइ ते गेव तेंगो दीदो मे ;
दिसाम सीमा दीदीव रुखिया दोहोय ।।

अर्थात्— कवि ने देश में आने वाली विपत्तियों को ध्यान में रखते हुए इस कविता में भाई को सम्बोधित करते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है । हिमालय पहाड की तलहटी में तथा तिरंगे झण्डे के नीचे सैनिकों को खडे देखकर यह प्रश्न उठता है–वे क्यों खड़े हैं । कवि इसका उत्तर देता है— वे सैनिक देश की सीमा के प्रहरी हैं । वे देश के अभिमान हैं । उन्हे देश की सीमा को सुरक्षित रखना है ।

देश में चीनी आक्रमण से एक जागरण आया है । युवक युद्ध–भूमि में जाने को तैयार है । उसकी पत्नी और युवक में बातें हो रही हैं । कवि उसका एक चित्र प्रस्तुत करता है—

अशोक चाक रेबेद् काते , जोडा बंदूक साजाव काते ,
ओका ते दो जुरीम चालाक् काना ?
आलोम कुलोयिवाम बिलोमिवा ;
दिसाम रुखियाय जुरीम चालाक् काना ।।

अर्थात्— हे पतिदेव ! सिर पर अशोक चक्र धारण कर बन्दूक लेकर कहाँ जा रहे हो ? पति इसका उत्तर देते हुए अपनी पत्नी को सम्बोधित कर कहता है— इस प्रकार के प्रश्न पूछकर उसका समय नष्ट न करो ।

वह देश की सुरक्षा के लिए उसकी शान पर मर मिटने के लिए प्रस्थान कर रहा है।

(४५) श्री जागरण चन्द्र सोरेन—

श्री जागरण चन्द्र सोरेन में चीनी आक्रमण से एक जोश आ गया है। चीनियो को भारत की ओर बढ़ते देखकर कवि को चिन्ता होती है। इसी चिन्तन में कवि कहता है—

मा से कोयोगपे रांताङ बुरू सेन ,
बैरी दाराको कान मोबोत्–मोबोत् ।
हेनाक्पेया मे दिसम् दोगेदिया ?
चेदाक् बंगी दोको आमानिया ?
सजाव सजावपे सार–कापी–लारवाड़ी ,
तेंगो दरामकोपे दिसा–बैरी ।
नाहेंकानापे आपे एनेन ती ;
देसे जेरेंदनापे सोरुटोर बाती ।

अर्थात्—कवि अपने देशवासियो को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हिमालय पहाड़ की ओर देखो , झुण्ड के झुण्ड दुश्मन आ रहे हैं , दिलेर भारतवासियों के रहते हुए दुश्मन क्यो ऐसा कर रहे हैं ? कवि को इसीका दुःख है , यह उसकी चिन्ता है। पर कवि चिन्ता कर अपने समय को नष्ट नही करना चाहता है। वह अपने लोगो से कहता है कि वे लड़ाई के हथियार—तीर धनुष एवं भाले–बर्छी आदि को लेकर दुश्मनो का सामना करें।

(४६) श्री गणेश लाल हाँसदाक—

श्री गणेश लाल हांसदाक को अपनी धरती पर नाज है। धरती में

खामियाँ हो सकती है ; पर धरती उसकी अपनी है। अनेक खामियों के रहते हुए भी धरती उसकी माँ है। कवि धरती की खामियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है—

दलाव उदुक् आम बीर-बुरू ;
ओएडे बानुक्-आ बिलान बाइहाड।
एकेनेम अेलानेच् घिरी चाटाइनी,
आरहो मेनाक्-आ गाडा-सोडोक्।
दैलाअ उदुक् आमा बिर-बुरू;
रकाप्-रकाप् तेम आइस चाबाक्।
रकाप् काते आरहो आंडगा सानाम,
दजोक् बाङ सानामे बिर-बुरू।

कवि कहता है— हमारी धरती जगल झाड मे भरी हुई है। कही चट्टान है, तो कही गढा है। खेत कम है। पहाड भी ऐसे है, जहाँ चट्टान भी कम है।

(४७) श्री नोगेन्द्र नाथ हाँसदाक्—

श्री नोगेन्द्र नाथ हाँसदाक् सन्ताली साहित्य के एक उदीयमान कवि है। उनसे बडी-बडी आशा रखी जा रही है। कवि कहता है—

मानवाँ होपोन ! मेत्-दाक् ओत् जाङमे आम ते ;
नोआ धरती राक् लागित् दो बाङ काना एन्ते।
दुक-दान्द मा ताहेनोक् मे होड़मो बाँदाक् रे हों ;
तडाम इदीमे से होर रे जाङ्गाम छाँदाक् रे हो॥
रकाप् रिका होर दो तिसेम चिया जोङा हो ?
दिसाम सगाई सुलुक तिसेम बानिज जोङा हो ?

सुलुक सुताम बाहा माला मोन दो श्राचुरमे ;
नाना हुनार बाहा सिदते गलाङ गुतुयमे ।

अर्थात्— कवि इस ससार की कठिनाइयो को दर्शाते हुए कहते है कि हे मानव ! अपने कष्टो को अपने से ही मिटाने की चेष्टा करो । संसार में रहते हुए दुःख का अन्त होना सम्भव नही है । कष्ट कितना भी आते रहे पर कदम आगे बढाना ही हमारा कर्त्तव्य होता है । कवि चाहता है कि जीवन को सफल बनाने के लिए अनेको प्रकार की शिक्षा हम प्राप्त करें ।

(४८) श्री चार्लिस मुर्मू —

कवि इन दिनो मुंगेर जिलान्तर्गत बाहदाह स्कूल में काम कर रहे हैं । कवि कृषको का गायक है । वह उनके बीच रहता है । उनकी शक्ति से वह परिचित है । उनके श्रम पर उसे संतोष है । उसे अभिमान है । कवि ने उनके जीवन का एक चित्र इस प्रकार दिया है—

मेताक् श्राक् हुसनाक ,
रासका गे तिनाक् ;
रिगी - टिगी गे उच् ते चासा ,
बेरेत् बागीवाद् जुत रे बासा !
श्राह ! लाँगा दो चेद् ?
रासका ते तुहेद ;
श्रोमोर जाडी रे चेद् तमाशा !!

कवि कहता है— किसान लोग सबेरे उठते हैं, खुशी के साथ बिछावन को छोड़कर अपने काम में लग जाते हैं । थकावट का उन्हें अनुभव नही होता । वे खुशी से भर जाते हैं ।

(४९) श्री गुहिराम हेम्बरम 'रसिका'—

कवि रसिका जी पश्चिम बंगाल के बांकुडा जिला में भोसलेहा (खातड़ा) गाँव में रहते हैं। कवि को अपने राष्ट्रीय झण्डे पर नाज है, उसपर उसे गौरव है। कवि को विश्वास है कि उसके झण्डे में असीम शक्ति है। कवि तिरंगा झण्डे की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहता है—

ओलमिश पुरुब, पाछिम, उतार, दाखिन,
साड़िम बेतान रे मेनाक्मे भिन;
मा ताहेंक्मे आरहों ढेर दिन।
जोहार जोहार, ए पेरोङ झोण्डी!
दाडेयाय आडी।

अर्थात्— भारत देश का तिरंगा झण्डा पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में फहरा रहा है। झण्डा को सलामी देते हुए कवि कहता है— हमारा झण्डा बडा बलवान है। उसकी शक्ति असीम है। उसकी शक्ति का अनुमान नही किया जा सकता।

(५०) श्री सुना टुडु बारूडंगुवा—

श्री सुना टुडु 'बारूडगुवा' सन्ताली भाषा के एक जागरूक कवि है। इनकी कविताओं में जागरण का स्वर है। इनकी कविता प्रभावोत्पादक होती है। कवि को सम्बोधित कर वे कह रहे हैं—

सेरेञ गक्लाक सानामे खान;
कथा हक्लाक सानामे खान,
सिर - सिर रे सेंगेल जोलोक् सेरेञ गलाङमे।
जापित्कोको बोमकाव बेरेद्, कथा हलाङमे॥

जनाम ग्रायेय गेक्राङ काना ;
दुक तेय राक् होकमोर काना ,
सेरेब ग्राँजोम रासका तेये मिलाउ गोदोक् मा ।
तोडाव ग्राँजोम सॉव ते गे एनेचए पान्तेक् मा ॥

ग्रर्थात्— कवि को सम्बोधित करते हुए बारूडंगुवा कहते हैं कि हे कवि ! तुम्हें ग्रगर गीत गाना हो तो ऐसा गीत गाग्रो जिसको सुननेसे रोमांच पैदा हो जाय ग्रौर ग्रगर तुम्हें कविता करना ही ग्रावश्यक हो तो ऐसी कविता करो जिसके पढने से या सुनने से मन में उमंग उठे, जोश उत्पन्न हो। तुम्हारी कविता सुनकर पीडित मानव ग्रपने दु ख को भूलकर खुशी से झूम उठे, ऐसी कविता करो ! ऐसा गीत लिखो।

(५१) श्रीधर कुमार मुर्मू 'सुमन'—

श्री सुमन जी का निवास-स्थान हजारीबाग जिला के दुधीपाटी राखा-नगर में है। उनकी प्रतिभा कविता में जितनी निखरी है, उतनी ही कहानियों में भी। वे जन जागरण के कवि है, राष्ट्रीय भावनाग्रो के गायक हैं।

सोहान रोड बानुक्तिञ , चेकातेयिञ बोधावेया ?
सुन - सेयान बानुक्तिञ , चेत बा हालेञ चेकाया ?

बानुक्तिञ बाहा सो हो , चेकाते ग्रादो सोरोक्-ग्राय ?
बानुक्तिञ ग्राकिल-बुद हों, चेकाते ग्रादो सोरोक्-ग्राय ?

ग्रर्थात्— कवि इन पंक्तियो में ग्रपनी लाचारी व्यक्त करते हुए कहता है कि उसमें कोई विशेषता नहीं है जिससे कि वह किसी को लाभ पहुँचा सके। कवि को इस बात का दुःख है कि उसमें न सुगंध है ग्रौर न मिठास। तो वह कैसे किसी को ग्रपनी ग्रोर ग्राकृष्ट कर सकता है।

(५) श्री निमाई चन्द्र सोरेन—

कवि हुगली जिला के अन्तर्गत बेलगडिया (पोलबा) के रहने वाले हैं। वह अच्छा गायक है। उसकी कवितायें प्रेरक शक्ति रखती हैं। वे भाव प्रधान हैं। कवि अपनी समस्याओं में देश को उलझाना नहीं चाहता। वह तो देश की समस्याओं को सुलझाना चाहता है। वह कहता है—

तडाम तडाम तड़ाममे से, गातिञ हो !
चोखोड़ चोखोड चोखोडमे से, गातिञ हो !
सापाबालाक तीकिनतालाङ , गातिञ हो !
फेटेजालाङ जिवीतालाङ ॥
देया काते भावना—होतोर , गातिञ हो !
हिडिञ काते एपेरहेगडेच्, गातिञ हो !
रिकायालाङ दिसाम—सेवा , गातिञ हो !
जनाम दिसाम रुखियायतालाङ ॥

अर्थात्— कवि देशवासियों को सम्बोधित करता हुआ कहता है— हे बन्धुओ ! शीघ्र से शीघ्रतर कदम से कदम वा कन्धा से कन्धा मिलाकर चलें। साथ ही हम भय और कपट को पीछे रख दें। हमें कपट और तकलीफों से हिम्मत नहीं हारते हुए देश की रक्षा के लिए अग्रसर होना चाहिए।

(५३) श्री होपोन चन्द्र बासकी—

कवि पश्चिम बंगाल के पाँडसा गोडा गाँव के रहने वाले हैं। कवि एक मनोवैज्ञानिक सत्य को अपनी एक कविता में व्यक्त करता हुआ कहता है—

तुम्दाक् साबे , टमाक साबे ,

झोमोर-झोमोर झुमुर साडे,
मेनेक तुम्दाक्-टमाक दो बाङ,—
मोने रेनाक् ग्राशा गे साडे !
सुक ते माम सेरेञ साडे ;
दुक ते माम होमोर साडे,
मेनेक सेरेञ-होमोर दो बाङ,—
जियोन रेनाक् बोगे जुदा साडे !

ग्रर्थात्— मन जब दुःखित रहता है तब मन से जो गीत निकलते हैं, वे ग्राँसू लिये ग्राते हैं। उनसे रोने-धोने की ग्रावाज निकलती है, पर मन में ग्रानन्द रहता है, तब मन-मयूर खुशी से नाच उठता है। ग्रानन्द के गीत गाये जाते हैं।

(५४) श्री सोना गिरी मुर्मू—

कवि मुर्मू किसानों का कवि है। वह मानता है, किसान भगवान का ग्रादेशपाल है। वह उनकी इच्छानुसार ही काम करता है। वह कहता है—

सिञ-निन्दा होयोक् कान, चादो बोंगाय चलाव कान,
कामी रे मेजा वकान ग्रावो जोतो होड।
चाँदो बोंगा कामीय छान्दाव नोग्रा दुनिया रे,
कामीम कामी पुराउ ग्राम गे चासा होड ॥

ग्रर्थात्— सृष्टिकर्त्ता ही दिन ग्रौर रात चलाता है ग्रौर हमलोग कामों में लगे हुए हैं। इस संसार में सृष्टिकर्त्ता ही कार्यों का कार्य-क्रम तैयार करता है ग्रौर किसान उन्हीं कार्यक्रमों के ग्रनुसार काम पूरा करता है।

(५५) श्री टॉमस हेम्बरोम—

कवि टामस हेम्बरोम को यह विश्वास है कि जब तक शिक्षा-सूर्य्य का पूर्णतः उदय नहीं होगा, समाज में फैला हुआ अन्धकार दूर नहीं हो सकता है। शिक्षा का कार्य बहुत बड़ा है, सबको करना है। कवि कहता है—

रोहोय ओचोकोआलाङ गाते कुडी,
गाते तायोम हिलो ! हाडाम-बुढी।
आतो-सेवक हिली ! बेगोर दाम ते,
दारेय एम अकाना रोहोय मेनते।
दिसाम होडको धुराय अकान बिर हारा,
एमोक् कानाको लाखे-लाख चारा॥

अर्थात्— कवि कहता है कि पहले हम अपने साथियों एवं सहेलियों को शिक्षा दें, इसके बाद गाँव के बूढ़े और बुढ़ियों को बगैर पैसा से शिक्षा दें। विद्या-दान महान दान है। शिक्षा जो हमें मिली है, उसका प्रसार करना चाहिए। देश के लोग शिक्षा-प्रसार करने में लगे हुए हैं, जिससे लाखों लाख फल प्राप्त होता है।

(५६) श्री साइमन के० हाँसदाक—

श्री साइमन के० हाँसदाक जो प्रकृतिवादी कवि हैं। जंगल कटते देख-कर कवि के हृदय में एक वेदना उमड़ती है। कवि कहता है—

आतुक् बुरू दाक् तारास आते,
बाड़हाड़ सोकड़ा दाक् सेव्योर आते;
दाक् मा आतुक् सौब रामपाकड़ा,
हदीय बड़ाया बाय रूआड़ा।
ओहाय मेनेक नितोक् सेदाय ओमोर,
सेदाय आपुग्र बाबुक् ओकोर ?

राटेन बिर मा एन्ते हेडहेद् केद्बो ,
जापुद् चाबायेन ओकोयाक् दोस ?

अर्थात्—कवि वर्षाऋतु को याद करता है। वर्षाऋतु में पहाड़ी रास्ता से पानी कोलाहल शब्द करता हुआ बहता था। वह नीचे क्यारी होकर धीरे-धीरे बहता था। पानी के साथ कूड़ा-कर्कट भी बह जाता था। फिर वह कभी लौटकर नहीं आता था। परन्तु उस जमाने की वर्षा अब कहाँ है। झाड़-जंगल तो हम लोगों ने साफ कर दिया। वर्षा न होने के लिए दोषी आज हम किसको ठहरायें।

(५६) श्री लीलू सोरेन—

कवि श्री लीलू सोरेन गान्धी जी से बहुत प्रभावित हैं। गान्धी की अर्चना करते हुए कवि कहता है—

गान्धी जी ! आमाक् जेरेद् मरसाल टाण्डो रे ,
गान्धी जी ! डिगिर-डिगिर आले तड़ाम रे ,
गान्धी जी ! मेनाक्लेया आमाक डहार रे ,
गान्धी जी ! अमाक नीति-धोरोम दो रे ,
गान्धी जी ! जुग-जुगले दोहोय गेलामा।

अर्थात्—कवि गान्धी जी के कार्यों को याद करते हुए उनकी अर्चना करता है। कवि का कहना है कि हे हमारे राष्ट्रपिता। आपने जो प्रकाश इस संसार को दिया है, उसी प्रकाश से विश्व आलोकित है उसीमें हमलोग चल रहे हैं। आपके बतलाये हुए राह पर हम चलते हैं। आपने हमें जो नीति-धर्म दिया है, उसीके सहारे हम युगों तक चलेंगे।

(५८) हरप्रसाद मुर्मू—

सन्ताली साहित्य के बहुत लोकप्रिय कवि हैं। वे लिखते भी अधिक

हैं। उनकी रचनाओं में ओज है, भावनायें राष्ट्र के प्रति निवेदित होती रही हैं। कवि कहता है—

नुनाक् ओलोडोएडो—मुनाक् कोड्डा !
बैरी पारोम ते उसुल दाडाङ,
सौंव ते सेटेर आवुपे एमेन आडाङ।
एमाम कानाञ बैरी रासका साबास !
आम गेम एमावुलेया चेतोन साहास।
मामे कोयोगपे राताङ बुरू सेच्,
बैरी दाराको कान बुरुत - बुरुत।
हेनाक्पेया ओकोय दिसाम दोरोदिया।
तिंगू दारामकोपे बैरी हिंसालिया।।

कवि की राष्ट्रीय भावना इन पंक्तियों में परिलक्षित हुई है। शत्रु ने देश पर आक्रमण किया है। कवि भारतीय जवानों को बधाई देता है। कारण वे सजग प्रहरी पर्वत की दरारों में कष्ट का सामना करते हुए देश की सुरक्षा के लिए आज खड़े हैं।

(५६) श्री लोधा मारराडी—

श्री लोधा माररडी समाज एवं राष्ट्र के गायक हैं। कवि समाज में सुधार चाहता है। राष्ट्र में वह प्रगति देखना चाहता है। कामरत मानव की आवश्यकता आज राष्ट्र को है—इस बात को कवि मानता है। वह कहता है—

सोमाज रेको लाहा बकान काज रे लगाव अकानको ;
निहात नाचार तायनोम अकान ओकते कोयोक् अकाक्को।
एमेन, जागवार, फारनाक्मे आकिल-दाक् ते आबोक्मे ;

सोमाज होर रे जेलकोताम लाहा वकान बोयहाको ।।
ग्रोक्ते ग्रालोम ग्रासोक्-ग्रा, ग्रोक्ते ग्रालोम ग्रोरसाव्काक् ;
ग्रोक्ते ग्रालोम सेन्दरा बाडाय, ग्रोक्ते ग्रालोम कोयोक्काक् ।
कामी रे मोने मुरुकताम, कामी रे जिवी ग्रालाय काम ;
ग्रोक्तेय होयोक्तामा गुलाम, ग्रोक्ते ग्रामे ग्रादोराम ।।

ग्रर्थात्—समाज की दशा देखते हुए कवि कहता है कि जो भाई कार्यरत हैं, वे ग्रत्यन्त लाचार हैं, वे समाज में ग्रागे बढ़ें। कवि उन्हें सम्बोधित करते हुए कहता है—वे जागें : शिक्षा प्राप्त करें। विद्यारूपी पानी से ग्रपना चेहरा धो डालें : समाज को ग्रागे ले जायें। समय पर ग्राशा ग्रौर भरोसा न रखें; समय को मत खोजो एवं मत देखो, मन लगाकर काम करो तथा कामों में प्राण को ग्राहुति दो, समय ग्राप ही ग्राप तुम्हारा गुलाम बन जायेगा।

(६०) श्री उपेन्द्रनाथ हेम्बरम—

श्री उपेन्द्रनाथ हेम्बरम मानते हैं कवि देश के मनोबल का प्रहरी है। पाकिस्तान ने जब भारत पर ग्राक्रमण किया, तब कवि ने लोगों को पुकारा :—

देलासे, देलासे ग्रोडेकोक्बोन ग्रोडाक् खोन, भाई रे भाई !
पाकिस्तानी बैरी भाई रे ! दाराको कान, रे भाई !
पाकिस्तानी बैरी भाई रे ! दाराको कान ।।
भारोत पाक सीमा रे साकवा भाई रे ! साडेयेन ;
पाकिस्तानी बैरी देबोन तेंगो दारामको, रे भाई !
पाकिस्तानी बैरी देबोन तेंगो दारामको ।।

ग्रर्थात्—पाकिस्तान ने भारत पर ग्राक्रमण किया। ग्रतः कवि ग्रपने

बन्धुओं से आग्रह करता है—अपनी भूमि से पाकिस्तानियों को निकाल दें—यह कवि का नारा है। कवि चाहता है—सभी लोग घरो से दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए बाहर आयें। भारत-पाक सीमा से युद्ध की आवाज आ रही है। उसे अनसुनी मत करो, चलो। हमसब पाकिस्तानी दुश्मनों का सामना करें।

(६१) श्री बाबूलाल मुर्मू 'आदिवासी' (सन् १६३६-)

कवि बाबूलाल मुर्मू का जन्म सन् १६३६ ई० में दोसीता गाँव (भागलपुर जिला) में हुआ है। अध्ययनकाल से ही इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया है। कहानियाँ एवं कविताएँ इनकी बडी अच्छी होती हैं। कहानियो में दिसाम भोक्ता, 'काकोमायो', 'सोने सोना'और'बोलोर बोंगा' बहुत ही प्रसिद्ध हैं। कविताओं में मुलुच्, तिरिया, भारोत दिसाम आदि बहुत अच्छी हैं। उन्होने दो-तीन पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका प्रकाशन नही हो पाया है। उनकी कहानियाँ बहुत चाव से पढी जाती हैं। उनकी कहानियो के प्रशसक बहुत हैं।

(६२) श्री बाबूराम मुर्मू—

सन्ताली भाषा के ये बहुत ही लोकप्रिय कवि हैं। इनकी कविता में जीवन का सन्देश है। कवि भारत को गतिशील देखना चाहता है। इन शब्दो में कवि कहना चाहता है—

रकाप् एनाय आँपाय इपिल आपिद बा'ले;
सेताक् उयुम सिमको राक् केत् बेरेत्-आले।
उनार नाका साकवा साडे लेन लड़ाई रेयाक्,
टोडोक्-टोडोक् मेत्-दाक् जोरो लेन भारोत-गोवाक्।

अर्थात्—सुबह होना सूचित करनेवाले तारा का उदय हो चुका,

अब हम नहीं सोयेंगे। भोर में मुर्गे ने बांग दी, अब हम उठेंगे।

उत्तर दिशा में लड़ाई का शंख (साकवा) बजा था। चूँकि भारत माता रोयी थी, अर्थात् भारत माता की आँखों से टप्-टप् आंसू चू पड़े थे।

अन्य सन्ताल लेखकों और कवियों में सर्वश्री बड़का मुर्मू पोरायनी, श्री बटेश्वर हेम्बरम, श्री मुन्शी चन्द्र मुर्मू, श्री सफल सोरेन, रूप श्याम सरोज, प्रधान मरण्डी, शुकदेव मुर्मू, मुन्शी हेम्बरम, बालेश्वर सोरेन, चुनाराम हाँसदा, रामपद सोरेन, भूषण प्रसाद साहू 'भूषण', जे० बी० टुडू 'रासकार', सुशील सोरेन, चुनन्दन मारण्डी, श्री छोटन प्रसाद मुर्मू, श्री कुमार जी, हीरायरिमा मारण्डी, हरेकृष्ण बासकी, सुखलाल हाँसदा, शिकार किस्कू, सुकोल सोरेन, रामजित मरण्डी, शिव चरण कुमार किस्कू, होपोन लाल टुडू 'घिरीहिकिर', लाल टुडू आदि का नाम उल्लेखनीय है।

सन्ताल साहित्य के निर्माण की जो गति है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सन्ताल -साहित्य का भविष्य बहुत उज्जवल है। अधिकांश लेखक—कवि सर्वहारा वर्ग के हैं। उनके साहित्य के प्रकाशन का अभाव है। सहकारी प्रकाशन की व्यवस्था हो या सरकार की ओर से सन्ताली साहित्य के प्रकाशन के लिए व्यवस्था हो तो सन्ताली साहित्य का निर्माण हो सकता है। सरकार ने इस ओर कुछ ध्यान दिया है। कुछ लेखकों को सन्ताली साहित्य लिखने एवं प्रकाशित करने के लिए सरकार की ओर से अनुदान मिला है। यह संकेत शुभ की ओर है।

हो सकता है, अज्ञान के कारण कुछ लोगों का इसमें उल्लेख होना रह गया हो, ऐसे बन्धुओं से क्षमा - दान की अपेक्षा है।

सहायक ग्रन्थ



इस पुस्तक के लिखने में जिन लेखकों की पुस्तको एवं निबन्धों से सहायता ली गई है, उनके प्रति लेखक अपना आभार प्रकट करता है। लेखक यह स्वीकार करता है कि उन ग्रन्थो एवं विभिन्न लेखको के द्वारा प्रकाशित तत्वो के आधार पर ही इस पुस्तक की रचना हुई है।

1. Alexander (Cummingham)—Archaeological Report (1871 - 72)

2. Allanson, H - LI - L.— Final Report on the Survey and settlement operations in the District of Sonthal Parganas, 1898 - 1910 (Calcutta, 1912)

3. Ambedker, Dr. B. R—Who are the Sudras ? (1947)

4. Archer, Mildred— 'The Folk - tale in Santal Society'— Man in India, XXIV (1944)— 224 - 32.

5. Archer, W. G.— "The illegitimate child in Santal society."— Man in India, September, 1944, Page 154 - 169,

" The Forcible Marriage."— Man in India, March, 1945. Page— 29 - 42.

" Santal Poetry "— Man in India, XXIII (1943) Page 98 - 105.

" Betrothal Dialogues "— Man in India, XXIII (1943) Page 147 - 53.

" An Indian Riddle Book,"— Man in India, XXIII (1943).

" Festival Songs "—Man in India, XXIV (1944) Page 141 - 44.

" Santal Rebellion Songs "— Man in India, XXV December, 1945.

" Santal Transplantation Songs"—Man in India, March, 1946, Page 6 - 7.

" The Santal Rebellion "— Man in India, XXV (1945) Page 223 - 39.

" Ritual Friendship in Santal Society "—Man in India, March, 1947., Pago 57 - 60.

" The Santal Treatment of witch craft "—Man in India, June, 1947., Page 103 - 21.

6. Baily, F. G —"Caste and Economic Frontier"(1958) Tribe, Caste and Nation (1960)

7. Ball, Prof. V.— Jungle life in India (1880). Geogology of Auranga and Hutar coal fields; Memoirs of the Geoglogical Survey of India; Vol. X (1880)

8. Bhargava, P. L.— India in Vedic Age.

9. Biswas, P. C.— Primitive Religion, Social Organisation, Law and Government amongst the Santals (Calcutta, 1935)

"Santals of the Santal Parganas"—(Delhi, 1956)

10. Bodding, P. O.— " On the different kinds of Salutation used by the Santals "—J.A.S. Bengal, LXVII, Part III (1898)

" On Taboos and Customs connected therewith amongst the Santals "—J. A. S. Bengal, LXVII, Part III (1898) Page 1 - 24.

" Ancient store implements in the Santal Parganas "— J. A. S. Bengal, LXX, Part III (1901)

" Shoulder - headed and other forms of Stone-implements in the Santal Parganas "— J.A S. Bengal, LXXIII, Part III (1904)

" Santal Traditions "— J.B.O.R.S. II (1916)

" Some Remarks on the position of women among the Santals "— J B. O. R. S. II (1916) Page 239 - 49.

" The Traditions and Institutions of the Santals; Second Edition of Horkoren Mare Hapramko reak kath with a foreword by P. O. Bodding (Benagaria, 1916)

" Materials for a Santali Grammar "—(Banagaria, 1922)

" A Chapter of Santal Folk - Lore "— J.B A S. Bengal, 1924.

" A Plea for a standarised system of writing the Munda or Kolarian languages "— J & P A. S., Bengal, New series, XXI (1925)

" Studies in Santal Medicine and connected folk - lore ", Part I—'The Santals and Disease', M. A. S., Bengal, X (1925)

" Santal Medicine " M. A. S, Bengal, X (1927) 123 - 426.

" How the Santals live "— M. A. S., Bengal, (1940) 427 - 502.

" Santal Folk - Tales " (Oslo, 1925 - 29).
" The meaning of the words Buru and Bonga in Santali "— J. B. O. R. S., XII (1926) 63-77.
" A note on the wild people of the Santals ", J. A. S., Bengal, XXVII (N. S.) 241 - 63.
" Santali Grammar for Beginners " (Banagaria, 1929)
" Notes on the Santhals, Census of India; 1931, India, Part III B, 98 - 107.
" A Santal Dictionary (Oslo, 1932 - 36).

11. Bolton, C. W.— " Notes on the settlement of Santal Parganas (Zamindari Portion), 1874 - 9. (Calcutta, 1880, Deputy Commissioner Record Room, Dumka)
12. Bompass, C. H.— " Folk - lore of the Santal Parganas (London, 1909)
13. Bannerjee, B.— " The social and ceremonial life of the Santals "— The Indian Antiquary, LIX (1930), 100.
14. Bradley, Birt F. B — "The Story of an Indian upland "—London, 1925.
15. Buchanan, Francis— ' Journal Kept during in survey of the district Patna, Gaya.
' Journal Kept during the survey of the district Shahabad, (1812 - 13)

'Journal Kept during the survey of the district Bhagalpur (1810 - 11)

16. Campbell, A.—" Santal Folk Tales "—(Pokhuria, 1899).
"The Traditional Migration of the Santal tribes "— Indian Antiquary, (1894)
' A Santali English Dictionary (Pokhuria, 1899)
' Rules of Succession and Partition of property as observed by the Santals ',— J. B. O. R. S. 1, (1913) 21 - 25.
' Superstitions of the Santals ',— J.B.O.R.S. 1, (1915)
' The traditions of the Santals ',— J.B.O.R.S. II (1916), 16 - 29.
' Santal legends '— J.B.O.R.S. II (1916) 191-200.
' Death and Cremation Ceremonies among the Santals, J. B. O. R. S. II (1916), 449 - 56.
' Santal marriage customs ',— J.B O.R.S. Part II, (1916) 304 - 37.

17. Campbell, J.— ' Enthology of India ',— Journal of the Asiatic Society of Bengal, Part II, 1866, Special Number, Enthnology.

18. Carstairs, R.— ' The little world of an Indian District Officer, (London, 1912)
Harma's village (Pokhuria, 1935)

19. Chatterjee, B. K. and Kumar, G D.— "The Somatic character and Racial Affimities of the Santals of the Santal Parganas', J. A. S. B., (Science) Vol. XVIII, No. 1, 1952.

20. Chatterjee, S. K — 'The Linguestic Problems Oxford Pamphlets on Indian affairs, 1943.

21 Chattopadhyaya, K. P.— ' Report on Santals in Bengal, Calcutta University Press, 1947.

22. Choudhary, Uma— ' Marriage customs of the Santals, Bulletin of the Department of Anthropology', Vol. 1, No. 1, January, 1952., 86-116.

23. Craven, C. H. and Skrefsrud, L. O.— 'Traces of Fraternal Polyandry among the Santals',— Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. LXXXI (1903) Page 80 - 90.

24. Cole, F. T.— ' Santali folk - lore',— The Indian Antiquary, IV (1875) 257.

25. Craven, J. A.— ' Sattlement Report, 1892.

26. Culshaw, W. J.— ' Some notes on Bongaism',— J. R. A. S. Bengal, V (1939).

' Some Beliefs and custom relating to Birth among the Santals, J. R. A. S. Bengal, VII, (1941) Page 115 - 27.

' The Folk Consciousness' of the Santali—

Essays in Anthropology presented to S. C. Roy, (Lucknow, 1942) 219 - 27.

Santal Songs , Proceeding Asiatic Folk Literature Society I (1944), No. 1.

' Early Records Concerning the Santals ',—Man in India, XXV (1945), 191 - 3.

' The Santals Rebellion ', Man in India, XXV, (1945), 218 - 23.

' Tribal Heritage ', A Study of the Santals, (London, 1949).

27 Dalton, E. T —' Discriptive Ethnoglogy of Bengal, (Calcutta, 1872)

28 Datta, K. K — ' The Santals Insurrection of 1855 - 7, (Calcutta, 1940).

29 Datta, Majumdar Nabendu— ' The Santal—A study in Cultural Change.'

30. Diwakar, R R.—'Bihar through the Ages, 1858.

31. Driver, W. H. P.— ' Notes on some Kolarian Tribes , Journal of the Asiatic Research Society, (1889), Vol LVII, Part 1, Page 7.

32. Elwin, Verrior— ' The religion of an Indian Tribes, (1955).

' A Philosophy for NEFA ' (1959)

' Folk - tales of Mahakoshal ', (Bombay, 1944)

' Loss of Nerve ', (Bombay, 1941)

'The Aboriginals', (Bombay, 1943)
'The Story of Tata Steel', (1958)
Nagaland (1961)
'Myths of North Frontier of India', (1958)

33. Fraser, J. G — 'The Golden Bough (1952)
34. Ghurye, G. S — 'The Scheduled Tribes (1959)
35 Grierson, G. A.— 'Linguistic Survey of India, (1906)
36. Guha, B. S —'The Indian Aborigines and their Administration', Journal of the Asiatic Society, 1951
37. Gausdal, G.— 'Contributions to Santal Hymology, (Bergen, 1935)

'The Khunt system of the Santals',— J. B. O. R. S., XXVIII (1942), Part IV.

38. Gantzer, J. F.— 'Final Report on the Revision, Survey and Settlement operations in the District of Santal Parganas, 1922-35 (Patna, 1936)
39. Hadden, Dr. A. G.— 'The Races of Man' (1924)
40 Hearn, W. N.— 'Notes on the Santals', Census of India, 1931, India, Part III B, 108 - 9.
41. Hoernle, E. S.— 'A Brief Introduction to the Administrations of the Santal Parganas, (Benagaria, 1929)
42. Haram, K — 'Traditions and institutions of the

Santals, Benagaria, 1887.

43. Hunter, W. W — ' The Annals of Rural Bengal, (London, 1808)
' A Statistical Account of Bengal ', The Santal Parganas, (Calcutta, 1872)

44. Hutton, J. H.— ' Caste in India ', (1961)

45. Jain, R K.— ' Features af Kinship among the Eastern Anthropologist.

46. Jawahar Lal Nehru— ' Discovery of India', (1945)

47. Kabir, Humayun— ' A Programme for National Education - Eastern Economist Pamphlet '.

48. Koomar, C. H.— ' Santal Parganas, Santal or Paharia Koak ' itihas (Pokhuria, 1937)

49. Lacey, W. G.— ' The Santal's Census of India, 1931, I, India, Part III B, 97 - 98.

50. Mackphail, J. M.— ' The Story of the Santal, (Calcutta, 1922)
' Cycle of the Seasons in a Santal village ',— The Calcutta Review, (New Series)

51. Macphail, R. M.— ' Notes on Santals ',- Census of India, 1931, I, India, Part III B, 109.
' An Introduction to Santali ', Part I & II, (Benagaria, S. P. 1947)

52. McAlphin, M. C — ' Report on the Condition of the Santal , (Calcutta, 1909)

53. McPherson, H.— 'Notes on the Aboriginal Races of the Santal Parganas, (Calcutta, 1908) 'Final report on the survey and settlement operations in the District of Santal Parganas, 1898 - 1907 (Calcutta, 1907)

54. Mukherjee, C. L — The Santals, Calcutta, 1943.

55. Man, E G.— 'Sonthalia and the Santhals, (Calcutta, London, 1807)

56. Martin, Montgomery— 'Eastern India, (London, 1832)

57. Majumdar, S. C.— 'Some Santal Songs',— The Vishwa - bharti quarterly, III, (1925) 67 - 9.

58. Mitchell, J. M.— 'Santali Songs', The Indian Antiquary, V, (1875), 342 - 4.

59. Mitra, Kalipada— 'The originals and parallels of Stories in Mr. Bompass (Folk - lore of the Santal Parganas,) J. B. O. R. S., XII, (1926), 560 - 84.

'A Mikir Tale and its Santali Parallels',— J. B. O. R. S., XIV, (1928) 139 - 43.

'Originals and Parallels of some Santal Folk-Tales', J. A. S., Bengal, XXV, (1929), 101

60. Majumdar, Dr. D. N.— 'Races and Cultural of India, (1946)

61. Majumdar and Madan— 'An introduction to

Social Anthropology, (1957)

62. Majumdar, R C.— ' The Vedic Age '.

63. Mitra, Ashok— ' The tribes and castes of West Bengal, Census, 1951.

64 Mitra, Sarat Chandra— ' A note of Human Sacrifice among the Santals ', J. B. O. R S., XII, (1926)

' On a Santali Folk - Tale of the Hero and the Deity Type ', J. B. O. R. S., XII, (1926) 140 - 6.

' Santali life in a Santali Folk - Song ', J.A S , Bombay, XIII, (1926), 48 - 51.

' On a Satya Pirtegeno in Santali guise ',— J. B O. R. S., XIII, (1927), 145 - 7.

' A Further Note on Human Sacrifice among the Santals ', J. B. O. R. S., XIV, (1928), 147-9.

' Folk - Tales of 61 Der Mannund Fuches ' type, Man in India, VIII (1928), 209 - 18.

' The Dog - bride in Santal and hepeha Folk-lore ', J. B. O. R. S., XIV (1928), 422 - 5.

' The Caterpillar Boy and the Caterpillar Husband in the Santali and Chhota Nagpur Folk-lore ', J. B. O. R. S., XIC (1928), 426 - 8.

' The Magical Conflict' in Santali, Bengali and Ho Naga Folk - lore ', Man in India,

IX (1929), Page 173 - 80.

' Further notes on the dog bride in Santali and hepeha Folk - lore ', J. B. O. R. S., XV, (1929), 600 - 06.

65. Mukharjee, C C — ' Notes on the Santals and Kherias of Manbhum District, Census of India, 1931, I, India, Part III B, 110 - 12.

66. Murmu, S. C.— ' Gam Kahini, (Dumka, 1944)

67. Naqui, S. M.— ' Santal Murders', Man in India, XXIII (1943)

68 Oldham, Thomas— ' Memoirs of Geological Survey of India, (1856), Vol. I.

69. Oldham, W. B.— ' Some Historical and Ethnical Aspects of the Burdwan District, (Calcutta, 1894)

70. O' Malley— ' Bihar District Gazetteers, Santal Parganas, (1938)

71. Rapaz, Receben Rusen Kishao— ' Harmawak, (Dumka, 1946)

72. Risley, H. H.— ' The tribes and Castes of Bengal, (Calcutta, 1891)

' The People of India, Second Edition, London, 1915.

73. Rowat, F.— ' Other Notes on the Santals ',— Census of India, 1931, I, India, Part III B, Page 107 - 8.

74 Roychaudhury, P. C.—'Bihar District Gazetteers', Santal Pargana, 10 - 65.

'Sepoy Mutiny in Chota Nagpur', (Bengal Past and Present, July, December, 1955 and July, December 1956.

' 1857 in Bihar (Chotanagpur and Santal Pargana, Patna, 1959.

'Inside Bihar (1962)

75. Roy, Sarat Chandra— 'The Mundas and their country (1912)

'The oraons of Chotanagpur, 1915.

'Oraon Region and Customs (1926)

'The Kharias', Vol I & II (1937)

'The Birhors',—1925.

'A notes on some remains of the Ancient, Asuras— the Bihar and Orissa Resarch Society, Vol 1, Page 230 - 232.

'The Asuras ; Ancient and Modern Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. XII.

'Distribution and nature of Asur site in Chota-Nagpur,— Journal of the Bihar and Orissa Research Society.

76. Roy, S. W.—'The Convension of the Santal to Hinduism', Journal of Bihar & Orissa Rese-

arch Society, Vol. II, (1916), Page 87 - 8.

77. S. S. Sarkar—' The Aboriginal Races of India

78 Sarkar, S. S. and Sen, D. K.— ' Further Blood Group Investigations in Santal Parganas ',— Bulletin of the Department of Anthropology, Vol. 1, No. 1, January, 1952, Page 8 - 13.

79. Sachchidanand—' The Morung and the Dhumkuria ',— A Study in Contrast - Journal of the Bihar Research Society (1954)

80 Vidyarthi, L. P.— ' Education in Tribal Bihar ', Man in India (1955)

81. Yule, Sir George— ' Report on the Santal Parganas for 1858

८२. उमाशंकर—सन्ताल समाज का अध्ययन : योगी, १८ दिसम्बर, १९६५

सन्तालो के विवाह संस्कार ; योगी, २५ दिसम्बर, १९६५

सन्ताल समाज में जन्म संस्कार ; योगी, ४ जनवरी, १९६६

सन्तालों का संयमित जीवन ; नवराष्ट्र

सन्तालो की विठलाहा-प्रथा ; उत्तर बिहार, पर्यटन अंक, वर्ष–११, अंक–३२, १० अगस्त, १९६४

भारत की प्रथम आजाद सरकार एक सन्ताल योद्धा सिदो ने बनायी थी—धर्मयुग, २ अगस्त, १९६४

पहाड़िया जाति का विद्रोह ; ज्योत्स्ना, जनवरी, १९६६

सतालों का बंधना पर्व ; उत्तर बिहार, १५ जनवरी, '६६

संताल समाज के अध्ययन का आधार,
उत्तर बिहार, दीपावली विशेषांक, १९६५

८३. उदय नारायण तिवारी— भोजपुरी भाषा और साहित्य

८४. केवल राम सोरेन और पृथ्वीचंद्र किसकू— संताली शब्दकोष

८५. केसरी कुमार सिंह— नागपुरी भाषा और साहित्य

८६. गदाधर प्रसाद अम्बष्ट— बिहार-दर्पण

८७. गोपाल लाल वर्मा— संताली लोकगीतों में श्री राम, अमृत,
दिसम्बर, १९५९

८८. झारखण्डी झा— भागलपुर दर्पण

८९. डोमन साहु समीर— सन्ताली भाषा-प्रकाश, २६ जनवरी, १९५७
—बिहार के आदिवासी में संकलित 'सन्ताल' अध्याय
—सन्ताली प्रकाशिका, भाग १ और २
—सन्ताली जन-जीवन : कांग्रेस अभिज्ञान ग्रन्थ,
पृष्ठ १०५ से १०९

९०. देवेन्द्र सत्यार्थी— धरती गाती है :. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
—बेला फूले आधी रात : राजहंस प्रकाशन, नई दिल्ली
—बाजत आये ढोल : एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली

९१. धीरेन्द्र वर्मा— ग्रामीण हिन्दी
—हिन्दी भाषा का इतिहास

९२. भागवत मुरमू ठाकुर— पाँच संताली लोक कथाएँ ; प्रकाश,
१५ जनवरी, १९४७
—दोङ सेरेञ : सन्ताल पहाडिया सेवा मंडल, देवघर (१९६३)

९३. बालकिशोर बासकी 'अरमान'—सन्ताल संस्कृति पर शोध आवश्यक,

प्रकाश, १५ जनवरी, १९४७

९४. सच्चिदानन्द— बिठलाहा ; प्रकाश, १५ जनवरी, १९४७

९५. शुद्धदेव झा 'उत्पल'— प्रकृति की गोद ही जिन्हें पसन्द है ; प्रकाश, १५ जनवरी, १९४२

९६. विद्यार्थी, ललिता प्रसाद— बिहार में आदिवासी

९७. युगल किशोर 'जरगर'— 'जब सन्ताल गा उठता है', प्रकाश, १५ जनवरी, १९४७

९८. यदुनन्दन मुरमू— सन्ताल समाज की बुराइयाँ : प्रकाश, १५ जनवरी, १९४७

९९. श्याम परमार— भारतीय लोक साहित्य ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५४

१००. राहुल सांकृत्यायन— आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, पटना, १९५२

— 'मानव समाज'

— 'मातृभाषाओं का प्रश्न' हँस, (सितम्बर, १९४३)

— 'किन्नरदेश'

— हिमालय परिचय।

१०१. शिवदान चौहान— प्रगतिवाद - जनपदीय भाषाओं का प्रश्न (पृष्ठ १८९ - २७६)

पत्र-पत्रिकायें एवं प्रतिवेदन :—

१. Archaeological Reports

२. Linguistic Survey of India

३. Man in India

४. Memoirs of Geological Survey of India.

५. Mythic Society, Banglore.

६. The Asiatic Society of Bengal.

७. Journal of the Bihar Research Society.

८. अवन्तिका (अगस्त, १९५३)

९. अजन्ता (अगस्त, १९५२; जनवरी, १९५४; फरवरी, १९५४)

१०. अजन्ता (अप्रेल, १९५४)

११. आजकल, आदिवासी अंक, १९५३; लोक-कला अंक, १९५४

१२. आलोचना (अप्रेल, १९५२; जुलाई, १९५२)

१३. कल्पना (फरवरी, १९५१; फरवरी, १९५३)

१४. नया पथ (अगस्त, १९५३)

१५. प्रतिभा (फरवरी, '५४; मार्च, '५४)

१६. पाटल (मार्च, '५४; अप्रेल, '५४)

१७. प्रकाश—प्रत्येक अंक

१८. सम्मेलन पत्रिका—लोक संस्कृति विशेषांक

१९. सरस्वती—(फरवरी, '४१; मार्च, '४१)

२०. हँस—(फरवरी, '३६; सितम्बर, '४०; सितम्बर, '४३)

२१. हिन्दुस्तान साप्ताहिक— लोक साहित्य विशेषांक, २ मई, '५४

२२. होड सोम्बाद—प्रत्येक अंक

२३. आदिवासी—प्रत्येक अंक

२४. लोक-संग्रह ।